श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी—तृतीय पुष्प

महाकवि ब्रह्म जिनदास
व्यक्तित्व एवं कृतित्व

(राजस्थान विश्वविद्यालय की पी-एच.डी. उपाधि हेतु स्वीकृत शोध-प्रबंध)

लेखक

डॉ० प्रेमचन्द रांवका

एम.ए., पी-एच.डी.

प्राध्यापक, राजकीय संस्कृत महाविद्यालय,

मनोहरपुर (जयपुर)

प्रकाशक

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी, जयपुर

सम्पादक मण्डल :

डॉ० नरेन्द्र भानावत

डॉ० शम्भुसिंह मनोहर

पं० भँवरलाल न्यायतीर्थ,

डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल

प्रधान सम्पादक

निदेशक मण्डल :

संरक्षक—साहु अशोक कुमार जैन, दिल्ली

पूनमचन्द जैन, झरिया (बिहार)

अध्यक्ष —कन्हैयालाल जैन, मद्रास

कार्याध्यक्ष—रतनलाल गंगवाल, कलकत्ता

उपाध्यक्ष—गुलाबचन्द गंगवाल, रेनवाल

अजितप्रसाद जैन ठेकेदार, दिल्ली

कमलचन्द कासलीवाल, जयपुर

कन्हैयालाल सेठी, जयपुर

पदमचन्द तोतूका, जयपुर

फूलचन्द बिनायक्या, डीमापुर

त्रिलोकचन्द कोठारी, कोटा

महावीरप्रसाद नृपत्या, जयपुर

चिन्तामणी जैन, बम्बई

निदेशक एव प्रधानसम्पादक—डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल

प्रथम संस्करण, १९८०, चैत्र-२०३७

प्रकाशक :

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी

मोदीकों का रास्ता,

किशनपोल बाजार, जयपुर-३०२ ००३

मूल्य ४० रुपये

मुद्रक :

मनोज प्रिन्टर्स

गोदीकों का रास्ता, किशनपोल बाजार

जयपुर-३०२ ००३

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी—एक परिचय

देश के विभिन्न प्रदेशों एवं विशेषतः राजस्थान, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश एवं देहली के जैन शास्त्र भण्डारों में हिन्दी के जैन कवियों की रचनाओं का जो विशाल संग्रह है उसके योजनाबद्ध प्रकाशन की कितने ही वर्षों से आवश्यकता प्रतीत हो रही थी। श्री महावीर क्षेत्र के साहित्य शोध विभाग एवं टोडरमल स्मारक भवन जयपुर से महाकवि दौलतराम कासलीवाल एवं महापंडित टोडरमल पर अवश्य पुस्तकें प्रकाशित हुई है लेकिन फिर भी किसी ऐसी संस्था की कमी खटक रही थी जो जैन कवियों द्वारा निबद्ध समूची हिन्दी कृतियों को प्रकाशित कर सके उनका मूल्यांकन प्रस्तुत कर सके। जिससे हिन्दी साहित्य के इतिहास में जैन कवियों को उचित स्थान प्राप्त हो सके तथा प्रथम कक्षा से लेकर एम. ए. तक किसी भी कक्षा के पाठ्यक्रम इन कवियों की रचनाओं को भी कहीं स्थान दिया जा सके।

इसलिए २ अक्टूबर ७६ को एक नयी संस्था की स्थापना का विचार मन मे आया। संस्था का नाम क्या रखा जावे यह भी सोचा गया। और अन्त मे 'श्रीमहावीर ग्रन्थ अकादमी' नाम उपयुक्त समझकर इसी नाम से संस्था की स्थापना करने का निश्चय किया गया। संस्था के नामकरण के साथ ही सर्व प्रथम जैन कवियों के हिन्दी साहित्य को २० भागों में प्रकाशित करने की योजना बनायी गई तथा उसे मूर्त रूप देने के लिए कार्य प्रारम्भ कर दिया गया। योजना के अन्तर्गत २० भागों में कम से कम साठ कवियों का जीवन परिचय, उनकी कृतियों का सूक्ष्म मूल्यांकन एवं कृतियों के मूल पाठों का सुसम्पादित करके प्रकाशन करना इस अकादमी का मुख्य उद्देश्य रखा गया। साथ ही हिन्दी कवियों के २० भागों की योजना पूर्ण होने पर पहिले संस्कृत और फिर प्राकृत अपभ्रंश के आचार्यों पर भी इसी प्रकार की योजना के सम्बन्ध में दृढ़ निश्चय किया गया। जिससे समस्त जैनाचार्यों एवं कवियों का परिचय सामान्य जनता को भी मालूम हो सके। देश के विश्वविद्यालयों में जिस तेजी से जैन विद्या पर शोध कार्य होने लगा है उसके कारण भी शोधार्थियों के सामने ऐसी पुस्तकों का होना आवश्यक है।

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी के इस हिन्दी योजना के अन्तर्गत निम्न प्रकार २० भाग प्रकाशित करने का निर्णय किया गया—

१.	महाकवि ब्रह्म रायमल्ल एवं भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति	प्रकाशित
२.	कविवर बूचराज एवं उनके समकालीन कवि	"

३.	महाकवि ब्रह्म जिनदास व्यक्तित्व एवं कृतित्व	प्रकाशित
४.	महाकवि वीरचन्द एवं सहिचन्द	प्रकाशनाधीन
५.	कविवर विद्याभूषण, ज्ञानसागर एवं जिनदास पाण्डे	,,
६.	ब्रह्म यशोधर एवं भट्टारक ज्ञानभूषण	,,
७.	भट्टारक रत्नकीर्ति एवं कुमुदचन्द्र	,,
८.	कविवर रूपचन्द, जगजीवन एवं ब्रह्म कपूरचन्द	,,
९.	महाकवि भूधरदास एवं बुलकीदास	,,
१०.	जोधराज गोदीका एवं हेमराज	,,
११.	महाकवि द्यानतराय	,,
१२.	पं. भगवतीदास एवं भाउकवि	,,
१३.	कविवर खुशालचन्द काला एवं अजयराज	,,
१४.	कविवर किशनसिंह, नथमल विलाला एवं पाण्डे लालचन्द	,,
१५.	कविवर बुधजन एवं उनके समकालीन कवि	,,
१६.	कविवर नेमिचन्द एवं हर्षकीर्ति	,,
१७.	भैया भगवती दास एवं उनके समकालीन कवि	,,
१८.	कविवर दौलत राम एवं छत्रदास	,,
१९.	मनराम, मन्नासाह एवं लोहट	,,
२०.	२० वी शताब्दी के जैन कवि	,,

योजना तैयार होने के पश्चात् उसके क्रियान्वय का कार्य आरम्भ कर दिया गया। एक ओर प्रथम भाग " महकवि ब्रह्म रायमल्ल एवं भट्टारक त्रिभुवनकीत्ति" के लेखन एवं सम्पादन का कार्य प्रारम्भ किया गया तो दूसरी ओर अकादमी की योजना एवं नियम प्रकाशित करवा कर समाज के साहित्य प्रेमी महानुभावो के पास संस्था सदस्य बनने के लिये भेजे गये। कितने ही महानुभावों से साहित्य प्रकाशन की योजना के सम्बन्ध में विचार विमर्श किया गया। मुझे यह लिखते हुए प्रसन्नता है कि समाज के सभी महानुभावों ने अकादमी की स्थापना एवं उसके माध्यम से साहित्य प्रकाशन योजना का स्वागत किया है और अपना अधिक से अधिक सहयोग देने का आश्वासन दिया। सर्व प्रथम अकादमी की प्रकाशन योजना को जिन महानुभावों का समर्थन प्राप्त हुआ उनमें सर्वश्री साहु शान्ति प्रसाद जी जैन, श्री गुलाबचन्द जी गंगवाल रेनवाल, श्री अजित प्रसाद जी जैन ठेकेदार देहली, श्रीमती सुदर्शन देवी जी छाबडा जयपुर, प्रोफेसर अमृतलाल जी जैन दर्शनाचार्य एवं डा० दरबारी लालजी कोठिया वाराणसी, श्रीमती कोकिला सेठी जयपुर, श्रीमान् हनुमान बक्स जी गंगवाल कुली, पं. अनूपचन्द जी न्यायतीर्थ जयपुर एवं वैद्य प्रभूदयाल जी कासलीवाल जयपुर के नाम उल्लेखनीय है। योजना की क्रियान्विति,

प्रथम भाग के लेखन एवं प्रकाशन एवं अकादमी के प्रारम्भिक सदस्य बनाने के अभियान में कोई १।। वर्ष निकल गया और हमारा सबसे पहिला भाग जून १९७८ में में ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी के शुभ दिन प्रकाशित होकर सामने आया। उस समय तक अकादमी के करीब १०० सदस्यों की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी थी।

"महाकवि ब्रह्म रायमल्ल एवं भ त्रिभुवनकीर्ति" के प्रकाशित होते ही अकादमी की योजना मे और भी अधिक महानुभावों का सहयोग प्राप्त होने लगा। जुलाई १९७९ में इसका दूसरा भाग "कविवर बूचराज एव उसके समकालीन कवि" प्रकाशित हुआ जिसका विमोचन एक भव्य समारोह में हिन्दी के वरिष्ठ विद्वान् डा० सत्येन्द्र जी द्वारा किया गया। प्रस्तुत भाग में ब्रह्म बूचराज, ठक्कुरसी, छीहल, गारवदास एवं चतरूमल का जीवन परिचय, मूल्यांकन एवं उनकी ४४ रचनाओ के पूरे मूल पाठ दिये गये हैं।

अकादमी का तीसरा भाग पाठको के समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है इसमें महाकवि ब्रह्म जिनदास का परिचय एवं मूल्यांकन किया गया है। इस भाग के लेखक डॉ० प्रेमचन्द रांवका हैं जिनका यह शोध प्रबन्ध है जो राजस्थन विश्वविद्यालय की ओर से पी–एच. डी. उपाधि के लिए स्वीकृत हो चुका है। डॉ० रांवका एक उदीयमान लेखक एव विद्वान् है तथा साहित्य सेवा मे उनकी विशेष रुचि है। इस भाग मे हम केवल एक ही कवि का परिचय दे सके है। क्योंकि यह अकेला कवि ही कितने ही कवियो के समान है तथा साहित्य जगत् मे जो बेजोड़ कवि है।

सम्पादन में सहयोग—अकादमी के प्रत्येक भाग के प्रधान सम्पादक के अतिरिक्त तीन-तीन विद्वानों का सहयोग लिया जाता है। प्रस्तुत भाग के सम्पादन मे हमे डॉ० नरेन्द्र भानावत, डॉ० शम्भूसिंह जी मनोहर एवं पं. भंवरलाल जी न्यायतीर्थ का जो सहयोग प्राप्त हुआ है उसके लिए हम उनके आभारी है। डॉ० भानावत ने तो प्रस्तुत पुस्तक पर प्राक्कथन लिखने की भी कृपा की है। उक्त विद्वानो के अतिरिक्त हम और विद्वानो का सहयोग प्राप्त कर चुके है। जिनमे डॉ० सत्येन्द्र जी, डॉ० दरबारीलाल जी कोठिया, डॉ० ज्योति प्रसाद जी जैन, डॉ० हीरालाल जी माहेश्वरी, पं. मिलापचन्द जी शास्त्री एवं पं. अनूपचन्द जी न्यायतीर्थ के नाम उल्लेखनीय हैं।

नवीन सदस्यों का स्वागत

अकादमी के अब तक २२० सदस्य बन चुके है जिनमे ५० संचालन समिति एवं शेष विशिष्ट सदस्य है। दूसरे भाग के प्रकाशन के पश्चात् श्रीमान् पूनमचन्द जी सा० जैन झरिया (बिहार) ने अकादमी का संरक्षक सदस्य बनकर, श्रीमान् रतनलालजी सा. गंगवाल कलकत्ता ने संस्था का कार्याध्यक्ष बनकर तथा श्रीमान् महावीर

प्रसाद जी कृपस्था जयपुर एवं श्रीमान् चिन्तामणी जी जैन बम्बई ने उपाध्यक्ष बनने की स्वीकृति देकर साथ ही में श्री जम्बूकुमार जी जैन कोटा, श्रीमती चमेली-बाई जी कोठिया वाराणसी, वैद्य शान्ति प्रसाद जी जैन देहली, श्रीमती रानी जी फिरोजाबाद, श्री कमलकुमार जी जैन कलकत्ता, प्रताप धर्मार्थ ट्रस्ट देहली एवं पं. टोडरमल जैन महाविद्यालय जयपुर ने संचालन समिति का सदस्य बनकर साहित्य प्रकाशन में जो योग दिया है उसके लिए हम सभी महानुभावों के आभारी हैं। श्रीमान् पूनमचन्द जी सा. जैन बिहार के अच्छे व्यवसायी हैं तथा साहित्य के प्रचार प्रसार में पर्याप्त रुचि रखते हैं। श्रीमान् रतनलाल जी गंगवाल कलकत्ता भी सामाजिक एवं साहित्यिक सेवा में अभिरुचि रखते हैं। इसी तरह श्री महावीर जी कृपस्था एवं श्री चिन्तामणि जी जैन दोनों ही जयपुर निवासी हैं तथा समाज के कार्यों में विशेष योगदान देते रहते हैं। इसी तरह अकादमी के करीब ४० विशिष्ट सदस्य और बने हैं जिन सब का हम हृदय से स्वागत करते हैं। प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् डॉ० दरबारी लाल जी कोठिया की धर्म-पत्नी श्रीमती चमेली देवी कोठिया ने संचालन समिति की सदस्या बनकर अकादमी की योजना में जो रुचि दिखाई है उसके लिए हम उनके विशेष आभारी हैं क्योंकि डॉ० कोठिया सा. तो इसके पहिले ही सदस्य हैं इस तरह अकादमी को समाज का बराबर समर्थन एवं सहयोग मिल रहा है और भविष्य में भी इसी तरह मिलता रहेगा ऐसा हमारा पूर्ण विश्वास है।

सहयोग—अकादमी के सदस्य बनाने में कितने ही महानुभावों का निरन्तर सहयोग प्राप्त होता रहता है। इनमें पं मिलापचन्द जी सा. शास्त्री जयपुर, डॉ दरबारी-लाल जी कोठिया वाराणसी, श्री मूलचन्द जी पाटनी बम्बई एवं श्री गुलाबचन्द जी गंगवाल रेनवाल एवं श्रीमती कोकिला जी सेठी जयपुर के नाम विशेषतः उल्लेखनीय है।

जैन सन्तों का आशीर्वाद

अकादमी के साहित्य प्रकाशन की योजना को कितने ही जैनाचार्यों एवं सन्तों का आशीर्वाद प्राप्त है और उन्होंने साहित्य प्रकाशन की दिशा में बराबर आगे बढ़ते रहने का अपना आशीर्वाद दिया है इन सन्तों में एलाचार्य श्री पूज्य १०८ विद्यानन्द जी महाराज, आचार्य कल्प श्रुतसागर जी महाराज, आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज, पूज्य अमरमुनि जी महाराज, क्षुल्लक सिद्धसागर जी महाराज लाडनू वालों के नाम उल्लेखनीय हैं। इसी तरह मूड-बिद्री एवं श्रवण बेलगोला के पूज्य भट्टारक चारुकीर्ति जी महाराज ने भी इस योजना को अपना आशिर्वाद दिया है।

अन्त में समाज के सभी साहित्य प्रेमियों से सादर अनुरोध है कि वे श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी के अधिक से अधिक सदस्य बनकर हिन्दी जैनकवियों के काव्यों के प्रकाशन में अपना योगदान देने का कष्ट करें।

डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल
निदेशक एवं प्रधान सम्पादक

अध्यक्ष की ओर से

महाकवि ब्रह्म जिनदास—व्यक्तित्व एवं कृतित्व पुस्तक को पाठकों के हाथों में देते हुए मुझे अतीव प्रसन्नता है। श्री महावीर ग्रंथ अकादमी का यह तीसरा पुष्प है। इसके पूर्व महाकवि ब्रह्म रायमल्ल एवं भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति तथा कविवर बूचराज एवं उनके समकालीन कवि प्रकाशित हो चुके हैं। इस तरह सम्पूर्ण हिन्दी जैन साहित्य को २० भागों में प्रकाशित करने के लिए श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी की जिस उद्देश्य से स्थापना की गयी थी उसकी ओर वह आगे बढ़ रही है। २० भाग प्रकाशित होने के पश्चात् सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य के अधिकांश अज्ञात, अल्पज्ञात एवं महत्वपूर्ण जैन कवि ही प्रकाश में नहीं आवेंगे किन्तु सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य का क्रमबद्ध इतिहास भी तैयार हो जावेगा जो अपने आप मे एक महान् उपलब्धि होगी तथा डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल साहब की, जो इस अकादमी के सस्थापक, निदेशक एवं प्रधान सम्पादक हैं, कल्पना साकार हो सके।

प्रस्तुत भाग के लेखक है—डा० प्रेमचन्द रांवका जो एक उदीयमान विद्वान् हैं तथा जैन विद्या के अनन्य भक्त हैं। यह उनका शोध प्रबन्ध है जो राजस्थान विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत हो चुका है। ब्रह्म जिनदास हमारी इस योजना के अन्तर्गत तीसरे भाग के कवि है इसलिए अकादमी की ओर से इस शोध प्रबन्ध को आवश्यक संशोधन के साथ प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया। डा० रांवका सा. ने अकादमी को शोध प्रबन्ध प्रकाशित करने की जो अनुमति दी है उसके लिए हम उनके आभारी है।

अकादमी की सदस्य संख्या निरन्तर बढ़ोतरी हो रही है। अकादमी के इस वर्ष श्रीमान् पूनमचन्द जी सा० जैन, बिहार के नये सरक्षक बने है। उनका हम अकादमी की ओर से स्वागत करते है। साथ ही मे श्रीमान् रतनलाल जी सा० गंगवाल ने अकादमी का कार्याध्यक्ष बनने की स्वीकृति प्रदान की है। हम उनका भी हार्दिक स्वागत करते हैं। हमें पूर्ण विश्वास है कि आप दोनों महानुभावों के सहयोग से अकादमी निरन्तर आगे बढ़ती रहेगी। अकादमी के अब तक २२० सदस्य बन चुके हैं लेकिन ५०० सदस्य बनाने का हमारे उद्देश्य मे अभी आधा लक्ष्य भी पूरा नहीं हुआ है। इसलिए मेरा अकादमी के प्रत्येक सदस्य से अनुरोध है कि वे कम से कम अपनी ओर से एक सदस्य तो और बनाने का कष्ट करें। जिससे संस्था को आर्थिक संकट का सामना नहीं करना पड़े।

हम चाहते हैं कि अकादमी का प्रत्येक सैट सभी विश्वविद्यालयों के हिन्दी विभागाध्यक्षों को निःशुल्क भेजा जावे इससे दो लाभ होंगे एक तो जैन कवियों पर विश्वविद्यालयों में होने वाले शोध कार्यों में वृद्धि होगी तथा दूसरी जैन कवियों को विद्यालय एवं महाविद्यालय के पाठ्यक्रमों में भी उचित स्थान मिल सकेगा। मैं समाज के उदार एवं साहित्य प्रेमी महानुभावों से प्रार्थना करूंगा कि वे अपनी ओर से दस-दस अथवा पांच-पांच सेट भिजवाने की स्वीकृति देने का कष्ट करें।

अन्त में मैं दूसरे भाग के प्रकाशन के पश्चात् उन सभी नवीन सदस्यों का हार्दिक स्वागत करता हूं कि जिन्होंने अकादमी की सदस्यता स्वीकार करके हिन्दी जैन साहित्य के प्रकाशन में योग देने की महती कृपा की है।

मैं प्रस्तुत भाग के सभी माननीय सम्पादकों डा० नरेन्द्र भानावत, पं भंवरलाल जी न्यायतीर्थ एवं डा० शम्भूसिंह जी मनोहर का आभारी हूं जिन्होंने प्रस्तुत भाग का सम्पादन करके हमें इसके प्रकाशन में अपना योगदान दिया है। मैं अकादमी के निदेशक एवं प्रधान सम्पादक डा० कासलीवाल सा० का किन शब्दों में आभार प्रगट करूं क्योंकि अकादमी की स्थापना एव उसके संचालन, पुस्तकों के लेखन, सम्पादन एवं प्रकाशन सभी में उन्हीं की साधना काम कर रही है। उनको विद्वानों का एवं समाज का जो सहज सहयोग प्राप्त हुआ है वह उनकी साहित्य के प्रति अनन्य निष्ठा का प्रमाण है।

कन्हैयालाल जैन

मद्रास

सम्पादकीय

हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है। सारे देश में इसको सम्मान प्राप्त है लेकिन राष्ट्रभाषा का स्थान प्राप्त होने पर भी इसे अनवरत संघर्ष करना पड़ रहा है जो गत ८०० वर्षों से बराबर चालू है और अभी तो ऐसी आशंका है उसे भविष्य में भी संघर्ष करना पड़ेगा। इस संघर्ष के प्रारम्भ में जैन कवियों का सबसे अधिक योगदान रहा। जब देश में संस्कृत का पर्याप्त प्रचार था तथा वह शिष्टजनो की भाषा के नाम से समाहृत थी तथा संस्कृत को जनभाषा का स्थान प्राप्त था तब भी जैन कवियों ने पहिले अपभ्रंश के रूप में और फिर पुरानी हिन्दी के रूप में छोटी-बड़ी पचासों रचनाए निबद्ध करके अपने हिन्दी प्रेम का ज्वलंत उदाहरण प्रस्तुत किया। ये रचनाएं राजस्थान, मध्यप्रदेश, देहली एवं उत्तर प्रदेश के जैन ग्रन्थागारों मे संग्रहीत है। अभी तक सैकड़ों ऐसे कवि हैं जिनके सम्बन्ध में हमें कोई सूचना नहीं है। इसीलिये जब भी किसी शास्त्र भण्डार की सूचीकरण का कार्य प्रारम्भ किया जाता है तो दो चार कृतियां प्राप्त हो जाती है तथा कुछ नये कवियों के नाम सामने आ जाते है। इस प्रकार तो न जाने कितने कवि एवं उनकी कृतियां अपने उद्धार की प्रतीक्षा मे पड़ी हुई हैं।

महाकवि ब्रह्म जिनदास भी ऐसे ही कवि हैं जिनके सम्बन्ध में पहिले हिन्दी जगत् को कोई विशेष जानकारी प्राप्त नही थी क्योंकि यदि जानकारी होती तो ऐसे महाकवि को हिन्दी साहित्य के इतिहास में उचित स्थान प्राप्त हो गया होता। जैनेतर विद्वानो के समान जैन विद्वानों ने भी अपने हिन्दी जैन साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में ब्रह्म जिनदास का नामोल्लेख नहीं किया जबकि सन् १९४८ में ही राजस्थान शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूचियों में ब्रह्म जिनदास की रचनाओं का बार-बार नाम आता रहा है। इससे ज्ञात पड़ता है कि कुछ समय पूर्व तक जैन विद्वान भी ब्रह्म जिनदास के महत्त्व को नहीं समझ सके। ब्रह्म जिनदास के विषय मे ग्रंथ सूचियों एवं प्रशस्ति संग्रह में दिये गये परिचय के अतिरिक्त सर्वप्रथम परिचय देने का श्रेय पं० परमानन्द जी शास्त्री को है जिन्होंने अनेकान्त मे ब्रह्म जिनदास के सम्बन्ध में लेख द्वारा साहित्यिक जगत् को जानकारी प्राप्त करायी। उसके पश्चात् डॉ० कस्तूर-चन्द कासलीवाल ने "राजस्थान के जैन सन्त-व्यक्तित्व एवं कृतित्व' पुस्तक में

ब्रह्म जिनदास के विषय में विस्तृत सामग्री उपस्थित की और कवि को ५३ हिन्दी रचनाओं का नामोल्लेख करते हुए २१ हिन्दी कृतियों का संक्षिप्त परिचय दिया।

लेकिन ब्रह्म जिनदास जैसे महाकवि का इतना सा परिचय पर्याप्त नहीं था तथा उनके विस्तृत मूल्यांकन की अतीव आवश्यकता थी। इसलिए डॉ० प्रेमचन्द रांवका ने ब्रह्म जिनदास पर शोध प्रबन्ध लिखकर एक बड़ी अभाव की पूर्ति की है। वास्तव में ऐसे महाकवि पर यदि आज से २० वर्ष पहिले ही शोध कार्य हो गया होता तो सम्भवतः तो इन्हें हिन्दी साहित्य के इतिहास में उचित स्थान प्राप्त हो गया होता। फिर भी "देर आयद दुरस्त आयद" वाली कहावत के अनुसार देर से ही सही फिर भी महाकवि पर शोध-कार्य जैन कवियों पर कार्य करने वाले विद्यार्थियों के लिए बहुत सहायक सिद्ध होगा।

ब्रह्म जिनदास १५ वीं शताब्दि के कवि थे। डॉ० रावका ने इनका समय संवत् १४५० से १५३० तक का निर्धारित किया है जबकि डॉ० कासलीवाल ने इसका समय १४४५ से १५२५ तक की निश्चित् थी। इस प्रकार आयु समान होने पर भी जन्म और मृत्यु काल में ५ वर्ष का अन्तर है। जो विशेष अन्तर नहीं है। इस प्रकार इनका काल हिन्दी के आदिकाल के बाद का है जब अपभ्रंश का संध्याकाल का तथा हिन्दी का वह प्रभात था। इन ८० वर्षों में हिन्दी के कितने ही दिग्गज कवि हुए जिन्होंने हिंदी का तेजी से विकास किया वैसे। यह भक्ति काल था जब प्रत्येक कवि की कलम भक्ति रस में डूबने लगी।

ब्रह्म जिनदास जैन सन्त थे उन पर सरस्वती की विशेष कृपा थी। उस युग के प्रभावशाली भट्टारक सकलकीर्ति के वे छोटे भाई थे इसलिए समाज में उनका विशिष्ट स्थान था। ब्रह्म जिनदास समाज की नब्ज पहचानते थे जब संस्कृत भाषा में काव्य रचना में उन्हें कोई विशेष फल नजर नहीं आया तब तत्कालीन बोलचाल की भाषा में हिन्दी को उन्होंने अपनाया और लगे काव्य रचना करने। जनता ने भी उनका दामन पकड़ लिया और एक के बाद दूसरी रचना की मांग होने लगी। सारे हिन्दी जगत् में ऐसे बहुत ही कम कवि होंगे जिन्होंने जनरुचि के अनुसार इतने रडेसारे काव्य लिखे है। लेकिन ब्रह्म जिनदास के लिए काव्य रचना सबसे सरल कार्य था। उनकी कलम चली रहती और नयी-नयी रचनाएं सामने आती रहती। कोई यह नहीं समझे कि ब्रह्म जिनदास ने छोटे-छोटे काव्य लिखे हैं बड़े-बड़े काव्यों का निर्माण नहीं किया उनका अकेला राम-रास ही ऐसा महाकाव्य है जिसके समक्ष तुलसी की रामायण एवं जायसी का पद्मावत भी लघु काव्य हैं। इसलिए यदि

उनके काव्यों के पद्य संख्या जोड़ी जावे तो वह हजारों में बैठेंगे और तराजू का पलड़ा प्रत्येक दृष्टि से ब्रह्म जिनदास के पक्ष में रहेगा ।

ब्रह्म जिनदास के काव्यों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने अपने काव्यों में जिस भाषा का प्रयोग किया है वह एकदम बोलचाल की भाषा है लेकिन भाषा में मधुरता तथा कोमलता है । उनकी भाषा बागड़ प्रदेश की भाषा है जिसमें राजस्थानी, गुजराती का सम्मिश्रण है । एक दूसरे से बात करने वाली भाषा में काव्यों की रचना करके ऐसी भाषा को साहित्यिक भाषा बनायी तो पूर्णतः ग्रामीण भाषा पायी जाती थी तथा जो कवियों द्वारा उपेक्षित थी । ब्रह्म जिनदास एवं उनके पीछे होने वाले कवियों के बारे में उन्हीं की शैली का अनुसरण किया है । उनके काव्यों को पढने में उनमें वर्णित पूरा दृश्य आँखों के सामने नाचने लगता है । वास्तव में उन्होंने लोकानुरंजन, काव्यों का निर्माण करके उस समय हिन्दी के प्रचार प्रसार में जितना योग दिया उतना आज हम राष्ट्र भाषा घोषित होने पर भी नहीं दे पा रहे हैं ।

ऐसे महाकवि के मूल्यांकन से तथा उनके काव्यों के प्रकाश में आने से हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक और विलुप्त कड़ी जुड़ सकेगी तथा भविष्य में लिखे जाने वाले इतिहासों में उसका पूरी तरह मूल्यांकन हो सकेगा तथा जिस विलुप्त साहित्य को प्रकाशित करने के उद्देश्य से श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी की स्थापना की गई है उसमें एक और सफलता मिलेगी ।

डॉ० रांवका ने महाकवि की ७० कृतियों के सम्बन्ध में अपने शोध प्रबन्ध में जानकारी दी है लेकिन ब्यावर, कुचामन, नागौर आदि के शास्त्र भण्डारों को यदि और देखा जाता है तो सम्भवतः यहाँ अभी और भी रचनाएं प्राप्त सकती हो है । लेकिन फिर भी किसी कवि की ७० कृतियों की खोज स्वयं अपने आप में कीर्तिमान है जिसके लिए डॉ० रांवका बधाई के पात्र हैं । ऐसे महाकवि पर एक शोध प्रबन्ध पर्याप्त नहीं है अभी तो विभिन्न दृष्टियों से कई शोध प्रबन्ध लिखे जा सकते हैं जिनमें महाकाव्यों का विभिन्न दृष्टियों से अध्ययन किया जा सकता है । हमें आशा है कि भविष्य में और भी शोधार्थी इस दिशा में प्रवृत्त होंगे ।

जैन हिन्दी साहित्य को २० भागों में प्रकाशित करने के उद्देश्य से श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी की स्थापना अपने आप में एक प्रशंसनीय कदम है । यह उसकी ओर से प्रकाशित होने वाला तीसरा भाग है जो आंशिक सफलता का सूचक है । जैसे-जैसे अकादमी के आगे के भाग प्रकाशित होते रहेंगे हिन्दी जैन कवियों के नये-नये

कीर्तिमान स्थापित होते रहेंगे। क्योंकि अधिकांश जैन कवियों की रचनाएं विशाल। एवं वृहद् है तथा जीवन के कितने ही उपयोगी प्रश्नों को स्पर्श करने वाली है तथा जिन के मूल्यांकन में हिन्दी साहित्य के इतिहास को नयी दिशा प्राप्त होगी।

हमें पूर्ण विश्वास है कि महावीर ग्रन्थ अकादमी अपने उद्देश्य से आगे बढ़ती रहेगी और अज्ञात अनुपलब्ध एवं अप्रकाशित साहित्य को प्रकाश में करने में सफलता प्राप्त करेगी।

नरेन्द्र भानावत
लक्ष्मीसिंह मनोहर
भँवरलाल न्यायतीर्थ
कस्तूरचन्द कासलीवाल
प्रधान सम्पादक

प्राक्कथन

डॉ० नरेन्द्र भानावत
रीडर : हिन्दी विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

धर्म, कला और साहित्य संस्कृति के प्रमुख अंग है। इन्ही के माध्यम से मनुष्य की जन्मजात पाशविक वृत्तियों का संस्कार और चेतना का उर्ध्वीकरण होता है पर यह तभी सम्भव है जब इसके मूल में कोई निश्चित दृष्टि या जीवन दर्शन हो। इसके अभाव में कला और साहित्य कौतुक क्रीड़ा और वाक्जाल बनकर ही रह जाते हैं। दर्शन की पकड़ ही साहित्य को शक्ति और स्फूर्ति प्रदान करती हैं। दर्शन का फलक जितना व्यापक, जीवन-स्पर्शी और सार्वजनीन होगा, साहित्य उतना ही पैना मार्मिक और व्याप्ति लिये हुए होगा। सन्त काव्य और भक्ति साहित्य इस दृष्टि से अपना वैशिष्ठ्य लिये हुए हैं।

मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा और उसके विकास में सन्त-भक्ति-साहित्य की प्रभावकारी भूमिका रही है, पर न जाने क्यों उसे धार्मिक-दार्शनिक भीत्ति के कारण कोसा जाता रहा है, उसकी उपेक्षा की जाती रही है और जैन साहित्य की तो विशेष तौर से। पर हमे यह स्मरण रखना हैं कि जैन धर्म दर्शन कोई संकीर्ण जातिगत वर्गगत आचार-विचार प्रणाली नहीं है। वह जीवन्त धर्म हैं। उसमें मनुष्य की स्वतन्त्रता और समानता को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। मनुष्य के गौरव और उसकी मुक्ति का व्याख्यान करने वाले सहस्राधिक जैन कवि हो गये हैं, पर उनमें से अधिकांश अब भी शास्त्र भण्डारों में बन्द हैं जिनकी जानकारी है उनका भी सम्यक् रूपेण मूल्यांकन नहीं हो पाया है।

जैन साहित्य का निर्माण यद्यपि आध्यमिक धार्मिक भावना से प्रेरित होकर किया गया है पर वह सम-सामयिक जीवन से कटा हुआ नहीं है। जैन साहित्य के निर्माता जन-सामान्य के अधिक निकट होने के कारण लौकिक घटनाओं, धारणाओं और विचारों को यथार्थ अभिव्यक्ति दे पाये है। इस नाते इस साहित्य का महत्त्व केवल व्यक्ति के नैतिक उन्नयन की दृष्टि से ही नही है, वरन् सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश की दृष्टि से भी है।

आज हमें अपने देश का जो इतिहास सामान्यत: पढ़ने को मिलता है, वह मुख्यत: राजा-महाराजाओं और सम्राटों के वंशानुक्रम का इतिहास है उसमे राजनैतिक

घटनाचक्रों, युद्धों और सन्धियों की प्रमुखता है। उसके समानान्तर चलने वाले धार्मिक और सामाजिक आन्दोलनों को विशेष महत्त्व नहीं दिया गया है और उससे सम्बद्ध स्रोतों का इतिहास लेखन में सावधानी पूर्वक बहुत कम उपयोग किया गया है। जैन साहित्य इस दृष्टि से अत्यन्त मूल्यवान है। जैन सन्त ग्रामानुग्राम पाद-विहारी होने के कारण क्षेत्र विशेष में घटित होने वाली छोटी से छोटी घटना को भी तथ्यात्मक रूप में लिखने के अभ्यासी रहे हैं। समाज के विभिन्न वर्गों से निकट-कता का सम्पर्क होने के कारण वे तत्कालीन जन-जीवन की चिन्तनधारा को सही परिप्रेक्ष्य में समझने और पकड़ने में सफल रहे हैं। इस प्रक्रिया से गुजरने के कारण उनके साहित्य में देश के सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास-लेखन की प्रचुर सामग्री बिखरी पड़ी है।

इतिहास लेखन में जिस तटस्थ वृत्ति, व्यापक जीवनानुभूति और प्रामाणिकता की अपेक्षा होती है वह जैन सन्तों में सहज रूप से प्राप्य है। वे सच्चे अर्थों में लोक प्रतिनिधि हैं। न उन्हें किसी के प्रति लगाव है न दुराव। निन्दा और स्तुति से परे जीवन की जो सहज प्रवृत्ति और संस्कृति है, उसे अभिव्यंजित करने में ही ये लोग लगे रहे। इनका साहित्य एक ऐसा निर्मल दर्पण है जिसमें हमारे विविध आचार-विचार, सिद्धान्त-संस्कार, रीति-नीति, वाणिज्य-व्यवसाय, धर्म-कर्म, शिल्प-कला, पर्व-उत्सव, तौर-तरीके, नियम-कानून आदि यथा रूप प्रतिबिम्बित है।

जहां तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन को जानने और समझने का जैन साहित्य सच्चा बेरोमीटर है, वहां जीवन की पवित्रता, नैतिक मर्यादा और उदात्त जीवन-आदर्शों का व्याख्याता होने के कारण यह साहित्य समाज के लिये सच्चा पथ-प्रणेता और दीपक भी है। इसका अध्येता निराशा में आशा का सम्बल पाकर अन्ध-कार से प्रकाश की ओर चरण बढ़ाता है। काल को कला में, मृत्यु को मंगल में और ऊष्मा को प्रकाश में रूपान्तरित करने की क्षमता इस साहित्य में है।

जैन साहित्य का भाषा के विकासात्मक अध्ययन की दृष्टि से विशेष महत्त्व है। भाषा की सहजता और लोक भूमि की पकड़ के कारण इस साहित्य में जन-पदीय भाषाओं के मूल रूप सुरक्षित रहे हैं। इनके आधार पर भारतीय भाषाओं के ऐतिहासिक विकास और पारस्परिक-सांस्कृतिक एकता के सूत्र आसानी से पकड़े जा सकते हैं।

जैन साहित्यकार मुख्यत: आत्मधर्मिता के उद्गाता होकर भी प्रयोगधर्मी रहे हैं। अपने प्रयोग में वे क्रान्तिवाही होकर भी वे अपनी मिट्टी और जलवायु से जुड़े हुये हैं। अतः उनके साहित्य में भारतीय अध्यात्म-धारा की प्रवहमानता देखी

जा सकती है। इस दृष्टि से भारतीय साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियों और धाराओं को इसमे पुष्टता और गति मिली है। विभिन्न भाषाओं के साहित्य के इतिहासों को भी जैन साहित्य के कथ्य और शिल्प ने काफी दूर तक प्रभावित किया है। हिन्दी साहित्य की आध्यात्मिक चेतना को आज तक जागृत और क्रमबद्ध रखने में जैन साहित्य की दार्शनिक संवेदना की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

यहां हमने साहित्य की जिस अन्तश्चेतना और महत्ता की ओर संकेत किया है, उसका प्रतिनिधित्व करते हैं--पन्द्रहवी शती के 'लोक कवि ब्रह्म जिनदास'। ये विद्यापति और कबीर के समकालीन थे। यह युग भाव भाषा में आलोडन-विलोडन का युग था। शास्त्रीयता के बन्धन खुल रहे थे और प्रतिष्ठित हो रही थी मानवीय गरिमा और उसकी सहज (देशी) भाषा। विद्यापति ने 'देसिल बअना सब जन मिट्ठा' कहकर लोकभाषा के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त की। 'ब्रह्म जिनदास ने भी कहा—जिस प्रकार बालक कठोर नारियल का कुछ उपयोग नही जानता, लेकिन साफ करके उसकी गिरी देने से वह बड़े आनन्द से उसका स्वाद लेता है, उसी प्रकार देश भाषा में कही गई बात सर्व सुलभ एवं लोक भोग्य बन जाती हैं—

> कठिन नालीयरने दीजि बालक हाथि, ते स्वाद न जाणे।
> छोल्या केल्यां द्राख दीजे, ते गुण बहु माणे।।
>
> —आदिनाथ रास

इसी भावना से प्रेरित होकर महाकवि ब्रह्म जिनदास ने संस्कृत के प्रकांड पंडित होकर भी अपना अधिकांश साहित्य हिन्दी में लिखा। हिन्दी साहित्य के इतिहास में वे अकेले ऐसे कवि हैं जिन्होंने विविध विषयक लगभग ५० 'रास' संज्ञक काव्यों का सृजन किया। लोक भाषा में तुलसी से पूर्व 'राम रास' (र. काल, सम्वत् १५०८) की रचना कर ब्रह्म जिनदास ने हिन्दी राम काव्य परम्परा का सूत्रपात और नेतृत्व किया। रूपक काव्य परम्परा में 'परमहंस रास' की अपनी विशिष्ट छवि और भंगिमा है।

ऐसा सशक्त और व्यापक अनुभवों का धनी 'महाकवि ब्रह्म जिनदास' अब तक पांडुलिपियों में ही लुप्त था। मेरे निर्देशन में डॉ प्रेमचन्द रांवका ने इस ग्रंथ के माध्यम से इस कवि के व्यक्तित्व और कृतित्व का पहली बार सम्यक् परीक्षण और मूल्यांकन किया है। इसके लिये डॉ० रांवका को जयपुर, उदयपुर, डूंगरपुर, ऋषभदेव आदि स्थानों के हस्तलिखित ग्रन्थ भण्डारों को टटोलकर बड़े परिश्रम और मनोयोग पूर्वक कवि की कृतियों का संग्रह, प्रतिलिखन, सम्पादन करना पड़ा। उनका यह

अध्ययन और समीक्षण मौलिक होने के साथ-साथ कबीर के समकालीन एक विशिष्ट कवि को हिन्दी साहित्य में प्रतिष्ठापित करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण है ।

यह ग्रन्थ सात अध्यायों में विभक्त है । प्रथम दो अध्यायों में ब्रह्म जिनदास की सम-सामायिक परिस्थितियों का चित्रण करते हुये उनके जीवन और व्यक्तित्व का अन्तर्साक्ष्य एवं बहिर्साक्ष्य के आधार पर प्रामाणिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है । शेष पांच अध्यायों में कवि की प्राप्य ७० कृतियों को वर्गीकृत कर उनका सामान्य परिचय देते हुये, उनका साहित्यिक, दार्शनिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन किया गया है । प्रत्येक अध्याय डॉ० रांवका की संतुलित विवेचना शक्ति और मर्म भेदिनी दृष्टि का परिचायक है । परिशिष्ट में ब्रह्म जिनदास की अप्रकाशित महत्वपूर्ण रचनाओं के मूल पाठांश दिये गये हैं । इससे कवि की वर्णन क्षमता और भाषा प्रकृति को समझने में मदद मिलती है ।

आज हिन्दी भाषा और साहित्य के क्षेत्र में शोध कार्य तेजी से बढ़ता जा रहा है, पर उसके अनुपात में प्रकाशन की व्यवस्था नहीं हो पा रही हैं । प्रकाशन की सुविधा न मिलने से महत्वपूर्ण दिशा बोधक शोध-ग्रन्थ भी विश्वविद्यालयों के संदर्भ कक्षों में ही कैद बने रहते हैं । ऐसी स्थिति में श्री महावीर ग्रंथ अकादमी के निदेशक आदरणीय डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल विशेष धन्यवाद के पात्र हैं कि उन्होंने इस ग्रन्थ को अकादमी की प्रकाशन-योजना में सम्मिलित कर हिन्दी जगत् का व्यापक हित किया है । डॉ० कासलीवाल मूक साहित्य सेवी और शोधार्थियों के सच्चे उदारमना मार्गदर्शक हैं । उन्होंने राजस्थान के जैनशास्त्र भण्डारों का सर्वेक्षण कर सैकड़ों अज्ञात कवियों को प्रकाशमान किया है । अब उनके कृतित्व का दोहन कर, प्राप्त नवनीत को, श्री महावीर ग्रंथ अकादमी के 20 प्रकाशनों के द्वारा सब में बांटने का महान दायित्व उठाया है । प्रस्तुत ग्रन्थ, इस शृंखला में "अकादमी" का तृतीय प्रकाशन है ।

मुझे पूरा विश्वास है कि इन प्रयत्नों से न केवल जैन साहित्य का समुद्धार होगा, वरन् हिन्दी साहित्य के इतिहास की और उसके माध्यम से भारतीय चिन्ता की कई विलुप्त होती हुई कड़ियों को जोड़ने और संवारने में भी मदद मिलेगी । मै इस महत् अनुष्ठान की शीघ्र सम्पन्नता की कामना करता हूं ।

नरेन्द्र भानावत

सी-235 ए,
तिलक नगर, जयपुर

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति के पिछले हजार वर्षों के रूप को समझने के लिए 'हिन्दी' एक मात्र नहीं तो सर्व-प्रधान साधन अवश्य है। हिन्दी भाषा की उत्पत्ति के साथ ही भारतीय संस्कृति एक विशेष दिशा की ओर मुड़ती है। भारतीय संस्कृति की जो छाप प्रारम्भ की हिन्दी पर पड़ी है, वह इतनी स्पष्ट है कि केवल भाषा के अध्ययन से भी हम संस्कृति के विभिन्न रूपों का अनुमान लगा सकते हैं। हिन्दी भाषा में उपलब्ध साहित्य का मूल्य केवल साहित्यिक नहीं है, वह हमारे पिछले हजार वर्षों के सांस्कृतिक, सामाजिक और धार्मिक साधनों के अध्ययन का सबसे बहुमूल्य और विशाल साधन है। समूचे मध्ययुग के अध्ययन के लिए संस्कृत की अपेक्षा हिन्दी का साहित्य कहीं अधिक उपादेय और विश्वसनीय है। यह साहित्य लोक जीवन का सच्चा और सर्वोत्तम दिशा निर्देशक है।

संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश की तरह हिन्दी भाषा में भी विशाल परिमाण मे जैन साहित्य रचा गया है। जैनाचार्यों, सन्तों एवं कवियों का भाषा-विशेष से कभी आग्रह नहीं रहा। उन्होंने जन सामान्य की दृष्टि से लोक-भाषा को अपने काव्य-सृजन का माध्यम बनाया। यही कारण है कि प्रायः सभी प्राच्य भाषाओं में जैन कवियो द्वारा रचित साहित्य मिलता है। परन्तु हिन्दी साहित्य के इतिहास में ७ वीं से १४ वीं शती तक लोक भाषा मे जिस साहित्य का सृजन हुआ उसकी उपेक्षा ही की जाती रही। उसका परिणाम जैन साहित्य पर भी पड़ा।

यह उल्लेखनीय है कि समग्र हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन में जैन कवियों द्वारा निबद्ध साहित्य सामाजिक, सास्कृतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करता है। यह साहित्य भारतीय वाङ्मय का अपरिहार्य अंग है। परन्तु खेद का विषय है कि इन कवियों द्वारा रचित साहित्य को धार्मिक साहित्य की संज्ञा देकर उसकी उपेक्षा की जाती रही है। यही कारण है कि समूचे हिन्दी साहित्य के इतिहास में दो चार जैन कवियों को छोड़कर शेष कवि अछूते ही रहे। परन्तु क्या जैन कवियों का साहित्य मात्र धार्मिक साहित्य ही है ? क्या वह साहित्य की परिसीमा में परिगणनीय नहीं है ? इस सम्बन्ध में अपने "हिन्दी साहित्य का आदिकाल" में आचार्य श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी ने जो तथ्य प्रस्तुत किये हैं, वे पठनीय हैं। उनके अनुसार धार्मिक साहित्य होने मात्र से कोई रचना साहित्यकी

संज्ञा से वंचित नहीं हो सकती। साहित्य में धार्मिकता, एवं आध्यात्मिकता कोई बाधक नहीं है। यह तो उसका अपना वैशिष्ट्य है। हिन्दी साहित्य का आदिकाल जैन कवियों की रचनाओं से परिपुष्ट ही नहीं, उसके बिना वह अपूर्ण ही रहेगा। इस काल के अनेक उच्चकोटि के कवियों में स्वयम्भू, पुष्पदन्त, योगीन्दु, पद्मकीर्ति, हरिभद्रसूरि, हेमचन्द्र, रामसिंह, धनपाल, सोमप्रभसूरि आदि हैं, जिनके काव्यों में मानव-जीवन का पूरा चित्र मिलता है। कविवर 'स्वयंभू' को तो राहुल सांकृत्यायन ने शीर्षस्थ कवियों में भी श्रेष्ठ कवि माना है। श्री सांकृत्यायन के अनुसार ये कवि हिन्दी काव्य धारा के प्रथम सृष्टा थे। इन्हें विस्मरण करना हमारे लिए हानि की वस्तु होगी। इन कवियों ने एक योग्य पुत्र की तरह हमारे काव्य क्षेत्र में नया सृजन, नये भाव, नये चमत्कार दिये हैं।

भक्ति, मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति की विशेषता है। आदिकाल की तरह हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल की समृद्धि में जैन कवियों, सन्तों एवं आचार्यों का उल्लेखनीय योगदान रहा है। मध्यकाल में भट्टारक सकलकीर्ति, भ. भुवनकीर्ति, ज्ञानभूषण, ब्रह्म जिनदास, ब्र. बूचराज, ब्र. रायमल्ल, भ. शुभचन्द्र, बनारसीदास, समयसुन्दर, भूधरदास, द्यानतराय, ज्ञानसागर, जिनहर्ष आदि ने भक्ति के साथ रीति की अजस्र धाराएँ-प्रवाहित की थी। इन कवियों ने जन सामान्य की अपेक्षानुसार साहित्य की विविध विधियों का सृजन कर लोक मानस को परितृप्त किया। इनका साहित्य सम-सामयिक जीवन से कटा हुआ नहीं रहा। जन-सामान्य के निकट होने से इस काल के जैन कवियों द्वारा रचित साहित्य आध्यात्मिकता के साथ सामाजिक एवं सांस्कृतिक पक्ष को भी अपने में समाविष्ट करता है। काव्य के विविध रूपों के विकास और उस समय की लोक चिन्तना का भी इससे ज्ञान प्राप्त होता है। इस साहित्य के अध्ययन बिना मध्ययुगीन इतिहास अधूरा ही रहेगा।

भक्ति काल में पन्द्रहवीं शती के उत्तरार्द्ध के 'ब्रह्म जिनदास' (सं. १४५० से सं. १५२०) ऐसे ही सन्त महाकवि हैं, जो पाण्डुलिपियों में ही ओझल होने से समाज एवं विद्वान् इतिहासकारों की दृष्टिपथ में नहीं आ पाये। अपने लघु-बृहद् ८५ काव्यों के प्रणयन से, इस कवि ने संस्कृत-हिन्दी साहित्य की जो अनुपम सेवा की है, वह साहित्य के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण अध्याय जोड़ती है। इस महाकवि ने संवत् १५०८ में 'राम रास' की रचना करके हिन्दी राम-काव्य परम्परा का नेतृत्व किया है।

परम पूज्य गुरुवर्य स्व. पं. श्री चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ एवं श्रद्धेय डॉ० कस्तूरचन्दजी कासलीवाल के सान्निध्य में प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थोंके प्रति-लेखन कार्य

ने मुझे जैन साहित्य के अध्ययन की ओर आकर्षित किया । श्री दि० जैन महावीर जी क्षेत्र के साहित्य शोध विभाग में 'राम रास' के प्रति-लेखनकाल में डॉ० कासलीवाल साहब ने मुझे इसके रचयिता 'ब्रह्म जिनदास' के जीवन एवं व्यक्तित्व पर शोध ग्रन्थ लिखने की प्रेरणा दी । फलस्वरूप मैंने आदरणीय डॉ० नरेन्द्र भानावत के निर्देशन में इस कवि के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पक्ष को प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के लेखन का विषय बनाया ।

प्रस्तुत शोध-ग्रन्थ में 'ब्रह्म जिनदास' के समग्र व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है । इस शोध ग्रन्थ को सात अध्यायों में विभाजित कियागया है । प्रथम अध्याय सम-सामयिक परिस्थितियों से सम्बद्ध है जिसमें कवि की सम-कालीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों पर विचार किया गया है । द्वितीय अध्याय में अन्तः साक्ष्य एवं बहिर्साक्ष्य के आधार पर कवि के जीवन एवं व्यक्तित्व पर सान्वेषण प्रकाश डाला गया है । शेष पांच अध्यायों में कवि की अद्यावधि प्राप्त हिन्दी भाषा की ७० रचनाओं को वर्गीकृत कर प्रत्येक का सामान्य परिचय देते हुए उनका साहित्यिक, दार्शनिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है । शोध ग्रन्थ की परिसीमा में कवि की हिन्दी कृतियों का ही अध्ययन अपेक्षित होने से प्राकृत एवं संस्कृत की १६ रचनाओं का नामोल्लेख मात्र किया गया है ।

परिशिष्ट में, कवि की महत्त्वपूर्ण रचनाओं के मूल पाठांशों, सहायक व सन्दर्भ ग्रन्थ सूची के साथ शोध-प्रबन्ध में प्रयुक्त ग्रन्थों, ग्रन्थकारों, सन्तों, विद्वानों, श्रावकों, शासकों, ग्रामों, नगरों-स्थानों की नामानुक्रमणिका दी गई है जिससे सन्दर्भ स्थलों को देखने में सुविधा रहे । शोधग्रन्थ में कवि के 'आदिपुराण रास' की सर्वाधिक प्राचीन पाण्डुलिपि (सं० १६१७) एवं उनके द्वारा प्रतिष्ठित सं. १५१०–११ की प्रतिमाओं के चित्र भी दिये गये हैं ।

कविवर ब्रह्म जिनदास की जीवनी एवं कृतित्व सम्बन्धी सामग्री के संकलन में विभिन्न ग्रंथ भण्डारों एवं अन्य उपलब्ध स्रोतों का पूर्ण लाभ लेकर उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर गवेषणा युक्त प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है, तथापि कवि की विपुल-साहित्य-सम्पदा के समक्ष जिसके मूल्यांकन में सहस्रों पृष्ठ भी कम पड़ेंगे, इन अल्प पृष्ठों में पूर्ण मूल्यांकन का दावा मैं नहीं कर सकता । यह उल्लेखनीय है कि स्व. पं. परमानन्द जी शास्त्री दिल्ली, ने जैन सिद्धान्त-भास्कर, भाग–२५, किरण–१ में प्रकाशित अपने लेख में 'कवि की कुछ और कृतियों १ करकण्डु रास–२ जम्बूकुमाररास, 3-श्रुतस्कंध रास,-४ जीवदयारास का नामोल्लेख किया था । इनकी प्राप्ति के लिए स्वयं पं. शास्त्री एवं ईडर के साथ अन्य ग्रन्थ

भण्डारों से भी सम्पर्क साधा गया, परन्तु जानकारी नहीं मिली। इस प्रकार उपलब्ध समय एवं साधनों में जितना हो सकता है, उसी के आधार पर यह ग्रन्थ समाज एवं विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत है।

स्नातकोत्तर परीक्षा उत्तीर्णान्तर मुझे शोध कार्य की सर्व-प्रथम प्रेरणा प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद गुरुवर्य्य स्व. पं. चैनसुखदास जी न्यायतीर्थ से मिली। जैन वाङ्मय के अज्ञात एवं अनुपलब्ध भण्डार के अन्वेषण एवं प्रकाशन में उनकी महती भूमिका रही। वे मेरे जीवन निर्माता थे। उनके प्रति मैं श्रद्धावनत हूं। यह ग्रन्थ उनकी स्मृति में समर्पित है।

प्रातः वन्दनीय परम-पूज्य मुनिराज तपोनिधि युवा आचार्य श्री १०८ विद्यासागरजी महाराजश्री जिन्होंने अपने आत्म-साधनारत दो दिवस पर्यन्त शोधग्रंथ को आद्योपान्त अवलोकित कर महत्त्वपूर्ण उपयोगी मार्ग-दर्शन दिये हैं एवं प्रातः वन्दनीय आध्यात्ममूर्ति एलाचार्य श्री विद्यानन्द जी मुनिराज जिन्होंने ग्रन्थ का अवलोकन कर 'आशीर्वाद' लिखा है, मुनिराज द्वय के पावन चरण कमलों में नत मस्तक हूं, जिनकी पीयूषवाणी से प्राणी मात्र के लिए शाश्वत 'धर्मवृद्धिरस्तु' का आशीर्वाद मिलता है।

मेरे शैक्षणिक जीवन के संरक्षक स्वरूप, जैन साहित्य के प्रसिद्ध गवेषक विद्वान् परम श्रद्धेय डॉ० कस्तूरचन्द जी कासलीवाल के प्रति मैं किन शब्दों में कृतज्ञता प्रकट करूं? विभिन्न ग्रन्थ भण्डारों से सम्पर्क साधने एवं समय-समय पर शोध ग्रन्थ की सामग्री संकलन के साथ उसके सम्वर्द्धन एवं प्रकाशन में आपका विश्वसनीय सौजन्यपूर्ण सहयोग एवं वात्सल्य भाव ही मेरे शोध जीवन का सम्बल रहा है। आपकी महती कृपा वाचामगोचर है। श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी द्वारा इस शोध ग्रन्थ के प्रकाशन में आपका ही श्रीफल है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध राजस्थान विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के रीडर (प्राध्यापक) आदरणीय डॉ० नरेन्द्र भानावत के निर्देशन में लिखा गया है। आदरणीय डॉ० भानावत सा० जैन साहित्य के अधिकारी विद्वान् हैं। आपकी अनवरत साहित्य सेवा आदर्श स्वरूप है। आपकी सतत प्रेरणा, अनुभवजन्य मार्गदर्शन, स्नेह और सौजन्य से ही यह ग्रन्थ उस रूप में प्रस्तुत हो सका है। मैं आपका अनुगृहीत एवं कृतज्ञ हूं।

हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध गवेषक एवं समालोचक परम श्रद्धेय डॉ० सत्येन्द्र का मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूं जिनकी प्रेरणा एवं अनुमति से मैं इस कार्य में प्रवृत्त हुआ। राजस्थान विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के प्रोफेसर आदरणीय डॉ० हीरालालजी माहेश्वरी, डॉ० रामचंद्रजी पुरोहित एवं डॉ० शम्भूसिंहजी मनोहर की सतत प्रेरणा

एवं सौजन्यपूर्ण सद्भावना को मैं कभी विस्मृत नहीं कर सकता। मैं आपका अनुगृहीत एवं कृतज्ञ हूं।

शोध प्रबन्ध के आलेखन में सर्व श्री मुनि श्री जिनविजय जी, श्री अगरचन्दजी नाहटा, श्री के. माधव कृष्ण शर्मा, पं. भंवरलाल जी न्यायतीर्थ, डॉ० देवेन्द्र कुमार शास्त्री, डॉ० महेन्द्रसागरजी प्रचण्डिया, श्री पं० अनूपचन्दजी न्यायतीर्थ, डॉ० प्रेम सुमन जैन, श्री रामवल्लभजी सोमाणी, डॉ० गंगाराम गर्ग, डॉ० बिहारीलाल जैन एवं डॉ० शान्ता भानावत का जो वैचारिक सौहार्द प्राप्त हुआ है। तदर्थ उन सभी के प्रति विनय भाव हैं।

'महाकवि' के व्यक्तित्व एवं कृतित्व सम्बन्धी अन्वेषण, अध्ययन एवं आलेखन हेतु मुझे जयपुर के विभिन्न ग्रन्थ भण्डारों एवं पुस्तकालयों के अतिरिक्त उदयपुर, ऋषभदेव, डूंगरपुर आदि स्थानों की यात्रा करनी पड़ी। इस कार्य में इन [illegible] की सभी व्यवस्थाओं का जो सहयोग मिला है, मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

समग्र हिन्दी जैन साहित्य को २० भागों में प्रकाशित करने के अपने महान् ऐतिहासिक उद्देश्य की सम्पूर्ति में स्थापित एवं सलग्न श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी जयपुर द्वारा अपने तृतीय पुष्प के रूप में प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध को आवश्यक सामान्य परिवर्तन-परिवर्द्धन के साथ प्रकाशित करने के लिए मैं उसके निदेशक आदरणीय डॉ० कासलीवाल सा०, सम्पादक मण्डल एवं संचालकगण का अत्यन्त आभारी हूं जिनके सद् प्रयासों से यह ग्रन्थ शीघ्र ही प्रकाशित हो सका है।

परम पूज्य पिता श्री स्व. श्री भंवरलाल जी रांवका एवं मातु श्री के प्रति नतमस्तक हूं जिनके असीम वरद् हस्त ने मुझे इस योग्य बनाया है।

ग्रन्थ के शीघ्र एवं सुन्दर मुद्रण कार्य के लिए राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी के प्रकाशन अधिकारी श्री महेशचन्द्रजी जैन एवं मनोज प्रिन्टर्स जयपुर के व्यवस्थापक श्री रमेशचन्द्रजी को हार्दिक धन्यवाद है।

चैत्र शुक्ला त्रयोदशी
वीर निर्वाण सं २५०६
वि० सं० २०३७

प्रेमचन्द रांवका
१६१०, खेजड़े का रास्ता,
जयपुर-302 001

विषयानुक्रम

अध्याय 1

सम-सामयिक परिस्थितियाँ

ब्रह्म जिनदास १५ वीं शताब्दी के कवि थे। गुजरात एवं राजस्थान के सीमा-ञ्चल प्रदेश इनके जन्म एवं साधना-स्थल रहे है। इनका समय विक्रम सम्वत् १४५० से १५३० (सन् १३६३ से १४७३ ई०) का ठहरता है।[1] ये हिन्दी साहित्य के भक्ति काल में विद्यापति एवं कबीर के समकालीन थे। इन कवियों के समय की परिस्थितियाँ ही ब्रह्म जिनदास के युग की परिस्थितियाँ हैं। इस अध्याय में हम बहिर्साक्ष्य के आधार पर ब्रह्म जिनदास के समय की राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों का अध्ययन करेंगे।

राजनैतिक परिस्थिति :

पृथ्वीराज चौहान की हार के बाद भारत में मुसलमान साम्राज्य स्थायी रूप से जम गया। गुलामवंश, खिलजीवंश, तुगलकवंश और सैयदवंश के शासकों ने लगभग १५ वी शताब्दी तक दिल्ली पर राज्य किया। राजस्थान के अजमेर, नागौर और मेवात के क्षेत्र पर प्रारम्भ से ही दिल्ली के शासकों का अधिकार रहा। अलाउद्दीन खिलजी ने लगभग सारा राजस्थान जीत लिया था। बागड़, मेवाड़ और हाड़ौती के क्षेत्र जहां हमारे आलोच्य कवि ब्रह्म जिनदास ने विहार किया था; १४वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही खिलजी सल्तनत के भाग बन गये थे।

मुसलमान यद्यपि धार्मिक दृष्टि से बड़े कट्टर थे; किन्तु जैनों से इनके अच्छे संबंध रहे थे। अलाउद्दीन के राज्यकोष का अधिकारी 'ठक्कर फेरू' जैन था। जैन नन्दि संघ के भट्टारक प्रभाचन्द्र को, जो दिगम्बर मुनि थे फिरोजशाह तुगलक ने अपने महल में बुलाया था। कहा जाता है कि मुनि को इस अवसर पर वस्त्रधारण करने पड़े थे। तभी से उत्तर भारत में वस्त्रधारी भट्टारक प्रथा का प्रादुर्भाव हुआ। दिल्ली में भट्टारक गादियां पहले से ही स्थापित हो चुकी थी। सुल्तान और उसकी बेगमों ने मुनि के दर्शन किये थे और उन्हें सम्मान दिया था। सुकवि रत्नशेखर सूरि का भी इस सुल्तान ने सम्मान किया बताते हैं। मेरठ और टोपरा से दिल्ली लाये

---

१. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन : भारतीय इतिहास, एक दृष्टि, पृ० सं० ४१६।

गये अशोक स्तम्भों को पढ़वाने के लिए जिन विद्वानों को बुलवाया गया था; उनमें जैन विद्वान भी थे ।

तुगलक बादशाहों के अन्त में केन्द्रीय शासकों की शक्ति क्षीण हो गयी थी और प्रान्तीय राजा स्वाधीन हो गये थे । इनमें मालवा और गुजरात के शासक विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । मालवा में दिलावरखाँ गौरी ने नया राज्य स्थापित किया और गुजरात में जफ़रखाँ ने । उसी समय मेवाड़ के शासक हम्मीर ने मुसलमानों को हटाकर अपने पूर्वजों का शासन पुनः प्राप्त कर लिया था । इसके पुत्र खेता और पौत्र राणा लाखा के समय से मेवाड़ राज्य की शक्ति और अधिक बढ़ गयी थी । राणा लाखा का अधिकारी मोकल भी योग्य शासक था ।

इसका लड़का कुम्भा सन् १४३३ ई० में चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठा । यह महान प्रतापी शासक था । इसने मालवा और गुजरात के सुल्तानों को कई बार हराया ।[1] इसके समय में कई निर्माण कार्य हुये । चित्तौड़ मे नौ मञ्जिला उत्तुंग कीर्ति स्तम्भ इसी द्वारा निर्मित है । इसी राणा के आश्रय मे ओसवाल गुणराज ने सन् १४३८ में चित्तौड़ में जैन कीर्ति स्तम्भ के निकट स्थित महावीर स्वामी के प्राचीन मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया । मचींद दुर्ग मे सुन्दर चैत्यालय बनवाया गया । सन् १४४८ मे राणा के कोशाध्यक्ष वेलाक ने जो शाह केल्हा का पुत्र था, चित्तौड़ में एक छोटा सा कलापूर्ण भगवान शान्तिनाथ का मन्दिर बनवाया जिसे शृंगार चंवरी कहते है ।[2] इसी समय रणकपुर के भव्य जिनालय एव आबू के देलवाड़ा का दिगम्बर जैन मन्दिर भी निर्मित हुये थे ।

डूंगरपुर के आस-पास का क्षेत्र बागड़ कहलाता था जो आज भी है । सन् १४०४ ई० में डूंगरपुर में महारावल प्रतापसिंह का शासन था । इसके पश्चात् सन् १४२६ ई० में महारावल गइपाल या गोपीनाथ डूंगरपुर का शासक बना । इसके शासनकाल की मुख्य घटनाएँ महाराणा कुम्भा और गुजरात के सुल्तान अहमदशाह के साथ युद्ध करना है । महारावल गइपाल बड़ा महत्त्वाकांक्षी शासक था । महाराणा मोकल के अन्तिम दिनों में मेवाड़ की फूट का लाभ उठाकर उसने कोटड़ा, जावर आदि भाग छीन लिये । फारसी तवारीखों के अनुसार गुजरात के सुल्तान अहमदशाह ने सन् १४४२ ई० में डूंगरपुर, मेवाड़ और नागौर पर आक्रमण किया था । वह डूंगरपुर होता हुआ मेवाड़ में देलवाड़ा और भीलवाड़ा की तरफ भी

---

१. टाडकृत राजस्थान का इतिहास, पृष्ठ—१६० ।

२. डॉ० ज्योति प्रसाद जैन : भारतीय इतिहास, पृ०—४४३ ।

गया। उसके सेनापति मलिक मुनीर ने डूंगरपुर और मेवाड़ में बड़ी लूट मचाई थी और एकलिंगजी के प्रसिद्ध देव भवन को खण्डित कर दिया था। महाराणा कुम्भा ने सन् १४३१ ई० में आक्रमण कर डूंगरपुर विजय किया। कुम्भा की इस बागड़ प्रदेश की विजय के फलस्वरूप जावर को पुनः मेवाड़ राज्य में सम्मिलित कर लिया गया था।[1]

यद्यपि ब्रह्म जिनदास सन्त महाकवि थे। आत्म-साधना एवं सद्साहित्य का सृजन ही उनके जीवन का लक्ष्य था। राजनीति एवं गार्हस्थिक जीवन से वे विरक्त थे। इस दृष्टि से इनके साहित्य में प्रत्यक्षतः राजनीतिक का कोई विवरण नहीं मिलता है। परन्तु इनके रास काव्यों में आये हुये शासन-संचालन, युद्ध, साम्राज्य विस्तार की भावना और सेना आदि के वर्णनों में हमे उस समय की राजनीतिक परिस्थितियों के प्रभाव परोक्षतः अवश्य दिखायी दे जाते हैं। इनके राम रास, श्रेणिक रास, श्रीपाल रास, भविष्यदत्त रास, जीवंधर रास आदि में उस समय की शासन व्यवस्था की परोक्ष झांकी मिल जाती है। महाराणा कुम्भा का शासन काल (सवत् १४९० से १५२५) ब्रह्म जिनदास के साहित्य-सृजन का स्वर्ण काल था।

सामाजिक परिस्थितियाँ

भारतीय समाज प्राचीन काल में चार वर्णों में विभक्त था। किन्तु मध्य-काल में यह व्यवस्था बिखर गयी थी। वर्ण-धर्म में परिवर्तन शुरु हो गया था। ब्राह्मणों की वित्तीय स्थिति दयनीय हो गयी थी। धार्मिक कार्यों में उनको समाज में उच्चत्तर स्थान प्राप्त था, किन्तु आर्थिक विपन्नता के कारण उन्हें लक्ष्मी की दया पर आश्रित रहना पड़ता था। कुम्भलगढ़ के लेख से ज्ञात होता है कि जिन ब्राह्मणों ने पूजा-पाठ और वैदिक यज्ञ कार्य बन्द कर दिया था, उन्हें महाराणा मोकल ने कृषि कर्म से हटा कर पुनः वेद पढ़ने को प्रेरित किया था।[2] युद्ध करना यद्यपि क्षत्रियों का कर्म था, लेकिन उस काल में प्रायः सभी वर्गों के लोग युद्ध कार्य में कुशल होते थे। सब ही वर्गों के लोग देश रक्षा के लिए बड़ा से बड़ा बलिदान देने को तत्पर रहते थे।

---

१. श्री रामवल्लभ सोमाणी : महाराणा कुम्भा, पृ० २७।

२. यो विप्रान्मितान् हलं कलयतः कार्पर्येन वृत्तेरलं ।
वेदध्यायम पाठयत् कलिमलध्वस्तै धरत्रीतले ।। कुम्भलगढ़ प्रशस्ति २१७।।

मुस्लिम शासकों के अत्याचारी जातीय परिवर्तनों से हिन्दू धर्म को क्षति पहुंची। धर्म परिवर्तन होने पर एक जाति ने दूसरी जाति के साथ खान-पीना भी छोड़ दिया। ब्राह्मणों ने अन्य सवर्णों से अपने आप को अलग मान चौके और कच्चे-पक्के का विधान बना लिया। इसका प्रभाव अन्य समाज पर भी पड़ा। परिणाम-स्वरूप जातियों की संख्या में अनावश्यक वृद्धि हो गयी। चारों वर्णों में कई गोत्र चल पड़े। उस समय १५ वी शताब्दी में अकेले महाजनों की ८४ जातियां प्रसिद्ध हो गयी थीं। सम-सामयिक पृथ्वीचन्द चरित और सोम-सौभाग्य काव्य में इनका उल्लेख है।[1] स्वयं ब्रह्म जिनदास ने अपनी एक कृति में—जिनेन्द्रदेव के अभिषेक के पश्चात् जिनेन्द्र की पुष्पमाला की बोली के उत्सव मे सम्मिलित होने वाली बघेरवाल, जैसवाल, श्रीमाल, हुंबड़, खण्डेलवाल, अग्रवाल, ओसवाल, पोरवाल, पल्लीवाल, नृसिहा, बोहूरा, मेवाड़ा आदि चौरासी जातियों का उल्लेख किया है। इसमे अन्त में ब्राह्मण एव क्षत्रियों को भी सम्मिलित किया गया है।[2] इससे प्रतीत होता है कि धार्मिक समारोहों में भाग लेने के लिए उस समय कोई जातिगत भेद-भाव नहीं था। सभी वर्ग के लोग एक दूसरे के समारोहों मे सम्मिलित होते थे। अपने धर्म में दृढ़ श्रद्धा के साथ अन्य धर्मों के प्रति समाज मे आदर-भावना थी।

उस काल में प्राय: राजाओं एवं श्रेष्ठियो मे बहु विवाह का प्रचलन था। राजाओं एवं उच्च वर्ग के व्यक्तियो के कई रानियां एव पत्नियां होती थी। सम-सामयिक कृतियों मे राजाओं, श्रेष्ठियो और ख्याति प्राप्त पुरुषो की कई स्त्रियां वर्णित की गई है। ब्रह्म जिनदास ने अपने रास-काव्यो मे नायक की कई पत्नियो का उल्लेख किया है। बहु-विवाह के कारण उस काल के इतिहास मे बड़ी उथल-पुथल मची थी। स्त्रियो को स्वाधीनता नही थी। पर्दा प्रथा व्यापक रूप मे प्रचलित था। जन्म से मृत्यु पर्यन्त उन्हें पुरुषों के अधीन रहना पड़ता था। उनमें शिक्षा का अभाव था। सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार भी उन्हें प्राप्त नही थे। पुत्रहीनों की सम्पत्ति को राजा ले लेता था।

गृहस्थ जीवन प्राय. सुखी था, किन्तु सपत्नी द्वेष से शून्य नही। परिवार में सभी का यथोचित् स्थान था। पुरुष की प्रधानता होती थी। पुत्र की महत्ता एवं

---

१. सोम-सौभाग्य काव्य : सर्ग ७।
पृथ्वीचन्द्र चरित (प्राचीन गुजराती गद्य सन्दर्भ में प्रकाशित)।
२. चौरासी ज्ञाति माला (देखिये इसी शोध-ग्रन्थ का सामान्य परिचय वाला अध्याय)।

आवश्यकता अधिक होती थी। पुत्र के बिना घर सूना एवं दुखदायी माना जाता था। पति का प्रवास सामान्य सी बात नहीं थी क्योंकि उसको व्यापार से लौटने पर बहुत समय लग जाता था। जीवन में सुख-दुख का सम्मिश्रण था। जीवन सोलह संस्कारों से युक्त होता था। वैश्यों के पास अपार सम्पत्ति होती थी। दान उनके धर्माचरण का आवश्यक अंग था। बसन्त मास में प्रायः सभी वर्ग के लोग वन-उपवनों में जाकर रास, भास, गीत, चंग से आनन्दोत्सव मनाते थे। इस समारोह में राज परिवार भी सम्मिलित होता था। स्त्रियां इस अवसर पर विशेष शृंगार करती थीं। नृत्य, गायन एवं वीणावादन आमोद-प्रमोद का मुख्य साधन था। राणा कुम्भा स्वयं अच्छा संगीतज्ञ था।[1]

स्त्री-समाज शिक्षा-दीक्षा मे भले ही अभावग्रस्त था, पर धर्म-कर्म में उसकी आस्था अच्छी थी। पढ़ी-लिखी न होते हुए भी वह धर्म-सभा मे श्राविका-श्रोतृ के रूप मे उपस्थित हो धर्म-श्रवण कर आत्मिक कल्याण की ओर अग्रसर होती थी। व्रतोद्यापन पर उनके आग्रह से ग्रन्थों की प्रतिलिपियां करवायीं जाती और उन्हें साधु-सन्तों को पठनार्थ दे दिया जाता था।[2]

उस समय भारत में रह कर भी मुसलमान भारतीयों एवं भारतीयता से सर्वथा पृथक् ही बने रहे। प्रत्येक मुसलमान चाहे वह कितनी ही क्षुद्र स्थिति का क्यो न हो, स्वयं को ऊँचे से ऊँचे भारतीय से श्रेष्ठ समझता था और यथा-सम्भव हिन्दू आदि से कोई सामाजिक सम्पर्क न रखता था। किन्तु यह स्थिति अधिक नही चल पायी। जिन भारतीयो को इस्लाम अंगीकार करना पड़ा था, उन्होने अपने अधिकांश पुराने रीति-रिवाज आचार-विचार भी अपनाये रखे। इसके अतिरिक्त कुछ मुसलमान फकीरों—मुइनुद्दीन चिश्ती, निजामुद्दीन औलिया आदि ने प्रचलित एवं व्यवहार्य इस्लाम को बहुत कुछ भारतीयता के रंग में रंग दिया। पीरपूजा, उर्स, नृत्य-गायन, वेदान्त से मिलते-जुलते सूफी विचारों आदि के प्रचार ने दोनो संस्कृतियो की बीच की खाई को कम कर दिया।

भारतीय सन्तों ने अपने प्रवचनों एव सत्संगों द्वारा हिन्दू-मुस्लिम विद्वेष को दूर करने का प्रयत्न किया। जाति-पांति और अन्य सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध

---

१. श्री रामवल्लभ सोमाणी : महाराणा कुम्भा, पृ० ३२३।

२. डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल : राजस्थान के जैन सन्त—व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० ८

आन्दोलन किया। इस भारतीय धर्म एवं समाज सुधार आन्दोलन के प्रमुख पुरस्कर्ता पूर्वोत्तर भारत में स्वामी रामानन्द, सन्त कबीर, पंजाब में गुरुनानक, दक्षिण में नामदेव, बंगाल में चैतन्यदेव, गुजरात में लोकाशाह और बुन्देलखण्ड में तारणस्वामी थे।[1] उन्होंने भारतीय जीवन को नयी स्फूर्ति दी, हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य को दूर किया तथा दोनों ही धर्मों में कुछ ऐसे सुधार किये जिन्होंने प्रत्यक्ष विरोधों को बहुत कुछ कम कर दिया। लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं कि मध्ययुग में इतना सब कुछ होते हुए भी आततायियों की कुदृष्टि से अपनी बहु-बेटियों की रक्षा करने के लिए पर्दा-प्रथा, बाल-विवाह, सती-प्रथा और छुआ-छूत जैसी कुप्रथाओं का जन्म भी हिन्दुओं में इसी काल में हुआ तथा जाति व्यवस्था भी समाज को कुछ और अधिक जकड़ती चली गयी।

इस काल में ब्राह्मण पण्डितों, जैन मुनियों, भट्टारकों एवं यतियों ने भी अपनी-अपनी धर्म संस्थाओं में समयानुकूल परिवर्तन करते हुए अपने प्रभाव से जनता एवं शासकों को प्रभावित करके, अपने कार्यों से देश के नैतिक स्तर को उन्नत करते हुये धर्म, कला और साहित्य आदि क्षेत्रों में सांस्कृतिक अभिवृद्धि करते हुए राष्ट्र के पुनर्निर्माण में स्तुत्य योग दिया।

ब्रह्म जिनदास अपने समय की इस सामाजिक परिस्थिति से पर्याप्त प्रभावित हुए, जिसके संकेत इनके रास काव्यों मे स्थान-स्थान पर देखे जा सकते हैं।

धार्मिक परिस्थिति :

भारत धर्म प्राण देश है। यहाँ प्राचीन काल से ही मानव ने भौतिक सुख और ऐन्द्रिक विलासिता को त्याज्य समझ कर अध्यात्म चिन्तन की ओर बढ़ने का प्रयास किया है। आनन्द तत्त्व की खोज भारतीय धर्म साधना की महत्त्वपूर्ण सफलता है। असत्य से सत्य की ओर बढ़ने का चिरकाल से प्रयत्न हो रहा है। राम-रावण का संग्राम असत्य पर सत्य की एवं भौतिकता पर आध्यात्मिकता की विजय है।[2]

सन् १३०० से १५०० ई० तक का काल भारत में धार्मिक क्रान्ति का युग था। इस काल में मेवाड़ के वीर राणाओं ने भारतीय स्वातन्त्र्य संघर्ष को सजीव

---

१. डॉ० ज्योति प्रसाद जैन : भारतीय इतिहास, पृ० ४५८।
२. डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी : मध्यकालीन धर्म साधना, पृ० १४।

रक्षा और अपने नेतृत्व में राजपूताने की प्रायः समस्त हिन्दू राज्य-शक्तियों को एकत्र करके सुल्तानों से लोहा लेते हुये धार्मिक अत्याचारों पर प्रतिबन्ध का कार्य किया।

उस समय हिन्दू राज्यों में शैव और वैष्णव धर्म की प्रधानता हो चली थी। राणाओं का कुल-धर्म शैव था। महाराणा कुम्भा के समय वैष्णव धर्म की बड़ी प्रगति हुई। हजारों देवालय बने। अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण के समय विनष्ट हुए मन्दिरों के अवशेषों पर नये मन्दिर बनाये गये। नये देवालय कुम्भलगढ़, चित्तौड़, एकलिंगजी, आबू आदि स्थानों में बनाये गये। कुम्भलगढ़ में मामादेव का मन्दिर अति विख्यात है। पुरातत्ववेत्ताओं के अनुसार यह पहले चौमुखा मन्दिर था, जिसे बाद में वैष्णव मन्दिर के रूप में परिवर्तित कर दिया गया।[1]

उस काल में जैन धर्म के प्रति प्रायः सभी राणा और अन्य शासक उदार एवं सहिष्णु थे। जैन साधुओं का सम्पूर्ण राजस्थान में उन्मुक्त विहार था। राजस्थान में अनेक स्थानों पर उनके तीर्थ, सांस्कृतिक केन्द्र और भट्टारकीय गादियां थीं। कभी-कभी राज्य वंश भी जैन धर्म के अनुयायी रहे। उस काल में जैनों की संख्या आज से बहुत अधिक थी। जैनी प्रायः क्षत्रिय और वैश्य जातियों में से ही थे। इन जैनों ने मेवाड़ तथा अन्य राजपूत राज्यों के संरक्षण, शासन-प्रबन्ध, धर्म, साहित्य, कला, एवं सांस्कृतिक विकास में अपना स्तुत्य योग दिया।[2]

मेवाड़ राज्य में समय-समय पर नवीन जैन मन्दिर बनाये गए। देलवाड़ा का शिखर बंध आदिनाथ का मन्दिर विक्रम संवत् १४९१ में बना। चित्तौड़ में विक्रम संवत् १४९५ में जैन कीर्ति स्तम्भ के पास महावीर स्वामी का मन्दिर बनाया गया। उस समय मेवाड़ में अम्बिका, सरस्वती और सच्चिया देवी की आराधना मुख्य रूप से होती थी।[3] किसी भी जैन साधु के राजधानी में आने पर राज परिवार उन्हें आदरपूर्वक राज-प्रासाद में आमन्त्रित करके उनके आहारादि का प्रबन्ध करता था। राज सभाओं में जैन साधुओं के भाषण और शास्त्रार्थ होते थे। उनका सम्मान होता था। उनके तीर्थों का संरक्षण राज्य की ओर से होता था। प्रायः यही व्यवहार अन्य राजपूत राजाओं का भी था।[4]

---

१. आर्कियोलोजीकल सर्वे ऑफ इण्डिया—१९०९, पृ० ३६–३९।
२. डॉ० ज्योति प्रसाद जैन : भारतीय इतिहास एक दृष्टि, पृ० ४४५।
३. श्री रामवल्लभ सोमाणी : महाराणा कुम्भा, पृ० २०३।
४. डॉ० ज्योति प्रसाद जैन : भारतीय इतिहास, एक दृष्टि, पृ० ४४५।

तत्कालीन समय में समाज का प्रत्येक वर्ग अपने-अपने धर्म में आस्थावान था। साधारणतः समाज में साधुजनों का यथोचित आदर-सत्कार होता था। स्त्रियों में धार्मिक भावना अपेक्षाकृत अधिक थी। साधुजन समय-समय पर विहार करते रहते थे और यथासमय अपने नियम-साधना का परिपालन करते थे। आलोच्य कवि ब्रह्म जिनदास के गुरु एवं अग्रज भ्राता भट्टारक सकलकीर्ति बागड प्रदेश की भट्टारक गादी के सर्वाधिक प्रसिद्ध साधु थे। सकलकीर्ति नैणवां से बागड प्रदेश लौटने के पश्चात् जनसाधारण में साहित्यिक चेतना जागृत करने के लिए स्थान-स्थान पर विहार करने लगे। एक बार वे खोडण नगर आये और नगर के बाहर उद्यान में ध्यान लगा कर बैठ गए। उधर से नगर में आने वाली एक श्राविका ने जब उन्हें ध्यानमुद्रा में देखा तो घर जाकर उसने अपनी सास से साधु के नगर में आने के समाचार सुनाये, जिसे सुन कर सास हर्षित हुई और तत्काल उनकी वन्दना के लिए वन में पहुँच कर उसने तीन प्रदक्षिणापूर्वक उन्हें नमोस्तु किया।[1]

उस समय में होने वाली प्रतिष्ठाएँ, धर्मोपदेश, मुनियों का यत्र-तत्र विहार उस समय की धार्मिक भावनाओं के द्योतक है। स्वय सकलकीर्ति के संघ मे रह कर ब्रह्म जिनदास ने विभिन्न तीर्थों की यात्राएँ की और प्रतिष्ठाओं एवं जिनालयों के निर्माण में प्रेरणा दी। उनके समय में संवत् १४९०, १४९२, १४९७ आदि में प्रतिष्ठित मूर्तियाँ उदयपुर, डूँगरपुर एवं सागवाड़ा आदि स्थानों के जैन मन्दिरो मे मिलती हैं।[2] प्रतिष्ठा महोत्सवों के आयोजनों से तत्कालीन समाज में धर्म एवं संस्कृति के प्रति अनुराग विद्यमान था।

तीर्थ दर्शन की उत्कट भावना उस समय के धार्मिक जीवन का विशेष अंग थी। मनुष्य प्रायः संसार की असारता एवं धर्म को शाश्वत सत्य मानकर थोड़ा-सा सामान लेकर यात्रियों के साथ सम्मिलित हो जाते और मार्ग में अनेक कष्टों को सह-कर तीर्थों के दर्शन करते थे। इसी प्रकार तीर्थोद्धार, साधु सेवा और दान आदि महान् कार्य थे।[3] आज जैसे आवागमन के साधनों के अभाव के कारण तीर्थयात्राएं लम्बे समय की होती थी। लौटने पर विशेष समारोह किये जाते थे। तीर्थयात्राओं का नेतृत्व करने वाले साधु होते थे। उनके संघ में साधु-साध्वियां एवं श्रावक-श्राविकाएं आदि सभी होते थे।

---

१. सकलकीर्तिनु रास, पृ० ५–७।
२. डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल : राजस्थान के जैन सन्त, पृ० ३–४।
३. डॉ० दशरथ शर्मा व ओझा : रास और रासान्वयी काव्य, पृ० ६५–६६।

ज्ञान प्राप्ति के लिये पठन-पाठन एवं प्रवचन का प्रचलन था। जिससे सभी अपने इह एवं पारलौकिक जीवन का परिमार्जन करते थे। परवर्ती भट्टारकों की अपेक्षा इस काल के भट्टारक मुनि ही कहे जाते थे। निर्ग्रन्थ वेश में वे वीतरागता के सच्चे सन्देशवाहक थे। व्रतोपवास की समाप्ति पर इन्हीं की प्रेरणा से श्रावकगण ग्रन्थ रचना एवं उनकी प्रतिलिपियां करवा कर मन्दिरों में भेंट स्वरूप देते थे। जिनके स्वाध्याय से सभी अपने स्वपर हित में संलग्न रहते थे।

इस धार्मिक परिस्थिति से ब्रह्म जिनदास पूर्णतः प्रभावित रहे। इनके काव्यों में धर्म का जो स्वरूप मिलता है वह इसका साक्षी है। सम्यक् धर्माचरण के लिए इन्होंने अपने काव्यों में पाठकों को स्थान-स्थान पर विविध रूप से सावधान किया है। एक प्रकार से इनके समस्त काव्य धार्मिकता का पुट लिए हुए हैं।

साहित्यिक परिस्थिति :

साहित्य-सृजन की दृष्टि से मध्यकाल भारतीय साहित्य का स्वर्णयुग था। मुस्लिम शासकों से हिन्दू राजाओं के इस संघर्ष काल में भी विविध क्षेत्रों में विशाल साहित्य रचा गया। अमीर खुसरो जैसे कवि ने हिन्दी में कविता की और संस्कृत हिन्दी तथा फारसी मिश्रित भाषा के प्रचलन का प्रयत्न किया। इस काल में भारतीय भाषाओं को प्रोत्साहन मिला। अपभ्रंश से जब भाषा विकसित हुई। भारतीय कवियों ने उत्साहवर्द्धक वीर गाथाओं एवं धार्मिक, ऐतिहासिक रासो ग्रन्थों का प्रणयन लोक भाषा अपभ्रंश में करके जहां वीरों के स्वातन्त्र्य प्रेम, युद्ध और देश प्रेम को प्रज्वलित रखा तथा उनके धर्म-भाव को पुष्ट बनाया, वहीं उन्होंने मुसलमान सूफी सन्तों के सदृश निर्गुण भक्ति का परन्तु प्रेम मार्ग का नहीं, ज्ञान मार्ग का प्रचार किया। पूर्वोत्तर भारत में स्वामी रामानन्द, और सन्त कबीर, पंजाब में गुरुनानक, दक्षिण में ज्ञानदेव और नामदेव, बंगाल में चैतन्य देव, बिहार में विद्यापति और ठाकुर, गुजरात मे लोकाशाह और बुन्देलखण्ड में तारणस्वामी इन सभी सन्तों ने अपनी बोल-चाल की लोक भाषा में साहित्य रचा।

गुजरात में दिगम्बर आम्नाय के लाड बागड़ संघ का काफी प्रभाव था। १५वीं शताब्दी तक सूरत, सौजित्रा, भडौच और ईडर आदि कई स्थानों में दिगम्बर भट्टारकों की गादियां स्थापित हो चुकी थीं। इनमें आचार्य सकलकीर्ति, भुवनकीर्ति, ब्रह्म जिनदास, ब्रह्म श्रुतसागर, ब्रह्म नेमिदत्त, ज्ञानभूषण, शुभचन्द्र आदि अनेक विद्वानों ने विविध विषयक विपुल साहित्य की संस्कृत एवं मरुगुर्जर भाषा में रचना की। इनके अतिरिक्त जिनेश्वर और भद्र सेसर की कथावलियां, प्रभाचन्द्र का प्रभावक

चरित्र, मेरुतुंग की 'चिन्तामणि', जिनप्रभ सूरि का 'विविध तीर्थकल्प', राज शेखर का प्रबन्ध कोष आदि महत्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रन्थ भी इसी काल में ही लिखे गये। १५वीं शती में अहमदाबाद में जैन ग्रन्थों की प्रतिलिपियों का कार्य कई संस्थाओं में बड़े पैमाने पर होता था। जैन सुधारक लोकाशाह ने (सन् १४३० से १४७६ ई०) मुसलमानी शासन काल को मन्दिरों और मूर्तियों के प्रतिकूल समझकर साहित्य निर्माण पर जोर दिया।[1]

उस समय मेवाड़ी और गुजराती में कोई भेद नहीं था। जैन साधुओं ने अपनी लोक-भाषा मरुगुर्जर में व्याख्यान एवं साहित्य के माध्यम से दोनों प्रदेशों में एकता बनाये रखने का सुन्दर प्रयास किया। राजकीय भिन्नता के बाद भी अनेक वर्षों तक भाषा में एकता बनी रही। गुजरात और राजस्थान के सन्त भक्त कवियों ने अपनी भक्ति वाणी से गुजरात, राजस्थान और सौराष्ट्र के समस्त प्रदेश को मुखरित किया था। इन सन्तों के साथ इस मिश्रित भाषा में साहित्य रचना करने वाले कवियों में जैन और चारण कवि थे।[2]

मध्यकाल में समस्त पश्चिमी भारत के भू-भाग में शौरसैनी अपभ्रंश का प्रचार था। जब अपभ्रंश भाषा अलग हुई तो दो विभिन्न भाषाएं अर्थात् गुजराती और राजस्थानी बनी। गुजराती एवं मारवाड़ी दोनों के ध्वनि-तत्व और रूप-तत्व का ऐतिहासिक और तुलनात्मक विवेचन करने पर कहा जा सकता है कि ये दोनों भाषायें गुजराती और राजस्थानी आज भी एक मां की दो बेटियां हैं।[3] ब्रह्म जिनदास के काव्यों की भाषा इसका ज्वलंत प्रमाण है।[4]

परमार राजा भोज और चौहान राजा बीसलदेव के पश्चात् राजपूत राजाओं में कुम्भा ही ऐसा शासक था जो स्वयं संस्कृत का विद्वान था और कई साहित्यकारों का आश्रयदाता भी। उसके आश्रित विद्वानों में कन्हव्यास, महेशभट्ट, सूत्रधार मंडन

---

१. डॉ० ज्योति प्रसाद जैन : भारतीय इतिहास, पृ० ४४७।

२. डॉ० मदन कुमार जानी : राजस्थान एवं गुजरात के मध्यकालीन भक्त कवि पृ० २२–२३।

३. डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या : राजस्थानी भाषा, पृ० ४५–४७।

४. भवीयण भावई सुणउं आज, रास कहुं मनोहर।
आदि पुराण जोई करी, कवित करउं मनोहर ॥१॥
बाल गोपाल जिम पढइ सुणइं, जाणे बहु भेद।
जिण सासण गुण निरमला, मिथ्या मत छेद ॥२॥ आदिनाथ रास ॥

आदि संस्कृत के महान् विद्वान थे। मेवाड़ में लाखा से लेकर कुम्भा तक कला एवं एवं साहित्य का अद्भुत विकास हुआ। स्वयं कुम्भा ने "संगीतराज" की रचना की। उसने मेवाड़ी भाषा को पृथक से मान्यता दी। इस काल का संरचित साहित्य धार्मिक एवं लौकिक दोनों ही प्रकार का उपलब्ध होता है। धार्मिक साहित्य में जैन साहित्य प्रमुख है। यद्यपि महाराणा कुम्भा दीर्घकाल तक युद्ध में व्यस्त रहा, फिर भी उसकी उत्कृष्ट साहित्यिक अभिरुचि के कारण वह युग मध्यकालीन राजस्थान के साहित्यिक क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान रखता है।[1]

इस मध्यकाल में राजस्थान में कितने ही जैनाचार्य हुये, जिन्होंने भारतीय संस्कृति एवं साहित्य की अपूर्व सेवा की। आचार्य हरिभद्र सूरि का चित्तौड़ से अत्यधिक सम्बन्ध रहा था। आगम ग्रन्थों पर इनका पूर्ण अधिकार था। तपागच्छीय सोमसुन्दर इस युग के महान् आचार्य थे। महाराणा कुम्भा इनकी काव्य कला से अत्यन्त प्रभावित था। राजस्थान एवं गुजरात के सीमावर्ती प्रदेशों में साहित्याराधना में संलग्न भट्टारक सकलकीर्ति, भट्टारक भुवनकीर्ति, आचार्य सोमकीर्ति, भट्टारक ज्ञानभूषण, ब्रह्म जिनदास आदि को कभी नही भुलाया जा सकता।

15वीं शताब्दी भट्टारक युग का स्वर्णकाल था। भट्टारकों ने अपनी ज्ञान-साधना एवं तपस्या द्वारा देश में एक नये युग का सूत्रपात किया। इन्होंने संस्कृत के साथ लोक-भाषा में निर्गुण एवं सगुण दोनों प्रकार की काव्य-रचना से जन-मानस को परितृप्त किया। ईडर, डूंगरपुर, सागवाड़ा, गलियाकोट में अनेक भट्टारकों ने साहित्य के क्षेत्र में अपनी अनुपम सेवाएं दी। डूंगरपुर के आसपास का बागड़ प्रदेश रावल गइपाल एवं प्रतापसिंह के समय मे साहित्य सेवा का केन्द्र था। इनके शासन काल मे विद्या का बड़ा विकास हुआ और कई ग्रन्थ लिखे गये। इन भट्टारकों ने जो सन्त मुनि कहलाते थे, स्वय साहित्य-सृजन के साथ अपने शिष्यों को भी इस ओर प्रेरित किया। स्वयं आलोच्य कवि ब्रह्म जिनदास ने अपने गुरुद्वय भट्टारक सकलकीर्ति एवं भट्टारक भुवनकीर्ति की कृपा एवं आशीर्वाद से विशाल साहित्य की रचना की।[2] इस काल के साधुओं ने अपने साधु जीवन के प्रत्येक क्षण का उपयोग किया। साहित्य-सेवा की ऐसी नींव डाली जो कलान्तर में दीर्घकाल तक चलती रही। समाज और शासन दोनों के द्वारा इन साहित्य सेवियों को यथोचित सम्मान प्राप्त था।

---

१. श्री रामवल्लभ सोमाणी; महाराणा कुम्भा, पृ० २२३--२४३।

२. श्री सकलकीरती पाय प्रणमीनि ।
मुनि भुवनकीरति गुरुवांदु सीहयल ।। आदिनाथ रास ।।१।।

राजस्थान के इन सन्तों ने एक ओर विविध भाषाओं में सैंकड़ों हजारों कृतियों का सृजन किया तो दूसरी ओर अपने पूर्ववर्ती आचार्यों, साधुओं एवं कवियों की रचनाओं का बड़ी श्रद्धा, प्रेम एवं उत्साह से संग्रह भी किया। एक-एक ग्रन्थ की कितनी ही प्रतियां लिखवा कर ग्रन्थ भण्डारों में विराजमान की और जनता को उन्हें पढ़ने एवं स्वाध्याय के लिये प्रोत्साहित किया। राजस्थान के अनेक हस्तलिखित ग्रन्थ भण्डार उनकी साहित्यिक सेवा के ज्वलंत उदाहरण हैं। ये सन्त साहित्य संग्रह की दृष्टि से कभी जातिवाद एवं सम्प्रदाय के चक्कर में नहीं पड़े, अपितु जहां भी उन्हें अच्छा एवं कल्याणकारी साहित्य उपलब्ध हुआ, वहीं से उसका संग्रह करके शास्त्र भण्डारों में संग्रहीत किया। इस दृष्टि से स्थान-स्थान पर ग्रन्थ भण्डार स्थापित किये गये। श्वेताम्बर साधु श्री जिनचन्द्र सूरि ने संवत् 1497 में वृहद् ज्ञान भण्डार की स्थापना करके साहित्य की सैंकड़ों अमूल्य निधियों को नष्ट होने से बचा लिया।[1]

भट्टारक सकलकीर्ति एवं भुवनकीर्ति १५वीं शताब्दी के प्रमुख सन्त थे। राजस्थान एवं गुजरात में साहित्य एवं संस्कृति का जो प्रचार-प्रसार हो सका था उसमें उनका प्रमुख योगदान रहा था। इनके हृदय में आत्म-साधना के साथ साहित्य सेवा की भी उत्कट अभिलाषा थी। ये दोनों सन्त बागड़ प्रदेश एवं गुजरात के कुछ भागों में साहित्यिक एवं सांस्कृतिक जागरण का शंखनाद फूंकते रहे। इन्होंने स्थान-स्थान पर ग्रन्थ संग्रहालय स्थापित किये, जिनमें उनके शिष्य-प्रशिष्य साहित्य-लेखन एवं प्रचार का कार्य करते थे। इन्होंने अपने शिष्यों को भी साहित्य निर्माण की ओर प्रेरित किया।[2]

आलोच्य कवि ब्रह्म जिनदास भट्टारक सकलकीर्ति के अनुज एवं शिष्य थे।[3] अपने काव्यों में इन्होंने सकलकीर्ति एवं भुवनकीर्ति का बड़े आदरपूर्वक गुणगान किया है। सकलकीर्ति एवं भुवनकीर्ति के सान्निध्य में रह कर ही ब्रह्म जिनदास ने आत्म-साधना की एवं साहित्य का सृजन किया। इनकी विशाल काव्य रचनाएं इस तथ्य की साक्षी हैं कि तत्कालीन साहित्यिक परिस्थितियों के साथ-साथ अपने इन गुरुजनों एवं उनकी साहित्य साधना से वे अत्यधिक प्रभावित रहे।

□□□

---

१. डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल : जैन ग्रन्थ भंडार्स इन राजस्थान, पृ० २४।
२. डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल : राजस्थान के जैन सन्त, पृ० १।
३. देखिये इसी शोध का द्वितीय अध्याय : जीवन वृत्त अध्याय।

अध्याय 2

जीवन वृत्त और व्यक्तित्व

(क) जीवन वृत्त

नाम : आलोच्य कवि 'ब्रह्म जिनदास' के अतिरिक्त 'जिनदास' नाम के पाँच अन्य और कवियों का उल्लेख मिलता है। १—पं० जिनदास, २—पाण्डे जिनदास, ३—मराठी कवि जिनदास, ४—प० जिनदास गोधा और ५—कवि जिनदास। प्रथम पं० जिनदास रणस्तम्भ दुर्ग के समीपस्थ नवलक्षपुर के निवासी आयुर्वेद के निष्णात पण्डित थे। इन्होंने विक्रम सम्वत् १६०८ में 'होली रेणुका चरित' की रचना की थी। इनकी पत्नी का नाम जिनदासी था।[1] द्वितीय पाण्डे जिनदास ब्रह्म शान्तिदास के शिष्य थे। इन्होंने मथुरा मे विक्रम सम्वत् १६४२ में जम्बूस्वामी चरित्र की रचना की थी। 'जोगी रासो' एवं 'माली रासो' भी इन्हीं की कृतियाँ हैं।[2] तृतीय जिनदास मराठी भाषा के कवि थे इनका समय संवत् १७ वीं शती है। इन्होंने 'हरिवंश पुराण' की रचना देवगिरि (मराठावाड़ा) में की थी।[3] चतुर्थ पं० जिनदास गोधा पं० लक्ष्मीसागर के शिष्य थे। विक्रम संवत् १८५२ मे संस्कृत भाषा में रचित इनका पूजा-साहित्य भरतपुर के शास्त्र भण्डारो मे मिलता है।[4] पाँचवें कवि जिनदास अठारहवी शती के श्वेताम्बर जैन कवि थे जिनके उपदेशात्मक पद, लावणियाँ और स्तवन आदि मिलते हैं।[5]

हमारे विवेच्य कवि 'ब्रह्म जिनदास' इन पाँचों से भिन्न हैं। ये विक्रम की १५ वी शताब्दी के कवि है। ये संस्कृत के विश्रुत कवि भट्टारक सकलकीर्ति के अनुज

---

१. जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह : सं० पं० जुगलकिशोर मुख्तार, पृ० ३२-३३।
२. जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास : डॉ० कामता प्रसाद जैन, पृ० १७०।
३. मराठी जैन साहित्य : आचार्य भिक्षु स्मृति ग्रन्थ : द्वितीय खण्ड, पृ० १४०।
४. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची : भाग ४ व ५
सम्पादक : डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल व पं० अनूपचन्द्र न्यायतीर्थ।
५. आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार ग्रन्थ सूची भाग—१ :
सम्पादक : डॉ० नरेन्द्र भानावत, पृ० ४६,४८।

एवं शिष्य थे। राम काव्य-परम्परा में पं० नाथूराम प्रेमी,[1] डॉ० फादरकामिल बुल्के[2] और डॉ० एम० विण्टरनित्ज़[3] ने इन्हीं ब्रह्म जिनदास के संवत् १५०८ में रचित राम-रास का उल्लेख किया है।

'ब्रह्म जिनदास' के नाम का दो प्रकार से उल्लेख मिलता है। एक 'ब्रह्म जिनदास' और दूसरा 'ब्रह्म जिणदास'। संस्कृत भाषा[4] की रचनाओं में 'ब्रह्म जिनदास' एवं पुरानी हिन्दी[5] की न्यूनाधिक कृतियों में 'ब्रह्म जिणदास' नाम मिलता है। द्वितीय नाम की भाषा को स्वयं कवि ने देश भाषा कहा है। स्वयं ब्रह्म जिनदास ने अपनी एक संस्कृत रचना में अपने 'जिनदास' नाम की 'जिनस्य दासो जिनदास नामा' अर्थात् जिनेन्द्र का दास जिनदास–इस प्रकार व्युत्पत्तिपूर्वक व्याख्या की है।[6] पं० जुगलकिशोर मुख्तार, पं० नाथूराम प्रेमी, पं० परमानन्द शास्त्री, डॉ० कामिल बुल्के,[7] डॉ० प्रेमसागर जैन एवं डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल प्रभृति विद्वानों ने भी 'ब्रह्म जिनदास' नाम का ही व्यवहार किया है। 'ब्रह्म' 'ब्रह्मचारी' शब्द का संक्षिप्त रूप है जो उच्चारण सौकर्य की दृष्टि से है। ब्रह्म जिनदास आजीवन ब्रह्मचारी रहे थे। उस समय ब्रह्मचारी अपने नाम से पूर्व ब्रह्म शब्द लगाते थे। जैसे ब्रह्म शान्तिदास, ब्रह्म नेमिदास, ब्रह्म मल्लिदास आदि। इसी रूप में 'ब्रह्म जिनदास' नाम भी है। अतः सभी दृष्टियों से 'ब्रह्म जिनदास' नाम ही उपयुक्त है।

जन्म समय : अन्य भारतीय प्राच्य कवियों की भांति 'ब्रह्म जिनदास' ने भी अपनी किसी भी रचना में अपने जन्म-समय का उल्लेख नहीं किया है और न ही किसी अन्य समकालीन कवि या स्रोत द्वारा इनकी जन्म-तिथि का पता चलता है। इस विषय में अन्तः साक्ष्य एवं बहिर्साक्ष्य के आधार पर कोई निश्चित् जानकारी नहीं मिलती। केवल अपनी दो रचनाओं-'राम-रास' और 'हरिवंश पुराण' रास' में

---

१. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ९७।
२. राम कथा, पृ० ६८।
३. हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर : भाग–२, पृ० ४९६।
४. इति श्री जम्बूस्वामी चरित्रे भट्टारक सकलकीर्ति शिष्य ब्रह्म श्री जिनदास विरचिते विद्युच्चर महामुनि नामैकादश सर्गः ॥ प्रशस्ति जम्बूस्वामी चरित्र।
५. श्री सकलकीरति गुरु प्रणमीनि, मुनि भुवन कीरति भवतार
'ब्रह्म जिणदास' कहे निरमलो, रास कीयो मे सार ॥दूहा–१॥ आदिनाथ रास ॥
६. हरिवंश पुराण : प्रशस्ति–८ ॥
७. राम कथा, पृ० ६८।

ब्रह्म जिनदास ने रचनाकाल क्रमशः. विक्रम संवत् १५०८ एवं १५२० दिया है।[1] इसके अतिरिक्त विक्रम संवत् १४८१ में इन्हीं के आग्रह से इनके अग्रज भ्राता एवं गुरु भट्टारक सकलकीर्ति ने बड़ली नगर में 'मूलाचार प्रदीप' की रचना की।[2]

डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल ने 'सकलकीर्तिनुरास' में दिये गये भट्टारक सकलकीर्ति के जन्म संवत् १४४३ के आधार पर ब्रह्म जिनदास का जन्म १४४५ के बाद का माना है।[3] परन्तु भट्टारक सकलकीर्ति के जन्म संवत् के विषय में भी विद्वानों में परस्पर पर्याप्त मतभेद है। पं० हीरालाल शास्त्री इनका जन्म विक्रम संवत् १४३७ मानते हैं।[4] जबकि सकलकीर्ति के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर शोध-प्रबन्ध लिखने वाले डॉ० बिहारी लाल जैन ने इनका जन्म विक्रम संवत् १४२५ माना है।[5]

जिन भिन्न-भिन्न पट्टावलियों के आधार पर इन विद्वानों ने भट्टारक सकलकीर्ति का जन्म संवत् निर्धारित करने का प्रयत्न किया है, उन पट्टावलियों में कहीं भी 'ब्रह्म जिनदास' का शिष्य रूप के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार का उल्लेख नहीं मिलता है। अतः ब्रह्म जिनदास के जन्म समय के निर्धारण के लिए अनुमानों पर ही निर्भर रहना पड़ता है।

विक्रम संवत् १४८१ में भट्टारक सकलकीर्ति की 'मूलाचार प्रदीप' की रचना मे इनके कनिष्ठ भ्राता ब्रह्म जिनदास के अनुरोध की बात को सभी विद्वान् एकमत हो स्वीकारते है। 'मूलाचार प्रदीप' संस्कृत भाषा में रचा गया आचार-शास्त्र का ग्रन्थ है, जिसमें जैन साधु के जीवन की विभिन्न क्रियाओं के स्वरूप एवं उनके भेद-प्रभेदों का वर्णन हुआ है।[6] संस्कृत भाषा में मुनियों के आचार-सिद्धान्त पर ग्रन्थ

---

१. (क) संवत् पन्नर अठोतरा, मंगसिर मास विसाल।
शुक्ल पक्ष चउदिसि दिनि, रास कीयो गुणमाल ।।६।।
(ख) संवत् पन्नर वीसोतरा, विशाखा नक्षत्र-विशाल।
शुक्ल पक्ष चौदसि दिनि, रास कीयो गुणमाल ।।६।।

२. संवत् चौदस सौ इक्यासी भला, श्रावण मास लसंत रे।
पूर्णिमा दिवसे पूरण कर्या, मूलाचार महंत रे।।
भ्राताना अनुग्रह थकी, कीधा ग्रन्थ महान् रे।।

३. राजस्थान के जैन सन्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० २३।

४. वीर वर्धमान चरित : प्रस्तावना, पृ० ५६।

५. भट्टारक सकलकीर्ति : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० ४५–५० (अप्रकाशित)।

६. राजस्थान के जैन सन्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० १२।

रचना के लिए अपने गुरु से आग्रह करने वाले ब्रह्म जिनदास स्वयं भी संस्कृत आदि भाषाओं एवं आगम-सिद्धान्तों के सामान्य जानकार तो अवश्य ही रहे होंगे, जबकि सकलकीर्ति ने हिन्दी में भी रचनायें की हैं। उस समय ब्रह्म जिनदास की आयु कम से कम २० वर्ष की तो अवश्य ही रही होगी।

संवत् १५०० से संवत् १५२० तक का समय ब्रह्म जिनदास की बहुमुखी प्रतिभा का काल था साहित्य संरचना के अतिरिक्त ब्रह्म जिनदास ने उस अवधि में मूर्ति प्रतिष्ठाओं का संचालन किया तथा अपने मित्रों एवं शिष्यों को साहित्य सृजन में सहयोग एवं प्रेरणा दी। इस समय ब्रह्म जिनदास प्रतिष्ठित विद्वानों में गिने जाने लगे थे। विक्रम संवत् १५०८ मे 'राम-रास' जैसे विशाल प्रबन्ध काव्य की रचना करना, संवत् १५१० एवं १५१६ में मूर्ति प्रतिष्ठाओं का संचालन एवं मित्र पद्मा कवि को श्रावकाचार रास की रचना मे प्रेरणा एवं सहायता करना और १५२० में 'हरिवंश पुराण रास' जैसे प्रबन्ध काव्य की रचना—ये सब सिद्ध करते है कि ब्रह्म जिनदास उस समय बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न प्रतिष्ठित विद्वान् कवि थे। अनुमानतः इस काल में इनकी अवस्था ४० से ६० की अवश्य रही होगी।

प्रायः ७० वर्ष की अवस्था के बाद मनुष्य की शारीरिक शक्तियाँ शिथिल हो जाती हैं तथा वह आवागमन एव अन्य कार्यों से मुक्त होना चाहता है। काव्य रचना की दृष्टि से भी कवि अपनी ७० वर्ष की अवस्था के पश्चात् कुछ विश्राम लेना चाहता है और प्रबन्ध काव्यो के स्थान पर छोटे-छोटे मुक्तक-काव्यों के सृजन से ही रसानुभूति ग्रहण करता रहता है, क्योकि प्रबन्ध-काव्यो की सरचना में अपेक्षाकृत अधिक शक्ति, बुद्धि एवं समय की आवश्यकता होती है जो प्रायः इस अवस्था मे न्यून हो जाया करती है।

उक्त विचार से विक्रम संवत् १५२० में हरिवशपुराण रास जैसे प्रबन्ध काव्य की रचना के समय कविवर ब्रह्म जिनदास की आयु ७० वर्ष से अधिक की नही हो सकती। भाषा एवं भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से यह रास ब्रह्म जिनदास की प्रौढतम रचनाओं मे से है। यद्यपि कवि ने मुक्तक-काव्यों की भी सृष्टि की है, लेकिन उनमें कही भी रचना काल का उल्लेख नही किया है। संवत् १५२० में ७० वर्ष की आयु होने के आधार से ब्रह्म जिनदास का जन्म समय विक्रम संवत् १४५० के लगभग होना चाहिये।

जन्म स्थान : अपने जन्म-समय के समान अपने जन्म स्थान का भी ब्रह्म जिनदास ने कहीं नामोल्लेख नहीं किया है। 'सकलकीर्तिरास' में इनके अग्रज भ्राता भट्टा रक सकलकीर्ति का जन्म स्थान गुजरात प्रान्त का "अणहिलपुर पट्टण" बताया

गया है ।[1] अतः ब्रह्म जिनदास का जन्म स्थान भी यही "अणहिलपुर पट्टण" निश्चित् होता है । ब्रह्म जिनदास ने अपने रास-काव्यो में 'पाटण' शब्द का कई स्थानों पर उल्लेख किया है । जो प्रायः 'नगर' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । तिलकपुर को कवि ने 'तिलकपुर पाटण' कहा है । 'परमहंस रास' में कवि ने 'पुण्य पाटण' रूपकात्मक का उल्लेख किया है । पाटण शब्द के इस प्रकार के प्रयोग से कवि का 'पाटण' या अपनी जन्म भूमि के प्रति प्रेम प्रकट होता है । निश्चित् ही गुजरात का उक्त पाटण कवि का जन्म स्थान है ।

पारिवारिक जीवन : 'सकलकीर्तिनुरास, में दिये गये भट्टारक सकलकीर्ति के जीवन-विवरण के आधार पर ब्रह्म जिनदास का भी पारिवारिक जीवन निश्चित् किया जा सकता है । इनके माता-पिता पाटन निवासी और हूंबड वंशीय थे । हूंबड एक दिगम्बर जैन जाति है । इनकी माता का नाम शोभा एवं पिता का नाम करमसिंह था पिता करमसिंह बड़े व्युत्पन्न मति के थे तो माता शीलवती धर्म परायणा थी ।[2]

ब्रह्म गुणराज रचित 'सकलकीर्ति रास' के अनुसार करमसिंह के पांच पुत्र थे । सकलकीर्ति पांचों भ्राताओं मे ज्येष्ठ थे । लेकिन शेष चार भ्राताओं के नामों का इस रास में उल्लेख नहीं है । ब्रह्म जिनदास का इस रास में केवल शिष्य के रूप मे ही उल्लेख हुआ है ।[3] 'मूलाचार प्रदीप' की रचना के प्रसंग में ब्रह्म जिनदास का सकलकीर्ति के कनिष्ठ भ्राता के रूप में उल्लेख हुआ है ।[4] स्वयं ब्रह्म जिनदास ने भी अपने संस्कृत के जम्बू स्वामी चरित्र[5] एवं हरिवंश पुराण[6] की प्रशस्तियों में अपने

१. राजस्थान के जैन सन्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० १ ।

२. न्याति मांहि मुहुतवंत हूंबड हरषि बखाणिइए ।
करमसिंह वितपन्न, उदयवन्त इम जाणीइए ॥३॥
शोभा तस अरधांगि, मूलि सरसि सुन्दरीय ।
सील सृंगारि अंगि, पेखु प्रतक्ष पुरंदरीय ॥४॥ सकलकीर्तिनुरास ॥

३. वीर वर्धमान चरित : प्रस्तावना, पृ० ७ ।

४. भट्टारक सकलकीर्ति ने मूलाचार प्रदीप नामका एक संस्कृत ग्रन्थ सं० १४८१ की श्रावण शुक्ला पूर्णिमा को अपने कनिष्ठ भ्राता ब्रह्म जिनदास के अनुग्रह से पूरा किया । जिसका उल्लेख गुजराती कविता के निम्न उपयोगी अंश से जाना जा सकता है—'भ्राताना अनुग्रह थकी कीधा ग्रन्थ महान् रे' ।
—पं० परमानन्द शास्त्री : अनेकान्त वर्ष–११, किरण ६, पृ० ३३३ ।

५. भ्रातास्ति तस्य प्रथितः पृथिव्यां, सद् ब्रह्मचारी जिनदास नामा ॥६॥

६. सद् ब्रह्मचारी गुरु पूर्वकोस्य, भ्राता गुणज्ञोस्ति विशुद्ध चित्त ॥७॥

आपको सकलकीर्ति का भ्राता बतलाया है। परिवार के अन्य सदस्यों की कोई जानकारी नहीं मिलती है।

ब्रह्म जिनदास के पिता समृद्ध थे। भोगोपभोग की सभी सामग्री परिवार में उपलब्ध थी। लेकिन सांसारिक भोग विलास उन्हें गृहस्थ जीवन की ओर आकर्षित नहीं कर सका। अन्तस्तल में वैराग्य की जागृति होने से उन्होंने पारिवारिक जीवन-चर्या परित्याग कर अपने अग्रज भ्राता भट्टारक सकलकीर्ति के मार्ग का अनुसरण किया।[1]

शिक्षा-दीक्षा : ब्रह्म जिनदास की शिक्षा-दीक्षा के सम्बन्ध में भी कोई प्रामाणिक तथ्य उपलब्ध नहीं होता है। सम्भवत: अपने शिशुकाल के पश्चात् ये अपने अग्रज भ्राता भट्टारक सकलकीर्ति के सान्निध्य में रहे और उन्हीं से उन्होंने ज्ञान अर्जित किया। सकलकीर्ति के संरक्षण में ही इन्होंने संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं एवं आगम, सिद्धान्त, काव्य, पुराणों आदि का अध्ययन किया। सकलकीर्ति इनके अग्रज भ्राता एवं गुरु दोनों थे। उन्होंने ही ब्रह्म जिनदास को ज्ञान एवं भक्ति का मार्ग बताया।[2] संवत् १४६० से संवत् १४८० तक इनका शिक्षण काल निश्चित् होता है।

ब्रह्म जिनदास आजीवन बाल ब्रह्मचारी थे। जम्बू स्वामी चरित्र में इन्होंने अपने-आप को 'कामारि जेता' विशेषण के साथ उल्लेखित किया है।[3] यद्यपि इनक दीक्षा का कहीं उल्लेख नहीं मिलता, लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये बाल ब्रह्म-चारी थे। इन्होंने स्वयं को सद् ब्रह्मचारी एवं जिनेन्द्र का दास कहा है। मुनित्व के प्रति इनका बड़ा आदर-भाव था और स्वयं के मुनि बनने की इनकी बड़ी उत्कट अभिलाषा थी। अपने काव्यों के अन्त में इन्होंने अपने आराध्य से निर्ग्रन्थ मुनि दीक्षा देने की कर बद्ध विनती की है।[4] एक अन्य गीत में इन्होंने अपने उपास्य जिनेन्द्र देव से अन्य किसी सांसारिक वस्तु की याचना न कर सम्यक् ज्ञान, धर्म,

---

१. राजस्थान के जैन सन्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० २३।

२. देव नहीं कोइ जीनवर तोलि, सकलकीरति गुरु इणि परिबोली।
भणतां पुण्य अपार ॥२०॥ तीन चौवीसी वीनती ॥

३. जिनस्य दासो जिनदास नामा, कामारि जेता विदितो धरित्र्यां ॥७॥

४. मुनिवर स्वामी नमुं शिर नांमी, दोइ कर जोडी विनय करूं।
दीक्षा अति निर्मल श्रो मुझ उजली, ब्रह्म जिणदास भणी कृपा करीं ॥१४॥
—गुरु जयमाल।

चारित्र्य व तप के साथ सुख की भण्डार साधु दीक्षा की वांछा प्रकट की है; क्योंकि यह दीक्षा ही कवि को मोक्ष का द्वार बताने वाली है ।[1]

गुरु-परम्परा : अपनी गुरु परम्परा में ब्रह्म जिनदास ने अपने अग्रज भ्राता भट्टारक सकलकीर्ति के अतिरिक्त भट्टारक भुवनकीर्ति का उल्लेख किया है । इन दो गुरुओं के अतिरिक्त अन्य किसी गुरु का उल्लेख नहीं मिलता । अपने प्रत्येक काव्य के प्रारम्भ में एवं अन्त में ब्रह्म जिनदास ने इन दोनों की वन्दना की है और इनके प्रसाद की कामना व्यक्त की है ।[2] ब्रह्म जिनदास को अपने इन दोनों गुरुजनों के प्रति अगाध श्रद्धा एवं भक्ति थी । वे सदा ही इन दोनों के सान्निध्य में रहे और इन दोनों से आत्मज्ञान प्राप्त किया । गुरु भट्टारक सकलकीर्ति को इन्होंने महाकवि, निर्ग्रन्थ राज, शुद्ध चारित्र धारी, तपोनिधि एवं भव्यजनों से वन्दित रूप में चित्रित किया है ।[3] द्वितीय गुरु भट्टारक भुवनकीर्ति को अगाध ज्ञान वेत्ता, कामदेव को चूर्ण करने वाले, संसार पाश को त्यागने वाले : क्षमा के निधान बतलाया है ।[4] 'गुरु जयमाल' मे ब्रह्म जिनदास ने निरन्तर गुरु-चरणों में नमन का भाव व्यक्त किया है ।[5] वस्तुतः ब्रह्म जिनदास की गुरु भक्ति अनुपम थी । वे योग्य गुरु के योग्य शिष्य थे । वे जो कुछ भी

---

१. न मांगु राज ते कारिमो, ए, न मांगु लाछि ते हेव ।
न मांगु नारी बीहामणीए, ते आले भवि-भवि दुख ।।१०।।
मागु सु समकित निर्मलोए, ग्यान मांगु भवतार ।
चारित्र मांगु सोहामणोए, तप मागु सविचार ।।११।।
दीक्षा देउ मझ निरमलीए, स्वामीय सौख्य भण्डार ।
ब्रह्म जिणदास इणी परिभणए, जिम पामो मोख दुवारि ।।१२।। गौरी भास ।।

२. श्री सकलकीर्ति पाय प्रणमीने, मुनी भुवनकीर्ति गुरुवांदु सोहजल ।।१।।
आदिनाथरास ।

३. ततो भवतस्य जगत्प्रसिद्धे : पट्टे मनोज्ञे सकलादिकीर्तिः ।
महाकविः शुद्धचरित्रधारी, निर्ग्रन्थराजा जगति प्रतापी ।।२।। : जंबूस्वामीरास,

४. पट्टे तदीये गुणवान् मनीषी, क्षमानिधाने भुवनादिकीर्तिः ।
जीयाच्चिरं भव्य समूह वंद्यो, नानायति व्रात निषेवणीयः ।।१८५।। रामचरित्र ।।

५. सकलयतीश्वर नमित सुरासुर अनुदिन-चरण कमल नमुं ।।
तम्ह परसादि मन उहलादि, स्तवन करी भव दुख गमुं ।।१।।

थे, सब गुरु की अनुकम्पा के फलस्वरूप थे ।[1]

गृहत्याग एवं साधना काल : जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है–ब्रह्म जिनदास अपनी शिशु अवस्था के पश्चात् अपने अग्रज भ्राता सकलकीर्ति के साथ रहने लगे थे। संसार से इन्हें प्रारम्भ से ही वैराग्य था' क्योंकि धार्मिक वातावरण एवं बड़े भाई का प्रभाव जो था। यद्यपि गृहत्याग की प्रामाणिक सूचना उपलब्ध नहीं होती है, फिर भी इनके वैराग्यमय जीवन, बाल-ब्रह्मचर्य एवं अग्रज भ्राता के सान्निध्य में संरक्षण प्राप्ति यह बतलाती है कि ये अपनी दस वर्ष की आयु में गृह-त्याग कर मुनि सकल-कीर्ति की शरण में आ चुके थे। संवत् १४८६ मे मूलाचार प्रदीप की रचना के आग्रह से यह निश्चित् होता है कि ब्रह्म जिनदास उस समय विद्वान् बन चुके थे। इनकी विपुल एवं विशाल रचनाओं का प्रणयन यह सिद्ध करता है कि सवत् १४६० के पश्चात् १४८१ एवं इससे आगे इनका साधनाकाल रहा होगा। इस साधनाकाल में इन्होंने ज्ञानाराधना एवं आत्म-साधना का मार्ग अपनाया। वैसे तो गृहत्याग के पश्चात् इनका समूचा जीवन ही साधना काल रहा। निरन्तर ज्ञानाराधना एव आत्म साधना साधुओं एवं ब्रह्मचारियों के जीवन की अपनी विशेषता होती है, जो उस समय इनकी भी थी ।

विहारक्षेत्र : ब्रह्म जिनदास ब्रह्मचारी थे। भट्टारक सकलकीर्ति एव भट्टारक भुवनकीर्ति के संघ में रह कर इन्होंने विभिन्न देशों ये विहार किया, जिसका उल्लेख स्वयं इन्होंने परोपकार पूर्वक यश अर्जित किया। विहार क्षेत्र मे ब्रह्म जिनदास अपने आचार-विचार में विशुद्ध रहते थे। अपने सिद्धान्तों के पालन मे प्रवीण थे, और परोपकार व्रत में तत्पर रहते थे ।[2]

गुजरात के अणहिलपुर पट्टण में जन्म एव लालन-पालन के पश्चात् ब्रह्म जिनदास सकलकीर्ति के साथ राजस्थान में आ गये। इनके सघ मे रह कर ब्रह्म जिनदास ने प्रतिष्ठा समारोहों एवं तीर्थयात्राओं मे भाग लिया। इनके काव्यों में प्रयुक्त स्थानों की एक बड़ी नामावली बन सकती है, पर उन सभी स्थानों की प्रामा-णिकता में सन्देह होता है। तथापि सकलकीर्ति एव भुवनकीर्ति के संघ में बागड़ प्रान्त

---

१. जयति सकलकीर्ति पट्टपंकज भानु ॥
जयति भुवनादिकीर्ति : विश्व विख्यात कीर्तिः ॥
बहुयतिजनयुक्तो मुक्तिमार्गप्रणेता ।
कुसुम इव विजेता, भव्य सन्मार्ग नेता ॥३॥–जम्बूस्वामी चरित्र

२. देशे विदेशे सततं विहारं, वितन्वता येन कृताः सुलोकाः ।
विशुद्धसर्वज्ञमतप्रवीणः, परोपकारव्रततत्परेण ॥७॥ जम्बूस्वामी चरित्र,

में इनके आवास-प्रवास से यह निश्चित् होता है कि गुजरात में पाटण, गिरिनार, ईडर, अकलेश्वर, राजस्थान में सागवाड़ा, बांसवाड़ा, गलियाकोट, डूंगरपुर, ऋषभदेव, उदयपुर (मेवाड़), चित्तौड़ आदि इनके मुख्य भ्रमण स्थल थे। इनकी रचनाओं में इन स्थानों की भाषा का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित है। इन क्षेत्रों में भ्रमण करते हुये इन्होंने धर्म एवं साहित्य का उद्योत किया।[1] ब्रह्म जिनदास ने अपने कई चरित नायकों से इन क्षेत्रों की यात्राएँ करायी हैं।[2] राजस्थान का बागड़ प्रदेश, जिसमें उदयपुर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, गलियाकोट आदि हैं गुजरात प्रान्त से लगा हुआ है। इन क्षेत्रों के साथ ईडर, पाटण आदि गुजरात के स्थान कवि के मुख्य विहार स्थल थे। इन्हीं क्षेत्रों में इनका साहित्य उपलब्ध होता है।

शिष्य-सम्पदा : ब्रह्म जिनदास का अधिकांश समय अध्ययन-अध्यापन में व्यतीत होता था। इनकी अगाध विद्वत्ता से सभी प्रभावित थे। इन्होंने अपने शिष्यों को हिन्दी एवं संस्कृत का ज्ञान कराया, उनमें धर्म एवं साहित्य के प्रति रुचि जागृत की तथा साहित्य सृजन की प्रेरणा दी। अभी तक इनके सात शिष्यों की जानकारी मिली है। जिनका नामोल्लेख इन्होंने अपनी कृतियों की पुष्पिकाओं में किया है। रामरास की प्रशस्ति में ब्रह्म मनोहर, ब्रह्म मल्लिदास एवं ब्रह्म गुणदास का,[3] परमहंस रास में ब्रह्म नेमिदास का,[4] जम्बूस्वामी चरित्र में ब्रह्म धर्मदास का,[5] उल्लेख हुआ

---

१. जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह : भाग–१, पृ० १३।

२. तिलकपुर पाटण वली सार, चन्द्रप्रभ वांद्या अवतार।
तिहां थको गिरिनारि गयो हूं चंग, परवत दीसो अति हि चंग ॥३२॥
तिहां थको आव्यो गुजर देश, अंबावती कीउ परवेश।
दीठो थमण परस्वनाथ, वांद्या स्वामी जोड्या दुइ हाथ ॥३४॥
मेवाड़ देश आव्यो हूं चंग, चित्रोड़गढ़ दीठो उत्तंग।
तिहां वांद्या जिणवर चौवीस, त्रिभुवन स्वामी ते गुण ईश ॥३५॥
जम्बूस्वामी रास ॥
तिहां थको श्रीपाल चालीयो ए, मेवाड़ देश मझारि तो।
बागड देश भील वसेए, तेह कन्हे लीधो डंड तो ॥२५॥ श्रीपालरास ॥

३. सीष्य मनोहर रूवडा, ब्रह्म मल्लिदास गुणदास।
पढो पढावो बहु भावसुं, जिम होइ सौख्य निवास ॥४॥ राम रास ॥

४. ब्रह्म जिणदास सिष्य निरमलो, नेमिदास सविचार।
पढउ पढावो विस्तरो, परमहंस अवतार ॥७॥ परमहंस रास ॥

५. सद् ब्रह्मचारी किल धर्मदासस्तस्यास्तिशिष्यः कविबद्धसख्यः।
सौजन्य वल्ली जलदः कृतोऽयं तपोगतो व्याकरणप्रवीणः ॥८॥
जम्बूस्वामी चरित्र ॥

है। रामसीतारास के कर्त्ता 'गुणकीर्ति' भी ब्रह्म जिनदास के ही शिष्य थे।[1] तथा 'चिद्रूप भास' के कर्त्ता ब्रह्म शान्तिदास भी इन्हीं के शिष्य थे।[2] इस प्रकार ब्रह्म मनोहरदास, ब्रह्म मल्लिदास, ब्रह्म गुणदास, ब्रह्म नेमिदास, ब्रह्म धर्मदास, ब्रह्म गुण-कीर्ति और ब्रह्म शान्तिदास—ये सातों ब्रह्म जिनदास के शिष्य थे।

मित्र-मण्डली : ब्रह्म जिनदास सकलकीर्ति के संघ के प्रमुख सदस्य थे। इनकी विद्वत्ता से सभी संघस्थ साधु प्रभावित थे। इनके अपने सहयोगी मित्र भी थे यद्यपि इन्होंने स्वयं अपने मित्र का कहीं उल्लेख नहीं किया है, परन्तु 'पदम' नाम के कवि ने इन्हें अपना मित्र बताया है। पदम कवि ने संवत् १५१६ में अपने 'श्रावकाचार रास' की रचना में मित्र ब्रह्म जिनदास की सहायता का उल्लेख किया है।[3]

इसके अतिरिक्त स्वयं ब्रह्म जिनदास ने अपने शिष्य ब्रह्म धर्मदास के मित्र महादेव से 'जम्बूस्वामी चरित (सस्कृत) की रचना में सहायता ली थी।[4]

कार्य क्षेत्र और प्रचार कार्य : ब्रह्म जिनदास का अधिकांश समय आत्म-साधना में व्यतीत होता था। भट्टारक सकलकीर्ति के संघ में रहकर ये धर्म प्रचार में भी पूर्ण योग देते थे। स्वाध्याय, जिन-पूजा एवं भक्ति भावना इनके दैनिक जीवन के आवश्यक अंग था। शिष्यों के पढ़ाने में भी वे रुचि लेते थे। स्वयं साहित्य-सृजन करते और मित्रों एवं शिष्यों को भी इस कार्य के लिए प्रेरित करते थे। इनके विशाल साहित्य-सृजन से स्पष्ट होता है कि ये साहित्य-सेवा मे अनवरत रूप से लगे

---

१. श्री ब्रह्मचार जिणदास सु परसाद तेह तणोए।
मन वांछित फल होइतु, बोलीइ किस्युं घणुं ए ।।३६।।
गुणकीरति भण रास तु विस्तारू मनिरलीए ।।३७।। राम सीता राम ।।

२. सकलकीर्ति निग्रन्थ नमुं, भुवन कीरति भवतार जी।
ज्ञानभूषण ज्ञानी नमुं, विजय कीर्ति जयकार जी ।।७।।
सुगुरु शिरोमणि वांदिसुं, ब्रह्मचारी जिणदास जी।
जसु वचने शांत जने, चेतन करइ प्रकाश जी ।।८।।
मझनि चेतन जाणवा, जे गुरु हुवा सहाइ जी।
शांत भणे तेह चरण नमूं, जिम निर्म्मल मति थाइजी ।।९।।

३. कर जोडी पदमो कहै, भा०, श्रावकाचार किओ रास तो।
निज बुद्धि नै अनुसरै, भा० सहास्य करी मित्र जिणदास तो ।।७३।।

४. कविर्महादेव इति प्रसिद्धस्तन्मित्र भास्ते द्विजवंशरत्नम्।
महीतले नूनमसौ कृतश्च सहाय्य तस्य सुधर्म हेतो ? ।।९।।

रहते थे। इनकी विद्वता से इनके गुरु, समकालीन विद्वान् एवं कवि भी प्रभावित थे। आत्म-साधना के साथ गुरुभक्ति, नियमित स्वाध्याय एवं साहित्य-सृजन ब्रह्म जिनदास के अपने कार्य थे। साहित्य-सृजन के मूल में स्वान्त: सुखाय के साथ परहित की भावना भी थी। वस्तुत: साहित्य-सृजन और धर्म-प्रचार इनके मुख्य कार्य थे। साहित्य-सृजन के साथ-साथ ब्रह्म जिनदास धर्म-प्रचार का कार्य भी करते थे। ये अपने गुरु द्वय के सान्निध्य मे प्रतिष्ठा समारोहों में भाग लेते थे। तीर्थ-यात्राओं में सम्मिलित होते थे। इनके समय की इनके गुरु भट्टारक सकलकीर्ति एवं भट्टारक भुवनकीर्ति द्वारा प्रतिष्ठित अनेकों मूर्तियाँ उदयपुर, डूंगरपुर एवं बांसवाड़ा के जैन मन्दिरों मे मिलती हैं।

ब्रह्म जिनदास ने स्वयं ने भी कई प्रतिष्ठानों का सचालन कर धर्म-प्रचार में योग दिया। विक्रम संवत् १५१० में माघ शुक्ला पंचमी को इन्होने पंच परमेष्ठी की मूर्ति प्रतिष्ठापित की थी[1] जयपुर के जोबनेर के मन्दिर में इसी संवत में इनके द्वारा प्रतिष्ठापित पार्श्वनाथ की दो प्रतिमाएँ उपलब्ध होती है। जिनमें एक खड्गासन एवं एक पद्मासन है। इसी प्रकार सवत् १५१६ मे इन्होंने एक अन्य मूर्ति की प्रतिष्ठापना में योग दिया।[2] यह मूर्ति गजवासौदा (मध्य प्रदेश) के बूढेपुरा के जैन मन्दिर मे प्राप्त हुई है। अपनी काव्य-रचना के माध्यम से भी ब्रह्म जिनदास ने धर्म प्रचार में अत्यधिक योग दिया। राजस्थान और गुजरात इनका मुख्य कार्य क्षेत्र था। अपने कार्य से इन्होंने श्रावक-श्राविकाओं को सन्मार्ग की ओर खूब प्रेरित किया था।

इस प्रकार आत्म-साधना, अध्ययन-अध्यापन, साहित्य-सृजन धर्मोपदेश एवं विविध प्रतिष्ठाओं के संचालन और धर्म-प्रचार ब्रह्म जिनदास के विविध कार्य थे।

निधन-समय : ब्रह्म जिनदास की निधन तिथि का कोई निश्चित् प्रमाण नहीं मिलता। इसके लिए भी अनुमानों का आश्रय लेना पड़ता है। संवत् १५२० में इन्होंने 'हरिवंश पुराण रास' की रचना की। इसके पश्चात् इनके निश्चित् समय का प्रमाण नही मिलता।

---

१ सवत् १५१० वर्षे माघ मासे शुक्ल पक्षे ५ रवौ श्री मूलसघे भट्टारक पद्मनन्दि तत्पट्टे भट्टारक श्री सकलकीर्ति तच्छिष्य ब्रह्म जिनदास हूंबड जातीय सा० तेजु० भा० मलाई............।। मूर्ति लेख।
—तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा : पृ० ३३८।

२. सवत् १५१६ माघ सुदी ५ श्री मूलसघे भट्टारक सकलकीर्ति देव: तच्छिष्य ब्रह्म श्री जिनदासस्य उपदेशात् ब्र० मल्लिदास जोगड़ा पोरवाड़ साहु नाऊ भार्या नेह भ्राता धरणा भार्या हर्षी नित्यं प्रणमति ।।
—अनेकान्त. वर्ष—२४ किरण ५ पृ० २२७।

संवत् १५३१ में भट्टारक ज्ञानभूषण, भट्टारक भुवनकीर्ति के पश्चात् सागवाड़ा में भट्टारक गद्दी पर बैठ चुके थे। ब्रह्म जिनदास निर्ग्रन्थ मुनि की दीक्षा के लिए उत्कट अभिलाषी थे। इन्होंने अपने काव्यों में कई स्थलों पर मुनि दीक्षा के लिए अपने गुरु से कर बद्ध विनती की है। इनकी मुनि दीक्षा की उत्कट अभिलाषा को देखते हुए लगता है कि यदि ये संवत् १५३१ में जीवित होते तो अवश्य ही मुनि बन जाते और सम्भवतः भट्टारक भुवनकीर्ति के पट्ट पर ये ही बैठते। यदि ये जीवित होते और मुनि नहीं बनते तो भट्टारक भुवनकीर्ति के संघ के महत्त्वपूर्ण सदस्य होने के नाते अपनी रचनाओं में भुवनकीर्ति के सदृश भट्टारक ज्ञानभूषण का भी आदरपूर्वक उल्लेख करते। अतः यह निश्चित है कि ब्रह्म जिनदास विक्रम संवत् १५३१ से पूर्व ही इस असार-संसार को छोड़ चुके थे।

भाषा एवं भावाभिव्यक्ति की प्रौढ़ता एवं परिपक्वता की दृष्टि से आदिनाथ रास, जम्बूस्वामी रास, भविष्यदत्त रास, जीवन्धर रास का रचना समय हरिवंश पुराण के बाद का अर्थात् १५२० के पश्चात् होना चाहिये, क्योंकि ये रचनाएँ हरिवंश पुराण रास की अपेक्षा अधिक प्रौढ़ लगती हैं। इस दृष्टि से ब्रह्म जिनदास संवत् १५२० के पश्चात् कम से कम दस वर्ष और अधिक जीवित रहे होंगे।

हमने १५२० में इनकी ७० वर्ष की आयु मानी है। इनके ब्रह्मचर्य जीवन के व्यक्तित्व को देखते हुए भी इन्हें संवत् १५२० के पश्चात् भी १० वर्ष जीवित होना चाहिए। लेकिन १५३० के पश्चात् नहीं। इस आधार पर इनका अन्तिम समय या निधन काल संवत् १५३० के लगभग निश्चित् होता है। कुल मिलाकर इनका समय विक्रम संवत् १४५० से १५३० निश्चित् होता है। इसी प्रकार ब्रह्म जिनदास का पूरा जीवन-काल ८० वर्ष का ठहरता है।

(ख) व्यक्तित्व

"ब्रह्म जिनदास" मदन रूपी शत्रु को जीतने वाले अखण्ड बाल-ब्रह्मचारी, क्षमा के निधि, षष्ठमादि तप के विधाता और अनेक परिषहों के विजेता थे। ये भट्टारक सकलकीर्ति के कनिष्ठ भ्राता एवं प्रिय ब्रह्मचारी शिष्यों में से थे। सरस्वती की इन पर विशेष कृपा थी। ये योग्य गुरु के योग्य शिष्य थे।

ब्रह्म जिनदास का व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक, गम्भीर एवं प्रभावशाली था। ये अपने समय के विख्यात् सद् ब्रह्मचारी, गुणज्ञ, विशुद्ध विचारक, जिनेन्द्र देव के दास

एवं काम विजेता थे।[1] ये जिनेन्द्र देव के चरण-कमलों के चंचरीक, देव शास्त्र और गुरु की भक्ति में तत्पर, अत्यन्त दयालु तथा सार्थक जिनदास नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त थे।[2]

इनकी वाणी में ओज एवं आत्म ज्ञान के तत्वों का भण्डार भरा था। अपने सुमधुर व्यवहार से ये सहज ही भव्यजनों को अपनी ओर आकर्षित कर लेते थे। मित्रों एवं शिष्यों को साहित्य-सृजन में प्रेरित करना इनके व्यक्तित्व का विशेष अंग था। इनकी कृपा इनके शिष्यों के लिए मनोवांछित फल की दातृ होती थी। भट्टारक ज्ञानभूषण जैसे तपोनिधि मुनि इनकी विद्वत्ता एवं व्यक्तित्व से प्रभावित थे। उन्होंने ब्रह्म जिनदास की अनेक ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ अपने शिष्यों एवं श्रावकों के लिए कराईं।

ब्रह्म जिनदास अत्यन्त साधु प्रकृति के थे। सांसारिक वस्तुओं में इनका मन नहीं रमता था। इन्होंने अपने साहित्यिक एवं धार्मिक कार्यों से काफी प्रसिद्धि अर्जित कर ली थी। लेकिन ये स्वयं ख्याति, प्रतिष्ठा लाभ से बहुत परे रहते थे। ये स्वयं एक स्थान पर लिखते हैं कि मैने यश-पूजादि के लोभ से ग्रन्थ रचना नहीं की है, किन्तु स्व-पर के प्रतिबोध एवं समुदाय के हित में जिनागम के अनुसार रचना की है।[1]

जिनेन्द्र के दास ब्रह्म जिनदास को किसी सांसारिक वस्तु की वांछा नहीं थी। दुःखों के नाश एवं शाश्वत सौख्य की प्राप्ति के लिए, कर्मों के क्षय हेतु ज्ञान एवं चारित्र्य की प्राप्ति के लिए ये एक मात्र जिनेश्वर की शरण ही चाहते थे।[2] इन्होंने ग्रन्थ रचना पूजा एवं मान-प्रतिष्ठा के लिए नहीं अपितु जिन भक्ति एवं महा-मुनियों

---

१. सद् ब्रह्मचारी गुरु पूर्वकोऽस्य भ्राता गुणज्ञोस्ति विशुद्ध चित: ॥
जिनस्य दासो जिनदास नामा, कामारिजेता विदितो धरित्र्यां ॥७॥

२. श्रीमज्जिनेश्वरपदाम्बुजचंचरीकस्तच्छास्त्र सद्गुरुषु भक्ति विधानदक्ष: ।
सार्थाभिधोऽसौ जिनदास नामा दयानिवासो भुवि राजतेऽत्र ॥८॥
—प्रशस्ति : हरिवंशपुराण (संस्कृत)।

१. न ख्याति पूजाद्यभिमानलोभाद्ग्रन्थ: कृतोऽयं प्रतिबोधहेतो ।
निजान्ययो: किन्तु हिताय चापि परोपकाराय जिनागमोक्त : ॥१०॥

२. जिन प्रसादादि मेव याचे दु:खक्षयं शाश्वतसौख्यहेतो: ।
कर्मक्षयं बोधिचरित्रलाभं शुभागति चेह न चान्य देव: ॥११॥ हरिवंश पुराण।

के आदर्श गुणों की प्राप्ति हेतु परमार्थ भावना से की है।[1] वस्तुतः ब्रह्म जिनदास परोपकारी महापुरुष थे।

"ब्रह्म जिनदास" सरस्वती के अनन्य उपासक थे। गलियाकोट के जैन शास्त्र भण्डार से प्राप्त पं० आशाधर विरचित 'सरस्वती स्तुति' की पांडुलिपि पर 'ब्रह्म जिनदास पुस्तक' जो वाक्य लिखा गया है उससे यह स्पष्ट होता है कि ब्रह्म जिनदास सरस्वती के अनन्य उपासक थे और वे सम्भवतः नित्य स्तुति का पाठ भी करते थे। साहित्य के संरक्षण, संवर्द्धन एवं सम्पोषण में इनका बड़ा योग रहा था।

ये सदा अपने साहित्य धुन में मस्त रहते थे तथा अधिक से अधिक लिखकर अपने जीवन का पूर्ण सदुपयोग करते रहते थे। इन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा हिन्दी के कवियों का वातावरण तैयार करने में अत्यधिक सहयोग दिया और इनका अनुसरण इनके बाद होने वाले कवियों ने किया। ब्रह्म जिनदास महाकवि थे। इनमें विविध विषयक साहित्य को निबद्ध करने का अद्भुत सामर्थ्य था। भट्टारक सकलकीर्ति एवं भुवनकीर्ति के संघ में रहना, दोनों के समय-समय पर दिये जाने वाले आदेशों को मानना प्रतिष्ठा समारोहों एवं अन्य आयोजनों तथा तीर्थयात्रा संघों के संचालन में सहयोग[1] देना, अपने पद के अनुसार आत्म-साधना करना इन सब के साथ ६० से भी अधिक कृतियों को निबद्ध करना उनकी अलौकिक प्रतिभा का सूचक है।[2]

ब्रह्म जिनदास विद्वान् व कवि के अतिरिक्त सन्त भी थे। इनका अधिकांश समय आत्म साधना एवं साहित्यिक सृजन में व्यतीत होता था। वे प्रायः दोपहर एवं संध्या-त्रिकाल सामायिक (आत्म चिन्तन) करते थे। प्रातः स्नानादि से निवृत हो, शुद्ध-स्वच्छ वस्त्र धारण करके ये जिनालय में जाकर पूजा-भक्ति करते थे और फिर अपने गुरु से धर्म श्रवण करते थे।[3] इनका आचरण सम्यक्त्वपूर्ण था। श्रावक के १२ व्रतों के ये पूर्ण पालक थे। आत्म-साधना के साथ पर-हित की भावना इनमें विशेष रूप से थी। अपने साहित्य सृजन के मूल में भी यही मुख्य भावना थी। त्याग

---

१. ग्रंथ कृतोऽयं जिननाथ भक्त्या, गुणानुरागाच्च महामुनीनां।
पूजाभिमानाद्रहितेन नूनं. मया प्रशस्तः परमार्थ बुद्धा ॥१०॥ जम्बूस्वामी प्रशस्ति।

२. राजस्थान के जैन सन्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० ३८।

३. गिरनारी धवल ॥१–५॥

तपस्या और तपोबल से परिपूर्ण इनका सन्तत्व जीवन उच्च कोटि का था। अपने गुरु में इनकी अटूट आस्था एवं असीम श्रद्धा थी।

संसार की असारता से ब्रह्म जिनदास पूर्णरूपेण परिचित थे। अपने जीवन के प्रारम्भ से ही इनमें वैराग्य की अनुभूति हो आयी थी। अपने काव्यों में इन्होंने संसार की असारता का बहुत वर्णन किया है। ये धर्म को इहलौकिक एवं पारलौकिक जीवन का आवश्यक अंग मानते थे। इनके अनुसार धर्म से ही सब प्रकार के सुखों की प्राप्ति होती है —

> जिहां धर्म तीहां जय, जिहां पाप तिहां विरणास तो।
> इम जाणी तम्हे धर्म करो, कहे ब्रह्मचारी जिणदास तो ॥३॥

इनके विशाल व्यक्तित्व का एक आवश्यक अंग इनका धर्ममय जीवन था। जिन-धर्म में ये पूर्ण अनुरक्त थे। मुक्तक काव्यों में इनकी अनन्य भक्ति प्रकट हुई है। मुनित्व जीवन के प्रति इनका अति आदर-भाव एवं आकर्षण था। ये स्वयं भी मुनि बनना चाहते थे। इन्होंने अपने काव्यो में अनेक बार अपने गुरु से अपनी दीक्षा की याचना की है —

> मुनिवर स्वामी नमुं शिर नांमी, बोइ कर जोडी विनय करूं।
> दीक्षा अति निर्मल द्यो मुझ स्वामी, ब्रह्म जिणदास धणी कृपा करूं ॥[1]

ब्रह्म जिनदास के व्यक्तित्व का लक्ष्य अति महनीय था। ये सांसारिक वस्तु की वांछा न कर अनुपम सौख्यकरी मोक्ष मार्ग की कामना करते थे। पंच नमस्कार मन्त्र में इनकी अत्यधिक आस्था थी। इनके हृदय कमल मे णमोकार मन्त्र हमेशा गूंजता रहता था—

> ब्रह्मचारी जिणदास भणेरे, समरि समरि णवकार ॥१६॥[2]

ब्रह्म जिनदास एक साथ विद्वान, सन्त एवं कवि तीनों थे। इनके बहुमुखी व्यक्तित्व के सम-सामयिक विद्वान्, कवि, शिष्य एवं श्रावक-श्राविकायें प्रभावित थे। उस समय के समाज में इनका पर्याप्त आदर एवं सम्मान था। इनकी भक्ति, साहित्य-सेवा एवं विद्वता से इनके गुरुजन भी प्रभावित थे। जिनालयों के नव-निर्माण जीर्णोद्धार एवं प्रतिष्ठा समारोहों में इनका बड़ा योग था।

---

१. गुरु जयमाल ॥१४॥
२. जीवड़ा गीत ॥१६॥

अपनी उत्कट आत्म-साधना के साथ गुरु-भक्ति, तीर्थाटन, नियमित स्वाध्याय, प्रतिष्ठानों का संचालन और फिर उच्च कोटि का विशाल साहित्य-सृजन ब्रह्म जिनदास जैसे बहुमुखी व्यक्तित्व की ही अनुपम देन है। वस्तुतः वे अप्रतिम प्रतिभाओं के धनी थे जिनमें साथ अद्भुत विद्वता, उच्च कोटि के सन्तत्व, अपने आराध्य के प्रति प्रगाढ़ भक्ति के साथ अनुपम कवित्व शक्ति और अविचलित आत्म-साधना के गुण विद्यमान थे।

□ □ □

जयपुर स्थित श्री दिगम्बर जैन मन्दिर, जोबनेर मे विराजमान महाकवि ब्रह्मजिनदास के उपदेश से सं० १५१० मे प्रतिष्ठित तीर्थंकर पार्श्वनाथ की पीतल की प्रतिमा।

लेख सं० १५१० श्री मूलसघे भट्टारक श्री सकलकीर्ति शिष्य ब्र० जिणदास उपदेशात् हूबड जाति साह साहू भार्या तत्पुत्र पाचू भार्या कपरा प्रणमति ॥

जयपुर स्थित श्री दिगम्बर जैन मन्दिर जोबनेर मे विराजमान महाकवि ब्रह्म जिनदास के उपदेश से सं० १५१० तथा १५११ मे प्रतिष्ठित तीर्थंकर पार्श्वनाथ की पीतल की प्रतिमाएँ।

लेख - सं० १५१० फाल्गुन मासे शुक्ल पक्षे मूलसघे भट्टारक श्री सकलकीर्ति तस्य शिष्य ब्र० जिणदास उपदेशात् नेउ जाति राधिका बाई जभी ......।

आदिनाथ रास की सं० १६१७ की पाण्डुलिपि का अन्तिम पत्र

अध्याय 3

रचनाएँ : वर्गीकरण एवं सामान्य परिचय

ब्रह्म जिनदास का प्राकृत, संस्कृत, गुजराती, राजस्थानी और हिन्दी पर पूर्ण अधिकार था। गुजराती और राजस्थानी से इनका विशेष अनुराग था। उस समय गुजराती और राजस्थानी भिन्न-भिन्न न होकर मरु-गुर्जर नाम से एक ही भाषा थी, जो दोनों प्रदेशों में समान रूप से प्रयुक्त थी।[1] इनका मुख्य क्षेत्र डूंगरपुर, सागवाड़ा, गलियाकोट, ईडर आदि स्थान थे। ये स्थान बागड प्रदेश एवं गुजरात के अन्तर्गत थे जहाँ जनसाधारण की भाषा मरु-गुर्जर थी। इसलिए इनकी रचनाओं में राजस्थानी के साथ गुजराती का भी प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। वैसे मध्यकाल में १४वीं शताब्दी से १६वी शताब्दी तक गुजरात और राजस्थान दोनों प्रदेशों की भाषा में साम्य होने के अनेक युक्ति-युक्त प्रमाण मिलते हैं।[2]

यद्यपि ब्रह्म जिनदास अपने गुरु भट्टारक सकलकीर्ति के सदृश संस्कृत भाषा के उद्भट विद्वान् थे, फिर भी जन-सामान्य के बोध की दृष्टि से इन्होंने अपना अस्सी प्रतिशत साहित्य हिन्दी भाषा (तत्कालीन लोक भाषा) ,में ही रचा। संस्कृत भाषा को केवल विद्वत्समुदाय ही समझ सकता था। सामान्य व्यक्ति के लिए वह बोधगम्य नही थी। इसीलिए ब्रह्म जिनदास ने अपनी अधिकांश काव्य-रचनाएँ जनता की भाषा में लिखीं। इनकी रचनाएँ जन-जीवन के निकट होने के कारण अत्यधिक लोकप्रिय हो गयी थीं। कुछ रचनाएँ तो इतनी लोकप्रिय हुई कि कवि को उन्हें संस्कृत एवं हिन्दी दोनों भाषाओं में रचनी पड़ीं।

यद्यपि ब्रह्म जिनदास का साधना स्थल मुख्यतः बागड़ प्रदेश रहा तथापि उनकी कृतियाँ एक ही स्थल पर न मिल कर विभिन्न स्थानों के ग्रन्थ-भण्डारों में उपलब्ध होती हैं। इनके अधिकांश रास काव्य उदयपुर एवं डूंगरपुर में मिल जाते हैं। वैसे इन दो स्थानों के अतिरिक्त जयपुर, ऋषभदेव, ईडर, सागवाड़ा, दिल्ली,

---

१. श्री सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या : राजस्थानी भाषा, पृ० ४५।

१. डॉ० मदनकुमार जानी : राजस्थान एवं गुजरात के मध्यकालीन सन्त एवं भक्त कवि, पृ० २३।

अजमेर, उदयपुर आदि स्थानों के ग्रन्थ-भण्डारों में भी इनका साहित्य उपलब्ध होता है।

कवि के समय में रास संज्ञक रचनाओं का प्रचलन अधिक था। लेकिन रास-काव्यों में विषय की सीमा का कोई बन्धन नहीं था। जनता उनमें अपने सुख:दु:ख, मनोरंजन, धार्मिकता, वीरपूजा, चरित्र, यात्रा, दीक्षा आदि विषयक प्रकरण सन्निहित करती थीं। उनमें अनेक सामयिक घटनाएँ भी अङ्कित रहती थी जो जनता को अपनी ओर आकर्षित करती थी। इन्हीं सब कारणों से रास काव्य जनप्रिय हुए।[1] ये रास काव्य गेय प्रधान एवं नृत्य से युक्त होते थे।[2] जनसामान्य की इस प्रकार के काव्यों में अधिक रुचि होती थी। सम्भवतः इसी दृष्टिकोण से ब्रह्म जिनदास ने आदर्श महापुरुषों पर रास-रूप में चरित काव्यों की सृष्टि की थी। हिन्दी साहित्य के आदिकाल में भी रासो या रासक नाम देकर चरित काव्य लिखे गये है।[3] इन रास काव्यों के माध्यम से कवि ने सम्यक् धर्म के आचरण पर बल दिया है।

यद्यपि ब्रह्म जिनदास की कुछ रचनाओं के बारे में पं० नाथूराम प्रेमी, डा० कामता प्रसाद जैन, पं० जुगल किशोर मुख्तार, श्री अगर चन्द नाहटा, डा० प्रेमसागर जैन आदि विद्वानों ने स्फुट रूप मे विभिन्न प्रसंगों पर उल्लेख किया है। पं० परमानन्द शास्त्री ने ब्रह्म जिनदास की हिन्दी भाषा की ४८ रचनाओं को गिनाया है।[4] जबकि डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल ने अपने एक सक्षिप्त निबन्ध मे ब्रह्म जिनदास की हिन्दी भाषा की ५५ एवं संस्कृत की १२ कृतियो की जानकारी कराई है। अपने निबन्ध मे डा० कासलीवाल ने ब्रह्म जिनदास की कतिपय रचनाओ का संक्षिप्त परिचय देकर इन्हें रासशिरोमणि सिद्ध करते हुए इनके व्यक्तित्व एव कृतित्व पर संक्षिप्त मे विचार प्रकट किये हैं।[5]

डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल द्वारा सम्पादित ग्रन्थ सूचियों से ही कवि की कृतियों के उपलब्धि स्थान की जानकारी मिली है। हमें अपने अनुसन्धान-काल मे ब्रह्म जिनदास की अब तक कुल ८६ रचनाओं की उपलब्धि हुई है। जिनमें ७० हिन्दी भाषा की, १५ संस्कृत भाषा की एव एक प्राकृत भाषा की कृतियां मिली है।

---

१. प० परमानन्द शास्त्री : (रास साहित्य एक अध्ययन जैन सिद्धान्त भास्कर), भाग २५, किरण–१, पृ० १५।
२. डॉ० दशरथ ओझा एवं शर्मा : रास और रासन्वयी काव्य, पृ० ११।
३. डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ० ६१।
४. जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग २५, किरण-१, पृ० २६।
५. राजस्थान के जैन सन्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० २२-३८।

पं० परमानन्द शास्त्री ने ब्रह्म जिनदास की सभी रचनाओं को केवल रासो शीर्षक में ही उल्लिखित किया है।[1] जबकि डा० कासलीवाल ने कवि की सभी कृतियों को पुराण, रास, गीत, पूजा एवं स्फुट शीर्षकों में विभक्त किया है।[2] लेकिन इन दोनों विद्वानों ने रास शीर्षक से जो विभाजन किया है वह विषय-वस्तु एवं काव्य रूप दोनों ही दृष्टियों से यह वर्गीकरण उपयुक्त नहीं लगता। रास अपने आप में विभाजन का आधार नहीं हो सकता। कवि ने जन-बोध की दृष्टि से अपनी कृतियों को रास-रूप प्रदान किया है।

ब्रह्म जिनदास की प्राकृत एवं संस्कृत कृतियों का विवेचन प्रस्तुत ग्रन्थ की परिसीमा में नहीं आता है, अतः यहाँ उन कृतियों की नामावली मात्र दी जा रही है —

१. प्राकृत भाषा :

धर्मपंचविंशतिका गाथा।

२. संस्कृत भाषा :

(१) अनन्तव्रत पूजा
(२) गुरु पूजा
(३) चतुर्विंशति-उद्यापन पूजा
(४) जम्बूस्वामी चरित्र
(५) जम्बूद्वीप पूजा
(६) ज्येष्ठ जिनवर पूजा
(७) जल यात्रा विधि
(८) पुष्पांजलिव्रत कथा
(९) मेघमालोद्यापन पूजा
(१०) रामचरित्र (पद्मपुराण)
(११) बृहत्सिद्धचक्र पूजा
(१२) सप्तर्षि पूजा
(१३) सार्द्धद्वयद्वीप पूजा
(१४) सोलहकारण पूजा
(१५) हरिवंश पुराण।

३. हिन्दी भाषा :

हिन्दी भाषा की ७० कृतियों का विषयवस्तु एवं काव्य-रूप इन दो दृष्टियों से वर्गीकरण प्रस्तुत किया जा रहा है। विषयवस्तु की दृष्टि से कवि की रचनाएँ निम्न शीर्षकों में विभाजित की जा सकती हैं —

---

१. अनेकान्त : वर्ष २४, किरण ५, पृ० २२७।
२. राजस्थान के जैन सन्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० २४–२५।

१. पुराण काव्य :

(१) आदिनाथ रास
(२) राम रास
(३) हरिवंश पुराण रास,

२. चरित काव्य :

(४) अजित जिनेसर रास
(५) हनुमन्त रास
(६) सुकुमाल स्वामी रास
(७) नागकुमार रास
(८) चारुदत्त रास
(९) सुदर्शन रास
(१०) जीवन्धर-स्वामी रास,
(११) जम्बू स्वामी रास
(१२) श्रेणिक रास
(१३) धन्यकुमार रास
(१४) श्रीपाल रास
(१५) यशोधर रास
(१६) भविष्यदत्त रास

३. कथा काव्य :

(क) आख्यानपरक काव्य :

(१७) अम्बिकादेवी रास
(१८) रोहिणी रास
(१९) रात्रि भोजन रास
(२०) सगरचक्रवर्ती कथा
(२१) गौतम स्वामी रास
(२२) भद्रबाहु रास
(२३) समकित अष्टांग कथा रास
(२४) सासर वासा को रास
(२५) होली रास
(२६) महायज्ञ विद्याधर कथा
(२७) धर्म परीक्षा रास
(२८) बक चूल रास,

(ख) व्रत-कथा काव्य :

(२९) रविव्रत कथा
(३०) पुष्पांजलि रास
(३१) आकाश पचमी कथा
(३२) चन्दनषष्टी कथा रास
(३३) मौड़ सप्तमी कथा रास
(३४) निर्दोष सप्तमी कथा रास
(३५) अक्षय दशमी रास
(३६) दशलक्षण व्रत कथा रास
(३७) सोलहकारण व्रत रास
(३८) अनन्तव्रत रास,

(ग) पूजा कथा काव्य :

(३९) पुरन्दर विधान कथा
(४०) ज्येष्ठ जिनवर पूजन कथा
(४१) मालिणी पूजा कथा
(४२) मेढ़ूकनी पूजा कथा,

(ख) रास कथा काव्य :

(४३) सुखदत्त विनयवती कथा
(४४) सुकान्त साहु कथा
(४५) धनपाल रास

४. रूपक काव्य :

(४६) परमहंस रास
(४७) धर्मतरु गीत
(४८) चूनडी गीत,

५. प्रगीति काव्य :

(क) सिद्धान्त परक काव्य :

(४९) बारह व्रत गीत
(५०) प्रतिमा ग्यारह की भास
(५१) चौदह गुणस्थानक रास
(५२) अठावीस मूलगुणरास
(५३) द्वादशानुप्रेक्षा
(५४) कर्मविपाक रास,

(ख) उपदेश परक काव्य :

(५५) समकित मिथ्यात रास
(५६) निज मनि संबोधन
(५७) जीवड़ा गीत
(५८) शरीर सफल गीत।

(ग) स्तुति परक काव्य :

(५९) आदिनाथ बीनती
(६०) ज्येष्ठ जिनवर लहान
(६१) जिणवर पूजा हेली
(६२) तीन चौबीसी बीनती
(६३) पंच परमेष्ठी गुण वर्णन रास
(६४) मिथ्या दुक्कड़ बिनती
(६५) पूजा गीत
(६६) गिरनारि धवल
(६७) चौरासी जाति माला
(६८) जिनवाणी गुणमाल
(६९) गुरु जयमाल
(७०) गौरी भास।

काव्य-रूप की दृष्टि से ये रचनाएँ प्रबन्ध-काव्य के महाकाव्य एवं खण्डकाव्य तथा मुक्तक-काव्य के गेय-काव्य एवं पाठ्य-काव्य के अन्तर्गत विभक्त की जा सकती हैं। पुराण एवं चरित-काव्य महाकाव्य की सीमा में आते हैं तो लघु-चरित-काव्य एवं कथाकाव्य खण्डकाव्य की सीमा को स्पर्श करते हैं। शेष छोटी रचनाएँ मुक्तक-काव्य की विधा में समाविष्ट होती हैं। इनका रेखाचित्र इस प्रकार बनाया जा सकता है—

ब्रह्म जिनदास की रचनाओं का काव्य-रूप की दृष्टि से वर्गीकरण
प्रबन्ध-काव्य
मुक्तक-काव्य
महा-काव्य
खण्ड-काव्य
सिद्धांत-काव्य
उपदेशी-काव्य
स्तुति-काव्य
पुराण-काव्य
चरित-काव्य
चरित-काव्य
कथा-काव्य
तात्विक उपदेश
व्यावहारिक उपदेश
आख्यानकथा
व्रतकथा
पूजाकथा
दानकथा
रूपकथा
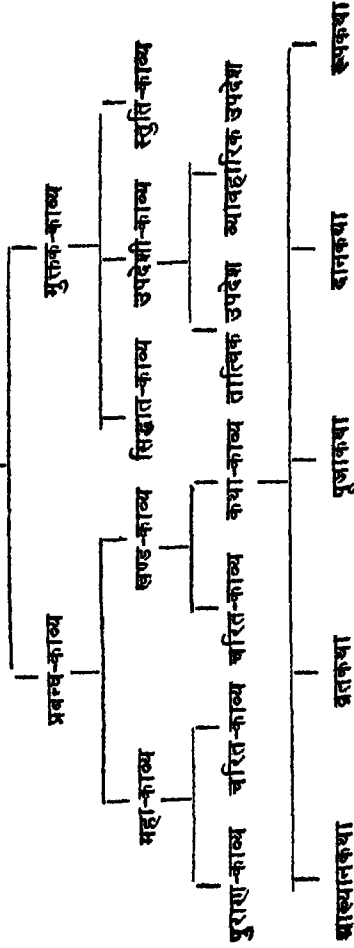
सामान्य परिचय

यहाँ ब्रह्म जिनदास की प्राप्य ७० रचनाओं का विषयवस्तु के वर्गीकरण के क्रमानुसार सामान्य परिचय दिया गया है। जो कवि की रचनाओं के केन्द्रीयभाव, छन्द-संख्या एवं प्राप्ति-स्थान आदि मुख्य विचार-बिन्दुओं पर आधारित है। कवि की रचनाओं की प्रतियाँ एक ही स्थान पर उपलब्ध न होकर भिन्न-भिन्न भण्डारों में एक या अधिक संख्या में मिलती हैं, जिनकी जानकारी श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ-सूचियों में दी गयी है। पाद-टिप्पणी में उसी ग्रन्थ-भण्डार का उल्लेख किया गया है, जहाँ से हमें कवि की रचना की प्रति उपलब्ध हुई हैं।

१. आदिनाथ रास[1]

यह रचना कवि की बृहद् रचनाओं में से एक है। कवि ने इसकी कथा संस्कृत के आदिपुराण से ग्रहण कर उसे सरल भाषा में रास रूप प्रदान किया है जिससे आबाल-वृद्ध सभी समझ सकें। रास के प्रारम्भ में कवि ने देश भाषा में रचने का कारण दिया है। कुल ३४५८ श्लोक प्रमाण इस रास में प्रथम तीर्थङ्कर भगवान आदिनाथ का विशाल पावन चरित्र अंकित है। रास में प्रारम्भ के ७६ पत्रों तक भोगभूमि, १४ कुलकरों एवं आदिनाथ के ६ पूर्व भवों का बड़ा ही सुन्दर विवेचन हुआ है। तदनन्तर, भरत क्षेत्र के आर्यखण्ड में कोशल देश के अयोध्या नगर में १४वें कुलकर नाभिराजा और मरुदेवी के वैभव का वर्णन है।

किसी रात्रि के पिछले प्रहर में महारानी मरुदेवी को गज, वृषभ, सिंह, सूर्य, चन्द्र, कमल युक्त सरोवर, सिंहासनारूढ़ लक्ष्मी, पुष्पमाला, मीन, स्वर्णिम कलश, समुद्र, हेमरत्न जड़ित सिंहासन, विमान, नागभुवन, रत्नराशि और निर्धूम आदि १६ स्वप्न दिखायी दिये। नाभिराजा ने उनका फल बताते हुए—प्रथम तीर्थंकर के जन्म लेने की बात कही :—

> नाभि राजा तब बोलीयाए, मधुरिय सुललित वाणि तो।
> फल सुणो राणी निरमलाए, सपन तणा सुजाणि तो ॥२६॥

---

१. प्राप्ति स्थान : श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन खण्डेलवाल बीस पंथी मन्दिर, उदयपुर, पत्र संख्या १७४, लिपि काल सम्वत् १६१७, गुटका संख्या १।

दूहा— स्वपन फलि प्रति चवडो, सुत होसे सम्ह अंग ।
तीर्थंकर रलीयामरणो, त्रिभुवन मांहि उत्तंग ॥१॥
प्रथम जिरणेसर निरमलो, आदिनाथ गुरणवंत ।
सुरनर खेचर तणे, स्वामीय प्रति जयवंत ॥२॥

नाभिराजा ने स्वप्नों का फल इस प्रकार बताया :—

स्वप्न में गज के देखने से अति बलवान्, धवल वृषभ से धर्मधुरीन, सिंह से कर्म-रिपु का विजेता, सिंहासनारूढ़ लक्ष्मी से मुक्तिगामी, पुष्पमाला से विश्वविख्यात, उदित सूर्य से प्रतापी, पूर्णचन्द्र से पूर्व ज्ञान का धारी, जल में युगल मछलियों की क्रीडा से सर्व सुखी, स्वर्णिम कलश से नव निधियों का धारक, कमल युक्त सरोवर से तीर्थंकर, समुद्र से गम्भीर केवल ज्ञान वाणी का धारक, हर्में रत्न जड़ित सिंहासन से त्रिभुवन तारणहार, आते हुए विमान से अहमिंद्र स्वर्ग से चयकर, निर्मल नाग भुवन से अवधिज्ञानी, रत्न द्वीप से तेजोमय विशाल जिनगुणज्ञ, धूमरहित अग्नि से कर्मों का क्षय कारक केवल ज्ञान का प्रकाशी मुक्तिगामी होगा। हे सुन्दरी, इन शोभायमान गुणो से युक्त मुक्तिगामी जिनवर तुम्हारी कुक्षि मे अवतरित होंगे। इन उत्तम सोलह स्वप्नों के फलों को सुनकर गुणमति रानी मरुदेवी का मन आनन्दित हो उठा।

इन्द्र की आज्ञा से इन्द्राणियों ने तीर्थंकर माता की सेवा शुश्रुषा की। माता के गर्भ की शुद्धि की। गर्भ में सर्वार्थसिद्धि विमान से अहमिन्द्रदेव के जीव ने प्रवेश किया। सर्वत्र आनन्द छा गया। नव मास पर्यन्त देवियों ने मरुदेवी माता का धर्म पूर्वक विनोद किया। चैत्र कृष्णा नवमी को उत्तराषाढ़ नक्षत्र मे ब्रह्म योग में आदिनाथ ने जन्म लिया। देवों ने आकर जन्म कल्याणक महोत्सव मनाया। द्वितीया के चन्द्र सदृश बालक वृद्धि को प्राप्त होने लगा। देवताओं ने मिलकर बालक का नाम "आदि जिनेश्वर" रखा।

आदि जिरणेसर नाम दीयोए, देव सजन मिली आणि ।
आदि जुगादि स्वामि अवतर्याए, तेह भरिण सार्थक नाम ॥
दश अतिशय स्वामि रुवडाए, जिरणवर सहज सभाव ।
स्वेद मल थका वेगलाए, शोणित क्षीर समानि ॥
सम चोरस अतिरुवडोए, आदि संस्थान बखारिण ।
संहनन पहिलो अति भलोए, वज्र वृषभ गुरण खारिण ॥

आदि जिनेश्वर दश अतिशयों से युक्त थे। युवा होने पर कच्छ, महाकच्छ की पुत्री सुनन्दा एवं सुमंगला से विवाह हुआ। सुनन्दा से भरत एवं ब्राह्मी ने और

सुनंदा से बाहुबलि और सुन्दरी ने जन्म लिया। बड़े होने पर आदि जिनेश्वर ने— ॐ नमः सिद्धेभ्यः कह कर ब्राह्मी को अक्षर-लिपि और और सुन्दरी को अंक विद्या, गणित आदि सिखाये। भरत आदि कुमारों ने अनेक कलाओं, शास्त्रों एवं आगम सिद्धान्त तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त किया।

आदि जिनेश्वर जन्म से ही दिव्य एवं अप्रतिम प्रतिभा के धनी थे। पिता नाभि राजा भी उनसे विविध कार्यों में परामर्श लिया करते थे। आदि जिनेश्वर ने ही उस समय के लोगों को कर्म भूमि का ज्ञान कराया। असि, मसि, कृषि, वाणिज्य शिल्प, विद्या आदि की शिक्षा देकर षट्कर्म की स्थापना की। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र वर्ग की रचना कर्म एवं योग्यतानुसार की। प्रजा लोक को ज्ञान कराया और जीना सिखाया। समय पाकर नाभि राजा ने "आदि जिनेश्वर" का राजतिलक किया। राज्य पाकर आदि जिन ने कार्य का विभाजन कर्म, श्रम एवं योग्यतानुसार किया। प्रसन्न होकर प्रजा ने उनकी आदि ब्रह्मा, प्रजापति, शंकर आदि नाम से पूजा की।

दूहा — जे जे काम करे जेसु, ते ते नाम हुआ सार।
सोनु घड़े सोनी हुवा, कास घड़ी ते कंसार ॥

आ० रासली—षट् कर्म थाप्या व्यवहार तरणा ए, षट् कर्म धरम वीचारतों।
अशुभ कर्म सुभ करम जीव ए, बांधे छोडे अवार तो ॥
धरमा धरमे प्रकासीयाए, स्वामीय आदि जिरणंद तो।
आदि ब्रह्मातमा वामीयाए, स्वामीय परमारणंद तो ॥
प्रजा लोक प्रति पालियाए, सुख दियो मंहत तो।
प्रजा पति तेह भणी हुवाए, संकर नाम जयवंत तो ॥

प्रजाकर्म में रत जानकर इन्द्र ने आदिजिन को वैराग्य की ओर उन्मुख करने के लिए नीलंजसा अप्सरा को उसकी अल्पायु जानकर भेजा। अयोध्या की राज सभा में आदिनाथ के समक्ष अप्सरा नीलंजसा ने उपस्थित हो हाव-भाव पूर्वक नृत्य करना शुरू किया। नृत्य करती-करती वह मूर्छित हो गई और अपनी आयु पूर्ण कर गयीं। इस दृश्य से आदिनाथ को वैराग्य हो गया। लोकांतिक देवो ने उनके इस वैराग्य का समर्थन किया। उन्होंने अयोध्या का राज्य बड़े पुत्र भरत को और पोदनपुर का राज बाहुबलि को दे दिया। देव-देवियो ने उनका अन्तिम शृङ्गार किया। उन्हे सुदर्शन पालकी में बिठाकर क्रम क्रम से भूमि गोचरी, राजा, विद्याधर, देवगण ग्रहण कर चलने लगे। उनके वैराग्य से माता-पिता, पत्नियां, पुत्र-पुत्रियां एवं प्रजाजन सभी दुःखी थे। आदिनाथ ने सभी को संसार की असारता के लिए सम्बोधा।

ए संसार असार गुन हीरा, करम बांधि जीव जी मरीश ।
जामरा मरण जरा दुःख घणा, सजन वीयोग संजोग नहीं मणा ॥
अनेक भव्य संबोधू सार, उधारू मुगति कीवार ।
तम्हे श्रावक धर्म करो गुणवंत, जीभ सद्गति पायो जयवंत ॥

सिद्धार्थ वन में विशाल वट वृक्ष के नीचे स्फटिक शिला पर पूर्व दिशा की ओर मुख करके भगवान ने सब कुछ परित्याग कर दिगम्बर वेश धारण कर लिया और अपने हाथों से केशलोच कर ध्यान लगा लिया ।

"ॐ नमः सिद्धेभ्यः" कह्यो गुणधार, हृदय कमलि गुण धारिया सार ।
"यथा जात रूप" धरियो अंग, समता भाव लीयो उतंग ॥
"दिगंबर" हुवा प्रथम जिनदेव, त्रिभुवन भवीयरण करे जिन सेव ।
अनुपम रूप दीसे जयवंत, जय जयकार स्तवन करे संत ॥

देवताओं ने दीक्षा कल्याण का महोत्सव मनाया । उनके साथ कई राजाओं ने दीक्षा ली । निरन्तर छः मास तक आदिजिन ने मरु सदृश कायोत्सर्ग पूर्वक योग लगाया । उनकी उत्कृष्ट तप साधना से वन में फल-फूल स्वतः विकसित हो गये । जीव-जन्तुओं ने अपना बैरभाव छोड़ दिया और परस्पर प्रेम से रहने लगे ।

तीहां वनफलियो बहु फलें, वैरीय तरणा मद गले ।
वैर छांडी सवे एक हुवए, सही ए ॥

हरण सींघ बाघ गाय ए, मीर भुजंग मीह थाए ।
आवइ ए प्रीति करि तिहां ए, पतिवरणी ए सही ए ॥
हस्ति आवि पूजा करे, वन फल आगलि धरे ।
वन्दनां करे बहु भाव धरि ए, सही ए ॥

छः मास की निरन्तर तपस्या के पश्चात् आदि मुनि ने शरीर को धर्म क्रिया का प्रमुख साधन मानकर आहार के लिए भांवरी की । नगर में पहुंचने पर किसी ने भी उनके आहार के भावों को नहीं समझा और उनकी नग्नावस्था के विषय में तरह-तरह की कल्पना करने लगे । इस प्रकार छः मास तक उन्हें अन्तराय पड़ता रहा । वे फिर अपनी साधना में लग गये और एक वर्ष तक बिना आहार के रहे । अन्त में हस्तिनागपुर में राजा श्रेयांस ने अपने जाति स्मरण से आहार विधि को जानकर आदिमुनि को विधिपूर्वक इक्षुरस का पान कराया, जिसके प्रभाव से धर्मवृद्धि एवं पुष्प रत्न वृष्टि हुई ।

वन में पहुंच कर आदिनाथ ने १२ भेदपूर्वक तपस्या करते हुए केवल ज्ञान को प्राप्त किया। उसी समय राजा भरत को एक साथ चक्ररत्न एवं पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। देवताओं ने धर्म सभा की रचना की, जिसमें सभी प्राणियों के लिए १२ कक्ष थे। भगवान ने सभी प्राणियों को सम्बोधित किया। उन्होंने जीव-अजीव, तत्व, सम्यकत्व, मुनि एवं श्रावकों के आचार आदि की विस्तार से व्याख्या की। बहुत समय तक सर्वत्र आर्य खण्ड को इसी प्रकार सम्बोधित करते हुए अन्त में आदिनाथ ने योग निरोध कर मोक्ष को प्राप्त किया तब इन्द्रादिक देवों ने आकर उनका निर्वाण कल्याणक महोत्सव मनाया।

इस आदिनाथ रास में आदिनाथ के जीवन चरित्र के अतिरिक्त भरत-बाहुबलि का युद्ध, भरत विजय प्रस्थान, श्रेयान्स, भरत और बाहुबलि आदि का जीवन-चरित एवं पूर्व भवों का वर्णन हुआ है।

अन्य प्रतियों में इस कृति का दूसरा नाम आदिपुराण रास भी मिलता है।[1]

२. राम रास[2]

आठवें बलभद्र मर्यादा पुरुषोत्तम 'राम' के उज्जवल जीवन-चरित्र को लेकर लिखा गया ब्रह्म जिनदास का यह सबसे बड़ा रास काव्य है। जो लगभग साढ़े छः हजार छन्द प्रमाण है। इस रास का रचना काल संवत् १५०८ है। यह रास न केवल राजस्थानी भाषा में अपितु हिन्दी भाषा में भी सबसे बड़े राम काव्यों में से है। इसे मध्यकालीन हिन्दी की प्रथम जैन रामायण कहा जा सकता है। डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल एवं श्री अगरचन्द नाहटा ने इसे राजस्थानी भाषा की प्रथम रामायण माना है।

ब्रह्म जिनदास ने पद्मपुराण नाम से संस्कृत भाषा में भी राम काव्य निबद्ध किया है जो रविषेणाचार्य के पद्मपुराण पर आधारित है उसी के कथानक पर इस राम रास की रचना हुई है। पर यह कोई अनुवाद मात्र नहीं है बल्कि कवि की अपनी मौलिक एवं स्वतन्त्र रचना है।

---

१. आमेर शास्त्र भण्डार, महावीर भवन, जयपुर वेष्ठन संख्या ६३।

२. प्राप्ति स्थान : भट्टारकीय शास्त्र भण्डार, डूंगरपुर, पत्र संख्या ४०५, लिपि-काल सम्वत् १७४८, लिपि स्थान देउल ग्राम, वेष्ठन संख्या ६६।

अपने इतर रास काव्यों की भांति इस 'राम-रास' में भी कवि ने राजा श्रेणिक के द्वारा भगवान महावीर से रामायण की वास्तविक कथा सुनाने की विनती करायी है। जिसे गौतम गणधर ने विस्तारपूर्वक सुनाया है—

भरत क्षेत्र में कोसल देश के अयोध्या नगरी के राजा नाभिराय जो चोदवें कुलकर थे और रानी मरुदेवी के पुत्र प्रथम तीर्थंकर आदि जिनेश्वर थे, की सुनन्दा पत्नी से भरत आदि १०० पुत्र तथा सुमंगला से बाहुबलि का जन्म हुआ। नीलांजना के नृत्य को देखकर आदिनाथ को वैराग्य हो गया। भरत को अयोध्या एवं बाहुबलि को पोदनपुर का राज्य मिला। भरत के सूर्य नामक पुत्र हुआ जिससे सूर्यवंश चला तथा बाहुबलि के सोम नाम के पुत्र से सोमवंश चला। आदिनाथ के द्वारा इक्षु का ज्ञान कराने से यह वंश इक्ष्वाकुवंश भी कहलाता है। इसी इक्ष्वाकुवंश के सूर्यवंश में अयोध्या में राजा दशरथ हुए उनके चार रानियां थीं। जिनमें कौसल्या से राम, सुमित्रा से लक्ष्मण, केगामति से भरत और सुप्रजा से शत्रुघ्न ने जन्म लिया। फाल्गुन शुक्ला पंचमी को राम का जन्म हुआ और माघ शुल्का प्रतिपदा को लक्ष्मण का। पद्मवरण के कारण राम पद्म कहलाये और लक्ष्मीलंकृत के कारण लक्ष्मण कहलायें। द्वितीया के चन्द्र की भांति चारों पुत्र वृद्धि को प्राप्त होने लगे। दशरथ ने राम को कुमार पद दिया। चारों कुमारों ने ७२ कलायें सीखीं।

मथुरा नगरी में हारवंशीय राजा जनक की रानी विदेहा से सीता का जन्म हुआ। भामंडल सीता का भाई था। सात सौ कन्याओं के साथ सीता का लालन-पालन हुआ। किसी समय राजा दशरथ ने अपने पुत्र राम लक्ष्मण के साथ जनक के मित्र की संकट में सहायता की। प्रसन्न होकर जनक ने राम के लिए सीता को देने का विचार किया। किसी समय सीता से नारद का सम्मान न होने के कारण नारद ने अपने स्वभाव के अनुसार विद्याधर इन्द्र गति को सीता के लिए उत्प्रेरित किया। विद्याधर ने अपने पुत्र के लिए जनक से सीता की मांग की। राजा जनक के द्वारा इन्कार होने पर धनुष तोड़ने की प्रतिज्ञा का प्रस्ताव रखा गया। विवाह मण्डप का आयोजन किया गया। देश-विदेश के राजा एवं राजकुमार उपस्थित हुए पर कोई धनुष तोड़ने में सफल न हो सका। अन्त में राम को धनुष तोड़ने में सफलता मिली। तब सीता ने राम के गले में वरमाला डाल दी। भामिनी ने लक्ष्मण को, लोकसुन्दरी ने भरत को एवं मनोहरा ने शत्रुघ्न को वरमाला पहना कर पति रूप में वरण किया।

किसी समय अपने सेवक के द्वारा वृद्धावस्था का चित्रण सुन दशरथ को

वैराग्य हो गया। उन्होंने अपने बड़े पुत्र राम को राज्य देना चाहा, लेकिन केगामती (कैकेयी) के द्वारा अपने पूर्व निश्चित वर की याचना के कारण राम ने राज्य ग्रहण नहीं किया, परन्तु भरत ने भी शासन लेने से इन्कार कर दिया। राम ने भरत को समझाया और शासन सम्भला कर लक्ष्मण तथा सीता सहित वन को चले गये। संसार की इस लीला को देखकर राजा दशरथ ने वन में आकर मुनि से दीक्षा ग्रहण करली।

उधर राम के वियोग में राम की माता व सारी प्रजा दुःखी हुई। सबने केगामती के कृत्य की आलोचना की। केगामती और भरत राम के अभाव में राज्य का सुख न पाकर वन मे राम को लौटा लाने के लिए गये। दोनों ने राम को बहुत मनाया, लेकिन राम ने उसे स्वीकारा नही। तब भरत ने बिना सिंहासनारूढ़ के वैराग्य भावना से प्रजा एव राजकार्यों की देखभाल की।

वन-यात्रा में राम सीता और लक्ष्मण को अनेकों कष्टों का सामना करना पडा। एक बार राम, लक्ष्मण पर आयी हुई विपत्ति को सुनकर उनकी रक्षा के लिए सीता के पास गिद्ध पक्षी (जटायु) को छोड़कर चले गये। बाद मे रावण उधर से गुजरा। सीता की सुन्दरता से प्रभावित हो, वह उसे डरा कर ले गया। जटायु ने रावण से सघर्ष किया, पर रावण ने उसे घायल कर दिया और सीता को अपनी नगरी (लका) मे ले गया। वहाँ उसे अशोक वृक्ष के नीचे बिठा दिया। अपनी पत्नी मन्दोदरी से रावण ने कहा—सीता अद्भुत सुन्दरी है। मैं उसके बिना नहीं रह सकता, लेकिन उसकी इच्छा के बिना भी मै कुछ नही कर सकता। अतः तुम उसे मेरे लिए मनाओ।

उधर सीता के बिना राम और राम के बिना सीता विलाप करने लगे। राम वन-वन में भटकने लगे। सीता के प्रति अत्यधिक मोह के कारण वे निर्जीव वस्तुओं से भी उसके बारे मे पूछने लगे। सीता णमोकार मन्त्र का स्मरण करती और राम, देवर लक्ष्मण, पिता जनक और भाई भामण्डल को पुकारने लगता। रावण की स्त्री मन्दोदरी ने रावण को शीलभंग न करने को कहा। रावण ने भी इसका समर्थन किया। फिर भी वह सीता को छोड़ना नहीं चाहता था।

अन्त में हनुमान की सहायता से एवं विद्याओं की प्राप्ति से तथा लक्ष्मण के चक्ररत्न से रावण का वध हुआ और राम को सीता की प्राप्ति हुई।

किसी समय लोकापवाद के भय से राम ने गर्भवती सीता को वन में भेज दिया। सीता ने सेनापति कृतान्तवक्र से कहा कि राम देव से मेरी यही विनती है कि

लोकापवाद के भय से जैसे उन्होंने मेरा परित्याग किया है वैसे लोकापवाद के भय से वे सम्यकत्व एवं सत्य धर्म को कभी न छोड़ें।

इस प्रकार रास में समूची राम कथा के अतिरिक्त वानरवंश, विद्याधर व राक्षस कथा, भारतकुल, हनुमन्त कथा, रावण-वरुणकथा, सुकौशल स्वामी का महात्म्य लव-कुश की कथा, राम, लक्ष्मण और भरत का वैराग्य, सीता की दीक्षा, राम को कैवल्य और मोक्ष की प्राप्ति आदि का वर्णन भी हुआ है। रास के अन्त में कवि ने अपने मनोहर, मल्लिदास और गुणदास शिष्यों का उल्लेख किया है।

३. हरिवंश पुराण रास[1]

ब्रह्म जिनदास की यह तीसरी वृहद् रचना है, जो अनुमानतः तीन हजार छन्द प्रमाण है। इसका दूसरा नाम नेमिनाथ (नेमीश्वर) रास भी है। इसका रचना काल सम्वत् १५२० है। कवि ने संस्कृत में भी हरिवंश पुराण लिखा है। उसी के कथानक को हिन्दी में भी काव्य रूप में 'हरिवंश रास' नाम से निबद्ध किया है। इसमें हरिवंश की उत्पत्ति, उसमें २२वें तीर्थङ्कर नेमिनाथ एवं उनके चचेरे भाई श्रीकृष्ण, पांडवों एवं कौरवों आदि का वर्णन हुआ है। रामायण को लेकर तो हिन्दी में महाकाव्य उपलब्ध होते है पर महाभारत पर हिन्दी में ऐसा सर्वांग पूर्ण महाकाव्य अभी तक अनुपलब्ध है। इसे हिन्दी का जैन महाभारत भी कहा जा सकता है।

हरि राजा के नाम से हरिवंश चला। इसी वंश में पहले २०वें तीर्थङ्कर मुनिसुव्रत नाथ हुए। कालान्तर में २२वें तीर्थङ्कर नेमिनाथ भी इसी वंश में हुए। राजा यदु के पुत्र अंधकवृष्णि और इनकी पत्नि सुभद्रा से समुद्रविजय हुए। समुद्रविजय के पुत्र नेमिनाथ थे जो कृष्ण से किसी भी गुण में कम नहीं थे। कृष्ण के पिता वसुदेव समुद्रविजय के १०वें भाई थे। वसुदेव अपने समय के सर्वाधिक सुन्दर थे। जब वे नगर में भ्रमण के लिए निकलते तो नगर की स्त्रियाँ उन्हें देख कर काम-वासना से विह्वल हो जाती थी। इसलिए नगर के प्रतिष्ठित लोग राजा समुद्रविजय के पास गये। समुद्रविजय ने उन्हें सान्त्वना देकर विदा किया और तत्काल भ्रमण से लोटकर आये। वसुदेव को बड़े प्रेम से अपने महल में रख छोड़ा और उनके बाहर जाने पर रोक लगा दी।

---

१. प्राप्ति स्थान : राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, क्रमांक ४१९४, लिपि काल सम्वत् १८७१, लिपि-स्थान बड़ालीनगर, लिपिकार मेहता मूलूकचन्द।

किसी दिन कुब्जा दासी के द्वारा वसुदेव को अपने कैद होने का पता लग गया। वे रात्रि के समय एक सेवक को साथ लेकर बाहर निकल गये। श्मशान में आकर उन्होंने सेवक को यह विश्वास करा दिया कि वसुदेव चिता में जल कर मर गये हैं और स्वयं शीघ्रगामी घोड़े पर सवार हो वहाँ से अन्यत्र चल दिये। सेवक ने समुद्रविजय को वसुदेव के मरने की खबर दी। इस घटना से सभी दुखित हुए। तदनन्तर वसुदेव ने विजयार्ध पर्वत की दोनों श्रेणियों में परिभ्रमण कर अपने कौशल से अनेक विद्याधर एवं भूमि गोचरी कन्याओं के साथ विवाह किया। चम्पापुरी के सेठ चारुदत्त की गन्धर्व सेना पुत्री की संगीत प्रशंसा सुन उसे परास्त किया।

अनेक कन्याओं को विवाहते हुए कुमार वसुदेव अरिष्टपुर नगर आये और वहाँ के राजा रुधिर की पुत्री रोहिणी के स्वयंवर मे भेष बदल कर पहुँचे और पणव नामक बाजा बजाने वालों की श्रेणी में जा बैठे। रोहिणी ने वसुदेव के गले में वरमाला डाल दी। इस घटना से अनेक राजा कुपित होकर वसुदेव से युद्ध करने को तत्पर हुए। जरासंध बारी-बारी से राजाओं को वसुदेव के साथ लड़ाता था। अन्त में समुद्रविजय का भी अवसर आया। दोनों भाइयों में युद्ध हुआ। वसुदेव नें अपना कौशल दिखलाने के बाद एक पत्र से युक्त बाण समुद्रविजय की ओर छोड़ा, जिसे ग्रहण कर समुद्रविजय हर्षित हुये। चिर वियुक्त भाई के मिलने से सर्वत्र आनन्द छा गया। वसुदेव ने जरासंध की घोषणा कर सिंहरथ को जीवित पकड़ लिया। जरासंध की पुत्री जीवद्यशा को वसुदेव ने स्वयं अपने लिए न लेकर कंस को दिला दी।

कंस वसुदेव को मथुरा ले गया और अपनी बहिन देवकी का उनके साथ विवाह कर दिया। अतिमुक्तक मुनि से यह सुन कर कि देवकी का पुत्र तुम्हारे पति को मारेगा, कंस की स्त्री जीवद्यशा घबड़ायी। कंस ने भी वसुदेव से देवकी के प्रसव को अपने ही घर मे कराने का वचन ले लिया। अतिमुक्तक मुनि के मुख से यह बात सुन कर कि हमारे वंश में २२वें तीर्थंकर उत्पन्न होंगे। वसुदेव बहुत प्रसन्न हुए। उनकी प्रार्थना पर अतिमुक्तक मुनि ने नेमिनाथ के पूर्व भवों का सविस्तार वर्णन किया।

क्रम-क्रम से देवकी ने मथुरा में तीन युगल के रूप में छः पुत्र उत्पन्न किये। जिन्हें इन्द्र की आज्ञा से नैगम देव सुभद्रिल नगर के सुदृष्टि सेठ के घर पहुँचाता रहा और उसके मृत पुत्रों को देवकी के पास छोड़ता रहा। सेठ के यहाँ छः पुत्रों का लालन-पालन होता रहा। तदनन्तर देवकी ने स्वप्न दर्शनपूर्वक कृष्ण को गर्भ में धारण किया। भाद्रपद मास शुक्ला द्वादशी को सात मास में कृष्ण का जन्म हुआ।

वसुदेव उसे गुप्त रूप से अपने विश्वासपात्र नन्द गोप को सौंप आये और उसकी स्त्री यशोदा की पुत्री को ले आये। पता चलने पर कंस ने उस पुत्री की नाक चपटी कर उसे छोड़ दिया।

कृष्ण नन्द-यशोदा के यहाँ बढ़ने लगे। किसी निमित्त ज्ञानी के कथन से शंकित हो, कंस गुप्त रूप से बढ़ते हुए अपने शत्रु की खोज करने लगे। कृष्ण को मारने के लिए कंस ने कई प्रयत्न किए। मल्लयुद्ध के लिए कंस ने कृष्ण को मथुरा बुलाया। बलभद्र और श्रीकृष्ण का कंस के मल्लों के साथ युद्ध हुआ। जिसमें कंस के मल्ल मारे गए। कंस सामने आया तो कृष्ण ने उसे भी पृथ्वी पर पछाड़ कर समाप्त कर दिया। सुकेतु विद्याधर ने कृष्ण को अपनी पुत्री सत्यभामा दी। राजा रुक्मि की पुत्री और शिशुपाल की बहिन रुक्मिणी के साथ भी कृष्ण का विवाह हुआ।

भगवान नेमिनाथ के गर्भ में आने से पूर्व समुद्रविजय के घर रत्न की वृष्टि हुई। माता शिवादेवी ने ऐरावत हाथी आदि सोलह स्वप्न देखे। देवों ने माता-पिता की भक्ति की। शिवादेवी का गूढ गर्भ वृद्धि को प्राप्त होने लगा। वैशाख शुक्ला १३ को चित्रा नक्षत्र मे नेमिनाथ का जन्म हुआ। उस समय तीन लोक में हर्ष छा गया। इन्द्र शिशु नेमि को ऐरावत हाथी पर विराजमान कर सुमेरू पर्वत पर ले गये जहाँ उन्होंने जन्माभिषेक महोत्सव मनाया।

एक बार कृष्ण की सभा मे नेमिकुमार भी उपस्थित थे। कृष्ण ने उनकी बल-परीक्षा करनी चाही। नेमिकुमार ने अपने बल से परास्त कर दिया। जल क्रीड़ा के समय कृष्ण की पत्नियों ने नेमि को तरह-तरह से रिझाया। उनके मुस्कराने पर कृष्ण ने विवाह की स्वीकृति पाकर राजमति से विवाह निश्चित कर दिया। बारात बना कर वे जूनागढ़ चले, परन्तु मार्ग मे पिंजरे में बन्द पशुओं के क्रन्दन को सुनकर कुमार नेमि को वैराग्य हो गया। नेमिनाथ गिरनार पर्वत की ओर चल पड़े। नेमिनाथ के अभाव मे सभी बड़े दु:खी हुए। राजमति विलाप करने लगी। उसे अन्य विवाह के लिए समझाया गया, पर वह कब मानने वाली थी। उसने तो अपने लिए आने वाले दूल्हे को ही पति रूप में वरण कर लिया। अन्त मे उसने नेमिनाथ के मार्ग का अनुसरण कर आर्यिका का रूप ग्रहण कर लिया। तपश्चर्या के बाद नेमि को कैवल्य की प्राप्ति हुई।

रास के अन्त में वरदत्त गणधर के पूछने पर भगवान की दिव्यध्वनि में जीवाजीवादि तत्वों का विस्तृत विवेचन, नेमिनाथ का विहार, कृष्ण के अन्य छः

भाइयों की तपश्चर्या, गजकुमार का निर्वेद, द्वारिकादहन की बात, प्रयत्न करने पर भी दीपायन मुनि के क्रोध से द्वारिका का भस्म होना, श्रीकृष्ण और बलदेव का कौशाम्बी वन में भ्रमण, कृष्ण को प्यास लगने पर बलदेव द्वारा जल का लाना, जरत्कुमार का बाण कृष्ण के पांव में लगने से उनकी मृत्यु होना, उत्तम भावनाओं के चिन्तवन से कृष्ण की मृत्यु, बलदेव द्वारा मोहवश छः माह तक कृष्ण के शरीर को लेकर घूमना और अन्त में सिद्धार्थ सारथी के जीव देव के सम्बोधन से नेमिनाथ से दीक्षा लेना, नेमिनाथ को मोक्ष की प्राप्ति आदि का वर्णन हुआ है।

आचार्य जिनसेन ने संस्कृत भाषा मे जो हरिवंश पुराण रचा है, उसके कथा सार को ब्रह्म जिनदास ने गेय-रास रूप प्रदान किया है। २२वें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ का जीवन आदर्श त्याग का जीवन है। वे हरिवंश गगन के प्रकाशमान सूर्य थे। हरिवंश पुराण में भगवान नेमिनाथ के साथ नारायण और बलभद्र पद के धारण करने वाले श्रीकृष्ण और राम, पाडवों और कौरवो का लोकप्रिय चरित्र भी बड़ी सुन्दरता के साथ अंकित है। नेमिनाथ का वैराग्य मनुष्य को संसार की असारता की ओर इंगित करता है। राम-विलाप के सदृश बलदेव का कृष्ण के वियोग मे विलाप अत्यन्त करुणा का दृश्य उपस्थित करता है। राजमति का परित्याग आदर्श सतीत्व के प्रति जनमानस मे अगाध श्रद्धा पैदा करता है। मृत्यु के समय कृष्ण के मुख से निकले उद्गार उनकी महिमा को ऊँचा उठाते है और परिणामों में समता होने से तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध करते हैं।

४. अजित जिनेसर रास[1]

इस रास में दूसरे तीर्थंकर अजितनाथ का जीवन-चरित्र वर्णित है। जम्बूद्वीप के मध्य पूर्व देश मे सीता नदी की दक्षिण दिशा की ओर सुसीमा नगर में राजा विमलवाहन और रानी विमला थे। बहुत काल तक धर्मपूर्वक जीवन बिताने के बाद राजा को वैराग्य हुआ और अन्त मे सम्यक्त्वपूर्वक मरण साध कर स्वर्ग में अहमिन्द्र बना। वहाँ ३३ सागर पर्यन्त सुख भोग कर अहमिन्द्र का जीव कौशल देश के अयोध्या नगरी के राजा जितशत्रु की रानी विजयावती के गर्भ मे आया। गर्भ में आने से पूर्व छः मास तक राजभवन में यक्षों ने रत्नों की वृष्टि की और पंचाश्चर्य किये। विजयारानी को रात्रि के पिछले प्रहर में सोलह स्वप्न दिखायी दिये जो भावी

---

१. प्राप्ति स्थान : श्री अग्रवाल दिगम्बर जैन मन्दिर, उदयपुर, वेष्ठन संख्या २२४, पत्र संख्या ४० ।

पुत्र के तीर्थंकर होने के साक्षी थे। इन्द्र के आदेश से श्री, ह्री, धृति आदि छः देवियों ने गर्भ-शुद्धि की। पश्चात् ज्येष्ठ मास की अमावस्या के रोहिणी नक्षत्र में ब्रह्म योग में राजा विमलवाहन का अहमिन्द्र का जीव स्वर्ग से चलकर गर्भ में आया। देवताओं के आसन कम्पित हुए। इन्द्र, इन्द्राणियों ने आकर जिन पिता-माता का सत्कार किया। दोनों ने गर्भकल्याण महोत्सव मनाया। नव मास पूरे होने पर (गर्भावस्था में) देवियों ने जिनमाता से कहानियों, पहेलियों एवं प्रश्नो से धर्म-चर्चा की। माघ शुक्ला दशमी को रोहिणी नक्षत्र के प्रजापति योग में द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथ का जन्म हुआ। उनके जन्म से दसों दिशाएँ निर्मल बनीं और सर्वत्र आनन्द छा गया। देवताओं के आसन कम्पित हुए। उन्होंने आकर भगवान का जन्म कल्याण मनाया। इन्द्राणी ने प्रसूतिगृह में जिनमाता को निन्द्रित कर मायावी बालक रख कर जिनेन्द्र बालक को अपने हाथों से सुशोभित कर इन्द्र को दे दिया। देवों ने पांडुकशिला पर क्षीर-सागर के १००८ कलशों से अभिषेक कर भगवान का जन्म कल्याण महोत्सव मनाया। द्वितीया के चन्द्र सदृश बालक बढ़ने लगा। युवावस्था में श्रीनन्दाकुमारी से विवाह हुआ। बाद में राज्य सम्भाला। परन्तु किसी समय उल्कापात को देख कर उन्हें वैराग्य हुआ। लोकतांत्रिक देवों ने आकर अजितनाथ के वैराग्य का समर्थन किया। माघ शुक्ला दशमी को उन्होंने संयम ले लिया। कर्मों का नाश कर केवलज्ञान पाकर भव्यजनों को सम्बोध कर इस असार संसार से चैत्र शुक्ला पंचमी को सम्मेद-शिखर से उन्होंने सदा-सर्वदा के लिए मुक्ति पाई।

रास में तीर्थंकर अजितनाथ के पंच कल्याणकों का सुन्दर वर्णन हुआ है। अजितनाथ के समान अन्य कोई कर्मों पर विजय नहीं पा सका। अतः उनका अजित नाम रखा गया। रास में वस्तु, दूहा, भास आदि ३०० छन्दों का प्रयोग हुआ है। कवि ने इसमें रचना काल नही दिया है। रास के हस्तलिखित पत्र ४० हैं।

५. हनुमंत रास[1]

हनुमान का चरित्र न केवल राम के साथ, अपितु स्वतन्त्र रूप से भी भारतीय जन-जीवन में अत्यन्त लोकप्रिय रहा है। जैन धर्म में इनकी गणना तरेसठ पुण्य पुरुषों में की जाती हैं। आलोच्य 'हनुमन्त रास' ब्रह्म जिनदास का ७२८ छन्द प्रमाण एक काव्य है। जिसमें हनुमान के जीवन की मुख्य-मुख्य घटनाओं के साथ उनके माता-पिता अंजना एवं पवंजय आदि का भी चित्रांकन हुआ है।

---

१. प्राप्ति स्थान : श्री अग्रवाल दिगम्बर जैन मन्दिर, उदयपुर वेष्ठन संख्या ४० (गुटका) पत्र संख्या ३६, लिपिकाल १६३८।

यद्यपि रास का नामकरण काव्य के नायक हनुमान के नाम पर रखा गया है, लेकिन कवि ने हनुमान का चरित्रांकन रास के अन्तिम छः पद्यों में ही किया है। इसके पूर्व ३३ पद्यों तक पवनंजय एवं अंजना की कथा चलती है। वैसे रास के अन्तिम पद्यों में कवि ने 'अंजना सहित हनुमान' के गुण वर्णन करने की बात कही है। जिसका आधार संस्कृत का पद्मपुराण रहा है। भव्यजनों को सम्बोधने के लिए कवि ने लोकभाषा में उक्त कथा को रास रूप प्रदान किया है।

हनुमान की जीवन कथा, उसकी माता अंजना के जीवन से घनिष्ट सम्बन्ध रखती है। हनुमान के गर्भ में आने पूर्व से लेकर जन्म तक अंजना को अनेकों यातनायें सहनी पड़ती है। जिसका बड़ा ही हृदय विदारक दृश्य कवि ने प्रस्तुत किया है।

दक्षिण देश के महेन्द्रपुर के राजा महेन्द्र और रानी मनोवेगा की पुत्री अंजना का विवाह रतनपुर के राजा प्रहलाद और रानी केतुमति के पुत्र पवनंजय के साथ होना निश्चित् होता है। अंजना के सौन्दर्य की चर्चा सुनकर पवनंजय विवाह के तीन दिन पूर्व अपने मित्र के साथ उसे देखने जाता है। वहीं वह अंजना की सखी से अपनी निन्दा सुन लेता है। जिसका विरोध अंजना लज्जावश कुछ नहीं कर पाती। इससे पवनंजय विवाह को तैयार नहीं होता। पर सभी के आग्रह से बिना इच्छा के भी विवाह कर लेता है। १२ वर्ष तक वह अंजना से बात भी नहीं करता। अंजना बड़ी दुःखी रहती है।

एक बार पवनंजय रावण की सहायता के लिए लंका को प्रस्थान करता है। मार्ग में चकवे को चकवी के वियोग मे व्यथित देख उसे अंजना के प्रति प्रेम जाग्रत होता है। वह वापिस घर लौट आता है और तीन दिन तक पत्नि से मिलकर पुनः लंका को प्रस्थान कर जाता है। इन्हीं दिनों अंजना को गर्भ ठहर जाता है। गर्भ धीरे-धीरे वृद्धि को प्राप्त होता है। उसकी सास केतुमति उस पर शंका करती है। अंजना बहुत विनयपूर्वक अपने शील का परिचय देती है, लेकिन केतुमति उसे कुल कलंकिनी बता जंगल में भिजवा देती है। अंजना अपने पीहर पहुंचती है, लेकिन वहां भी उसे कोई शरण नहीं देता है। अन्त में भटकती-भटकती वह किसी गुफा में अपनी सखी सहित पहुंचती है। वहाँ अमितिगति मुनि उसे पूर्व भावान्तर बताकर उसे पुत्र एवं पति प्राप्ति की बात बताते हैं। मुनि उसे वहीं छोड़ अन्य गुफा में चले जाते हैं। कुछ समय बाद अंजना गुफा में ही पुत्र को चैत्र शक्ला अष्टमी को जन्म देती है। पुत्र के जन्मते ही गुफा में प्रकाश हो जाता है।

किसी समय उक्त मुनि के केवल ज्ञान महोत्सव में अंजना का मामा उधर से आ रहा होता है। उसका विमान रुक जाता है। विमान से उतर कर इसका कारण जानने पर अंजना और बालक मिलते हैं। वह अंजना सहित बालक को विमान में बिठा ले जाता है। विमान के मोतियों से बने झूमकों से खेलते समय बालक विमान से गिर पड़ता है। उसके गिरने से पर्वत और शिलायें चूर्ण हो जाती हैं। लेकिन बालक हनुमान सुरक्षित रहता है।

उधर पवनंजय रावण और वरुण में संधि करा कर अंजना के दर्शन की उत्कंठा में घर पहुंचता है वहाँ न मिलने पर ससुराल और वहाँ भी न मिलने पर जंगल में विलाप करता हुआ अन्त में मौन वृत्त ले लेता है। अन्त में अंजना का मामा उसे अंजना से मिला देता है। माता-पिता पुत्र सबसे मिलन होता है। सास केतुमति अंजना से अपने किये के लिए पश्चाताप करती है। अंजना अपने इस पुत्र का नाम शील कुमार रखती है। मामा प्रतिसूर्य अपने नगर हनुहरपाटण के नाम पर बालक का नाम 'हनुमन्त' रखता है। बड़ा होकर वह वानरी विद्या सीखता है। एक बार रावण के आह्वान् पर अपने पिता के स्थान पर हनुमान स्वयं जाकर रावण के शत्रु वरुण को परास्त करता हैं। प्रसन्न होकर रावण हनुमान का विवाह खर-दूषण की भाणेज से करते है। हनुहर पाटण लौटकर हनुमान सभी को आनन्दित करते हैं। ननिहाल जाकर नाना को वश में करते हैं। राम-सीता की सहायता करते है और रावण का अभिमान नष्ट करते हैं। अन्त में धर्म-पूर्वक राज्य करके अपने पुत्र मकरध्वज को राज्य देकर स्वयं संयम ग्रहण कर लेते हैं और उसी जन्म से मोक्ष को प्राप्त करते हैं। यह सब कथा रामायण में विस्तार से लिखी है। श्रेणिक के द्वारा पूछने पर गौतम गणधर अज्ञान दूर करने के लिए अंजना और हनुमान की यह वास्तविक कथा सुनाते हैं।

6. सुकुमाल स्वामी रास[1]

इस रास में सुकुमाल स्वामी के पूर्व भवों सहित वर्तमान के वैभव एव घोर परिषह का वर्णन किया है। रास के कुल ३४ पत्रों में से २३–२४ पत्रों तक सुकुमाल के पूर्व भव के जीव वायुभूति एवं नागश्री की कथा चलती है।

नागशर्मा की पुत्री नागश्री अग्निभूति मुनि के पास अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के व्रत ग्रहण करती है। लेकिन पिता नागशर्मा इसे पसन्द

---

१. प्राप्ति स्थान : श्री दिगम्बर जैन मन्दिर पाटोदी, जयपुर
वेष्ठन संख्या ३६६, पत्र संख्या ३४, लिपिकाल संवत् १६३५।

नहीं करता और वह अपनी पुत्री को लेकर मुनि के पास जाता है। मार्ग में उन्हें संयोगवश ऐसी घटनाएँ मिलती है जिससे पिता नागशर्मा पुत्री के उक्त व्रतों को स्वीकृति प्रदान कर देता है। मुनि के पास पहुंचकर नागशर्मा मुनि से नागश्री के पूर्व भवान्तरों (अग्निभूति एवं वायुभूति) को सुनकर नागश्री को मुनि की पुत्री होना स्वीकारता है। नागशर्मा एवं नागश्री को वैराग्य हो जाता है और वे स्वर्ग में देव बनते हैं।

कथा का उत्तरार्द्ध भाग सुकुमाल के वर्तमान जीवन से सम्बद्ध है। वाराणसी नगरी के सुरेन्द्र साह की पत्नी यशोभद्रा पुत्र के बिना बड़ी दु:खी रहती है। वह सुमतिवर्द्धन मुनि के पास जाकर पुत्र के लिए प्रश्न करती है। मुनि उसे बताते हैं कि तुम्हारे पुत्र अवश्य होगा, लेकिन पुत्र का मुख देखने के बाद तुम्हारा पति दीक्षा लेगा और सद्गुरु के वचन सुनने के बाद तुम्हारा पुत्र तपस्या स्वीकारेगा।

कुछ दिनों बाद स्वर्ग से नागश्री का जीव (पद्मनाभ नाम का देव) चयकर यशोभद्रा के गर्भ में आता है। पुत्र एवं पति की शुभकामना के लिए यशोभद्रा पीहर के बहाने भूगृह में रहने लगती है। समय पाकर वह पुत्र को जन्म देती है। सुकुमार भावनाओं के कारण उस बालक का नाम 'सुकुमाल' रखा जाता है। पुत्र की वह यत्नपूर्वक रक्षा करती है।

किसी समय यशोभद्रा बालक के वस्त्र धोने नदी पर जाती है। कोई ब्राह्मण आकर उससे पुत्र जन्म की बात सुनता है और प्रसन्न हो सुरेन्द्रसाह को बधाई देने पहुचता है। पुत्र जन्म की बात सुनते ही सुरेन्द्रसाह संसार से विरक्त सा हो जाता है। फिर भी प्रसन्नतावश पुत्र को देखता है और संयम (तपस्या) ग्रहण कर लेता है। यशोभद्रा अब पुत्र की रक्षा में सर्वस्व लगाती है। वह घर को गढ़ के समान बनाती है। सारी सामग्री उसमें रखती है। सुकुमार को उस स्थान से बाहर आने नहीं देती है। यहाँ तक कि बड़े होने पर उसकी शिक्षा-दीक्षा एवं विवाह भी उसी गढ़ में ही सम्पन्न कराती है। सुकुमाल इसी प्रकार बिना धर्म के अपना वैभवमय जीवन व्यतीत करता है।

यशोभद्र मुनि अवधिज्ञान से सकुमाल की अल्पायु शेष जानकर उसे सम्बोधने उस गढ़ के पास बने जिनालय में पहुंच कर ध्यान लगाते हैं। यशोभद्रा माता को किसी साधु के पास में आने की आशंका होती है। वह जिनालय में पहुंच साधु से वहाँ से अन्यत्र ध्यान लगाने की विनती करती है। लेकिन मुनि उसे आठ

पहर का प्रतिमायोग बताकर वहीं ध्यान लगाते हैं। जिसके प्रभाव से सुकुमाल स्वयं स्वाध्याय करने लगता है और सिद्धान्त ग्रन्थों के स्वाध्याय में वह पद्मनाभ स्वर्ग का वर्णन पढ़ता है। तब उसे पूर्वभव का जाति स्मरण हो जाता है कि पूर्व भव में मैंने धर्म किया, लेकिन यह भव धर्म बिना ही व्यतीत हो रहा है। यह विचार कर वह बाहर आता है और चारों ओर ऊँची-ऊँची दीवारें देख निकलने का मार्ग न पाकर वह वस्त्रों की एक लम्बी रस्सी बनाता है जिसकी सहायता से वह बाहर आता है।

जिन मन्दिर में आकर यशोभद्र मुनि से अपनी तीन दिन की आयु शेष जानकर कठोर तपस्या ग्रहण करता है। वन में जाकर वे मृतक शय्या पर कायोत्सर्ग ग्रहण करते हैं। उसी समय सोमदत्ता का पूर्व भव का जीव (कोहिली बन कर) अपना वैर लेता है। सुकुमाल के कोमल अंगों से निकलने वाली रक्त की धार की गंध से प्रभावित हो कोहिली वहाँ आकर क्रमशः पांव और जंघा खाने लगती है। सुकुमाल मुनि लेशमात्र भी विचलित नही होते। पहले दिन पाव, दूसरे दिन जंघा और तीसरे दिन पेट को खा डालती हैं। यह ही नहीं उनकी अन्तडियाँ भी निकाल देती है। लेकिन धीरवीर सुकुमाल सब परीषह सहन करते है और अन्त में समाधिमरणपूर्वक सर्वार्थसिद्धि नाम के विमान मे अहमिन्द्र देव बनते हैं।

उधर माँ यशोभद्रा सुकुमाल के बिना विलाप करती है। देवगण आकर सुकुमाल के अवशिष्ट शरीर का बड़े सम्मानपूर्वक अन्तिम संस्कार करते है। मुनि के अर्ध शरीर को देख सभी विस्मित होते है। उपसर्ग जीतने के उपलक्ष्य मे देवगण उनकी भक्ति पूजा करते है। यशोधर मुनि सबको सम्बोधते हैं और सबका पूर्व-भवान्तर बतलाते है कि नागशर्मा का जीव सुरेन्द्रमाह, त्रिदेवी का जीव यशोभद्रा और नागश्री का जीव सुकुमाल बना है।

इस प्रकार ५५१ छन्द प्रमाण इस रास में सुकुमाल स्वामी के पूर्वभवों सहित उनकी घोर तपश्चर्या का रोमांचकारी चित्रण हुआ है। किये हुये कर्मों का परिणाम पूरा भोगना पड़ता है। किसी भी भव (जन्म) में किये गये दुष्कृत या सत्कृत किसी न किसी जन्म में अवश्य भोगने पड़ते हैं।

७. नागकुमार रास[1]

इस रास में पूर्वार्द्ध में नागकुमार का वैभवपूर्ण एवं चमत्कार युक्त वर्णन हुआ है। इसके उत्तरार्द्ध में नागकुमार का पूर्व भव का वृत्तान्त दिया गया है। जिसमें बताया गया है कि पूर्व भव में बाल्यावस्था में ही पंचमी व्रत का सफलता-पूर्वक पालन करने से नागकुमार इस जन्म में ही नहीं आगामी भव में भी अतुल शक्ति, धर्म और यश का धारी होता है। रास में पंचमी व्रत की कथा महत्त्वपूर्ण है जो इस प्रकार है।

एक बार धनदत्त सेठ के पुत्र नागदत्त ने अपनी १२ वर्ष की अवस्था में ही सुगुप्ति नामक मुनि से पंचमी व्रत का नियम ले लिया। ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी को नागदत्त ने पंचमी के उपवास का नियम लिया। मध्याह्न बेला में उसे भूख सताने लगी पर उसने माता-पिता के कहने पर भी कुछ भी ग्रहण नहीं किया। दिन तो जैसे-तैसे निकल गया, लेकिन रात निकालना बड़ा कठिन हो गया। माता धनश्री बड़ी चिन्तित हुई।

माता की ममता ने रत्नों के प्रकाश में बालक को प्रातः काल का समय दिखाया और पारणा करने का आग्रह किया। कृत्रिम दिनकर को देख बालक नागदत्त को गुरुदेव की आज्ञा का स्मरण हो आया कि पारणा करने के पूर्व जिन-पूजा करनी है। माता अपने इस उपाय को निष्फल पा दुःखी हुई फिर माँ की ममता ने पुत्र की विह्वलता को देख रात्रि के पिछले प्रहर में उसे जिनबिम्ब के घर में ही दर्शन कराये। बालक नागदत्त पूजा के लिए बैठा, भावना भाने लगा, लेकिन क्षुधा की पीड़ा ने उसे पिछली रात्रि में ही शान्त कर दिया। मर कर नागदत्त का जीव सौधर्म स्वर्ग के सूर्यप्रभ विमान में देव हुआ।

उधर पुत्र के बिना माँ तरह-तरह से विलाप करने लगी भ्रमवश उसे मनाने लगी। माता के इस विलाप को स्वर्गस्थ देव ने जान लिया। माता के दुःख को दूर करने के लिए देव अपने पिछले कुमार के रूप में प्रकट हुआ। जिसे देख सब आनन्दित हुये। देव ने सारी बात स्पष्ट की कि पंचमी व्रत को पालने से ही

---

१. प्राप्ति स्थान : श्री बीसपन्थी खण्डेलवाल दिगम्बर जैन मन्दिर, उदयपुर वेष्ठन संख्या ६३, पत्र संख्या ३६, लिपिकाल संवत् १८२६ लिपि स्थान उदयपुर।

मैं देव बना हूँ"। यह कह उसने देव का रूप दिखाया। सभी जन विस्मित हुये और सभी ने पंचमी व्रत की सराहना की।

यही देव अगले भव से नागकुमार बनता है और अपने विविध अतिशयपूर्ण कार्यों से माता-पिता एवं पुरजनों को विस्मित एवं हर्षित करता है। जिसका वर्णन कवि ने रास के पूर्वार्द्ध में किया है। सबके मूल में पंचमी के उपवास का पालन है। नागकुमार के अतिशय चरित्र में पंचमी व्रत का माहात्म्य दिखाना इस रास का मूल उद्देश्य है। पंचमी व्रत की महिमा से ही नागकुमार को अतिशय उपलब्धियाँ मिलीं जिनसे उसने स्वयं के साथ सभी को सुख प्रदान किया। रास में ५५० छन्द हैं। रास के प्रारम्भ में वस्तु छन्द में कवि ने अपने गुरु से पूर्व अभिनन्दन स्वामी को नमन किया है। रास की समाप्ति दूहे छन्द से होती है।

८. चारुदत्तरास[1]

इस रास में चारुदत्त का चरित्र चित्रित हुआ है जो बड़ा ही रोचक है। चारुदत्त के जीवन में णमोकार मन्त्र का विशेष महत्त्व होने के कारण इस रास का अपर नाम 'णमोकार रास' भी है। श्रेणिक के पूछने पर भगवान महावीर चारुदत्त का चरित्र इस प्रकार सुनाते हैं—

भरत क्षेत्र मे अंगदेश के चम्पानगर में भानुदत्त की पत्नी देवदत्ता से 'चारु' का जन्म हुआ। बड़े होने पर उसका विवाह सिद्धार्थ की पुत्री मित्रसेना से हुआ। प्रारम्भ से ही चारुदत्त विद्याध्यन एवं गुणीजन संगति में लगा रहता था। सदा ही णमोकार मन्त्र का अनुचिन्तन करता रहता था। विवाह होने पर भी उसका निरन्तर अध्ययन उसे गृहस्थ से विमुख ही करता रहा। अपनी पत्नी से भी वह कभी बात नहीं करता था। इससे सभी दु:खी थे। किसी समय चारुदत्त की सास ने देवदत्ता को भारी उपालम्भ दिया कि तुम्हारा पुत्र पढ़ा लिखा भी मूर्ख है जो पत्नी से प्रेम नहीं करता। देवदत्ता ने यह बात अपने देवर रौद्रदत्त से कही कि वह चारुदत्त को समझावे। चारु रोजाना मुनि के पास जाता था।

चाचा रौद्रदत्त मुनि दर्शन के बहाने चारुदत्त को वेश्या बसन्तमाला के घर ले गया। वेश्या बसन्तमाला और उसकी पुत्री बसन्तलिका ने अपने को जैन धर्मी·

---

१. प्राप्ति स्थान : श्री सम्भवनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर, उदयपुर
वेष्ठन संख्या ५६, पत्र संख्या ३५, लिपिकाल संवत् १८४७।

बताकर अपने मधुर-भाव, कटाक्ष एवं प्रेमपूर्ण व्यवहार से चारुदत्त को ऐसा वशीभूत किया कि छः वर्ष तक उसे अपने परिवार वालों का ध्यान ही नहीं रहा। उसने अपना सारा धन वेश्या वृत्ति में गवां दिया। अन्त में जब चारु के पास धन नहीं रहा तो वेश्या ने उसे पाखाने में पटक दिया और पुत्री बसन्तिलका ने उसे बाहर निकाला।

चारुदत्त बहुत पछताया। उसने अपनी निन्दा की और प्रायश्चित लिया। घर आकर स्नानादि से निवृत हो जिनपूजा को गया। गमांये धन की चिन्ता करता हुआ धन प्राप्ति के लिए वह विदेश के लिए रवाना हुआ। बहुत समय तक विदेशों में सुख-दुःख पाता हुआ और णमोकार मन्त्र का स्मरण करता हुआ अन्त में विजयार्थ पर्वत पर पहुंचा। वहाँ, चारुदत्त से पूर्व भव में णमोकार मन्त्र सिखाने से विद्याधर ने प्रसन्न होकर अपनी पुत्री से चारु का विवाह किया। घर लौट कर चारु सबसे मिला। माता के चरण छू कर उसने अक्षय आशीष पायी। अपना शेष जीवन धर्मपूर्वक बिता कर वैराग्य धारण कर चारु सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र बना। वहाँ से वे मुक्त होंगे।

इस प्रकार श्रेष्ठि पुत्र चारुदत्त ने णमोकार मन्त्र के अनुचिन्तन से अपने जीवन को सुधारा। कवि ने यह राम रच कर अन्त में अपने शिष्य मल्लिदास और नेमिदास को इसे पढ़ने-पढ़ाने के लिए प्रेरित किया है। रास का प्रारम्भ वस्तु छन्द से होता है और अवसान वस्तु और दोहे दोनो से। रास में कुछ ३६५ छन्दों का प्रयोग हुआ है। कवि ने इसमें रचना काल का उल्लेख नहीं दिया है।

९. सुदर्शन रास[1]

इस रास में सेठ सुदर्शन के शील की कथा दी हुई है। प्रारम्भ के पद्यों में सुदर्शन का जन्म एवं विवाह का वर्णन है। सुदर्शन चम्पा नगरी के ऋषभदत्त की पत्नी जिनमति की कोख से जन्म लेता है। जन्म के पूर्व माता जिनमति को गर्भावस्था में सुवर्णमेरु पर कुम्भ, कल्पवृक्ष, देवविमान, सागर, धूमरहित अग्नि आदि पांच शुभ स्वप्न दिखते है। प्रारम्भ से ही सबको सुन्दर लगने के कारण वह सुदर्शन कहलाता है। बड़े होने पर मनोरमा नाम की सुन्दर कन्या से उसका विवाह होता है।

---

१. प्राप्ति स्थान : श्री अग्रवाल दिगम्बर जैन मन्दिर, उदयपुर
वेष्ठन संख्या ६६, पत्र संख्या १६, लिपिकाल संवत् १७२६।

अभिनव राजकुमार कपिल मित्र से सुदर्शन की मैत्री है। बड़े होने पर सुदर्शन किन्ही मुनिराज से अपने माता-पिता के साथ १२ व्रतों को पालने का नियम लेता है। सुदर्शन अपने समय का अति सुन्दर पुरुष है। जितना सुन्दर है उतना ही शीलवान भी है। सुन्दरता मे वह साक्षात कामदेव का अवतार लगता है।

एक बार उसका मित्र कपिल कहीं विदेश चला जाता है। पीछे से कपिल मित्र की पत्नी कपिला अपने पति से मिलने के बहाने सखी से सुदर्शन को अपने घर बुलाती है और अपनी भोग-कामना पूर्ण करना चाहती है। सुदर्शन उसे बहुत समझाता है कि इससे पाप होता है और दोनों लोक बिगड़ते हैं। पर अन्त में पराजिता कामान्ध कपिला उस पर कलंक लगाना चाहती है। उस समय सुदर्शन अपने को नपुंसक बता कर वहाँ से मुक्त होता है।

एक बार बसन्त ऋतु मे वन-क्रीड़ा के अवसर पर अभयामती रानी से कपिला सखी-सुदर्शन की सुन्दरता का जिक्र करती है। उसे सुनकर वह विस्मित होती है। कपिला रानी को सुदर्शन के शील भंग के लिए उकसाती है। रानी की दासी पण्डिता उसे समझाती है, पर रानी के आग्रह पर पण्डिता सुदर्शन को राज-भवन में लाने मे सफल होती है। रानी उससे अपनी काम-वासना शान्त करना चाहती है। सुदर्शन संकट पाकर ध्यान लगा लेता है। ध्यानावस्था में भी पण्डिता व रानी सुदर्शन को तरह-तरह से लुभाती है। फिर भी सुदर्शन विचलित नहीं होता। अन्त मे रानी अपना त्रिया चरित्र दिखाती है। वह सुदर्शन को कलंकित करने के लिए अपने आपको नोच डालती है और विलाप करने लगती है कि सुदर्शन ने उसे लूट लिया। राजा सुदर्शन पर कुपित होकर उसका वध करना चाहता है। पर सुदर्शन के निश्चल ध्यान से यक्ष आकर राजा के सेवकों को कील देता है। अन्त मे सभी को, स्वयं राजा-रानी को भी सुदर्शन से क्षमा मांगनी पड़ती है।

रास के अन्त मे सुदर्शन और मनोरमा साधु-आर्यों का जीवन व्यतीत कर शील व्रत को पालने से स्वर्ग में देव बनते हैं। कवि ने सुदर्शन की कथा में शील का महात्म्य दिखाया है। शील धर्म के पालने से सुदर्शन को सद्गति मिलती है। रास में शील और चरित्र की जीवन में आवश्यकता और महत्त्व बताना कवि का अपना लक्ष्य है। इस रास का प्रारम्भ दूहे से है और अन्त वस्तु छन्द में हुआ है। रास के कुल पद्यों की संख्या ३३९ है। रचना काल नही दिया गया है।

१०. जीवन्धरस्वामी रास[1]

इस रास में श्रेणिक (बिम्बसार) के समय के जीवन्धरस्वामी का विशद जीवन चरित्र कलात्मक रूप से अंकित हुआ है। जीवन्धरस्वामी का जीवन प्रारम्भ से अन्त तक अनेकों औत्सुक्यपूर्ण घटनाओं से ओत-प्रोत है। कवि ने जीवन्धरस्वामी का परिचय इस प्रकार व्यक्त किया है—

भरतक्षेत्र के हेमांगद देश के राजपुर नगर में राजा सत्यन्धर रानी विजया सहित न्यायपूर्ण राज्य करते थे। एक बार उस नगर में ज्ञानसागर और गुणसागर चारण मुनि आये। नगर निवासियों के साथ एक काष्टांगार नामक धूर्त भी उनके दर्शनार्थ गया और उनसे पूर्णिमा के शीलव्रत का नियम लिया। एक दिन वह काष्टांगार ईंधन को बेचने के लिये नगर में गया और किसी वेश्या के घर के सामने जा खड़ा हुआ। वेश्या ने उनकी निर्बल देह पर थूंक दिया। वेश्या के गर्व का दमन करने के लिए उसने पांच दिनार एकत्र की और उसके घर एया। वेश्या ने उसे सम्मान दिया। लेकिन पूर्णिमा के चन्द्रमा को देख वह मुनि के द्वारा दिये गये व्रत को स्मरण कर वहां से चल दिया। वेश्या को उस पर शंका हुई। बात बढ़ती-बढ़ती राजा सत्यन्धर के पास पहुंची। सत्यन्धर ने काष्टांगार को बुलाया और उससे सारी बात मालूम की। राजा ने उसकी पूर्णिमा के व्रत की प्रशंसा की और उसे अपना प्रधान अमात्य का पद दे दिया।

धीरे-धीरे काष्टांगार ने अपना प्रभाव जमाया। एक बार उसने सभा बुलायी और उसमें अपने मिथ्या स्वप्न की बात कहने लगा—मुझे राक्षस ने स्वप्न में कहा है कि या तो राजा को मारो नहीं तो मैं विनाश करूंगा। इस पर उसने सभासदों के विचार जानने चाहे। सभी को स्वप्न की बात अच्छी नहीं लगी। धर्मदत्त अमात्य भी इससे नाराज हुआ। समझाने पर भी काष्टांगार नही माना। उसने एक दिन किसी मन्त्र बल से गर्भवती रानी विजया को श्मशान भिजवा दिया और राजा से संघर्ष करने लगा। धर्मदत्त को बांध दिया। राजा ने विरक्त हो सन्यास ले लिया। सन्यास अवस्था में भी काष्टांगार ने उसे खड्ग से मार डाला।

---

१. प्राप्ति स्थान : श्री सम्भवनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर, उदयपुर
वेष्ठन संख्या ३१८ पत्र संख्या ८०, लिपिकाल संवत् १८६५
लिपिस्थान—मेवाड़ देशे गेगंला ग्रामे।

गर्भवती विजया ने श्मशान में जीवन्धर पुत्र को जन्म दिया। उसी समय उस नगर का गंधोदक नामका सेठ अपने मृत पुत्र को लेकर श्मशान में आया। विजया रानी को उस अवस्था में देख वह विस्मित हुआ। विजया के कहने से गन्धोदक पुत्र जीवन्धर को घर ले आया। श्मशान के बालक को देख उसकी स्त्री व घरवाले सभी कुपित हुये। गंधोदक ने उन्हें यह कह कर शान्त किया कि जन्मते समय वेदना के कारण बालक मूर्छित हो गया था, लेकिन वन की शीतल हवा से यह चेत में आ गया है।

उधर काष्टांगार के राजगद्दी पर बैठते ही सारी जनता में हाहाकार मच गया। सत्यन्धर राजा के मारे जाने के कारण सर्वत्र शोक छा गया। सब कष्टांगार की निन्दा करने लगे। सेठ गन्धोदक का घर ही ऐसा था जहां पुत्र जन्म के कारण आनन्द हो रहा था। काष्टांगार के राजगद्दी पर बैठते ही गंधोदक को पुत्र की प्राप्ति हुई। गंधोदक की इस प्रसन्नता से काष्टांगार ने प्रसन्न हो उसे अपना प्रधान बना दिया। गंधोदक के कहने से पुत्रोत्सव पर नगर को शुद्ध कराया गया।

अब जीवन्धर द्वितीया के चन्द्रमा के सदृश दिन-दिन बड़ा होकर सबको आनन्द देने लगा। गन्धोदक की पत्नी सुनन्दा को नन्दकुमार पुत्र की प्राप्ति हुई। पद्मरुचि और अन्य वणिक पुत्र जो जीवन्धर के साथी थे वृद्धि को प्राप्त होने लगे।

उधर विजयारानी को किसी ने उसकी इच्छानुसार श्मशान से उठाकर उसे दंडक वन में ले गयी, जहां एक अन्य तपस्विनी रहती थी।

एक बार जीवन्धर अपने साथियों सहित खेल रहा था। उस समय एक आर्यनन्दि नामके मुनि, भस्म व्याधि के कारण जिनमुद्रा छोड़ कर वहां आकर भोजन की याचना करने लगे। वे भूख से बड़े व्याकुल थे। बहुत कुछ खा लेने पर भी उनकी भूख शान्त न हो सकी। बालक जीवन्धर के कहने से माता आदि ने मुनि को तरह-तरह के सुखादि भोजन कराये, पर फिर भी वे तृप्त नहीं हुये। अन्त में बालक जीवन्धर के हाथ से एक मोदक खा लेते ही उनकी यह भस्म व्याधि दूर हो गई और वे स्वस्थ हो गये। वे जीवन्धर से बहुत प्रभावित हुये। उन्होंने ही जीवन्धर को सात वर्ष तक सभी कलाओं का ज्ञान कराया और अन्त में वापिस अपने गुरु के पास जाकर जिनमुद्रा ग्रहण कर ली। इन्हीं गुरु (आर्यनन्दि) से जीवन्धर को काष्टांगार द्वारा उसके माता-पिता को निकालने व राज्य छीन लेने की घटना मालूम पड़ी। जीवन्धर ने काष्टांगार से बदला लेना चाहा। लेकिन पिता गंधोदक ने उसे शान्ति, धैर्य एवं वणिक बुद्धि से काम लेने को कहा।

रास के उत्तरार्द्ध भाग में जीवन्धर स्वयम्वर में काष्टांगार व अन्य राजाओं को पराजित कर गंधर्वकुमारी को प्राप्त करता है। गोपालक की गायों की भीलों से रक्षा कर उसकी पुत्री को पाता है। पशुहवन को रोकता है। मदान्ध हाथी को वश में करके सबकी रक्षा करता है। काष्टागार द्वारा अपनी हत्या के लिये उद्यत होने पर उसका उपकारी देव जीवन्धर की रक्षा कर उसे अन्यत्र ले जाता है। अन्त में वह अपनी माता और मामा आदि से मिलकर कई कुमारियों से विवाहित होकर अपने नगर लौटकर काष्ठांगार को मारता है और उससे राज्य प्राप्त करता है। तीस वर्ष तक धर्म पूर्वक शासन कर अन्त मे अपने पिता सत्यन्धर, माता विजया और अपने स्वयं के जन्म के कष्टों का अनुभव एवं स्मरण कर संसार से विरक्त हो बारह भावनाओ का अनुचिन्तन करता हुआ अपने पुत्र जीव को राज्य सम्भला कर तीर्थंकर महावीर के समवशरण मे पहुच दीक्षा ले लेता है और ध्यान एवं तपोबल से मुक्ति पाता है।

इस प्रकार यह रास कवि की अनुपम कलात्मक कृति है। कवि ने रास के प्रारम्भ मे ही जीवन्धर स्वामी के दर्शन करा कर और फिर उनका जीवन चरित्र कहना आरम्भ किया है। रास के अन्त मे वैराग्य पोषक बारह अनुप्रेक्षाओ का सन्निवेश कुशल कविकर्म का परिचायक है। रास १६०० श्लोक प्रमाण है। पाण्डुलिपि के अनुसार कुल छन्द संख्या १२७७ है। रचना काल नही दिया गया है।

११. जम्बूस्वामी रास[1]

इस रास मे अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर के पश्चात् होने वाले अन्तिम केवली जम्बूस्वामी के आकर्षक जीवन का विशद एवं प्रभावशाली वर्णन हुआ है। रास के प्रारम्भ मे जम्बूस्वामी का पूर्व भव भी बतलाया गया है। पूरे रास का काव्य का सार इस प्रकार है—

जम्बूद्वीप के मध्य भरतक्षेत्र में मगध देश के वर्धमान नगर मे आर्जवसु और सोमा ब्राह्मण-ब्राह्मिणी के भावदेव और भवदेव नामके दो पुत्र थे। आर्जवसु और सोमा पाप फल से कुष्ट रोग एवं काष्ट भक्षण से असामयिक मृत्यु को प्राप्त हो गये।

---

१. प्राप्ति स्थान : श्री अग्रवाल दिगम्बर जैन मन्दिर, उदयपुर, वेष्टन संख्या ४०, गुटका संख्या ४०, पत्र संख्या २६ से ६६, लिपि संवत् १६४४।
इसकी अन्य प्रति उदयपुर के ही श्री खण्डेलवाल दिगम्बर जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे भी सुरक्षित है।

भावदेव और भवदेव को लोगों ने विवाह के लिये आग्रह किया। पर भावदेव ने संसार संसार असार जान मुनित्व ग्रहण कर लिया। भवदेव ने गृहस्थ स्वीकारा। एक बार भावदेव मुनि अपने भाई को सम्बोधने आये। भवदेव एवं उनकी पत्नी ने मुनि से श्रावकों के व्रत ग्रहण किये। मुनि भावदेव के साथ-साथ भवदेव भी बन को चले गये। अन्य मुनियों की प्रेरणा से भवदेव भी मुनि बन गये। लेकिन नारी के प्रति मोह छूटा नहीं। एक बार भवदेव मुनि अपने आचार्य भावदेव से अनुमति लेकर उस स्थान पर गये जहां एक श्राविका धर्म कर रही थी। श्राविका से अपनी पत्नी की स्थिति मालूम करने लगे। यह श्राविका ही उनकी पत्नी थी। श्राविका मुनि का मोह गृहस्थ मे देख दु खी हुई और उसने भवदेव मुनि को वैराग्य की ओर सम्बोधा। भवदेव मुनि ने अपनी गलती स्वीकार की। द्रव्य दीक्षा से भाव दीक्षा मे आ गये। फिर भावदेव मुनि के साथ भवदेव मुनि ने धर्म का पालन किया और समाधि मरण पूर्वक देवगति पाई। ये दोनो जीव चिरकाल तक स्वर्ग सुख भोग कर सागरचन्द्र और शिवकुमार नामके राजपुत्र बने। अगले भव मे वे दोनो पुन: मुनि बने और स्वर्ग मे देव बने।

राजा श्रेणिक के समय राजगृह मे सेठ अर्हद्दास की पत्नी जिनमति की कोख मे स्वर्ग से भवदेव जम्बूकुमार के रूप मे जन्म लेता है। गर्भ मे आने से पूर्व माता जिनमति को पाच स्वप्न दिखायी देते है जो जम्बूकुमार के इसी भव से मुक्तिगामी के साक्षी हैं। फाल्गुन शुक्ला अष्टमी को इनका जन्म होता है। बाल्यावस्था से जम्बूकुमार अप्रतिम प्रतिभाशाली है। शीघ्र ही विविध शास्त्रो का वह पारगामी बनता है।

एक बार जम्बूकुमार बसन्त ऋतु मे बन क्रीड़ा के समय छूटे हुए राजा श्रेणिक के मदान्ध हाथी को सहज ही वश मे कर लेता है और लोगो की रक्षा कर यश कमाता है। श्रेणिक उस पर प्रसन्न होता है। माता-पिता जम्बू के अद्‌भुत पराक्रम से विस्मित होते है। यही नही भूमि गोचरी होते हुये भी जम्बू केरल नगर के राजा मृगाक की कुमारी विलासवती का विवाह राजा श्रेणिक से कराने के लिए रत्नावली द्वीप के विद्याधर राजा रत्नचूल को युद्ध मे पराजित करता है और अन्त मे कुमारी श्रेणिक को दिला कर वह श्रेणिक का प्रिय बन जाता है। वहां से लौटते समय वह सौधर्म स्वामी (मुनि भावदेव) के पास धर्म-तत्व सुनता है। सौधर्म स्वामी जम्बू को अपने पूर्व भव का अनुज बतलाते है। जिसे सुन कर जम्बू को वैराग्य हो जाता है।

जम्बूकुमार घर आकर अपने वैराग्य की बात माता-पिता से कहता है। उधर माता-पिता उसके विवाह की तैयारी करते हैं। वह माता पिता से शादी न

करने के निश्चय को बताता है कि मैंने अनेकों बार शादियां की हैं। अब तो दुर्लभ जैनधर्म को ही अपनाऊंगा। अन्त में सभी ओर से आग्रह होने पर वह एक रात्रि के लिए विवाह के बाद तुरन्त वैराग्य की बात मान लेता है। विवाहोत्तर प्रथम रात्रि में जम्बू की चारों पत्नियां अपने विविध हाव भाव, शृङ्गार, कटाक्ष, कथा, गीत आदि के द्वारा जम्बू को आकर्षित एवं उसके मन को विचलित करने का प्रयत्न करती हैं, पर जम्बू पर इसका प्रभाव नहीं चल पाता। जम्बू को सांसारिक जीवन की ओर आकर्षित करने के लिये चारों पत्नियां चार कथायें कहती है तो जम्बू भी उनके उत्तर मे वैराग्य पोषक चार कथायें कहता है। रात्रि पर्यन्त यह वार्ता चलती रहती है। पर जम्बू अपने निश्चय पर अडिग रहता है। माता जिनमति के कहने पर मामा के रूप मे विद्युत चोर जम्बू को वैराग्य न लेने के मनाता है, परन्तु जम्बू उसे भी निरुत्तर एवं विस्मित कर देता है। अन्त में सब को जंबू के वैराग्य एवं वीरत्व की प्रशंसा करनी पड़ती है। राजा श्रेणिक अपनी रानी सहित उपस्थित हो जम्बू का अन्तिम शृङ्गार करते है। पालकी मे बिठा कर जम्बूकुमार को वन मे ले जाते है। इस समय माता पिता पत्निया सभी दुःखी होते हैं, पर ये लोग भी जम्बू के साथ ही दीक्षा ले लेते है। जम्बू अपने ध्यान एवं तपोबल से विपुलाचल पर्वत पर मुक्ति पाते है।

इस प्रकार इस रास में कवि ने वैराग्य की पुष्टि के लिए जम्बूस्वामी के द्वारा अनेक स्थलो पर सुन्दर तर्क प्रस्तुन कराये हैं। समूचा रास आदि से अन्त तक रोचक बन पड़ा है। जैन समाज एवं सास्कृति मे जम्बू का जीवन बड़ा ही लोकप्रिय रहा है। ब्रह्म जिनदास ने जम्बू के विशद एवं लोकप्रिय जीवन की आकर्षक कथा को रास का रूप प्रदान किया है जो १००५ छन्द प्रमाण है।

१२. श्रेणिक रास[1]

इस रास में ब्रह्म जिनदास ने इतिहास प्रसिद्ध राजा श्रेणिक (बिम्बसार) के जीवन का चित्रण किया है। इतिहास प्रसिद्ध सम्राट बिम्बसार को जैन साहित्य में राजा श्रेणिक के रूप में वर्णित किया गया है। राजा श्रेणिक महावीर के

---

१. प्राप्ति स्थल : आमेर शास्त्र भण्डार, महावीर भवन, जयपुर, वेष्ठन संख्या १२०८ पत्र संख्या ५२।

इसकी एक अन्य प्रति उदयपुर के श्री अग्रवाल दिगम्बर जैन मन्दिर में वेष्ठन संख्या ५७ में सुरक्षित है।

समकालीन ही नहीं, अपितु सम्बन्ध में महावीर के मौसा भी लगते थे। वे महावीर के समवशरण (धर्म-सभा) में प्रधान श्रोता के रूप में उपस्थित हुए थे।

आलोच्य रास में राजा श्रेणिक के जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त जीवन क्रम का वर्णन हुआ है। श्रेणिक का पिता उपश्रेणिक तिलक सुन्दरी के पुत्र चिलाती को राज्य देना चाहता है पर वह असफल होता है। श्रेणिक परीक्षाओं में सफल होकर राजा बनता है।

श्रेणिक का प्रारम्भ में बौद्धमतावलम्बी कन्या से विवाह होता है। उसी से अभयकुमार जो गुणों का भण्डार हैं जन्म लेता है। अभयकुमार अपने चमत्कारों से सभी को प्रसन्न करता है। इसीकी सहायता से श्रेणिक राजा चेटक की पुत्री चेलना से विवाह करने में सफल होता है। लेकिन चेलना जिन धर्मानुरागिणी है, जबकि श्रेणिक बौद्ध मतावलम्बी। राजा श्रेणिक एव रानी चेलना में बहुत समय तक परस्पर अपने-अपने मत की प्रशंसा चलती रहती है। वे अपने-अपने मतों को सर्वोत्तम सिद्ध करने के लिये तरह-तरह की परीक्षायें करते हैं। सबमे चेलना सफल होती है और अन्त में राजा श्रेणिक को जैन धर्म स्वीकारना पड़ता है। चेलना बौद्ध भिक्षुक के ध्यान को अग्नि लगा कर भंग कर देती है। लेकिन श्रेणिक जैन मुनि के गले सर्प डालकर भी उनको विचलित नही कर सका है। बौद्ध भिक्षु कुपित होता है और जैनमुनि मित्र व शत्रु दोनों को धर्म वृद्धि का आशीष देते हैं। वे श्रेणिक के मन की बात को भी जान जाते है।

किसी समय विपुलाचल पर्वत पर भगवान महावीर की धर्मसभा में श्रेणिक सपरिवार पहुचते हैं और भगवान से धर्मतत्व के साथ अपना व अभयकुमार का भवान्तर भी सुनते है।

पूर्व जन्म में पाप-पुण्य के प्रभाव से रानी चेलना के गर्भ में वैरी व्यन्तर का जीव आता है। जन्म लेते ही दासी द्वारा वह एकान्त वन में रखा जाता है। बड़े होने पर इसी पुत्र 'कुणीक' को राज दिया जाता है। पूर्व जन्म में पाप कर्मों में वह अपने पिता श्रेणिक को पिंजरे में बन्द कर देता है। रानी चेलना बड़ी दुःखी होती किसी समय कुणीक अपने पुत्र को (लोकपाल) खिला रहा होता है। उसे देख चेलना कहती है कि इसी तरह बचपन में तुम्हारे पिता श्रेणिक भी तुम्हें खिलाते थे। यह सुन कुणीक के मन में दया भावना होती है। वह पिता को मुक्त करने के लिये जाता है, लेकिन श्रेणिक उसे आते देख भयभीत होता है और मारने की आशंका से स्वयं तलवार से अपना मस्तक अलग कर प्राणान्त कर लेता है।

पूर्व भव व इस भव के अपने पाप कर्मों से श्रेणिक को नर्क मिलता है। पर जीवन के अन्तिम समय में जैन धर्मानुरागी, मिथ्यात्व से परे और सम्यक्त्व के भावों का पालन करने से भविष्यत्काल के चौबीस तीर्थंकरों मे महापद्म नाम के प्रथम तीर्थंकर होंगे।

कुणीक राजा मिथ्यात्व का आचरण करता है। समझाने पर भी नहीं मानने पर अन्त मे चेलना को वैराग्य हो जाता है। वह अपनी बहिन चन्दन बाला के पास जाकर तपस्विनी बन जाती है। अन्त में स्त्रीलिंग को छेद कर स्वर्ग को प्राप्त होती है। अभयकुमार अपनी महती तपस्या से सिद्ध होते हैं।

रास में अभयकुमार के द्वारा किये गये दो सुन्दर निर्णयों का भी उल्लेख हुआ है। एक पुत्र के लिये दो माताओ मे वास्तविक माता को पुत्र दिलाकर और किसी स्त्री के वास्तविक पति को पहिचान उसे उसकी पत्नी दिलाकर अभयकुमार ने अपने प्रतिभायुक्त निर्णय का परिचय दिया है।

समूचा रास सुख-दुःख से युक्त अनेक उपकथाओं को ग्रहण किये हुए है। राजा श्रेणिक द्वारा तीर्थंकर महावीर की धर्मसभा के प्रति बड़ा ही आदर-भाव व्यक्त किया गया है। प्रारम्भ से अन्त तक रास मे रोचकता विद्यमान है। रास में कुल ६१८ छन्दों का प्रयोग हुआ है। वस्तु छन्द से प्रारम्भ व अन्त हुआ है।

१३. धन्यकुमार रास[1]

धन्यकुमार राजा श्रेणिक एवं भगवान महावीर के समय का पात्र है। धन्यकुमार का सम्पूर्ण जीवन कौतूहल एवं विशेषताओ से ओत प्रोत है। इसकी चारित्रिक विशेषताओं को इस रास मे वर्णित किया गया है। उज्जैनी नगरी के सेठ धनपाल की पत्नी प्रभावती के सात पुत्रो के बाद आठवा पुत्र धन्यकुमार जन्म लेता है। पुत्र के जन्म लेने के बाद माता-पिता ही नही समूचा परिवार धन्य होता है। धन्यकुमार जन्म से ही अति पुण्यशाली है। जन्म के बाद उसकी नाल गाडने के लिये जब गड्ढा खोदा जाता है तो वहां सोने का चरवा मिलता है। जैसे-जैसे धन्य बड़ा होता है उसके अतिशय यशस्वी कार्यों से उसके भाईयो को ईर्ष्या होती है। वे उसको सब तरह कष्ट देते हैं, लेकिन धन्य उन कष्टों पर विजय ही प्राप्त नही करता अपितु अमूल्य वस्तुएं भी पाता है।

---

१. प्राप्ति स्थान : श्री अग्रवाल दि० जैन मन्दिर, उदयपुर, वे. स. २०३।

एक बार सातों भाई उसे कहीं जंगल में बावड़ी में डुबाते हैं। माता-पिता अपने पुत्र धन्यकुमार के बिना बड़े दु:खी होते हैं। धन्यकुमार णमोकार का स्मरण करता है। देव आकर सातों भाईयों को घर से निकाल देते हैं और धन्य की रक्षा करते हैं। घर आने पर धन्य को माता-पिता नहीं मिलते हैं। वह विदेश चला जाता है। रास्ते में वह अपने अतिशय कार्यों से लोगों को प्रसन्न करता है और अन्य वस्तुएं एवं सुन्दर कुमारियां प्राप्त करता है। १६ कुमारियों को पाता है। अन्त में राजगृही पहुंच कर राजा श्रेणिक को प्रसन्न करता है।

श्रेणिक की पुत्री धन्यकुमार पर मुग्ध होती है। पर श्रेणिक पुत्र अभय-कुमार उसका विरोध करता है। वह धन्य को ऐसी गुफा में ले जाता है जहां से वह लौट न सके, लेकिन वहां भी धन्य को कोई कष्ट नही होता अपितु वह आदर पूर्वक रत्न, माणिक, मोती आदि पदार्थ पाता है। प्रसन्न होकर श्रेणिक उसे अपनी पुत्री देता है।

घर पहुंचने पर धन्य अपनी १६ स्त्रियो सहित माता-पिता को आनन्दित करता है और अपने सातो भाईयो को भी घर ले आता है। किसी समय धन्य की पत्नी सुभद्रा धन्य के समक्ष अपने भाई शालिभद्र के संयम-वैराग्य के लिये धीरे-धीरे व्रत पालने की बात से दु:ख प्रकट करती है। इस पर धन्य हंसता है और संयम वैराग्य के लिए धीरे-धीरे व्रत नियम पालने के तरीके को कायरता बताता है। धन्य के अनुसार जब भी मन में वैराग्य उपजे तभी तत्काल संयम या वैराग्य लिया जा सकता है। इस पर सुभद्रा धन्य को अभिमानी बताती है और शालिभद्र की वीरता की प्रशंसा करती है। अन्त मे शीलव्रत के साथ धनपाल-प्रभावती, १६ स्त्रियों सहित धन्यकुमार महावीर स्वामी के समवशरण में दीक्षा ग्रहण कर लेते है और तपस्या करके अपना इहभव और परभव सुधारते हैं और स्वर्ग की प्राप्ति करते हैं।

७०७ पद्य प्रमाण इस रास में धन्यकुमार का चरित्रांकन हुआ है। पुण्यात्मा प्राणी को सर्वत्र सफलता एव सम्मान मिलता है। अतएव सम्यक्त्वपूर्वक धर्माचरण करना चाहिये। विरोधियो पर भी कृपा भाव एवं साम्यभाव बरतना चाहिये। यही रास का मूल बिन्दु है। रास का प्रारम्भ एवं अन्त वस्तु छन्द में होता है।

१४. श्रीपाल रास[1]

इस रास में कवि ने कोटिभट राजा श्रीपाल एवं उसकी पत्नी मैनासुन्दरी के कर्मवादी जीवन का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया है। जैन समाज में श्रीपाल मैना

---

१. प्राप्ति स्थान : श्री अग्रवाल दिगम्बर जैन मन्दिर, उदयपुर।
वेष्ठन सख्या १८१, पत्र संख्या २७, लिपिकाल सम्वत् १६१३।

के जीवन की गाथा बहुती आदरणीय एवं लोकप्रिय है। आलोच्य रास में कवि ने मैना के चरित्र में भाग्य की विजय बतायी है।

मालवा का राजा प्रजापाल अपनी छोटी और दूसरी बेटी मैनासुन्दरी का विवाह मैना के भाग्यवाद के आधार पर ७०० कोढ़ियों के राजा कोढ़ी श्रीपाल से कर देता है। स्वयं मुनिराज मैना के कर्मवाद एवं सम्यक्त्व में आस्था की प्रशंसा करते हैं। मैना प्रारम्भ से ही धर्मपरायणा नारी है। कोढ़ी पति श्रीपाल को वह अपने प्रिय जीवन साथी के रूप मे स्वीकारती है। उसकी निरोगता के लिये संयम, व्रत, पूजा-पाठ को अपनाती है। आठ दिन तक अनवरोध, एकाग्र एवं निर्मल भाव रखकर सिद्ध पूजा करने तथा गन्धोदक छिड़कने से न केवल श्रीपाल अपितु ७०० कोढियों के कोढों को दूर कर उन्हें स्वस्थ करती है। पिता प्रजापाल, सास कमलावती, श्रीपाल एवं ७०० कोढ़ी सभी उसकी भक्ति से प्रभावित होते है।

कुछ समय पश्चात् श्रीपाल १२ वर्ष के लिए अपने खोये हुए राज्य की प्राप्ति के प्रयत्न में विदेश गमन करता है। मार्ग मे वह धवल सेठ की सहायता करता है और रत्नद्वीप में सहस्त्रकूट के बन्द चैत्यालय को खोलने की सफलता में वहाँ की राजकुमारी मदनमंजूषा को पाता है। फिर धवल सेठ द्वारा श्रीपाल को समुद्र में गिराना, मदनमंजूषा के शील भंग करने के प्रयास में शासन देवी द्वारा उसकी रक्षा, श्रीपाल का राजा धनपाल के यहां सम्मान, धनपाल को धवल सेठ द्वारा धोखा देना, श्रीपाल एवं मदनमंजूषा द्वारा वास्तविकता का भान होना, धवल सेठ का क्षमा मांगना और फिर आत्म हत्या करना, श्रीपाल का मार्ग में अनेक वस्तुओं, कुमारियों को पाना, मेवाड़ की कुमारियों को भी पाना और अन्त में अपने देश आकर माता एवं पत्नी मैना से मिलना तथा मैना के आग्रह पर प्रजापाल का अभिमान भंग करने के लिये दूत भेजना, प्रजापाल द्वारा श्रीपाल का प्रभाव स्वीकारना और अन्त में चम्पा-नगरी का राज्य प्राप्त करना आदि घटनाओं का वर्णन इस रास में हुआ है।

बहुत समय तक प्रजा का पालन करने के बाद श्रीपाल मुनि श्रुतसागर से अपने सुख-दुःख के कर्मों की जानकारी चाहने पर—मुनि उसका भवान्तर बतलाते हुये कहते हैं कि पूर्व भव में साधु को कुष्ठी कहने से कुष्ठी बने, सरोवर में मुनि को डालने से धवल सेठ द्वारा तुम समुद्र में गिराये गये। मुनि को चाण्डाल कहने से तुम्हें भी चाण्डाल की सन्तान बताया गया। फिर पत्नी के समझाने से शुभ कार्य करने से तुम्हें सुख मिला। आषाढ़, कार्तिक एवं फाल्गुण मास की शुक्लपक्ष की अष्टाह्निकाओं में सिद्ध चक्र की पूजा से स्वर्ग एवं वर्तमान भव की प्राप्ति हुई है।

भवान्तर सुनकर श्रीपाल ने धर्मपूर्वक अपना जीवन व्यतीत किया। वैराग्य लेकर केवलज्ञान पाकर सिद्ध पद पाया। मैना ने इसी प्रकार स्त्रीलिंग से आर्यों बनकर स्वर्ग पाया।

रास में सिद्धचक्र पूजा के माहात्म्य को बताना भी कवि का अपना इष्ट है। पूर्वभव मे किये गये कर्मों को भोगे बिना उनसे छुटकारा नही मिलता है। लेकिन सत्कर्मों से आगामी जीवन सुखदायी अवश्य होता है और वर्तमान में सन्तोष। कवि ने रास मे श्रीपाल, मैनासुन्दरी, धवलसेठ, प्रजापाल, मदनमंजूषा एवं धनपाल आदि पात्रों के चरित्राकन में अपने कवि-कर्म का अच्छा निर्वाह किया है। रास में कुल ४४८ पद्य है। वस्तु से ही आरम्भ और अन्त होता है।

१५. यशोधर रास[1]

कवि ने इस रास मे राजा यशोधर का चरित्र वर्णित किया है। रास के प्रारम्भ में राजा मारिदत्त किसी मिथ्यात्वी योगी के प्रभाव मे आकर आकाशगामिनी विद्या सीखने के लोभ मे जीव हिंसा करने को उतारु हो जाता है। साधु ब्रह्म खुडी मारिदत्त को राजा यशोधर का जीवन चरित्र सुनाकर उसे एवं चंडमारि देवी के उपासक को हिंसावृत्ति से हटाता है। कवि ने इस रास मे यशोधर की जीवन कथा सीधे ही प्रारम्भ न कर साधु से कहलायी है। यह साधु ही यशोधर का जीवन है। जो उत्तम पुरुष से अपनी पूर्व भव की कहता है जिसे सुनकर मारिदत्त हिंसा वृत्ति को छोडकर अहिंसक जीवन व्यतीत करता है। रास के माध्यम से कवि जीव रक्षा एवं जीव-दया के महत्त्व का प्रतिपादन करता है। कवि के अनुसार जीव हिंसा का विचार मात्र ही एवं अचेतन वस्तु की बलि का भाव मात्र भी संसार दु:ख का कारण है। इस प्रकार इसमे अहिंसा का प्रतिपादन मुख्यत: हुआ है।

रास मे कुल ५६१ पद्य है। अन्य रचनाओं के समान कवि ने इसमें अपने द्वितीय गुरु भट्टारक भुवनकीर्ति का कही भी उल्लेख नही किया है। अत: यह कृति कवि की प्रारम्भिक कृतियो मे से हो सकती है।

---

१. प्राप्ति स्थल : आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर, पत्र संख्या २५, वेष्टन संख्या १०५ लिपिकाल संवत् १८२६, लिपि स्थल : उदयपुर मे पं० रूपचन्द के पठनार्थ

१६. भविष्यदत्त रास[1]

भविष्यदत्त रास में ब्रह्म जिनदास ने श्रेष्ठि पुत्र भविष्यदत्त के सम्पूर्ण जीवन का परिचालन किया है। भविष्यदत्त अपने सौतेले भाई बन्धुदत्त के साथ व्यापार के लिए विदेश जाता है। मार्ग में बन्धुदत्त उसको अनेकों कष्ट देता है, जिसे भविष्यदत्त शान्त भाव से सहन करता है। धोखे से उसे अकेला छोड़ उसकी स्त्री भविष्यानुरूपा से विवाह करना चाहता है लेकिन भविष्यदत्त के समय पर पहुंचने से उसकी इच्छाओं पर पानी फिर जाता है। तिलकपुर पाटण में भविष्यदत्त अपने पूर्व भव के मित्र विद्युत्प्रभ के द्वारा राजकुमारी भविष्यानुरुपा को प्राप्त करता है। ये दोनों कई दिनों तक एकान्त स्थान में शील की रक्षा करते हुए आमोद-प्रमोद से रहते हैं। भविष्यदत्त का पूरा जीवन रोमाचक कथाओं से परिपूर्ण है। रास में प्रारम्भ से अन्त तक रोचकता विद्यमान है।

रास में तीन मुख्य पात्रों भविष्यदत्त, भविष्यदत्ता और माता कमलाश्री के तीनों कालों के भूत, वर्तमान एवं भावी-जीवन की संक्षिप्त झांकी कवि ने तीन छदों में चित्रित की है। कवि ने इन तीनों के पुण्य एवं सुखमय जीवन के मूल में श्रुतपंचमी व्रत का माहात्म्य बतलाया है। कवि ने इस रास की रचना संस्कृत रचना के आधार पर बाल-बोध की दृष्टि से सरल देश भाषा में की है। रचना के अन्त में कवि ने अपने दो शिष्य ब्रह्म मल्लिदास एवं गुणदास का भी उल्लेख किया है। रास १४०० श्लोक प्रमाण है।

१७. अम्बिका देवी रास[2]

इस रास में बावीसवें तीर्थंकर नेमिनाथ की शासन देवी अम्बिका के जीवन का एक लघु आख्यान वर्णित है। अम्बिका देवी अपने पूर्व भव के दो पुत्रों शुभकर और विभकर को विद्या-प्राप्ति के लिए भाद्रपद शुक्ला प्रतिपदा से भाद्रपद शुक्ला एकादशी तक व्रतपूर्वक सरस्वती विधान करने के लिए कहती है। जिसके परिपालन से दोनों पुत्र अपने समय के अनुपम विद्वान् बनते है। द्वारिका नगरी के

---

१ प्राप्ति स्थान श्री खण्डेलवाल दिगम्बर जैन मन्दिर, उदयपुर, वेष्ठन संख्या १६, पत्र संख्या ८५, लिपिकाल संवत् १७३६।

२. प्राप्ति स्थान : श्री भट्टारक यशःकीर्ति दिगम्बर जैन सरस्वती भवन, ऋषभदेव (उदयपुर) वेष्ठन संख्या १३७, पत्र संख्या २८२-२६८ (गुटका)।

राजा नारायण और रानी रुक्मिणी के पुत्र प्रद्युम्न के आमन्त्रण पर दोनों दुर्जेय विद्वानों को 'स्याद्वाद' मत में परास्त कर ख्याति प्राप्त करते हैं। स्वयं श्रीकृष्ण पुत्र प्रद्युम्न इन दोनों विद्वानों का सम्मान करते हैं।

अम्बिका देवी अपने पूर्व जन्म में अग्निला ब्राह्मणी के रूप में निर्मल साधु को सात्विक आहारदान देती है और गिरिनार पर्वत पर नेमिनाथ का स्मरण करती हुई आत्म साधना करती है। जिसके प्रभाव से नेमिनाथ की शासन देवी बनती है। जो विघ्नों का हरण करने वाली है।

इस आख्यान परक रास में कुल १६३ पद्य हैं। अन्य रासों के समान इसमें किसी भी गुरु का स्मरण नही किया गया है। रास का आदि एवं अन्त वस्तु छन्द में हुआ है।

१८. रोहिणी रास[1]

अपने पूर्व भव में मुनि को कु-आहार कराने से राहिणी स्त्री का जीव अपने आगामी भव मे दुर्गन्धा होती है। सब उनसे घृणा करने लगते हैं। किसी मुनि के कहने से दुर्गन्धा रोहिणी नक्षत्र में रोहिणी विधान का आचरण करने से पवित्र होकर सद्‌गति को प्राप्त होती है।

अपने आगामी जन्म मे दुर्गन्धा रोहिणी नक्षत्र में रोहिणी व्रत के आचरण से रोहिणी नाम से चम्पानगर के राजा माधव की पुत्री और नागपुर के राजा नीलशोक के पुत्र अशोक की पत्नी बनती है। भगवान भक्ति के कारण रोहिणी और अशोक को कोई दुःख व शोक की अनुभूति नहीं होती है। वे हमेशा प्रफुल्ल चित्त मनसा रहते हैं।

कवि के अनुसार रोहिणी व्रत के प्रभाव से सब प्रकार के रोग, शोक दूर होते हैं। कभी कष्ट की अनुभूति नही होती। रास की छन्द संख्या २४० है।

---

१. प्राप्ति स्थान : श्री आदिनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर कोटडिया, डूंगरपुर वेष्ठन संख्या २८५, लिपिकाल संवत् १६८२।

१९. रात्रि भोजन रास[1]

इस रास में रात्रि भोजन न करने का माहात्म्य बतलाया गया है। श्रेष्ठि वधू नागश्री ने अपने पूर्व जन्म में इस नियम का दृढ़ता-पूर्वक पालन किया, जिससे वह इस जन्म में विपुल सुख-सामग्री को प्राप्त करती है।

मेवाड़ देश में चित्तौड़ नगर के राजा नरपति के शासन काल में श्रीपाल साह की धनपति नाम की स्त्री की प्रेरणा से जागरा नाम की मातंगी रात्रि भोजन न करने का नियम लेती है। परन्तु जागरा के पति कुरंग मातंग को यह बात पसन्द नहीं आती। वह जागरा पर कुपित हो उसे पीट-कूट कर घायल कर देता है। धनमति में मोह के कारण जागरा मर कर धनमति के नागश्री नाम की पुत्री होती है। बड़ी होने पर वह उसी नगरी मे श्रीधर साह की पत्नी बनती है। जहा वह निरन्तर दान, धर्म का सदाचरण करती है। मरते हुए कुत्ते को णमोकार मन्त्र सुनाती है, जिससे कुत्ता यक्ष देवता बनता है। नागश्री के सम्यक् धर्माचरण से यक्ष द्वारा प्रदत्त हार रानी के लिए सर्प तो नागश्री के लिए पुनः हार बन जाता है। कवि ने आदि से अन्त तक इस रास को बड़ा ही रोचक बनाया है। रास मे कुल २५७ पद्य हैं। इस रास मे कवि के समय की सामाजिक परिस्थिति का चित्रण मिलता है।

२०. सागरचक्रवर्ति कथा रास[1]

प्रथम चक्रवर्ती भरत के पश्चात् होने वाले द्वितीय चक्रवर्ती राजा सगर, द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथ के चचेरे भ्राता थे। उनके जीवन के वैराग्य का आख्यान ही इस कथा-रास मे दिया गया है; जिसमें मणिकडल मित्र ने अपने कर्त्तव्य का पूरा निर्वाह किया है।

किसी समय अयोध्या नगरी के राजा सगर के पास उसके पूर्व भव का मित्र मणिकुण्डल उन्हे अपने दिये गए वचनों का स्मरण कराने (सासारिकता से हटाने के

---

१. प्राप्ति स्थान : श्री अग्रवाल दिगम्बर जैन मन्दिर, उदयपुर,
गुटका नम्बर ३७६, पत्र संख्या २२, लिपिकाल
संवत् १७८७।

१. प्राप्ति स्थान : श्री अग्रवाल दिगम्बर जैन मन्दिर, उदयपुर, वेष्ठन संख्या २२४, पत्र संख्या ४०।

लिए) उनके पास आता है। पर रानी एवं पुत्रों के मोह के कारण सगर चौथे आश्रम मे वैराग्य लेने की बात कहता है। एक बार पुनः मणिकुण्डल अपने मित्र राजा सगर को सम्बोधने के लिए राज-भवन में युवा मुनि के रूप में पहुंचता है, लेकिन सफलता नहीं मिलती। मणिकुण्डल विचारता है कि अभाव वियोग एवं कष्ट के बिना वैराग्य नहीं होता।

एक बार अष्टापद पर्वत (कैलाश) पर भगवान आदिनाथ के जिनालय की रक्षा के लिए आये हुए राजा सगर के साठ हजार पुत्रों को मणिकुण्डल ने भयंकर सर्प के रूप में आकर विष द्वारा सबको मूर्च्छित कर देता है और फिर ब्राह्मण का रूप बना कर सगर को उसके पुत्रों की यह घटना सुनाता है जिससे राजा सगर दुःखी हो वैराग्य ग्रहण कर लेता है। साथ ही सभी पुत्र वैराग्य ले लेते हैं और सब मोक्ष प्राप्त करते हैं। सगर का पोता भागीरथ शासन सम्भालता है। अन्त में राजा भागीरथ को भी वैराग्य हो जाता है। भागीरथ की तपस्या से प्रभावित हो देवगण प्रासुक जल से भागीरथ मुनि का अभिषेक करते है। उनके इस गंधोदक से सभी अपना शरीर पवित्र करते है। उस जल की महिमा को देख, उसे भागीरथ गंगा का नाम दिया जाता है। गंगा के किनारे भागीरथ के निर्वाण महोत्सव के कारण गंगा को तीर्थ कहा गया है। राजा सगर का जन्म तीर्थंकर अजितनाथ के इक्ष्वाकुवंश में होने के कारण इनकी कथा अजितनाथ के चरित्र के साथ भी दी गई है। इस कथा-रास की पद्य संख्या १४७ है।

२१. गौतमस्वामी रास[1]

इस रास में भगवान महावीर स्वामी के प्रथम एवं प्रमुख शिष्य इन्द्रभूति गौतम गणधर के पूर्व भव एवं वर्तमान जीवन का आख्यान चित्रित हुआ है। रास का पूर्वार्द्ध भाग इन्द्रभूति गौतम के पूर्वभव से सम्बन्धित है, जिसमे बताया गया है कि पूर्व भव मे लब्धि विधान व्रत (भाद्र शुक्ला १, २ और ३) का पालन करने से गौतम को वर्तमान भव में उच्च पद मिलता है और अपने समय का वह श्रेष्ठतम विद्वान् बनता है।

रास के उत्तरार्द्ध में इन्द्र गौतम से उसकी विद्वत्ता की परीक्षा करता है और महावीर स्वामी के समवशरण में आकर उसका ज्ञान-मद भंग करता है। अनुपम

---

१ प्राप्ति स्थान : आमेर शास्त्र भण्डार, महावीर भवन, जयपुर, वेष्टन संख्या २८८, गुटका नम्बर ५०, लिपिकाल सम्वत् १७६२।

समवसरण में महावीर के अतिशय उत्तंग मानस्तम्भ को देखने मात्र से इन्द्रभूति गौतम की सारी शंका दूर हो जाती है और महावीर की अमृतमयी वाणी को धारण करने वाले प्रथम गणधर बन जाते हैं। रास मे कवि ने लब्धि विधान व्रत के पालने से इन्द्रभूति गौतम को गणधर एवं सिद्धपद की प्राप्ति मानी है। गौतम के चरित्र के माध्यम से लब्धि-विधान व्रत का माहात्म्य दिखाया है। इसीलिए रास के अन्त में रचना को 'लब्धि-विधान कथा' भी कहा है। रास मे कुल १३२ पद्यों का प्रयोग हुआ है। रास का प्रारम्भ-वस्तु एवं अन्त दूहे मे हुआ है। रास मे दूहा, चौपाई के अतिरिक्त भास-जसोधरी, वीनतीनी, अंबिकानी, आनन्दानी, माल्हन्तडानी आदि भासों का भी प्रयोग हुआ है।

२२. भद्रबाहु रास[1]

भद्रबाहु रास मे ब्रह्म जिनदास ने भगवान महावीर के पश्चात् होने वाले पंचम एवं अन्तिम श्रुत केवली भद्रबाहु स्वामी के चरित्र का आख्यान वर्णित किया है। रास के प्रारम्भ मे सोम शर्मा की पत्नी सोमश्री से भद्रबाहु के जन्म एवं बाल्य-काल का वर्णन हुआ है। गुरु गोवर्द्धन से भद्रबाहु शिक्षित होते हैं और उन्ही से दीक्षित होते हैं तथा उनके बाद वे ही गच्छ के नायक होते है। भद्रबाहु पाटलीपुत्र मे चन्द्रगुप्त के १६ स्वप्नो के फल बताते है। १२ वर्षीय दुर्भिक्ष काल मे चन्द्रगुप्त सहित वे दक्षिण की ओर चले जाते है। ये जैन धर्म की परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखते हैं, दुर्भिक्ष काल में जो दक्षिण की ओर नही गए उनकी धार्मिक क्रिया मे, शैथिल्य आ जाता है। परिणामस्वरूप जैन शासन मे भेद हो जाता है। विक्रमादित्य राजा के बाद ही श्वेताम्बर मत प्रकट होता है।

रास में कुल १७८ पद्य हैं। रास के उत्तरार्द्ध के पद्य स्पष्ट नही हैं। रास का प्रारम्भ एव अन्त वस्तु से है। रास मे कही भी भट्टारक भुवनकीर्ति का उल्लेख नही है। अतः यह रचना कवि की प्रारम्भिक रचनाओ मे से हो सकती है।

२३. समकित अष्टांग कथा रास[1]

यह रास सम्यक्त्व के आठ अंगों पर आधारित, आठ कथाओ मे विभक्त है।

---

१. प्राप्ति स्थान : श्री अग्रवाल दिगम्बर जैन मन्दिर, उदयपुर, वेष्ठन संख्या १८८ पत्र संख्या ११।

१. प्राप्ति स्थान : श्री सम्भवनाथ दिगम्बर-जैन मन्दिर, उदयपुर, वेष्ठन संख्या १६६, पत्र संख्या ५५, पाडुलिपि के अक्षर सुन्दर है। विशेष स्थानों पर लाल स्याही भी प्रयुक्त हुई है।

सम्यक्त्व के आठ अंग हैं — निश्शंकित, निःकांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढ़, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना। प्रत्येक अंग की पुष्टि के लिए पृथक-पृथक कथाएँ दी गई हैं। अंजना की निश्शंकित अंग कथा, अनन्तमति की निःकांक्षित अंग कथा, राजा उदयन की निर्विचिकित्सा अंग कथा, रेवती रानी की अमूढ़ अंग कथा, जिन भक्त साहू की उपगूहन अंग कथा, वारिषेण मुनि की स्थितिकरण अंग कथा, विष्णुकुमार मुनिराज की वात्सल्य अंग कथा और वज्रकुमार मुनि की प्रभावना अंग कथा को कवि ने रास रूप प्रदान किया है। इन कथाओं के माध्यम से कवि ने सम्यक्त्व के गुणो का वर्णन किया है। सम्यक्त्व की प्राप्ति के लिए इन गुणों का जीवन मे आचरित होना आवश्यक है। रास की आठो कथाएँ अपने-आप मे पृथक अस्तित्व भी रखती है। रास का प्रारम्भ एवं अन्त वस्तु छन्द में हुआ है। रास में न तो रचनाकाल और न ही लिपिकाल का उल्लेख है। पूरे रास मे ८८६ छन्दो का प्रयोग हुआ है।

२४. सासर वासा को रास[1]

पुत्री के ससुराल मे निवास की घटना को कवि ने रास संज्ञा प्रदान की है। कवि ने राजकुमारी रेणुकी को उसके भ्राता मुनि से यह उपदेश दिलवाया है—बहिन, तुम सम्यक् आचरणपूर्वक ससुराल मे निवास करो। शील रूपी साडी, ज्ञान रूपी कांचली और अमृत समान जिनवाणी का निर्मल हार सदैव धारण करो। सद्गुरु की आज्ञा को मुकट समान मानो।

यह आख्यानपरक रास गृहस्थ जीवन मे सम्यक् धर्म की आवश्यकता एव महत्ता प्रतिपादित करता है। कवि ने इसकी कथा का आधार सुभौम चक्रवर्ती के प्रसग से लिया हैं। गृहस्थ मे रहता हुआ भी मानव स्वधर्म का पालन कर सकता है। रास मे १८५ पद्यो का प्रयोग हुआ है।

२५. होली रास[2]

इस रास मे कवि ने होली की मनोरंजक कथा दी है। कवि के अनुसार

१. प्राप्ति स्थान . श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर, जयपुर, वेष्ठन संख्या १६२, पत्र संख्या १३।

२. प्राप्ति स्थान : श्री दिगम्बर जैन मन्दिर तेरह पंथियों का, जयपुर, वेष्ठन संख्या २६५२, गुटका नम्बर २५५, पत्र संख्या ६९-७६, लिपिकाल संवत् १६४३।

चतुर्थ काल में (सतयुग में) फाल्गुन पूर्णिमा को बसन्त खेला जाता था। रास, भास, कवित्त, फाग व गीत गाये जाते थे। भव्य-जन जिनालयों में पूजन करते थे। धर्म-कथाएँ होती थीं। यही होली ठीक है। आज कल की होली के स्वरूप प्रचलन को कवि ठीक नहीं मानता। इस आख्यान रास में १४८ पद्य हैं।

२६. महायक्ष विद्याधर कथा[1]

इस लघु कथा में महायक्ष विद्याधर के वैराग्यमय आख्यान को निबद्ध किया गया है। किसी समय कमल में मरे हुए भ्रमर को देख कर विद्याधर विचार करता है कि घ्राणेन्द्री के कारण भ्रमर, नेत्रेन्द्रिय के कारण पतंग, जिह्वा इन्द्री के कारण मच्छर, श्रवणेन्द्रिय से कुरंग अपना जीवन गंवाते है। एक इन्द्रिय मे ही वशीभूत होने से जीव इतना महान कष्ट पाता है तो जो पंचेन्द्रियो के भोग में रमे रहते हैं, उन्हें सुख कैसे मिल सकता है? यह विचारता हुआ वह ससार से वैराग्य लेकर तप-ज्ञान के अभ्यास से सिद्ध पद को पाता है। इस लघु कथा के द्वारा वैराग्य भावना की अच्छी पुष्टि हुई है। कथा की छन्द संख्या ६५ है।

२७. धर्म परीक्षा रास[2]

इस रास में वास्तविक धर्म का मर्म बताया गया है। कवि का कथन है कि जिस प्रकार कनक, रत्न और माणिक की परीक्षा की जाती है, उसी प्रकार धर्म की भी परीक्षा करके ही उसे ग्रहण किया जाना चाहिए। रास मे मनोवेग और पवनवेग दो प्रमुख पात्र हैं। मनोवेग शुद्ध आचरण वाला है और पवनवेग सन्मार्ग से भटका हुआ है। मनोवेग पवनवेग को कथाओ के माध्यम से मिथ्यात्व मार्ग से हटा कर उत्तम मार्ग पर लाता है।

रास में दूहा, चौपई, भास तथा वस्तु छन्द का प्रयोग हुआ है। कुल छन्द संख्या ५७५ है। रचना काल नहीं दिया गया है। रास का प्रारम्भ वस्तु छन्द में १५वें तीर्थंकर भगवान धर्मनाथ की वन्दना से हुआ है। समाप्ति दोहे में है।

---

१. प्राप्ति स्थान : श्री खण्डेलवाल दिगम्बर जैन मन्दिर, उदयपुर, वेष्टन संख्या १८, पत्र संख्या ५।

२. प्राप्ति स्थान : श्री अग्रवाल दिगम्बर जैन मन्दिर, उदयपुर, गुटका नम्बर ४०, पत्र संख्या १३५–१६२, लिपिकाल सम्वत् १६४४, लिपिस्थान गिरपुर आदिनाथ चैत्यालय प्रतिलिपि में ग्रन्थ की श्लोक संख्या ५७५ लिखी है परन्तु गिनने पर ४५४ ही मिलती है।

२८. बंकचूल रास[1]

यह कृति अधूरी मिली है। इसमें 'बंक चूल' का आख्यान है। जिसमें सम्यक्त्व के नियमों के पालन से देवगति प्राप्त की गई है। रास का प्रारम्भ वस्तु छन्द से है।

२९. रविव्रत कथा[2]

इस कथा मे रविव्रत कथा का महात्म्य बताया गया है। आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष में रविवार को विधिपूर्वक व्रत करने से एवं पार्श्वनाथ जिनदेव की पूजा से दुःख दारिद्र्य दूर होता है। कथा मे कुल ४६ पद्य हैं। रविवार का व्रत पालने से देवी पद्मावती एक बालक पर प्रसन्न होती है। राजा अपनी कुमारी से उसका विवाह करता है और परिजन भी उसको चाहने लगते हैं। यह सब उस बालक के पार्श्वजिन की सेवा-भक्ति और रविव्रत पालन का माहात्म्य है। कृति में रचना काल नही दिया गया है।

३०. पुष्पांजलि रास[3]

पुष्पाजंलि व्रत का महात्म्य प्रदर्शित करना, इस रास मे कवि को अभीष्ट है। रास के पूर्वार्द्ध मे राजा रत्नशेखर के जन्म, शिक्षा, क्रीड़ा, यात्रा, विवाह आदि का अतिशय वर्णन हुआ है। राजा रत्नशेखर अपने पूर्वभव मे पुष्पांजलि व्रत के पालने से इस जन्म मे अतिशय सुख सामग्री को पाता है।

रत्नशेखर अपनी पत्नी मदनमजूषा सहित इस जन्म मे भी पुष्पांजलि व्रत का पालन करता है। जिसके फलस्वरूप मदनमंजूषा स्त्री योनि से देव बनती है और रत्नशेखर सिद्ध पद को प्राप्त करता है। कवि ने रास मे पुष्पाजलि व्रत की विधि दी

---

१. प्राप्ति स्थान . आमेर शास्त्र भण्डार, महावीर भवन, जयपुर, वेष्ठन संख्या २८८, गुटका नम्बर ५०, पत्र संख्या १००–१०३, अपूर्ण।

२. प्राप्ति स्थान · श्री आदिनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर, शास्त्र भण्डार, डूंगरपुर, गुटका नम्बर ३५५, पृष्ठ संख्या ४१० से ४४६ ; श्री अग्रवाल दिगम्बर जैन मन्दिर, उदयपुर, शास्त्र भण्डार, वेष्ठन संख्या १३, लिपिकाल सम्वत् १७३४।

३. प्राप्ति स्थान श्री आमेर शास्त्र भण्डार, महावीर भवन, जयपुर, वेष्ठन संख्या २८८, पत्र संख्या १४ से २६, गुटका नम्बर ५०, लिपिकाल संवत् १७६२।

है । यह व्रत भाद्रपद शुक्ला पचमी से नवमी तक पांच दिन तक उपवास, पूजा, स्वाध्याय, संयम और दान-महोत्सव आदि क्रियाओं से सम्पन्न होता है । यह व्रत पांच वर्ष तक करना होता है ।

१३४ छन्दो मे निबद्ध इस रास मे दूहा, वस्तु, भास रासनी, बीनतीनी, जसोधरनी, सहेलीनी आदि का प्रयोग हुआ है । रास का प्रारम्भ दूहे से है जिसका अवसान वस्तु मे हुआ है । रचनाकाल नही है ।

३१. आकाश पंचमी कथा[1]

इस कथा मे दु ख से छुटकारा पाने के लिए आकाश पचमी का व्रत करने का विधान कहा गया है । यह व्रत भाद्रपद शुक्ला पचमी को उपवास, पूजा, स्वाध्याय, दान आदि से पूरा होता है । पाच वर्ष तक विशाला ने यह व्रत किया । धर्म ध्यानपूर्वक मर कर वह चौथे स्वर्ग मे मणिभद्र नामक देव बना । देव योनि मे भी जिन पूजा करने मे उसने उज्जैन के राजा के यहा जन्म लेकर सयम धारा और ध्यान, बल से कर्मों का छेदन कर केवल ज्ञान प्राप्त किया । भव्य जीवो को सम्बोध कर मुक्ति प्राप्त की । यह सब आकाश पचमी व्रत करने से ही हुआ ।

कवि ने इस कथा रास के अन्त मे वस्तु छन्द मे प्रथम पंक्ति मे केवल सकलकीर्ति को ही दो बार प्रणाम किया है । सम्भवत. सकलकीर्ति की प्रेरणा से इस कथा को रास रूप मे रचा है । कथा का प्रारम्भ व अन्त वस्तु छन्द मे है । कुल ९४ छन्दो का प्रयोग हुआ है ।

३२. चन्दनषष्ठी कथा रास[2]

इस रास मे वाराणसी के राजा सूरसेन एव उसकी रानी पद्मिनी द्वारा पूर्वभव मे भाद्रपद कृष्णा षष्ठी को छ वर्ष तक उपवास एव चन्द्रप्रभु स्वामी की पूजा करने पर इस जीवन मे सभी सुखपूर्ण सामग्री के उपभोग करने की कथा दी गई है । पद्मिनी द्वारा अपने पूर्व भव मे अपवित्र शरीर से मुनि को दान देने से उसे कुष्ट रोग

---

१. प्राप्ति स्थान श्री आमेर शास्त्र भण्डार, महावीर भवन, जयपुर, वेष्ठन सख्या २८८, गुटका नम्बर ५० ।

२. प्राप्ति स्थान आमेर शास्त्र भण्डार, महावीर भवन, जयपुर, वेष्ठन सख्या २८८, पत्र सख्या ३५—४३, गुटका नम्बर ५० ।

हो जाता है, जो इस भव में चन्दन षष्ठी व्रत के पालने से दूर होता है। इस कथा रास में इस व्रत की विधि बतलायी गयी है। रास में कुल ८२ छन्दों का प्रयोग हुआ है।

३३. मौड़ सप्तमी रास[1]

श्रावण शुक्ला सप्तमी को सात वर्ष तक विधिपूर्वक आरम्भ रहित (निराकुल) होकर उपवास करने से श्रेष्ठि-पुत्री जिनमति और माली की पुत्री वनस्पति एक ही राजा की विधि शेषरी और युगत शेषरी नाम की पुत्रियां होती हैं। राज पुत्रियों के भव से दोनों ही साथ-साथ उक्त व्रत के आचरण से अगले जन्म में अच्युत स्वर्ग में (स्त्री लिंग का विनाश कर) इन्द्र, प्रति-इन्द्र बनते हैं। स्वर्ग में भी सम्यक्त्व के पालन और जिन भक्ति के प्रभाव से वे ध्यान बल से कर्मों के बन्धन काट कर इस असार संसार के आवागमन से मुक्त होंगे।

कवि के अनुसार मौड (मुकट) सप्तमी का यह व्रत साक्षात धर्म का भण्डार है। ६९ छन्दों वाली इस कथा को दूहा, वस्तु और भास में रास रूप प्रदान किया गया है। मुकट सप्तमी व्रत का माहात्म्य कथा के माध्यम से बतलाना इस रास का मुख्य उद्देश्य है। रास का प्रारम्भ वस्तु से है तो समाप्ति दूहे में होती है।

३४. निर्दोष सप्तमी कथा रास[2]

पूर्व भव में भाद्रपद शुक्ला सप्तमी को सात वर्ष पर्यन्त विधिपूर्वक उपवास, नहवण, पूजा, आराधना और दान महोत्सव आदि करने से सेठ अर्हदास की पत्नी रूपलक्ष्मी के घर सदा सुख व आनन्द मगल रहता है। दुःख से वह अपरिचित ही रहती है। पड़ौसिनी नन्दा के घर होने वाले शोक को भी वह आनन्द ही समझती है और अपने घर में भी दुःख मंगाने पर जब नन्दा उसके घर घट में सर्प रख कर भेजती है तो वह सर्प भी पूर्व भव में उसके द्वारा निर्दोष सप्तमी व्रत के सम्यक् आचरण से देदीप्यमान रत्नजड़ित हार बन जाता है। इस घटना से सभी विस्मित होते हैं और उसके 'आर्जव धर्म' की प्रशंसा करते हैं।

---

१. प्राप्ति स्थान : आमेर शास्त्र भण्डार, महावीर भवन, जयपुर, वेष्ठन संख्या २८८, पत्र संख्या ४३–४८, गुटका नम्बर ५०।

२. प्राप्ति स्थान : आमेर शास्त्र भण्डार, महावीर भवन, जयपुर, वेष्ठन संख्या २८८, पत्र संख्या ४८–५६, गुटका नम्बर ५०।

उक्त व्रत के सम्यक् पालन से ही रूप लक्ष्मी जीव अगले भव में स्त्री-योनि से देव-योनि में जाता है। फिर वह मनुष्य भव से संयम साध कर मुक्ति के अचल एवं अनन्त सुख को प्राप्त करता है।

कथा में रात्रि भोजन का निषेध किया गया है। इसका पालन न करने से नन्दा का पुत्र रात्रि को सर्प का जहर मिश्रित दूध को पीने से मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। रास में कथा का आधार लेकर निर्दोष सप्तमी व्रत का माहात्म्य बतलाया गया है।

८५ छन्दों में बद्ध इस कथा को वस्तु, भास, दूहा, चौपई के प्रयोग से रास रूप दिया गया है। कवि ने अपनी अन्य कथा रासों की भांति इसमे भावान्तर कथा नहीं दी है। व्रत के उद्घाटन से पूर्व ही उसका प्रभाव प्रदर्शित किया गया है। नन्दा और रूपलक्ष्मी के पद्यमय संवादों मे स्वाभाविकता एव रोचकता है। रास का प्रारंभ वस्तु और समाप्ति दोहे में है।

३५. अक्षय दशमी रास[1]

इस रास में अक्षय दशमी व्रत की महिमा बतायी गयी है। राजगृह नगर की रानी श्रीमती सन्तानहीन होने से सदा दुःखी रहती है। राजा के पूछने प॰ सद्गुरु बताते है कि पूर्व जन्म में श्रीमती के जीव ने मुनि के आहार निमित्त लाये हुए आम्र-फल को लोभवश अपने लिए रख लिया एवं पति से असत्य भाषण किया। फलस्वरूप उसे वर्तमान में मनुष्य भव तो मिल गया है पर वह पुत्रहीन ही रह गयी है। फल-दान न करने के कारण वह फलहीन ही रही। फिर मुनि उसे अक्षय दशमी व्रत पालने को कहते हैं। श्रावण शुक्ला दशमी को इस व्रत के विधिपूर्वक दस वर्ष तक पालने से रानी को सात पुत्रों एव पांच पुत्रियों की प्राप्ति होती है।

कवि के अनुसार यह अक्षय दशमी का व्रत मनोवांछित सुख-सौभाग्य, धन-धान्य, तुरंग, लक्ष्मी, यश, कामदेव के सदृश लीलावत एवं सुशील पुत्रो का दाता है। कवि ने इस व्रत के माहात्म्य की पुष्टि के लिए एक अन्य पुत्रवती का भवांतर भी मुनि से कहलाया है। रास का प्रारम्भ वस्तु से है तो अवसान दूहे में होता है। रास में रचनाकाल नहीं दिया गया है। इसमे ८९ छन्द हैं।

---

१. प्राप्ति स्थान : श्री आमेर शास्त्र भण्डार, महावीर भवन, जयपुर, वेष्ठन संख्या २८८, पत्र संख्या ७९—८७, गुटका नम्बर ५०।

३६. दसलक्षण व्रत कथा रास[1]

राजगृही के राजा श्रेणिक के पूछने पर भगवान महावीर दसलक्षण व्रत की कथा कहते हैं। धर्म के दस लक्षण हैं — उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आंकिचन्य और ब्रह्मचर्य। भाद्रपद शुक्ला पंचमी से चतुर्दशी तक इन दस लक्षणों की विधिपूर्वक भक्ति-पूजा, उपवास, स्वाध्याय, चिन्तन, अनुशीलन, और दान आदि क्रियाओं से जीव को स्त्री-योनि से मुक्ति मिलती है। स्वर्ग में देव-गति मे स्वर्गीय सुख पाकर जीव पुनः उत्कृष्ट मनुष्य भव पाता है और अन्त में आत्म-साधना की उत्कट तपस्या से सदा-सर्वदा के लिए सांसारिक आवागमन से मुक्त हो स्थायी मुक्ति को प्राप्त करता है।

वस्तु, दोहा एवं भास आदि मे निबद्ध यह कथारास ८२ छन्द प्रमाण है। कथा में धर्म के दशलक्षण व्रत की पूरी विधि भी दी गई है। रास का आदि और अवसान दोनों ही वस्तु में हुये हैं। रास का रचना काल, रचना स्थल और लिपिका-स्थल आदि का उल्लेख नही किया गया है।

३७. सोलह कारण व्रत रास[1]

इस रास में सोलह कारण व्रत का माहात्म्य एवं उसकी विधि बतायी गयी है। अपने पूर्व भव मे राजपुत्री विशालाक्षी ने दिगम्बर साधु की निंदा की थी। राजा पुत्री पर कुपित हुआ और मुनि के शरीर को स्वच्छ किया। विशालाक्षी लज्जित हुई। उसने मुनि से क्षमा याचना की और आत्म-निन्दा की। गुरु-भक्ति की और तप किया। परन्तु फिर भी वह अपने अगले भव मे पुरोहित के यहा कुरूप पुत्री हुई। सच है किये हुए कर्म बिना भोगे नही छूटते। इस भव में वह मुनि की प्रेरणा से सोलहकारण व्रत का आचरण करती है। भाद्रपद मास की कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा से भाद्रपक्ष शुक्ला प्रतिपदा तक सोलह वर्ष तक, सोलह भावनाओं का अनुचिन्तन, जिनपूजा, एकान्तर उपवास, दान-महोत्सव आदि शुभकारी क्रियाओं के करने से वह

---

१. प्राप्ति स्थान : आमेर शास्त्र भण्डार, महावीर भवन, जयपुर, गुटका नम्बर १३, वेष्ठन संख्या २५१, पत्र सख्या १–१२।

२. प्राप्ति स्थान : अग्रवाल दिगम्बर जैन मन्दिर, उदयपुर, वेष्टन संख्या २६ पत्र संख्या ८।
(२) आमेर शास्त्र भण्डार, महावीर भवन, जयपुर, वेष्ठन संख्या २८८, पत्र संख्या ९३–१००, गुटका नं० ५०।

स्त्रीलिंग का छेद कर देवगति को प्राप्त करती है और पुन; मनुष्य जन्म में संयम स्वीकार कर वह आवागमन से मुक्ति पाती है। रास में कवि ने सोलह भावनाओं की व्यवस्था की है—ये १६ भावनायें हैं—

दर्शन, विनय, शील, ज्ञानाभ्यास, वैराग्य, त्याग, तप, साधु समाधि, वैयावृत्य, अर्हन्त भक्ति, आचार्य भक्ति, बहुश्रुत भक्ति, प्रवचन भक्ति, आवश्यकापरिहाणि, प्रभावना और वात्सल्य। रास ८७ छन्द प्रमाण है। रचना काल, स्थान, लिपिकाल नही दिया गया है। रास का आरम्भ वस्तु और अन्त दूहा से है।

३८. अनन्तव्रत रास[1]

इस रास में भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशी के अनन्तव्रत का महात्म्य बताया गया है। भाद्रपद मास की शुक्ल पक्ष की एकादशी से त्रयोदशी तक एकासन और चतुर्दशी को उपवास का व्रत विधिपूर्वक करने से सोम शर्मा ब्राह्मण और सोमा ब्राह्मणी का दु ख दारिद्रय दूर हो गया और अनन्त जिनेश्वर की पूजा से अगले भव में वे राजा-रानी बने। इसी व्रत के पालन से वे अनन्त सौख्य पद को प्राप्त करेंगे।

रास में वस्तु, चौपाई, दूहा, भास आदि छन्दो का प्रयोग हुआ है। रास की कुल छन्द सख्या १२५ है। वस्तु छन्द मे अनन्त जिनेश्वर की स्तुति से इस रास का आरम्भ होता है और समाप्ति भी वस्तु मे ही होती है।

रास मे रचनाकाल, स्थान, लिपि सख्या आदि का कही भी उल्लेख नही हुआ है।

३९. पुरन्दर विधान कथा[2]

इस कथा मे एक दरिद्र ब्राह्मण विष्णु भट्ट के दारिद्रय दूर होने की कथा दी गई है। विष्णुभट्ट ब्राह्मण अपने दारिद्रय से दु खी होकर अर्द्ध रात्रि को घर छोड़कर निकल जाता है। किसी नन्दनवन मे वह पहुचता है। वहा सद्गुरु के उसे दर्शन होते हैं। वह उनसे शीलव्रत, सयम, जीवदया, सत्य, अचौर्य और अपरिग्रह

---

१. प्राप्ति स्थान : श्री राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर
गुटका ग्रन्थ संख्या ४९१४, पत्र सख्या २१२–२१८

२. प्राप्ति स्थान : श्री आमेर शास्त्र भण्डार, महावीर भवन, जयपुर
वेष्टन सख्या २८८, पत्र सख्या ६६–७६, गुटका नम्बर ५०

आदि के व्रत ग्रहण करता है। देवपूजा, गुरुपूजा, उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान आदि षट् कर्मों को पालने लगता है। अन्त में गुरु उसे पुरन्दर विधान करने का उपदेश देते हैं जिसके अनुसार वह प्रत्येक शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से अष्टमी के आठ दिन तक तीनों समय देव. शास्त्र और गुरुकी पूजा करता है। सम्यक्त्व ग्रहण करता है और मिथ्यात्व छोड़ता है। जिन यात्रायें करता है। इस प्रकार वह अपना जन्म सफल करता है। ब्राह्मण की इस भक्ति से हेमप्रभ राजा प्रसन्न होता है और उसे लक्ष्मी से भरपूर कर उसका दारिद्र्य दूर करता है। पुरन्दर विधान व्रत के आचरण से न केवल विष्णुभट्ट की दरिद्रता ही दूर होती है अपितु उसका पारलौकिक जीवन भी सुखी और स्वर्णिम बनता है।

श्रेणिक राजा की विनती पर अपने समवशरण मे महावीर स्वामी इस कथा का उद्घाटन, करते हैं। पुरन्दर विधान का माहात्म्य सिद्ध करने के लिए विष्णुभट्ट की कथा को आधार बना कर मानव मात्र को सदाचरण की ओर उन्मुख होने की प्रेरणा दी गई है। कथा के १४२ छन्दों में वस्तु, भास जसोधरनी, भास बीनतीनी, दूहा, भास अंबिकानी. भास चौपाईनी, भास रासनी, भास तीन चोबीसीनी, भास सहीनी आदि का प्रयोग हुआ है। कथा का प्रारम्भ और अन्त 'वस्तु' से किया गया है।

४०. जेष्ठ जिनवर पूजा कथा[1]

इस पूजा कथा मे जिनवरों में ज्येष्ठ-आदिनाथ भगवान की पूजा का महात्म्य बताया गया है। जिनपूजा के निर्मल भाव से और उसके (पूजाके) लिये कुम्भदान से कुम्भकार का जीव अगले भव मे लोकपाल राजा बनता है। जिन पूजाभिषेक के प्रतिदिन के नियम पालने से श्रेष्ठीपुत्री सुमति का जीव अगले जन्म में स्त्रीलिंग छेदकर गुणपाल नामक राजकुमार होता है और प्रतिदिन जिन मन्दिर मे पानी का एक घड़ा रखने के शुभकर्म से ब्राह्मण-पुत्री सोमा जीव अपने अगले भव में लोकपाल राजा की जिनमति नामकी पुत्री होती है। इस पूजा कथा के माध्यम से कवि एक नीति प्रस्तुत करता है जो अपने धार्मिक कर्म में मनसा, कायिक-वाचिक आस्थावान होता है वह उत्कृष्ट गति, उत्तम पुरुष या देव गति को प्राप्त करता है।

---

१. प्राप्ति स्थान : आमेर शास्त्र भण्डार, महावीर भवन, जयपुर, वेष्ठन संख्या २८८ पत्र संख्या ५६–६६, गुटका नम्बर ५० ।
श्री दिगम्बर जैन मन्दिर तेरापन्थी, जयपुर, वेष्ठन संख्या २५६० गुटका नम्बर २५५ ।

कथा कुल १२१ छन्दों में गूंथी गयी है। यहां पर्याप्त रोचकता है। दूहा, पाई, भासों में प्रयुक्त इस कथा का प्रारम्भ एवं अन्त दूहे से होता है।

१. मालिणी पूजा कथा[1]

इस कथा में माली-पुत्रियों की पूजा भावना की महिमा दर्शायी गई है। कथा र इस प्रकार है—

किसी वन माली के कुसुमावली और पुष्पावली दो पुत्रियां थीं। वन में कर वे तरह-तरह के पुष्प चुनती और माला बनाती। पुष्प और मालायें बेचने जिन मन्दिर में जाती। श्रावक-श्राविकायें उन फूल मालाओं को देख आनन्दित ते और इन्हें खरीद कर भक्ति-भावना से पूजा मे रत रहते। उनकी पूजा-भक्ति वना से दोनों माली बालाएं बड़ी प्रभावित हुई। कुसुमावली ने अपनी बहिन से नवरदेव, निर्ग्रन्थ गुरु और जिनवाणी की महिमा का जिक्र किया और उसने यं ने भी प्रतिदिन पांच-पांच फूलों से भगवान की भक्ति का नियम लिया।

एक बार जब वे वनमें पूजा के लिये फूल चुन रही थी कि उन्हें सर्प ने डस या। पूजा भावना से वे दोनों मरकर सौधर्म स्वर्ग में इन्द्राणियां हुई। इन दोनों न कोई तप किया न ही शील पाला : मात्र पूजा के शुद्ध भाव से ये स्वर्ग मे द्राणी बनीं।

कवि के शब्दों मे—इस पूजा कथा को जो पढ़ता है, सुनता है और आचरण रता है। मन में पूजा का भाव धारण करता है, उसके घर नव निधियां रहती है र धर्म की वृद्धि होती है।

सारी कथा वस्तु, दूहा, भास के ५५ छन्दों मे निबद्ध है। वस्तु से प्रारम्भ दूहे अन्त है।

२. मेंढकनी पूजा कथा[2]

इस कथा में मेंढक की पूजा भक्ति का प्रभाव वर्णित हुआ है। राजगृह

---

1. प्राप्ति स्थान : श्री दिगम्बर जैन मन्दिर बैराठियों का, जयपुर, वेष्ठन संख्या पत्र संख्या १६५–१६८, गुटका नम्बर २।
2. प्राप्ति स्थान : श्री खण्डेलवाल दिगम्बर जैन मन्दिर, उदयपुर, वेष्ठन संख्या १८ पत्र संख्या ६।

इसकी अन्य प्रति जयपुर के बड़े मन्दिर के शास्त्र भण्डार, आमेर के शास्त्र भण्डार, जयपुर एवं बैराठियो के मन्दिर. जयपुर में भी सुरक्षित हैं।

नगरी में तीर्थंकर महावीर के समवशरण में नगर के सभी लोगों को जाता देख मेंढक भी मुख में कमल लेकर उसकी वन्दना को चल देता है। पर मार्ग में ही वह राजा श्रेणिक के हाथी के पांव तले आकर मरण को प्राप्त होता है। भगवान के पूजा के भाव से मर कर वह स्वर्ग में देव बनता है। कथा ६९ छन्द प्रमाण है।

४३. लुब्धदत्त विनयवती कथा[1]

इसमें लोभी पति लुब्धदत्त और दानशील पत्नी विनयवती की कथा है। लुब्धदत्त के लोभी स्वभाव का चित्रण बड़ा ही सुन्दर हुआ है। लुब्धदत्त के घर अपार धन है। धन की सुरक्षा के लिए वह नाना प्रकार के साधन अपनाता है। लेकिन दान की भावना से वह कोसों दूर रहता है। उसकी पत्नी विनयवती धर्मानुरागिणी है। वह दान, दया और धर्म में श्रद्धा रखने वाली है। वह पति को बहुत समझाती है कि दान देने से यश मिलता है और जन्म सफल होता है। जो धन को बन्धन में रखते है वे मर कर काले सर्प बनते हैं। जिस प्रकार चन्द्रमा के बिना रात्रि, पानी के बिना नदी शोभा नही देती, पुरुष बिना नारी, शील बिना स्त्री शोभा नही देती उसी प्रकार दान बिना लक्ष्मी भी शोभित नहीं होती। जिस प्रकार बिना नाली के सरोवर का पानी गन्दा रहता है, नया पानी नही आ सकता, बिना निसार के वह फूट जाता है, उसी प्रकार गृहस्थाश्रम दान पूजा से ही शोभित होता है। इस प्रकार विनयवती पति को दान-धर्म के लिए प्रेरित करती है, लेकिन जैसे-जैसे धन मे वृद्धि होती है, वैसे-वैसे लुब्धदत्त अति लोभी और अति कृपण बन जाता है। पत्नी को धर्म, कर्म, दर्शन के लिए मना कर देता है। घर जीमते हुये माता-बहिन और भाई बहिन को निकाल देता है और स्वय व्यापार के लिए बाहर चला जाता है : पीछे से विनयवती दान-धर्म करती है, जिसके प्रभाव से उसके घर सम्पदा व सुख होते हैं। विनयवती निकाले हुए मां, बहिन और भाई को पुनः आश्रय देती है। चारण मुनियों व मुनि आहार दान देती है, जिसके प्रभाव से उसके घर में रत्नों की वृष्टि होती है। वह जिनालयो का निर्माण कराती है, दीन-दु:खियों का मान करती है और यश पाती है। लुब्धक जब लौटकर आता है, चारों ओर वैभव देखता है। घर आता है तो उसे धन नही मिलता है। धन के स्थान पर जिन बिम्ब देखकर मन्दिर में गुरु से कुपित होता है। सद्गुरु उसे जिन धर्म-दान के प्रभाव को दिखाने के लिए वाराणसी नगरी भेजते हैं। वहां जाकर वह मुनि के कहने से गर्भवती रानी

---

१. प्राप्ति स्थान : श्री खण्डेलवाल दिगम्बर जैन मन्दिर, उदयपुर
वेष्ठन संख्या १६, पत्र संख्या ६, लिपिकाल सम्वत् १८२८

पर णमोकार सिखलाता है, णमोकार का, स्तवन करता है जिससे रानी पुत्र-पुत्री को जन्म देती है। राजा रानी के चिरकाल की आशा पूर्ण होती है। वे लुब्धक का सम्मान करते हैं। इससे लुब्धक धर्म व व दान की महिमा से प्रभावित होता है। अन्त में वह वैराग्य धारण करता है। पत्नी भी साध्वी बन जाती है। स्त्रीलिंग से देव बनती है। लुब्धक मुनि सिद्ध होंगे। इस प्रकार रास मे कवि लोभी लुब्धक के माध्यम से संसार में दान की महिमा की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करता है। इस कृति का अन्य नाम ,दान फल कथा रास' भी है। कथा मे २०० छन्द हैं।

४४. सुकान्त साह की कथा[1]

इस कथा में सुकान्त साह द्वारा मुनि को आहार-दान और उसकी महिमा का चित्रण हुआ है। मुनि को शुद्ध निर्मल भाव से आहार देने से सुकान्त साह के यहाँ पंचाश्चर्य— पुष्प वृष्टि और रत्नवृष्टि होती है। ईर्ष्यालु नागदत्त सेठ उसके रत्नों को स्पर्श करता है सो वे रत्न पत्थर बन जाते हैं। राजा वस्तुपाल सुकान्त के दान की प्रशंसा करता है। कथा के उत्तरार्द्ध भाग में मातंग की शुक्ल पंचमी के व्रत पालने मे गहरी आस्था प्रकट की गई है। पंचमी व्रत के प्रभाव से उसका कुष्ठ रोग दूर नही होता, अपितु अगले भव में उसे यक्ष देव की गति मिलती है। अन्त मे संयम का पालन करने से उसे मुक्ति की प्राप्ति होती है। यह कथा दूहा और चौपाई के १५४ छन्दों मे बद्ध है।

४५. धनपाल रास[2]

धनपाल सेठ द्वारा सत् पात्र को दान देने से उसकी खोई हुई सम्पदा उसे पुन: प्राप्त हो गई। दान के प्रभाव से उसका यश फैला और स्वर्ग मे उसने अवतार लिया। यह कथा भी दान का माहात्म्य बतलाती है। इस कृति का दूसरा नाम धनपाल रास भी है।

---

१. प्राप्ति स्थान : श्री दिगम्बर जैन मन्दिर वैराठियों का, जयपुर
गुटका नम्बर २, पत्र संख्या २०६—२१५

२. प्राप्ति स्थान : श्री आमेर शास्त्र भण्डार, महावीर भवन, जयपुर
वेष्ठन संख्या १०१ पत्र संख्या ४—५
यह कृति अपूर्ण है।

४६. परमहंस रास[1]

यह रास एक आध्यात्मिक रूपक काव्य है। जिसमें परमहंस (शुद्ध स्वभावी आत्मा) के चरित्र का वर्णन हुआ है। परमहंस त्रिभुवन नगरी का राजा है। वह त्रिभुवन में निर्मल, निष्कलंक, गुणवन्त, जयवन्त और सहस्त्र नाम का धारी है। अतीत, अनागत और वर्तमान में जो जन्म, जरा और मृत्यु को परे अजर और अमर कहलाता है। निश्चय नय से वह त्रिभुवन में भी नहीं समाता, लेकिन व्यवहार में जो शरीर धारी हो ज्ञान और योग से ही जो गम्य है। पाषाण में सोने, गोरस में घृत, तिलों मे तेल, काष्ट मे अग्नि, कुसुम मे परिमल, रस मे नेह के सदृश शरीर में आत्मा निवास करती है। अनादि काल से अनन्त तक वह जीव नाम से कही जाती है। ,परमहस' उसी का आध्यात्मिक नाम है। यह परमहंस राजा त्रिभुवन में राज करता है। अनन्त गुणों से युक्त चेतना उसकी रानी है। ध्यान गुण के सदृश इनका मिलाप है। इनका परस्पर मिलन ही ध्यान है। चेतना रानी के सत्य, सुख, ज्ञान और चैतन्य ये चार पुत्र हैं। इन चारों से परमहंस और चेतना सदा सुशोभित रहते है।

किसी समय माया रमणी के कटाक्ष से परमहंस विचलित होने लगता है। चेतना पटराणी परमहंस को सचेत और समझाती है। परमहंस पर कुछ असर नही होता। वह माया के वशीभूत हो चेतना से अरुचि करता है। अपने शुद्ध स्वरूप को भूल कर परमहस, काया नगरी का राजा बहिरात्मा जीव मात्र रह जाता है। चेतना अपने पुत्रो सहित निकल जाती है।

अब माया रानी स्वच्छन्द होकर अपना जाल फैलाती है। बहिरात्मा परमहंस जीव को अपने वश कर लेती है। परमहंस उसका दास बनता है। माया प्राण वश पुत्रों को जन्म देती है। 'मन' सबसे बड़ा पुत्र है। मन की प्रवृत्ति और निवृत्ति दो स्त्रियां है। प्रवृत्ति से मोह और निवृत्ति से विवेक पुत्र पैदा होते हैं। मन अपनी स्वच्छन्द लीलाए करता है। परमहस पिता मन को पाप कर्म छोड़ने और शुभ कर्म

---

१. प्राप्ति स्थान : (१) श्री खण्डेलवाल दिगम्बर जैन मन्दिर, उदयपुर
वेष्ठन सख्या १६५, पत्र संख्या ३८, लिपिकाल सं० १८२६
(२) इसकी अन्य प्रति ऋषभदेव के भट्टारक यशकीर्ति सरस्वती भवन के वेष्ठन संख्या ११७ में संग्रहीत है। दोनों ही प्रतियां जीर्ण शीर्ण है।

के लिए कहता है। वह इसके लिए माया रानी को भी उपालम्भ देता है। माया रानी कुपित हो अपने बेटे मन से परमहंस को कारागार में बन्द करा देती है। तब परमहंस चेतना को याद करने लगता है।

अब मन राजा बन जाता है। परन्तु उसका पुत्र 'मोह' उन्मत्त और अज्ञानी होता है। विवेक उसे समझाता है कि तुम अपनी इन्द्रियों को वश में रखो। विवेक के बढ़ते हुए यश से मोह और उसकी मां प्रवृत्ति ईर्ष्या करने लगते है। मन–मोह और प्रवृत्ति के कहने से निवृत्ति रानी को निकाल देता है और विवेक को बन्दी बना लेता है।

निवृत्ति परमहंस के पास पहुंच कर सारी बात कहती है और अपने पुत्र विवेक के लिए निवेदन करती है। परमहंस तो स्वयं बन्दी है। वह निवृत्ति को चेतना के पास भेजता है। चेतना अपने पुत्र ज्ञान के माध्यम से संयोग को बुलाती है और उसे विवेक को बन्दी खाने से छुड़ाने के लिए भेजती है। संवेग कुमति के आश्रय से विवेक को छुड़ा लाता है।

निवृत्ति के चले आने पर प्रवृत्ति मन को समझा कर अपने पुत्र मोह को राज्य दिला देती है। 'मोह' के राजा बनते ही लोक मे सर्वत्र मोह की आज्ञा का पालन होता है। मोह राजा निर्ल्लज स्थान में 'अविद्या' नगर को बसाता है। पाप और अज्ञान मे वृद्धि करता है। विषयों का व्यापार चलाता है। तृष्णा की खाई, दुराचारी को शिष्य और चारों दुर्गति की पोल बनाता है। कुमति को पास रखता है। दुर्गति को रानी बनाता है। दुर्गति रानी से काम, राग और द्वेष ये तीन पुत्र और हिंसा, निद्रा और घृणा ये तीन पुत्रियाँ होती है। मिथ्या दर्शन मंत्री, सप्त व्यसन सदस्य, निर्गुण संगति, आलस्य सेनापति, छह पुरोहित और कुकवि रसोइया—ये मोह के परिवार हैं। काम, क्रोध, अज्ञान आदि अनेक सुभट उसके राज्य के संरक्षक है। लोभ उसका मामा, प्रमाद दोस्त, चोर अंगरक्षक और शीलहीन सेवक हैं।

निवृत्ति और विवेक प्रवचनपुर नगर के 'आत्माराम' उपवन में पहुंच विश्राम करते हैं। आत्माराम आश्रम के कुलपति विमलबोध विवेक के लक्षणों से प्रभावित होते है और अपनी सुमति नाम की पुत्री से विवाह कर देते हैं। विवेक और सुमति की अनुपम जोड़ी ही सम्यक्त्व रत्न से सुशोभित होती है। विमल बोध के कहने पर वे सब अरिहन्त की प्रवचन सभा में पहुंचते हैं। अरहिन्त की भक्ति करते हैं। समय पाकर निवृत्ति विवेक को मन को वश करने एवं मोह पर विजय पाने के लिए प्रेरित करती है। सद्गुरु विवेक को मोह पर विजय का

रास्ता बताते हैं। विवेक चातुरी से कार्य सम्पन्न करता है। वह संयमश्री से विवाह करता है। वह क्षमा, दया, धैर्य, सम्यक्त्व, चारित्र, सत्य, ज्ञान की सैन्य सामग्री तैयार करता है। दोनों ओर युद्ध में सम्यक्त्व अपने तत्व की खड्ग से मिथ्यात्व को, ज्ञान अभ्यास की खड्ग से प्रमाद को, चारित्र वैराग्य से माया सहित मोह को, तप अपने बारह भेद से दस दिशाओं में इन्द्रियों को, क्षमा क्रोध को, दस लक्षण कषाय को, नम्रता मान को, ऋजुता माया कपट को, शुचिता लोभ को और दान कृपण को परास्त कर देते हैं। मोह की सेना में भगदड़ मच जाती है। मोह भी बुरी तरह पराजित होता है। फिर विवेक पाप पाटण में पुण्य पाटण की स्थापना करता है। परमहंस को मुक्त करता है। चेतना परमहंस को उनके चैतन्य स्वरूप का स्मरण कराती है। परमहंस योग-अनुष्ठान द्वारा आत्म-शक्ति को जागृत कर स्वात्मोपलब्धि को पाते हैं।

इस प्रकार यह रास आत्म सम्बोधक रूपक काव्य है। यह रास ब्रह्म-जिनदास की अनुपम मौलिकता, विद्वत्ता और अनुभवशीलता का द्योतक है। दूहा, चौपाई एवं भासों मे विभक्त यह रास लगभग ५०० छन्द प्रमाण है। रास के प्रारम्भ में वस्तु मे परमहंस सूचक सकल निरंजन देव को प्रणाम किया गया है। अन्त मे कवि ने इस रास मे अपने शिष्य नेमिदास को इस सुन्दर काव्य के पढ़ने पढ़ाने के लिए आदेश दिया है।

४७. धर्मतरु गीत[1]

२७. छन्दों मे बद्ध कवि का यह रूपकात्मक एवं भावात्मक गीत है। इस गीत में कवि का मनुष्य-मात्र को सांसारिक वृक्ष के स्थान पर धर्म रूपी वृक्ष का आश्रय लेने का कथन है। इस धर्म-वृक्ष को सत्य, शौच, तप और त्याग से सींच कर ही इससे पुण्य रूपी फल प्राप्त किया जा सकता है।

ऐसे धर्म-वृक्ष की यत्न पूर्वक रक्षा की जानी चाहिए। यही वृक्ष अविनाशी मोक्ष रूपी फल का भी दाता है। इसके दर्शन रूपी बीज को सुरक्षित रखना

---

१. प्राप्ति स्थान : श्री आमेर शास्त्र भण्डार, महावीर भवन, जयपुर वेष्टन संख्या २४१, गुटका नम्बर ११, लिपिकाल संवत् १६६० ।
(२) इसकी अन्य प्रति जयपुर के ही दिगम्बर जैन मन्दिर बधीचन्द जी के शास्त्र भण्डार में वेष्टन संख्या ६८७ में भी संग्रहीत है।

चाहिए, जिसमें हर समय मनोवांछित शान्ति रूपी छाया और पुण्य रूपी फल प्राप्त हो सके।

४८. चूनड़ी गीत[3]

यह कवि का रूपकात्मक गीत है, जिसमें कवि ने राजस्थानी महिलाओं की प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय ओढ़नी चूनड़ी मे शील, संयम सम्यक्त्व एवं ज्ञान आदि का सुन्दर आरोपण किया है। कवि के अनुसार चूनड़ी की सार्थकता इसी में है—उसमे ज्ञान रूपी कुसम लाकर नव तत्व पदार्थों से उसे सम्यक्त्व के बाट में रंगा जावे। इस प्रकार तैयार की गई चूनड़ी के आंचल मे शील रूपी रत्न लिखे जावें—जिसे ओढ़ कर लाड़ी (आत्मा) मोतियों से भरा थाल लेकर जिन मन्दिर पहुंच मंगलाचार गावे और आत्म सुख का महोत्सव मनावे। गीत मे १५ पद्य हैं। रचना काल नही है।

४९. बारह व्रत गीत[1]

इस गीत में कवि ने अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रह परिमाण आदि पांच अणुव्रत, दिग्व्रत, देशव्रत और अनर्थदण्डव्रत—तीन गुणव्रत और सामायिक, उपवास, भोगोपभोग परिमाण और अतिथि संविभाग ये चार शिक्षाव्रत—इस प्रकार १२ व्रतों को पालने का निर्देश दिया है। इन व्रतो के पालन से श्रावक का जीवन सार्थक होता है। मनुष्य धर्ममय बनता है। गीत मे २३ पद्य हैं। रचना काल नहीं दिया गया है।

५०. प्रतिमा ग्यारह की भास[2]

इस लघु भास संज्ञक रचना में कवि ने उत्तम श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं

---

२. प्राप्ति स्थान : श्री आमेर शास्त्र भण्डार, महावीर भवन, जयपुर वेष्ठन संख्या २८८, पत्र संख्या १०३ व १३–१४, गुटका नं० ५० लिपिकाल संवत् १७५९, शक संवत् १६२४।

१. प्राप्ति स्थान : श्री अग्रवाल दिगंबर जैन मन्दिर, उदयपुर गुटका नंबर ३७९, पत्र संख्या ३५२–३५३, लिपिकाल संवत् १७८९।

२. प्राप्ति स्थान : श्री अग्रवाल दिगम्बर जैन मन्दिर, धानमण्डी, उदयपुर गुटका नम्बर ३७९, पत्र संख्या ३५३–३५४, लिपिकाल संवत् १७८७।

को गिनाया है। उत्तम नैष्ठिक श्रावक की ११ सीढ़ियाँ हैं। ये सोपान इस क्रम से रखे गये हैं—कि इन पर चढ़ कर कोई भी श्रावक अपनी आध्यात्मिक उन्नति करता हुआ अपने जीवन के अन्तिम लक्ष्य तक पहुंच सकता है। इन ग्यारह सोपानों को जैन सिद्धान्त में ग्यारह प्रतिमाएँ कहते हैं। ये ग्यारह प्रतिमाएँ हैं—दर्शन, व्रत, सामायिक, प्रोषधोपवास, सचित्त विरत, दिवा मैथुन विरत, ब्रह्मचारी, आरम्भ विरत, परिग्रह विरत, अनुमति विरत और उद्दिष्ट विरत। इनको क्रमवार ही पाला जाता है। आध्यात्मिक उन्नति के ये सोपान स्वरूप है। कवि के अनुसार जीवन में इन ग्यारह प्रतिमाओं के पालने से मनुष्य भव सागर से तिर जाता है। भास मे १५ पद्य है। रचना काल नहीं दिया गया है।

५१. चौदह गुणस्थानक रास[1]

४५ छन्द प्रमाण इस रास में जीवों के चौदह गुणस्थानों की व्याख्या की गयी है। जैन सिद्धान्त में संसार के सभी प्रकार के जीवों को १४ स्थानों में विभाजित किया है। प्रत्येक जीव के अपने-अपने गुण कर्म होते हैं। इस आधार पर आत्मा को भी गुण नाम से कहा जाता है और उनके स्थान गुणस्थान कहे जाते है जो १४ होते हैं—मिथ्यादृष्टि, सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयत सम्यग्दृष्टि, संयतासयत, प्रमत्त संयत, अप्रमत्त सयत, अपूर्वकरण, अनिवृत्ति बादर साम्पराय, सूक्ष्म साम्पराय, उपशान्त कषाय, वीतराग छद्मस्थ, क्षीण कषाय वीतराग छद्मस्थ, सयोग केवली और अयोग केवली। ये गुणस्थान आत्मा के विकास को लेकर माने गये है; इसलिए एक दृष्टि से ये आध्यात्मिक उत्थान-पतन के चार्ट जैसे हैं। ये आत्मा की भूमिकाएँ भी कही जा सकती है। जैसे ही आत्मा पर से मोह का पर्दा हटने लगता है, वैसे ही उसके गुण विकसित होने लगते है। अत इन गुणस्थानो मे मोह के चढ़ाव-उतार का प्राधान्य रहता है। ससार के सभी प्राणी अपने-अपने आध्यात्मिक विकास के क्रम में गुणस्थानों में बंटे हुए है। प्रारम्भ के चार गुणस्थान तो नारकी, तिर्यंच, मनुष्य और देव सभी के होते हैं। ५ वाँ गुणस्थान केवल समझदार पशु-पक्षियों और मनुष्यों के होता है। पाँचवें के आगे के सब गुणस्थान साधुजनों के ही होते हैं। उनमें भी सातवें से बारहवें तक के गुणस्थान आत्मध्यान साधु के ही होते हैं। तेरहवें गुणस्थान मे केवली और १४ वें गुणस्थान में शरीर के बन्धन से सदा के लिए मुक्ति मिल

---

१. प्राप्ति स्थान : आमेर शास्त्र भण्डार, महावीर भवन, जयपुर वेष्टन संख्या २४३, पत्र संख्या २०४–२०६, गुटका नम्बर ५।

जाती है । सभी मुनिगणों को इन गुणस्थानों को उत्तीर्ण करने पर ही मुक्ति मिलती है ।

५२. अठावीस मूलगुण रास[1]

इस रास में साधुओं के अठावीस मूल गणों का उल्लेख किया गया है । अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह आदि पांच महाव्रत, ईर्य्या, भाषा, एषणा, आदान और प्रतिष्ठापन आदि पाँच समितियाँ, पंचेन्द्रि निरोध, षट् आवश्यकापरिहारिण, अस्नान, दन्त अधावन, भूमि-शयन, खड़े-खड़े भोजन, एकाशन, नग्न एवं केश-लुंचन—ये मुनियों के २८ मूल गण माने गये हैं । इन मूलगणों के पालने से ही मुनित्व की रक्षा है । प्रत्येक साधु को इनका परिपालन आवश्यक है । किसी भी परिस्थिति मे वह इनसे विचलित नही हो सकता । राग-द्वेष से परे वह सभी को 'धर्म अस्तु' वृद्धि का आशीर्वाद देता है । अपनी आत्मा की मुक्ति के लिए अहर्निश प्रयत्नशील रहता है । शरीर को धर्म-साधन मानकर समाज से यदा-कदा शुद्ध सात्विक अहिंसानुकूल आहार ग्रहण करता है तो बदले में सभी को आत्मोत्थान के लिए सम्बोधता है । रास की छन्द संख्या ३१ है ।

५३. द्वादशानुप्रेक्षा[2]

२० पद्यों वाली इस लघु कृति में वैराग्य पोषक अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा धर्म आदि बारह भावनाओं के निरन्तर चिन्तवन का उपदेश दिया गया है । साधु इन भावनाओं के चिन्तवन से अपने वैराग्यभाव को दृढ़ कर मोक्ष की ओर उन्मुख होते है ।

५४. कर्म विपाक रास[3]

इस रास में कवि ने ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, अन्तराय, मोहनीय,

---

१. प्राप्ति स्थान : श्री दिगम्बर जैन मन्दिर बैराठियो का, जयपुर गुटका नम्बर २, पत्र संख्या १६३–१६५ ।

२. प्राप्ति स्थान : श्री भट्टारकीय दिगम्बर जैन मन्दिर बड़ा धड़ा, अजमेर वेष्ठन संख्या ८६५, गुटका नम्बर १६४ ।

३. प्राप्ति स्थान श्री दिगम्बर जैन मंदिर बधीचन्दजी जयपुर वेष्ठन संख्या ३६६, पत्र संख्या १७, लिपिकाल संवत् १७७६ ।

आयु, नाम, गोत्र आदि आठ कर्मों में विभिन्न विधियों का वर्णन हुआ है। प्रकृति बंध, प्रदेश बंध, स्थिति बंध एवं अनुभाग बंध की अपेक्षा से कर्मों के बन्ध का वर्णन है। जैसे समय पर फल पक जाता है वैसे तपस्या के द्वारा पूर्व कर्म पक जाते हैं। अर्थात् फल देकर छूट जाते हैं। कर्मों का फल देकर आत्मा से अलग हो जाना सविपाक निर्जरा और बिना फल दिये ही अलग हो जाना अविपाक निर्जरा है। इस रास में २४० छन्द प्रमाण है।

५५. समकित मिथ्यात रास[1]

७० पद्यों वाले इस लघु रास में शुद्ध आचरण पर अधिक बल दिया गया है। कवि ने हिंसक देवताओं, बड़, पीपल, सागर, नदी, हाथी, घोड़ा, खेजड़ा आदि की पूजा के निषेध के आत्म-हत्या, मृत्यु भोज और श्राद्ध करने का भी निषेध किया है। कवि की मान्यता है कि इन कार्यों में कोई तथ्य नहीं है। ये सब मिथ्यात्व हैं और मानव-मात्र को संसार में भटकाने वाले हैं। ये अशुभ कर्म हैं और सम्यक् चारित्र के अंग नहीं कहे जा सकते। सीता, मन्दोदरी, द्रोपदी, अंजना सुन्दरी, तारा, सुलोचना, राजमती, चन्दनबाला, चेलणा, प्रभावती, अनन्तमति, ब्राह्मी, सुन्दरी, अहिल्या, मयण मंजूषा, रुक्मिणी, जम्बुवती, लक्ष्मीवती— ये सब सम्यक्त्व को पालने वाली हुई है।

कवि का कथन है कि मिथ्यात्व को मानने से मुक्ति कैसी ? अतः हे मानव, यदि सुख चाहते हो तो सम्यक्त्व का आचरण करो। जीव दया, सत्यवचन, शील, अचौर्य, अपरिग्रह, दान, पूजा आदि का निर्मल आचरण करो और निरन्तर णमोकार का स्मरण करो। रास का रचना काल नहीं है।

५६. निजमनि सम्बोधन[2]

कवि की यह आत्म-सम्बोधन मूलक लघु कृति है। जिसमें ५४ पद्यों का प्रयोग हुआ है। इसमें कवि ने अपने मन को 'क्षपक' के रूप में सम्बोधित किया है

---

१. प्राप्ति स्थान : आमेर शास्त्र भण्डार, महावीर भवन, जयपुर पद्य संख्या ७०
(राजस्थान के जैन सन्त में पृष्ठ २२० पर प्रकाशित)।

२. प्राप्ति स्थान : आमेर शास्त्र भण्डार, महावीर भवन, जयपुर वेष्टन संख्या २७८, पत्र संख्या २५–३५, गुटका नम्बर १८ लिपिकाल संवत् १६२७।

कि इस अस्थिर संसार में कोई वस्तु शाश्वत नहीं है। और तो क्या-चौबीस तीर्थंकर, तेरसठ शलाका पुरुष, १४५२ गणधर, ग्यारह रौद्र, नौ नारद, चौबीस कामदेव और असंख्य मुनिगण 'गुरु सकलकीर्ति' जैसे इस संसार में नहीं रहे।

अतः हे क्षपक। अपने कर्म बन्धनो को जीतो। ध्यान रूपी धनुष ग्रहण कर रत्नत्रय रूपी तीक्ष्ण बाण से अपने कर्मरिपुओं को मार गिराओ। समस्त कषायों को छोड़ क्षमा धर्म को धारण करो।

इस रचना में कवि ने अपने अग्रज एवं भट्टारक सकलकीर्ति को भूतकाल मे स्मरण किया है, अत: यह रचना सकलकीर्ति के बाद की लिखी होनी चाहिये। सकलकीर्ति का स्वर्गारोहण संवत् १४९९ माना गया है। इससे कवि की यह कृति संवत् १४९९ के पश्चात् की ठहरती है।

५७. जीवड़ा गीत[२]

सोलह छन्दो में रचित इस गीत में ब्रह्म जिनदास ने जीव-मात्र को इस संसार की असारता से परिचित कराया है। कवि कहता है वह ससार असार है। धर्म ही एक मात्र अवलम्बन है। इस जीव के साथ पाप-पुण्य के अतिरिक्त अन्य कोई साथ नहीं जाता। माता-पिता, भाई-बहिन, पुत्र-पुत्री, पति-पत्नी कोई कुछ नहीं कर सकते—ये सब सांसारिक स्वार्थ के साथी है। मृत्यु के समय तन, धन, यौवन कोई काम नही आता।

हे जीव। तू चौरासी लाख योनियों की सीमा को नहीं जानता, अत. उस अरिहन्त की सेवा कर, जो तुझे इस भवसागर से पार ले जा सके। देख, सब कोई धर्म-धर्म पुकारते है पर धर्म का मर्म कोई नही जानता। सच्चा धर्म बाहर नही, वही तो भीतर है। अपनी आत्मा मे धारण करने का है जो उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य प्रधान दश लाक्षणिक है। यह दश लाक्षणिक धर्म ही मानव धर्म है। हे जीव, तू इस सौख्यकरी सम्यक्त्व धर्म को दृढ़ता से ग्रहण कर और निरन्तर णमोकार मन्त्र का स्मरण एवं अनुशीलन कर। रचना काल व स्थान नहीं है।

---

२. प्राप्ति स्थान : आमेर शास्त्र भण्डार, महावीर भवन, जयपुर वेष्ठन संख्या २८८, पत्र संख्या ३४–३५, गुटका नम्बर ५०, लिपिकाल संवत् १७५९ शक संवत् १६२४।

५८. शरीर सफल गीत[1]

मात्र सात छन्दों के इस लघु गीत में कवि ने मनुष्य के शरीर एवं उसके प्रत्येक अंगों—बुद्धि, मस्तक, नेत्र, कान, जीभ, हाथ और पाँव की सफलता जिनदेव की भक्ति–आराधना, दान एवं यात्रा में मानी है। निरन्तर धर्माराधन में ही कवि मनुष्य जन्म की सफलता मानता है। रचना काल नहीं है।

५९. आदिनाथ वीनती[1]

९ पद्यों में रचित अपनी इस विनती में महाकवि ब्रह्म जिनदास ने प्रथम तीर्थंकर भगवान आदिनाथ से विनती की है—हे आदि जिरान्द स्वामी आप ही तीनों लोकों में सच्चे देव हो। मैंने अब तक ८४ लाख योनियों में स्थावर और जंगम रूप से कितनी ही बार भ्रमण किया, लेकिन कहीं सुख-शान्ति नहीं मिली। चारों गतियों में मैं जन्म, जरा व मृत्यु के रोग, दारिद्रय आदि के चक्र में भटकता ही रहा। कुदेव, कुशास्त्र और कुगुरु को मान कर मिथ्या मार्ग को अपनाया। सच्चे देव, शास्त्र और गुरु के सत्य वचनों पर मैंने ध्यान नहीं दिया। अपने कुटुम्ब के लिए मैंने अनेक पाप कर्म किये।

हे जिनदेव, आप मेरे इन पापों का निवारण कीजिये। आप ही मेरे माता-पिता, ठाकुर, देव, गुरु और बांधव है। युग-युगों के सच्चे देव आप ही हैं। मैं अपने प्रत्येक जन्म में आपके चरण कमलों की सेवा की याचना करता हूँ। जिनवर विनती करने वाला ही मुक्ति रूपी वधू को पाता है। इस कृति में रचना काल, स्थान एवं लिपिकाल का उल्लेख नही है ।

६० ज्येष्ठ जिनवर लहान[2]

१४ पद्यों वाली इस लहान मे कवि ने प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ, जो चौबीस जिनवरों में ज्येष्ठ हैं, की पूजा-स्तुति की है। कवि की भावना है कि जिन आदि

---

१. प्राप्ति स्थान : आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर गु. नं. ५०, वे. सं. २८८, पत्र सं. १०३, लिपिकाल सं. १७५९, शक सं. १६२४।

१. प्राप्ति स्थान : श्री दिगम्बर जैन मन्दिर ठोलियान्, जयपुर, गुटका नम्बर १२, इसकी एक प्रति उदयपुर के अग्रवाल दिगम्बर जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार में भी संग्रहीत है।

२. प्राप्ति स्थान : आमेर शास्त्र भण्डार, महावीर भवन, जयपुर, वेष्टन सं० २०५०, (गुटका) पत्र संख्या १७७–१७८, लिपिकाल सम्वत् १६७४।

जिणंद ने ही कुमत धर्म का निवारण किया। इन्द्र-इन्द्राणी, देवी-देवता, गणधर, यतिवर, ऋषि, मुनि, ज्ञानी, आर्यिका, श्रावक-श्राविका, जिन आदि जिणंद के चरण-कमलों की पूजा करते हैं, उन्हीं भव सागर से तारने वाले की मैं सेवा करता हूँ। आत्मा की निर्मलता एवं कर्मों के निवारणार्थ कवि जल, चन्दन ,अक्षत, पुष्प नैवेद्य,दीप, धूप, फल आदि से ज्येष्ठ जिनवर की पूजा करने की अभिलाषा व्यक्त करता है।

६१. जिणवर पूजा हेली[1]

इस कृति का दूसरा नाम हेली भास भी रखा गया है। इसके १४ पद्यों में कवि ने जिनेन्द्र देव की अष्ट प्रकार से पूजा भावना व्यक्त की है। कवि के अनुसार जिनदेव की नित्य प्रति पूजा करने वाला विपुल लक्ष्मी को (राज्य, अपार सौन्दर्य, सौभाग्य, सुपुत्र, सुन्दर नारी, चक्रवर्ती पद तथा मोक्ष) प्राप्त करता है। जिन-भक्ति के प्रभाव से ही धनद नामक गोपाल अपने अगले जन्म में करकण्डु नाम का राजा बनता है। जिसने मनुष्य जन्म पाकर 'जिन देव' की पूजा, अर्चना नहीं की, वह संसार में ही भटकता रहा है। कृति मे रचनाकाल व स्थान का उल्लेख नही है।

६२. तीन चौबीसी वीनती[1]

२० पद्यों में बद्ध इस वीनती मे कवि ने अतीत, वर्तमान और आगत—तीनों कालों के २४ तीर्थंकरों के नाम गिनाते हुए स्तुति की है और पाच भरत, ऐरावत तथा विदेह क्षेत्रों के जिनालयों को नमन किया है।

६३. पंच परमेष्ठी गुण वर्णन रास[2]

१६१ छन्द प्रमाण इस रास में पंच परमेष्ठियों के गुणों का वर्णन हुआ है। अरिहन्तों के ४६, सिद्धों के ८, आचार्यों के ३६, उपाध्यायों के २५ और साधुओं के

---

१. प्राप्ति स्थान : श्री अग्रवाल दिगम्बर जैन मन्दिर, मानमण्डी, उदयपुर, पत्र संख्या १८५–१८६, गुटका नम्बर ३७६, लिपिकाल सम्वत् १७८७ ; यह गुटका उदयपुर नगर में महाराणा श्री संग्रामसिंह जी के शासनकाल में हुम्बड जाति की वृद्धि के लिए लिखवाया गया था।

१. प्राप्ति स्थान : श्री अग्रवाल दिगम्बर जैन मन्दिर, उदयपुर, गुटका संख्या ३७६, पत्र संख्या १७७–१७८ पर, लिपिकाल सम्वत् १७८४।

२. प्राप्ति स्थान : आमेर शास्त्र भण्डार, महावीर भवन, जयपुर, वेष्ठन संख्या २५१, गुटका नम्बर १३, पत्र संख्या ७३–६७।

२८ मूल गुणों में प्रत्येक के पृथक्-पृथक् गुणों को कवि ने अपनी इस लघु कृति में गिनाया है। बड़े ही सुन्दर ढंग से कवि ने पांचों परमेष्ठियों के गुणों का वर्णन किया है। अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु अपने उत्कृष्ट आचरण के कारण इह लोक एवं परलोक में प्राणिमात्र के हितकारक एवं परम अभीष्ट स्वरूप होने से ये पांचों ही परमेष्ठी माने गए हैं। कवि ने इन सबकी आदरपूर्वक वंदना की है और इनसे अपने उद्धार की याचना की है। रास का प्रारम्भ वस्तु मे, तो समाप्ति दूहे में हुई है।

६४. पूजा गीत[1]

सात छंदो वाले इस गीत में कवि ने पंचामृत, केसर, कपूर, चदन, नैवेद्य, फल-फूलों से पूजा का भाव प्रदर्शित किया है। पूजा करने के पश्चात् मुनि को आहार-दान और फिर स्वय के पारणे एवं आनन्द महोत्सव मनाने की बात कही है।

६५. मिथ्या दुक्कड़ विनती[2]

यह विनती एक प्रकार से प्रतिक्रमण पाठ है। जिसमे कवि अपने दोषो को मिथ्या करने की विनती करता है। विनती मे कुल २४ छन्द है। प्रारम्भ के १५ छन्दों तक दोषों के मिथ्या होने की विनती की गई है। आगे के छन्दों में कवि अपने आराध्य जिनवर का गुण-गान करता हुआ उस स्थान की प्राप्ति की अभिलाषा व्यक्त करता है जहा उसे भव-बन्धन से परे सदा-सर्वदा के लिए मुक्ति मिल जावे। रचना-काल आदि नही दिया गया है।

६६. गिरनारि धवल[3]

५ छन्दो के इस गिरिनार धवल मे कवि ने तीर्थ क्षेत्र गिरिनार की वंदना की है। इस तीर्थ क्षेत्र से २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ भगवान ने निर्वाण प्राप्त किया था। कृति का रचनाकाल नही है।

---

१. प्राप्ति स्थान : आमेर शास्त्र भण्डार, महावीर भवन, जयपुर, वेष्ठन संख्या २८८, गुटका नम्बर ५०, पृष्ठ ११–१२, लिपिकाल सम्वत् १७५६।

२. वही, पृष्ठ सख्या १४५।

३. वही, पृष्ठ सख्या ११–१२।

६७. चौरासी जाति माला[1]

इस माला में जिनेन्द्र देव के अभिषेक के पश्चात् जिनेन्द्र की पुष्प-माला की बोली के उत्सव में सम्मिलित होने वाली गोलालार, बघेरवाल, जैसवाल, श्रीमाल, हूंबड, मेडतवाल, खण्डेलवाल, अग्रवाल, ओसवाल, पोरवाल, चितौडा, पल्लीवाल, नृसिंहा, बोहरा आदि चौरासी प्रकार की जातियों का नामोल्लेख किया गया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि को भी सम्मिलित किया गया है। अन्त मे चतुर्थ जैन श्रावक जाति का भी उल्लेख किया गया है। कवि ने बताया है कि जिनेन्द्र देव की माला को प्राप्त करने के लिए सभी जाति के लोग अपना अहोभाग्य मानते है। माला की बोली बढ़ाने में एक जाति से दूसरी जाति वाले व्यक्तियों में प्रतिस्पर्द्धा रहती है।

माला में कुल ४३ छन्द है। रचनाकाल एवं रचनास्थल का कहीं भी उल्लेख नही हुआ है।

६८. जिनवाणी गुणमाल[2]

इस रचना का अपर नाम 'सरस्वती पूजा या सरस्वती जयमाल' भी है। कवि ने इसमे सरस्वती की स्तुति की है और उसके द्वादशांग स्वरूप की भक्ति की है। कवि के अनुसार वह जिनवर अमृत वाणी है जो मधुर, गम्भीर एवं सुहावनी है। वह जिनवाणी परम ब्रह्म भगवान आदिनाथ के मुख कमल से अज्ञानांधकार का परिहार करने वाली, ज्ञान की प्रकाशिनी, विशाल एव गम्भीर वाग्वादिनी है। इस प्रकार १३ पद्यों में बद्ध इस स्तुति मे कवि ने इसी जिनवाणी के गुणो का गान किया है। रचनाकाल नहीं है।

६९. गुरु जयमाल[1]

१४ पद्यों में बद्ध इस जयमाल मे निर्ग्रन्थ गुरु की स्तुति की गई है। इसका अपर नाम मुनीश्वर जयमाल भी है। निर्ग्रन्थ गुरु साक्षात् मुनीश्वर होते हैं—जिनके

१. प्राप्ति स्थान : आमेर शास्त्र भण्डार, महावीर भवन, जयपुर, वेष्ठन संख्या २०५०, पत्र संख्या १४४–१४७, लिपिकाल सम्वत् १६७४।

२, वही, वेष्ठन संख्या २७८, पत्र संख्या ५२–५३, गुटका नम्बर ३८, लिपिकाल सम्वत् १६२७।

३. प्राप्ति स्थान : अग्रवाल दिगम्बर जैन मन्दिर, धानमण्डी, उदयपुर (राजस्थान), वेष्ठन संख्या ३७९, पत्र संख्या ५२, ५३, ५४, ५६ पर, लिपिकाल सम्वत् १७८४।

स्तवन से मन प्रसन्न एवं शांत रहता है और सांसारिक दुःखों से मुक्ति मिलती है। जयमाल के अन्तिम पद्य में कवि ने गुरु से निर्ग्रन्थ दीक्षा देने की कर-बद्ध विनती की है। रचनाकाल नहीं है।

७०. गौरी भास[1]

१२ पद्यों वाली इस गौरी भास में कवि ने अपने आराध्य भगवान जिनेन्द्र देव से अपने सांसारिक भ्रमण के कारणों को गिनाते हुए उनके निवारण की याचना की है। कवि अपनी आत्माभिलाषा व्यक्त करता है कि भगवान, यदि आप मुझ से संतुष्ट हैं तो मैं अधिक नहीं चाहूँगा। मुझे राज्य लक्ष्मी, गज, घोड़े, इन्द्रिय सुख आदि किसी की कुछ भी कामना नही है। मैं तो आपसे निर्मल सम्यक्त्व, ज्ञान, चारित्र और तप की वांछा करता हूँ। मुझे आप मुक्ति-मार्ग के लिए दीक्षित कीजिए। रचनाकाल नहीं दिया गया है।

□□□

---

१. वही, पृष्ठ संख्या ३५१, लिपिकाल सम्वत् १७८७।

अध्याय 4

साहित्यिक अनुशीलन

वस्तुतः 'रास' रासो अथवा रासक शब्द उतने ही व्यापक अर्थों में प्रयुक्त हुए हैं जितने में स्वयं काव्य। जिसमें एक और प्रबन्ध की घाटी में महाकाव्य की गु गम्भीरता है, दूसरी ओर खण्ड काव्य के लघु भूधर। एक ओर गीतों की मधुमर स्रोतस्विनी है, दूसरी ओर मुक्तक काव्य का विन्यास। डॉ० सुमन राजे की ये पंक्तिय ब्रह्म जिनदास के काव्यों पर सटीक सिद्ध होती है।[1]

काव्य-रूप की दृष्टि से आलोच्य महाकवि ब्रह्म जिनदास की सभी रचना प्रबन्ध काव्य एवं प्रगीति काव्य में विभक्त की जा सकती हैं। प्रबन्ध काव्य में महा काव्य एवं खण्डकाव्य दोनों प्रकार की रचनाएं मिलती है। महाकाव्य वर्ग में कवि वे पुराण एवं चरित प्रधान रास-काव्य आते है तो खण्ड काव्य की परिसीमा में चरित काव्य एवं कथा काव्य आते हैं। प्रबन्ध काव्य में जिन लक्षणों को भारतीय आचार्य ने स्वीकृति दी है, उनके अधिकांश लक्षण इन रचनाओं में मिलते हैं। प्रगीति काव्य के अन्तर्गत कवि की तत्व परक, उपदेश परक एवं स्तुति परक गीति रचना उल्लेखनीय हैं। ये सब गीति एवं मुक्तक काव्य के लक्षणों से युक्त हैं।

वर्ण्य-विषय की दृष्टि से कवि ने पुराण, चरित, कथा, रूपक, सिद्धान्त उपदेश, स्तुति, दान, व्रत, पूजा आदि विषयों को अपनाया है और अपनी प्रतिभा क परिचय दिया है। पुराण-काव्य, चरित-काव्य, कथा-काव्य एवं रूपक-काव्य इन सर्भ में कवि ने कथाओं के माध्यम से वैराग्य एवं आत्मोन्नति की प्रेरणा दी है। इनमें अधिकांश काव्य किसी न किसी आदर्श महापुरुषों के जीवन प्रसंगों से सम्बन्धित हैं कुछ आख्यानपरक काव्य हैं तो बहुत सी दान, व्रत, पूजा का माहात्म्य सिद्ध करतं हैं। इन रचनाओं का अन्तिम उद्देश्य संसार की असारता सिद्ध करना एवं जीवन क चरम लक्ष्य निर्वाण प्राप्त करना है। शेष रचनायें मुक्तक काव्य की सीमा में आती हैं जो सभी गीतात्मक हैं। ये रचनाएँ सिद्धान्त, स्तुति एवं उपदेश परक हैं।

इस अध्याय में ब्रह्म जिनदास की प्रबन्ध एवं मुक्तक रचनाओं का पृथक् पृथक् साहित्यिक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है—

---

१. हिन्दी रासो काव्य परम्परा पृ० ५६।

(क) प्रबन्ध काव्य

कथा-विषय एवं आधार—प्राचीन साहित्य में कथा शब्द का प्रयोग स्पष्ट रूप से दो अर्थों में हुआ है। एक साधारण कहानी के अर्थ में और दूसरा अलंकृत काव्य रूप के अर्थ में। साधारण कहानी के अर्थ में तो पंचतन्त्र की कथाएँ, महाभारत और पुराणों के आख्यान भी कथा है; परन्तु विशिष्ट अर्थ में यह शब्द अलंकृत गद्य काव्य के लिए प्रयुक्त हुआ है। चरित काव्यों को कथा कहने की प्रवृत्ति काफी समय तक चलती रही। तुलसी का मानस चरित काव्य होते हुए भी कथा काव्य है।[1] आलोच्य कवि ब्रह्म जिनदास के चरित प्रधान काव्य भी कथा काव्य है। दान, व्रत एवं पूजा का महात्म्य सिद्ध करने के लिये भी कवि ने कथा काव्यों की संरचना की है। यही नहीं आध्यात्मिक रूपक काव्य को भी कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है।[2] कवि ब्रह्म जिनदास की रचनाएं साधारण कथाएं न होकर अलंकृत काव्य रूप ही हैं।

कथा साहित्य की एक प्रमुख विद्या है। जिसे सबसे अधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई है। विश्व के सर्वोत्कृष्ट काव्य की जननी कहानी ही है। कथा के प्रति मानव का सहज आकर्षण होता है। इस आकर्षण को सबल बनाने के लिए काव्य की प्राकृतिक सुषमा सर्वत्र ग्राह्य होनी है। हमारे प्राचीनतम साहित्य में कथा के तत्व अन्वित हैं। ऋग्वेद में—स्तुतियों के रूप में कथा के मूलतत्व मिलते हैं। ब्राह्मण, उपनिषद्, पुराण, रामायण, महाभारत आदि प्राचीन काव्य कथाओं के कोष हैं। पंचतन्त्र. हितोपदेश, कथासरित्सागर, जातक कथाएं ये सब कथाओं से अनुस्यूत हैं। इनमें कथाओं के माध्यम से आदर्श चरित्र की अभिव्यंजना हुई है।

इसी भृखंला में जैनों के पुराण ग्रन्थ आते है। कथा साहित्य सरिता की बहुमुखी धारा के वेग को विप्रगामी बनाने में जैन कथाओं का योगदान उल्लेखनीय

---

१. डा० हजारीप्रसाद त्रिवेदी : हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृष्ठ ५७।

२. (क) रास कीयो रास कीयो अति मनोहर।
अनेक कथा गुणि आगलो, राम तणो गुणो सार निरमल ॥१॥ रामरास

(ख) रास कीयो रास कीयो सार मनोहर।
अनेक कथा गुणे आगलो, हरिवंश तणो गुणो सार निरमल।
एक चित्त करी सांभलो, भाव धरो मन मांहि उज्जल ॥१॥ हरिवंश रास

(ग) जिणवर गणधर मुनिवरहइ, गुण गुण्या मइ सार तो।
जे भवीयण विस्तार करइए, भुगति रमणी होइ सार तो ॥२०॥
आदिनाथ रास

हैं। जैनों के मूल आगम, चूर्णिका एवं पुराणों में कथाओं का प्राधान्य है। जो विश्व की सर्वोत्तम विभूति है। यदि इन कथाओं का अध्ययन विधिवत् एवं इतिहास क्रम से किया जाय तो कई नवीन तथ्य प्रकाश में आवेंगे।[1]

जैनों का पुरातन साहित्य कथाओं से पूर्णतः परिवेष्ठित है। कथा-साहित्य के क्षेत्र में जैसा कार्य जैन लेखकों ने किया, वह विस्तार, विविधता और बहुभाषाओं के माध्यम की दृष्टि से भारतीय साहित्य में अद्वितीय है। विक्रम सम्वत् के आरम्भ से लेकर उन्नीसवीं शती तक जैन साहित्य इतना विशाल है कि इसके समुचित सम्पादन और प्रकाशन के लिए पचास वर्षों से कम समय की अपेक्षा नही होगी।[2] इन कथाओं में भारतीय सस्कृति एवं सभ्यता विविध रूपों में मुखरित हुई है। मानव की सुख-दुःखात्मक अनुभूतियों को सरस रूप में अंकित किया गया है। जैनाचार्यों ने इन कथाओं के माध्यम से गहन सैद्धान्तिक तत्वों को सुगम बनाया है तथा श्रावकों एवं साधारण जनता ने इनके द्वारा अपनी सहज प्रवृत्तियों को विशुद्ध बनाने का सतत् प्रयास किया है। जैन कवियों ने इन आख्यानो मे मानव जीवन के श्वेत तथा श्याम दोनों रूपों को अपनाया है लेकिन आख्यान की परि समाप्ति पर श्वेत रूप को प्रधानता देकर आदर्शवाद को स्थापित किया है।[3]

आलोच्य प्रबन्ध काव्य इसी परम्परा में रचित हैं। इन कथा प्रधान काव्यों में ६३ शलाका पुरुषों, साधुओं एवं श्रमणों की जीवन गाथाएं मुख्य है। ऐतिहासिक महापुरुषों के जीवन चरित को आधार बनाकर काव्य लिखने की प्रवृत्ति ७वीं शती से चली आ रही है। हिन्दी-साहित्य मे यह प्रवृत्ति पर्याप्त रूप मे बढ़ी है। जैन काव्यों के मुख्य प्रतिपाद्य ६३ महापुरुषों के चरित्र है, जिनमे २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव और ९ प्रतिवासुदेव हैं।[4] इन चारित्रो पर लिखे गये ग्रन्थों को दिगम्बर परम्परा में पुराण एवं श्वेताम्बर परम्परा में चरित कहा गया है।[5] पुराणों में सबसे प्राचीन पुराण महापुराण हैं, जिसके आदिपुराण एव उत्तरपुराण ऐसे दो भाग हैं। इसमें पुराण पुरुषों का पुण्य चरित वर्णित होने से पुराण कहा गया है। पुराण साहित्य मे महापुराण, हरिवंशपुराण एवं पद्म चरित

---

१. श्रीचन्द्र जैन : जैन कथाओं का सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ २८-२९।
२. डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल : लोक कथाएं और उनका संग्रह कार्य : निबन्ध
३. जैन कथाओं का सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ट ३०।
४. जैन धर्म, पृष्ठ २५२।
५. संतकवि आचार्य श्री जयमल्ल, पृष्ठ ५६।

या पद्मपुराण हैं। ब्रह्म जिनदास ने इन्हीं के आधार पर आदिपुराणरास, रामरास और हरिवंशपुराणरास की रचना की है। आदिपुराणरास में प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ हरिवंश रास में श्री कृष्ण, नेमिनाथ एवं पांडवों का और रामरास में श्री रामचन्द्र का वर्णन है। हरिवंशपुराण और रामरास को क्रमशः जैन महाभारत एवं जैन रामायण का कहा जा सकता है। इनमें पुराण-काव्यों के समान विविध कथाओं का संयोजन हुआ है।

चरित काव्यों में कथा का अस्तित्व प्राचीनकाल से ही माना गया है। कवि ने उन आदर्श पुरुषों पर भी काव्य लिखे हैं जो इन ६३ शलाका पुरुषों के अतिरिक्त हैं और जैन समाज में आदरणीय हैं। जैसे–जीवन्धरस्वामी, जम्बूस्वामी, भद्रबाहुस्वामी, श्रीपाल, भविष्यदत्त, नागकुमार' सुदर्शन, नागश्री, सुकुमाल आदि चरितप्रधान कथा-काव्यों का विषय महापुरुषों के आदर्श चरित्रों की व्यंजना करता है। सम्यक्त्व के आठ अगों पर, ससुरालवास, होली, शील, दान, रात्रि भोजन त्याग आदि पर भी कवि ने कथा-काव्य की सृष्टि की है। जिसका उद्देश्य सम्यक् चारित्र का उद्घाटन करना रहा है। इन सभी का कथासार सामान्य परिचय अध्याय में दे दिया गया है।

इन सब रास-काव्यों का आधार संस्कृत के जैन पुराण ग्रन्थ, आगम एवं कथा कोश रहे हैं। कवि ने जनसामान्य के प्रतिबोध की दृष्टि से इन्हे सरल देश-भाषा में रचा है।[1] देश-भाषा मे तत्कालीन हिन्दी का स्वरूप मरुगुर्जर रचने का कारण स्वय कवि एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करता है—कठोर नारियल को बालक के हाथ में देने पर वह उसके स्वाद और उपभोग से वंचित रहेगा तथा उसे छोड़ देगा। लेकिन यदि उसे छील कर, साफ करके, उसकी गिरी उसके हाथ में दे दी जावेगी तो वह अवश्य उसे ग्रहण करेगा, उसका मधुर स्वाद लेगा और उसकी प्रशंसा करेगा। इसी प्रकार जन सामान्य व्यक्ति संस्कृत के कठिन ग्रन्थों का रसास्वादन नहीं ले सकते, अतः उसको काव्य का रसपान कराने के लिए संस्कृत काव्यो का सरलीकरण देश-भाषा मे किया गया है।[2] उदाहरण के लिए 'हनुमन्त रास' की कथा का आधार

---

१ तीम ए आदि पुराण सार, देस भासा वखाणु'।
प्रकट गुण जीम वीस्तरे, जिण सासण बखाणु' ॥४॥ आदिनाथ रास ॥

२. संस्कृत शास्त्र जोइ करी, सुगमि कीयो गुणमाल।
बाल बोध प्रति कबको, प्रकट करे गुण विसाल ॥२॥ भविष्यदत्त रास ॥

संस्कृत का पद्मपुराण रहा है ।[1] 'सासरवासा को रास' का आधार कवि ने आगम से ग्रहण किया है ।[2]

नामकरण : आलोच्य रास काव्यों का नामकरण पात्र विशेष, लक्ष्य और व्रतों पर आधारित है । पात्रों में चरित नायकों के नाम पर रासों का नामकरण किया गया है । अधिकांश रास काव्य चरित नायकों के नाम पर नामकृत हैं । जैसे—आदिनाथ रास, अजित जिनेश्वर रास, हनुमन्त रास, जीवन्धरस्वामी रास, सुकुमालस्वामी रास, भविष्यदत्त रास, श्रीपाल रास, राम रास आदि । कुछ रास काव्यों का नामकरण पुराणों पर भी है । जैसे—आदिपुराण रास, पद्मपुराण रास, हरिवंशपुराण रास । परंतु कवि ने इन्हें प्रमुख पात्रों के नाम पर भी संज्ञित किया है । जैसे—आदिनाथ रास, राम रास और नेमिनाथ रास । इसी प्रकार कुछ रासों का नामकरण चरित नायकों के साथ-साथ प्रतिपाद्य विषयवस्तु पर भी रखा गया है । कवि ने इन्हे दोनों संज्ञायें प्रदान की है, जैसे — सुदर्शनरास या शीलरास, हनुमन्तरास या अजना हनुमन्त कथा, नागश्रीरास या रात्रिभोजनरास, चारुदत्तरास या णमोकाररास, गौतमस्वामीरास या लब्धिविधानरास, नागकुमाररास या पचमीकथारास आदि । व्रतों के नाम पर रखे गए रास काव्यों मे सोलहकारणरास, दसलक्षणव्रतकथारास, निर्दोषसप्तमीरास, अनन्तव्रतरास, रविव्रतकथारास, पुष्पांजलिरास आदि हैं । इन्हे कथा रास की संज्ञा दी है । सिद्धांतों पर भी रचनाओं का नामकरण है, जैसे—बारह व्रत गीत, अट्ठावीस मूलगुणरास, चौदह गुणस्थान रास, प्रतिमा ग्यारह की भास आदि । सासरवासा को रास घटनापरक काव्य हैं ।

मंगलाचरण : महाकवि ब्रह्म जिनदास ने अपने प्रत्येक रास-काव्य का प्रारंभ मंगलाचरण से किया हैं । जिसमे सर्वप्रथम मनोवांछित फलदाता तीर्थंकर की वन्दना की गयी हैं । तत्पश्चात् गणधर (तीर्थंकर के प्रमुख शिष्य) व सरस्वती को नमस्कार किया गया है । इसके बाद कवि ने अपने गुरुद्वय भट्टारक सकलकीर्ति एव

---

१. संस्कृत सलोक बघए, कीधु हणमंत रासतु ।
विस्तार ते कथा जाणवीए, पद्मपुराण मझारितु ।।४१।।
भवीयण जण सबोधवाए, रास कीउमि चंग तु ।
अंजणा गुण बहु वरणवाए, हनुमंत सहित उत्तग तु ।।४३।।

२. सासरवासो निरमलो, रेणु की तणो सुविचार ।
परम तणु फल वरणाव्यू, गुणह तणो भण्डार ।।१।।
भवियण जन संबोधवा, संक्षेपे कहहु विचार ।
विस्तारि आगमि जाणि ज्यों, सुभूमचक्री अवतार ।।२।।

भट्टारक भुवनकीर्ति के चरणों में प्रणाम किया है और फिर इन सबसे अपने प्रतिपाद्य रास काव्य की निर्मल रचना के लिए आशीष-याचना की है।[1] यह मंगलाचरण वस्तु छन्द में हुआ है। किसी-किसी मंगल वाचन में गणधर के पूर्व सरस्वती को नमस्कार किया है। आदिपुराण रास में प्रथम तीर्थंकर जिनेश्वर को, अजितनाथरास में द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथ को, हनुमंत रास में षष्ठम तीर्थंकर पद्मप्रभु को, नागकुमाररास में चतुर्थ तीर्थंकर अभिनन्दन को, यशोधर रास में तेबीसवें तीर्थंकर पार्श्वजिनेश्वर को, चारुदत्त रास में बाइसवें तीर्थंकर नेमिकुमार को, समकित अष्टांग कथा रास में पंचम तीर्थंकर सुमतिनाथ को, भद्रबाहु मुनि रास में आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभु को प्रणाम किया गया है। अधिकांश रास काव्यों में २४वें तीर्थंकर महावीर की वन्दना की गई है। रात्रि भोजन रास में कवि ने तेइसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ की वंदना एवं उसके रूप सौदर्य का गुणगान तथा विघ्न नाशिका शासन देवी पद्मावती को नमस्कार किया है। श्रीपाल रास में पंच परमेष्ठियों — अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुओं को प्रणाम किया है।[2] परमहंस रास में परमहंस स्वरूप सकल निरंजन देव को नमस्कार किया है।[3] एक रचना में केवल सरस्वती की ही वन्दना की है।[4] छोटे रास काव्यों मे कवि ने मंगलाचरण के लिए दोहे छन्द का भी प्रयोग

---

१. अजित जिनेसर अजित जिनेसर पाय प्रणनेमु ॥
तीर्थंकर अति निरमला, मनवांछित फलदान सुभकर।
गणधर स्वामी नमसकरूं, सरसती स्वामिणी ध्याउं निरभर ॥
श्री सकलकीरति पाय प्रणमीनि, भुवनकीरति भवतार।
रास करिसु निरमलो, ब्रह्म जिणदास तणि सार ॥१॥ अजितनाथ रास ॥

२. सकल जिणेसर सकल जिणेसर पाय प्रणमेसुं ॥
सिद्ध चक्र आचारिज, उपाध्याय सर्व साधु मुनिवर।
पंच परम गुरु ध्याइस्युं बलि सरसति देवी मनोहर ॥१॥ श्रीपाल रास ॥

३. सकल निरंजन सकल निरंजन, देव अनन्त।
परमानन्द सुहावणा, प्रणामि सुरसतिसार निरमल।
सकलकीरति गुरु भविरलि, वलि भुवनकीरति सार सोहजल ॥
तम्ह परसादे रूवडो परम हंस जयवंत।
ब्रह्म जिणदास भणे गाइसुं, सुणो भवियण गुणवंत ॥१॥ परमहंस रास॥

४. सरसति स्वामिणी वीनवूं, मांगू एक पसाउ।
सासर वासो वरणवूं, सद्गुरु तणइ पसाइ ॥१॥ सासरवासा को रास ॥

किया है।[1] मंगलाचरण में वन्दना एवं याचना दोनों हैं।

रचना प्रारम्भ : मंगलाचरण के बाद रासकार भव्यजनों को रास की कथा सुनने के लिए आह्वान करता है।[2] इसके पश्चात् राजा श्रेणिक की नगरी राजगृही का भरत क्षेत्र में स्थान बतलाता हुआ राजा श्रेणिक का परिचय देता है। अधिकांश रास काव्यों में आलोच्य कवि मंगलाचरण के बाद जम्बूद्वीप, भरत क्षेत्र, मगधदेश, राजगृह और उसके राजा श्रेणिक[3] के यश, प्रभाव व शासन का वर्णन और रानी चेलना की धर्म परायणता का वर्णन करता है। फिर नगर का उद्यान-पाल माली फल-फूल लेकर राजा श्रेणिक के राज प्रासाद में उपस्थित होकर भगवान महावीर के समवशरण के आने की सूचना देता है। राजा हर्षित हो तत्काल वहीं से उस दिशा में सात पद चलकर भगवान की परोक्ष वन्दना करता है और माली को पुरस्कृत करता है। तत्पश्चात् भगवान के शुभागमन की सूचना नगर में कराकर परिजन एवं पुरजन सहित भगवान महावीर की धर्म सभा में श्रद्धा-वनत हो पहुंचता है और भगवान से धर्म तत्त्व व धर्म का श्रवण करता है। अवसर पाकर श्रेणिक भगवान से प्रश्न करता है, जिसका उत्तर भगवान के प्रमुख शिष्य गौतम गणधर देते हैं।[4] यहीं से रास की मूल कथा प्रारम्भ होती है।[5] इस प्रकार कवि ने अपनी अधिकाश रास कथाओं को राजा श्रेणिक के प्रश्न के उत्तर में गौतम गणधर के श्रीमुख से कहलायी है।[6] कुछ रास

१. वीर जिणेसर नमस करूं, सरसति तणोंइ पसाइ।
बुद्धि घणी हूं मागिस्यु, लागि सुं सह गुरु पाय ।।१।।
तम्ह परसादि निरमल, रास करूं हू सार।
सुदर्शन मुनिवर तणु, गुणह तणु भडार ।।२।। सुदर्शन रास ।।

२. भवीयण भावि सुणउं आज, रास कहूं गुणवत।
भविष्यदत्त गुणी वरणवउं, कथा कहूं जयवंत ।।१।। भविष्यदत्त रास ।।

३. ऐतिहासिक पात्र बिम्बसार, जैन साहित्य मे श्रेणिक नाम से वर्णित है। जैन धर्म का मौलिक इतिहास, सम्पादक : डा० नरेन्द्र भानावत।

४. सांभली धर्म विचार, श्रेणिक राणो हर्षियाऐ।
ऊभो रह्यो गुणवंत, दुइ कर जोडी गइ गह्याऐ ।।१।।
जैन रामायण सार, कहो स्वामी तम्हे ज्ञान धणीए ।। राम रास ।।

५. दीव्य ध्वनि पछे उपनि, केवल गुणवंत।
गौतम स्वामी व्यक्ता, कहे जयवत ।।१०।। अजित जिनेसर रास ।।

६. श्रेणिक राजा तम्हे सुणोए, मूल थकी कहूं आदि तो।
मूल विना वृक्ष ते नवी पकइए, मूल विण सवे परसाद तो ।।३।। राम रास ।।

काव्यों की कथाओं में रासकार ने यह परंपरा नहीं अपनायी है और सीधे ही नगर राजा-रानी, सेठ-सेठानी का वर्णन करते हुए कथा कहना आरंभ कर दिया है। भविष्यदत्त रास, जम्बूस्वामी रास, श्रेणिक रास, नागकुमार रास, यशोधर रास, धन्यकुमार रास आदि ऐसे ही रास काव्य है।

'जीवन्धर स्वामी रास' के प्रारंभ मे कवि ने तीसरा ही प्रका अपनाया है जो बड़ा ही कला पूर्ण बना है। राजा श्रेणिक किसी समय वन में भ्रमण कर रहा होता है कि किसी गुफा में उसे अद्‌भुत प्रकाश दिखायी देता है। बड़ी उत्सुकतावश वह वहां पहुँचता है और देखता है कि रूप-यौवन में साक्षात् कामदेव, अद्‌भुत तेज पुंजधारी कोई साधु कायोत्सर्ग मुद्रा में ध्यानरूढ है। उनके तेज से गुफा प्रकाशमान हो रही है। राजा इस अतिशय से विस्मित हो, भगवान महावीर की धर्म सभा में प्रस्तुत होता है और धर्म श्रवण करने के बाद भगवान से उन तेजो पुंजमयी ध्यानरूढ़ साधु के विषय मे प्रश्न करता है। तब महावीर स्वामी अपनी गम्भीर, सुललित और समधुर वाणी में बताते है कि वे जीवन्धर स्वामी है। फिर जीवन्धर की जन्म से मोक्ष तक की कथा सुनाते हैं। कथा की यह प्रणाली बड़ी आकर्षक एवं रोचक हैं। जो आजकल के चित्रपटों की स्मृति दिला देती हैं। कथा का यह आकर्षक प्रारंभ आज के सिनेदर्शकों, निर्देशकों, नाट्य मण्डलियो के लिए अनुकरणीय हैं। इस रास में प्रारभ में ही रासकार ब्रह्म जिनदास ने काव्य के नायक के अद्‌भुत दर्शन कराकर अपने कुशल प्रस्तुतीकरण का दिग्दर्शन कराया है।[1]

कथानक का आरम्भ और विकास : प्राय: सभी रास काव्यों में कथानक का प्रारम्भ नगर, राजा-रानी, यशकीर्ति, रूप-सौन्दर्य, वैभव और धार्मिक आचार वर्णन से हुआ है। राजा के साथ रानी एवं पुत्र-पुत्रियों की भी चर्चा कर दी गई है। इसके पश्चात् कवि कथा के प्रमुख पात्र की वंशावली का एवं उसके आचरण का वर्णन करता है। इस प्रकार कथा के आरम्भ मे विशिष्ट पात्रों की चर्चा कर दी जाती है। वृहद् रास काव्यों के कथानकों के प्रारम्भ मे कवि चरित नायक के वंश का वर्णन एवं पूर्व भव का वर्णन करता है। जबकि लघु रास काव्यों के कथानकों में नगर और राजा-रानी का परिचय देकर प्रमुख नायक के संक्षिप्त जीवन परिचय से कथा का प्रारम्भ कर देता है।

इन रास काव्यों के कथानकों में काव्य शास्त्रीय ढंग की पाँचों कार्यावस्थाएं आरंभ, प्रयत्न प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम का क्रमश: विकास एवं स्वरूप देखा

१. जीवन्धरस्वामी रास पद्य संख्या ३ से १२।

जा सकता है। प्रारम्भ में राजघराने या कुलीन परिवार से सम्बन्धित पात्र सम्मुख आते हैं। आदिनाथ रास में आरम्भ में १४ कुलकरों का परिचय दिया गया है। राम-रास में १४ वें कुलकर नाभि राजा और प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ के वंश का परिचय है। भरत पुत्र सूर्य के नाम से चलने वाले सूर्य वंश में है। राजा दशरथ, उनकी चार रानियाँ और उनके चारों पुत्रों का उल्लेख है। हरिवंश रास के कथानक के आरम्भ में राजा हरि के नाम पर चलने वाले हरिवंश का उल्लेख किया गया है। जीवन्धरस्वामी रास में जीवन्धर के पिता एवं माता का वर्णन है। इसी प्रकार अन्य रासों मे है। कही-कही पर प्रारम्भ में कवि ने नायक के पूर्व भवों के वर्णन की प्रणाली अपनायी है। आदिनाथ रास में आदिनाथ के ९ पूर्व भवों का विवेचन हुआ है। जम्बूस्वामी रास मे भी जम्बू के पूर्व भवों का वर्णन हुआ है। सुकुमाल स्वामी रास मे सुकुमाल के पूर्व भवों की कथा दी गई है।

प्रयत्नावस्था में अपने उद्देश्य (निर्वाण) की प्राप्ति के लिए नायक द्वारा प्रयत्न प्रारम्भ होने लगता है। किसी तीर्थंकर या मुनिराज का उस नगरी में आगमन होता है। नायक उनके दर्शनार्थ जाता है और धर्मोपदेश श्रवण करता है। फिर अपना पूर्व भव सुनने पर ससार से विरक्त हो जाता है और संयम धारण करने का संकल्प करता है। कभी अपने श्वेत बाल या मुर्झायी माला या उल्कापात या बादलों का मिटना या मृत्यु को देख वैराग्य का संकल्प लेता है। आदिनाथ रास में ऋषभदेव नीलांजना अप्सरा की मृत्यु लीला को देख विरक्त हो जाते है। जम्बूस्वामी रास में जम्बू अपने पूर्व भव को सुन विरक्त होने को उद्यत होता है। अजितनाथ को उल्कापात देख वैराग्य होता है।[1] राजा सगर पुत्रों के वियोग में वैराग्य लेता है। सुकुमाल को स्वाध्याय से जाति स्मरण होकर वैराग्य हो जाता है। अम्बिका देवी रास में अग्निला अपने पति के द्वारा घर से बाहर निकाले जाने पर गिरनार पर्वत पर मुनि के चरणों में पहुंचती है।

---

१. उल्कापात देखि करि उपनु स्वामी वैराग्य ।
संसार चंचल जाणीयु, सरीर भोग असार ॥१॥ अजितनाथ रास ॥
मुनिवर वाणी निरमलीए, सांभली अति हि विशाल तु।
तब वैराग्य मनि उपनोए, जम्बू कुमार गुणमाल तु ॥२७॥ जम्बूस्वामीरास।
सिद्धान्तसार पढ़ि निरमला हो, त्रिलोक तणु विचार ।
पहिला भवि सवि सांभर्‌या हो, सुकुमाल हवु वैराग्य ।
जनम भाहार वालियु हो, धरम बिना अभाग्य ॥१७॥ सुकुमाल स्वामी रास ॥

वैराग्य के संकल्प को सफल बनाने के लिए नायक को संघर्ष करना पड़ता है। यह संघर्ष प्राय: पारिवारिक होता है। कभी माता की ममता तो कभी पिता का प्यार उसे रोकता है तो कभी प्रियतमा की अश्रुपूर्ण आँखें उसे अपने वैराग्य पथ से विचलित करने लगती है। जम्बूकुमार को इस कार्य में बहुत संघर्ष करना पड़ता है। बड़ी मुश्किलो से उसे केवल एक दिन के लिए ही विवाह हेतु तैयार किया जाता है। विवाह के बाद प्रथम रात्रि मे जम्बू की चारों पत्नियाँ अपने विविध हाव-भाव, शृंगार, कटाक्ष, कथा, गीत आदि के द्वारा उसे अपनी ओर आकर्षित एव वैराग्य से विचलित करने का भरसक प्रयत्न करती है, परन्तु जम्बू पर इनका कुछ प्रभाव नही होता। जम्बू को सासारिक जीवन की ओर आकर्षित करने के लिए चारों पत्नियाँ चार कथाएँ कहती है, उनके उत्तर मे जम्बू भी वैराग्य पोषक चार कथाएँ कहता है। रात्रि पर्यन्त इस प्रकार का सवाद चलता रहता है, पर जम्बू अपने निश्चय पर अडिग रहता है। अन्त मे जम्बू को सफलता मिलती है। सब उसके वैराग्य वीरत्व से प्रभावित होते हैं। स्वय राजा श्रेणिक उसका अन्तिम शृंगार करता है। इस प्रकार सभी नायक मोह-पाश को तोड़कर कर्त्तव्य पथ की ओर अग्रसर हो जाते है। यही स्थिति "प्राप्त्याशा" की है।

कभी-कभी सयम धारण करने की भावना को प्रोत्साहित करने के लिए प्रतिकूल परिस्थितियाँ भी अनुकूल बन जाती है। कृष्ण, नेमिनाथ को विवाह सूत्र में बाँधने के लिए अथक प्रयत्न करते हैं। राजुल के साथ नेमिकुमार का वाग्दान हो जाता है। यह नही, नेमिनाथ दूल्हे बनकर, बरात लेकर राजुल के प्रासादों तक चल पड़ते है, किन्तु अचानक परिस्थिति बदल जाती है। सारथी से अपने विवाह में सम्मिलित लोगो के भोजन के लिए बन्दी पशु-पक्षियो की कातर करुण क्रन्दन की बात सुनकर उन्हें तत्काल ससार से विरक्ति हो जाती है और गिरनार पर्वत पर चढ़ कर सयम धारण कर लेते है। नीलांजना अपने सुन्दर हाव-भावों से पूर्ण नृत्य करती हुई मूर्च्छित हो जाती है जिसे देखकर आदिकुमार को वैराग्य हो जाता है।

संयम लेने के बाद केवल ज्ञान प्राप्त करने तक ही स्थिति प्राप्त्याशा से नियताप्ति तक की स्थिति है। नियताप्ति तक पहुंचने के लिए साधक को अनेकों परिषह सहने पड़ते है। ये बाधायें ही साधक को कसौटी पर कसती हैं। इन कसौटियों पर खरा उतरने वाला नायक 'नियताप्ति' की स्थिति में पहुंच जाता है। इस अवस्था मे वे अपने कर्म-बन्धनों को तोड़ते हैं। सुकुमाल स्वामी को अपनी

साधनावस्था में अत्यधिक परिषह सहना पड़ता है। उनके पूर्व भव का सोमदत्ता का जीव कोल्हिनी बनकर सुकुमाल के कोमल अंगों को खाने लगती है। शरीर से रक्त की धार निकलने लगती है। पहले दिन पांव, दूसरे दिन जांघ और तीसरे दिन पेट को खा डालती है और उनकी अंतड़ियां निकाल देती है। लेकिन धीर-वीर सुकुमाल किंचित्मात्र भी अपनी कायोंत्सर्ग मुद्रा से विचलित नहीं होते और सब परिषह सहन करते हैं और अन्त में समाधिमरणपूर्वक सर्वार्थसिद्धि विमान में अहमिंद्र बनते हैं।[1] सुदर्शन पर राजा कुपित होता है। वह उसका वध करना चाहता है। लेकिन सुदर्शन के शील एव निश्चल ध्यान से वह सुरक्षित रहता है और अपने कार्य में सफलता पाता है। इस प्रकार ये नायक इन बाधाओं से वीर योद्धा की तरह जूझते हैं। तपस्या की अवस्था में स्वर्ग की अप्सराएँ और देव उन्हें डिगाने का प्रयत्न करते हैं लेकिन उनकी अचल साधना के आगे परीक्षको को भी झुकना पड़ता है। यह स्थिति केवलज्ञान की प्राप्ति के पूर्व तक रहती है। केवलज्ञान की प्राप्ति पर 'नियताप्ति' होती है। उसके बाद केवलज्ञानी मानव मात्र को धर्म का उपदेश देता है और 'फलागम' के रूप में अन्त मे मुक्ति को वरण करता है जहाँ उसके जन्म-मरण का चक्र छुट जाता है और वह मुक्तात्मा ईश्वर रूप परमात्मा बनता है। यह स्थिति ही पूर्ण आध्यात्मिकता की स्थिति है और कवि ने इसे अचल सौख्य कहा है।[2]

पूर्व भव की कथा : आलोच्य रास काव्यों में प्रमुख पात्रो का पूर्व भवान्तर भी बतलाया गया है। अपने पूर्व भवान्तर को सुनकर नायक को वैराग्य होता है। और आत्म-पथ में लग जाता है। प्राय: नायक तीर्थंकर के समवशरण में अथवा किसी मुनि की धर्म-सभा में प्रवचन सुनने जाता है। धर्म तत्व सुनने के बाद वह अपने वर्तमान के सुख-दु:ख का कारण पूछता है जिसके उत्तर मे तीर्थंकर या मुनि उसके पूर्व भवों का विवरण सुनाते हुये उसके वर्तमान समय के सुख-दु:ख का कारण

---

१. पहिलि दिनि भख्या पाय, दूजि दिनि जांघ कुवली हेलि।
   त्रीजि दिन पेट विडारि, अंत्र माला काढी अति वली हेलि ॥७॥
   धीर-वीर मुनि चंग, समाधिमरण कीधु निरमलु हेलि।
   सर्वार्थसिद्धि विमान, अहमिंद्र उपनु सोहजलु ए हेलि ॥८॥
   सुकुमाल स्वामी रास ॥

२. अविचल ठामें पामीयाए, अवीचल सौख्य विसाल तो।
   सिद्ध हुवा स्वामी निरमलाए, सरीर रहित गुणमाल तो ।२२। भविष्यदत्त रास।

पिछले कर्म बताते हैं। पूर्व भव की कथा नायक को आत्मालोचन के लिए प्रेरित करती है और यह तथ्य उजागर करती है कि पिछले जन्म में किये गये अच्छे-बुरे कर्मों का परिणाम इस भव में प्राणी को अवश्य भोगना होगा। कवि की उक्ति है कि किये गये कर्म भोगे बिना नहीं छूटते।[1] पूर्व भवान्तर की कथाएँ कर्मवाद के सिद्धान्त की पुष्टि करती है और साथ ही भविष्य के लिये मार्ग प्रशस्त करती हैं।

रासकार ब्रह्म जिनदास ने पूर्व भव की कथाओं के माध्यम से नायक का हृदय-परिवर्तन कराया है और उसे सन्मार्ग पर लाया है। उसने यह कथा काव्य में कहीं प्रारम्भ में ही दी है तो कहीं अन्त से। आदिनाथ रास में प्रारम्भ में ही आदिनाथ के पूर्व भवों की कथाएं दी है। इसी प्रकार जम्बूस्वामी रास, सुकुमाल स्वामी रास, यशोधर रास, गौतमस्वामी रास में पहले पूर्व भव का कवि ने विवरण दिया है और बाद में वर्तमान का। अन्य रास-काव्यों में रासकार ने पहले नायक के वर्तमान जीवन की गाथा प्रस्तुत की है। बाद में किन्ही मुनि के मुख से उसे अपना पूर्व भव सुनाकर वैराग्य की ओर आकर्षित कराया है। जहाँ प्रारम्भ में ही नायक का पूर्व भव बतलाया है वहां अन्त में वह किसी अन्य निमित्त को पाकर वैराग्य ग्रहण करता है। जैसे आदिनाथ की नीलांजना के निमित्त से, सुकुमाल को स्वाध्याय द्वारा जाति स्मरण से, अजितनाथ को उल्कापात से, भरत को माला के मुर्झाने से वैराग्य होता है। पूर्व भव की ये कथाएं मूल कथा के विकास में पूरक स्वरूप हैं। इनके द्वारा कवि 'कर्मवाद' एवं 'पुनर्जन्म' के सिद्धान्त को स्वीकारता है और पाठकों को भविष्य के लिए सत्कर्म की ओर प्रेरित करता है।

अवान्तर कथाएं : ब्रह्म जिनदास ने अपने काव्यों में अवान्तर कथाओं का भी प्रयोग किया है। ये अवान्तर कथाएं मूल कथा के विकास में अवश्य सहायक हुई हैं। पर कहीं-कहीं कथा-विन्यास में इनके कारण जटिलता भी आ जाती है। पूर्व भव की कथाएं भी एक प्रकार से अवान्तर कथायें ही होती है क्योंकि इनके पृथक होने पर मूल कथा मे किसी प्रकार की बाधा नही पहुंचती है। बड़े रास काव्य अवान्तर कथाओं से संयुक्त है। आदिनाथ रास मे आदिनाथ के अलावा १४ कुलकरों की, भरत, बाहुबलि, श्रेयांस आदि के पूर्व भवों की और भरत-बाहुबलि का युद्ध एवं विजय की भी कथाएं दी गई हैं। राम रास में राम के अलावा वानरवंश, विद्याधररास कथा, नारदकुल, हनुमन्त कथा, लवकुश कथा, रावण-वरुण कथा, तीर्थंकरों के भवों का वर्णन, सुकौशलस्वामी का महात्म्य आदि की कथाएं हैं।

---

१. कीधा कर्म न छूटीयाए ।।१६।। जीवंधर स्वामी रास ।।

हरिवंश रास में नेमिनाथ के अलावा, वसुदेव, वासुदेव, पाण्डवों एवं कौरवों की कथा दी हुई है। अजित जिनेश्वर रास में अजितनाथ के साथ राजा सगर की भी कथा दी है। हनुमन्त रास की कथा में हनुमान के अलावा माता अंजना की पूर्ण कथा दी है। रास के नाम से लगता है इसमें सर्वत्र हनुमान की कथा होगी लेकिन ऐसा नहीं हुआ है। कवि ने इसके अधिकांश भाग में हनुमान के माता-पिता, अजना एवं पवनंजय की कथा दी है। अन्तिम पृष्ठों में हनुमान का वर्णन हुआ है।

जम्बूस्वामी रास तो अवान्तर कथाओ से भरा पड़ा है, जो प्रसंगवश आयी हैं। पूर्व भव एवं अवान्तर कथाओं के परिवर्तन की सूचना कवि प्राय: दोहे छन्द से देता है। यद्यपि सभी रास-काव्य प्रबन्ध काव्य की सीमा को पहुंचते है। पर ये संस्कृत कथा काव्यों की तरह विभिन्न सर्गों में विभक्त नहीं हैं। अत: कथा परिवर्तन के सयय कवि किसी छन्द मे पूर्व कथा को वहीं छोड़ अगली कथा के आरम्भ की सूचना देता है। हाँ, इस स्थिति में वह छन्द परिवर्तन अवश्य करता है।[1]

कथानक रूढ़ियां : पूर्व रचित साहित्य में प्राप्त सौन्दर्य की अनेक विधाएं, चमत्कार की अनेक प्रणालियां सस्कृति की जीवन्त मान्यताएं बन जाती है। ये मान्यताएं या परम्पराएं कालान्तर में बहुजन प्रयुक्त होकर रूढ़ियों का रूप धारण कर लेती हैं। अनेक व्यक्तियों द्वारा अनेक स्थलों पर दुहराई जाने पर वही बात रूढ़ि बन जाती है। इन रूढ़ियों का प्रयोग सहित्य के लिए मान्यता स्वरूप हो जाता है। कथानक रूढ़ियां भी इसी प्रकार की रूढ़ियां हैं। इन्हें अंग्रेजी में motifs कहते हैं। 'मोटिफ' एक विचारकृत शब्द है, जिसकी समान स्थितियों में पुनरावृत्ति होती है अथवा जो युग की किसी एक अथवा विभिन्न कृतियों में समान मानसिक दशा उत्पन्न करने के लिए बार-बार आता है। मोटिफ को 'अभिप्राय' भी कहते हैं जो कथा का मूल भाव होता है। कुछ विद्वान् अभिप्राय को कथानक का मुख्य लक्षण मानते हैं। डॉ० कन्हैयालाल सहल मोटिफ के लिये प्ररूढ़ि शब्द को अपनाते हुये

---

१. (क) ए कथा हवइ इहां रही, अवर सुणों विचार।
उत्पत्ति श्री आदि जणंद तणी, किसुं विरमल गुणमाल ॥१॥
आदिनाथ रास ॥

(ख) ए कथा इहां रहीं अवर सुणों विचार।
समोसरण हवि वरणवूं, महावीर तणो अवतार ॥१॥जम्बूस्वामी रास॥

लिखते हैं "प्ररूढ़ि शब्दों में आवृत्ति और गति दोनों का भाव एक साथ पाया जाता है।"[1] डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार कथा में अभिप्रायों का वैसा ही महत्व है जैसा किसी भवन के लिए ईंट गारे का अथवा किसी मन्दिर के लिए नाना भांति से उकेरे हुए शिलापट्टों का। ईंट गारे की सहायता से जैसे भवन बनते हैं वैसे ही भिन्न-भिन्न अभिप्रायों की सहायता से कहानियों का रूप सम्पादित होता है।[2]

प्रत्येक देश के साहित्य में भी अनुकरण तथा अत्यधिक प्रयोग के कारण कुछ साहित्य सम्बन्धी रूढ़ियां बन जाती हैं और यांत्रिक ढंग से उसका प्रयोग साहित्य में होने लगता है। इन सभी रूढ़ियों को साहित्यिक अभिप्राय कहते हैं। भारतीय साहित्य में परकाया प्रवेश, लिंग परिवर्तन, पशु पक्षियों की बात-चीत, किसी बाह्य वस्तु में प्राणों का बसना आदि कितने ही अभिप्राय हैं। ये साहित्यक रूढ़ियां दो प्रकार की होती हैं। एक लोक विश्वास पर आधारित और दूसरी कवि कल्पित। हिन्दी साहित्य में 'कथानक रूढ़ि' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने किया।[3] डॉ० द्विवेदी के अनुसार ऐतिहासिक चरित का लेखक सम्भावनाओं पर बल देता है। परिणामतः हमारे देश के साहित्य में कथानक को गति एवं बल देने के लिए कुछ अभिप्राय दीर्घकाल से प्रयुक्त होते आ रहे हैं जो बहुत थोड़ी दूर तक यथार्थ होते हैं पर आगे चलकर कथानक रूढ़ियों में बदल जाते हैं।[4]

कथाओं के निर्माण में इन रूढ़ियों का विशेष महत्व है। जिस प्रकार गृह के आकार को स्थूल रूप देने के लिए ईंट, पत्थर, चूना, लकड़ी आदि की आवश्यकता पड़ती है, उसी प्रकार कथा के स्वरूप में स्थिरता लाने एवं उसे विशेष मनोरंजक बनाने के लिए और रोमांच की अभिवृद्धि के लिए प्ररूढ़ियों का प्रयोग अत्यावश्यक माना गया है।

कथानक में रूढ़ियां नये-नये मोड़ों को जन्म देती हैं और कथानक को अधिक आकर्षक बनाती है। इसके माध्यम से लोक की मान्यताओं एवं विश्वासों की

---

१. लोक कथाओं की प्ररूढ़ियां उपक्रम
२. लोक कथा अंक—आजकल, मई १९५४, पृष्ठ ११
३. हिन्दी साहित्य कोश-भाग १, पृष्ठ २०५
४. हिन्दी साहित्य का आदिकाल : पृष्ठ ८०

विश्लेषण किया जा सकता है। इन रूढ़ियों से ही कथा की व्यापकता सिद्ध होती है तथा विविध रूपों में फैली हुई कहानियों की एकरूपता का परिज्ञान सहज में ही हो जाता है।

आलोच्य रास काव्यों में भी इस प्रकार की कथानक रूढियां पर्याप्त संख्या में मिलती हैं। रासकार ने कथानक में गति एवं तीव्रता लाने के लिए इन रूढ़ियों का प्रयोग किया है। ये कथानक रूढियां जैन संस्कृति के मूल तत्वों को अनावृत करते हुये एक ऐसी प्राचीन परम्परा की ओर सकेत करती हैं, जो युग-युगों से भारतीय जीवन को प्रभावित कर रही हैं। इन रास काव्यों में मुख्यत: निम्न कथानक रूढ़ियां प्रयुक्त हुई हैं—

१.	प्राय: नायक का उच्चकुलीन होना— राजा, राजकुमार, श्रेष्ठि, श्रेष्ठिपुत्र	श्रेणिक रास, धन्यकुमार रास
२.	तीर्थंकर जन्म से पूर्व १६ स्वप्नों को देखना	आदिनाथ रास
३.	तीर्थंकरों का दस अतिशय युक्त होना	अजितनाथ रास
४	तीर्थंकर के पचकल्याणकों का होना	,, ,,
५.	साधु के आहारोपरात पंचाश्चर्यों का होना	आदिनाथ रास
६.	नगर के प्रमुख उद्यान मे मुनिवर का ठहरना	,, ,,
७	नगर उद्यान मे तीर्थंकर के आगमन के समाचार सुनकर राजा द्वारा उस दिशा मे सात कदम चलकर परोक्ष वन्दना करना	आदिनाथ रास
८.	समवशरण में राजा द्वारा धर्म श्रवण के पश्चात् अपने पूर्व भव का वृत्तात पूछना	भविष्यदत्त रास
९.	अपने पूर्व भव का वृत्तात सुनकर नायक द्वारा संसार से विरक्त होकर दीक्षा लेने का सकल्प करना और अपने पुत्र को उत्तराधिकारी बनाना	भविष्यदत्त रास
१०.	नायक के साथ अन्य लोगों का भी दीक्षा लेना	जम्बूस्वामी रास
११.	नायक पर उपसर्ग होने पर देवों द्वारा सहायता करना	सुदर्शन रास
१२.	विलीन होते मेघ को, श्वेत केश को, बिजली की चमक को, उल्कापात को मुर्झाती माला को देखकर विरक्त होना	अजितनाथ रास, आदिनाथ रास
१३.	शास्त्र श्रवण से सांसारिक भोगों से विरक्त होना	सुकुमालस्वामी रास

१४.	मन्त्र सिद्धि से विमान की रचना करना	भविष्यदत्त रास
१५.	मंत्र सिद्धि द्वारा मनुष्य को अन्यत्र उठाकर रखना	जीवन्धर रास
१६.	श्मसान में पुत्र जन्म	,, ,,
१७.	णमोकार मंत्र से संकट दूर होना	चारुदत्त रास
१८.	भाग्य परीक्षा	श्रीपाल रास
१९.	नायक द्वारा मदांध हाथी को वश में करना	जम्बूस्वामी रास
२०.	वेश्या द्वारा धर्म के लिए मनुष्य को रिझाना	चारुदत्त रास
२१.	व्यापार के लिए समुद्र यात्रा करना एवं बणजारों को साथ लेना।	भविष्यदत्त रास
२२.	नायक द्वारा जिनालयों के कपाट खोलना और राजकुमारियों को पाना।	नाग कुमार रास
२३.	प्रहेलिकाएँ पूछकर तीर्थंकर बुद्धि की परीक्षा करना।	आदिनाथ रास
२४.	मुनि के आशीर्वाद से और गन्धोदक से रोग का शमन।	श्रीपाल रास
२५.	पाद प्रक्षालन से पति की पहिचान।	श्रीपाल रास
२६.	बारह वर्ष के लिए परिवार से बिछुड़ना।	भविष्यदत्त, श्रीपाल रास
२७.	सौतेली माता के दुर्व्यवहार से गृह परित्याग।	राम-रास
२८.	सच्चे साधुओं की निन्दा से कुरूप होना।	रोहिणी रास
२९.	पूर्व जन्म के पाप-पुण्य को अगले जन्म में भोगना।	सभी रासों में।
३०.	पुण्य फल के रूप में समस्त कलाओं की शीघ्र प्राप्ति होना।	नागकुमार रास
३१.	मरणासन्न पशु-पक्षी का णमोकार मन्त्र सुनकर स्वर्ग में जाना।	नागश्री रास
३२.	जैन मुनि के प्रभाव से शुष्क वन का हरा-भरा होना और षट्-ऋतुओं का एक साथ आविर्भाव।	राम-रास
३३.	पूर्व जन्म में कृत उपकार का फल मिलना।	नागश्री रास
३४.	जिन-पूजा से अतिशय वस्तुओं की प्राप्ति।	ज्येष्ठ जिनवर पूजा कथा
३५.	तीर्थंकरों की उत्कृष्ट तपस्या के प्रभाव से विरोधी पशुओं का वैर भाव छोड़ना व एक साथ प्रेम से रहना।	आदिनाथ रास

३६.	पौरुष की परीक्षा।	आदिनाथ रास
३७.	स्वयंवर में राजकुमारी द्वारा नायक का वरमाला पहिनाना।	राम-रास
३८.	संगीत द्वारा परीक्षा लेना।	जीवन्धर रास
३९.	शील के प्रभाव से देवता के आसन का कम्पित होना और शील भंग कर्त्ता को दण्ड देना।	भविष्यदत्त रास
४०.	स्व मित्र के प्रबोधनार्थ स्वर्ग में देवता का मध्य-लोक तथा अधोलोक में आना।	सगर चक्रवर्ती रास
४१.	शास्त्राभ्यास तथा मुनि दर्शन से जाति स्मरण होना।	सुकुमालस्वामी रास
४२.	विधिवत् व्रत पूजा करने से रोगादि का नष्ट होना।	श्रीपाल रास
४३.	स्वप्नों के द्वारा शुभाशुभ भविष्य का संकेत।	आदिनाथ रास
४४.	जैन मुनि के दर्शन मात्र से शंकाओं का निर्मूल होना।	गौतम स्वामी रास
४५.	अपने कुकृत्यों की आलोचना से पाप मुक्ति, धैर्यवान होना और जिन धर्म में आस्था रखना।	हरिवंश रास, राम-रास

इन कथानक रूढ़ियों के प्रयोग से रासकार ब्रह्म जिनदास ने अपने काव्यों के चरित्र-नायकों के जीवन को उज्ज्वल पक्ष प्रदान किया है। इन रास-काव्यों में केवल पारलौकिक अथवा आध्यात्मवाद की ही प्रमुखता नहीं है, अपितु लौकिक जीवन के धरातल पर गौरवशाली त्यागभाव को इस प्रकार अभिव्यंजित किया गया है कि साधक अपने चरम लक्ष्य को बड़ी सुगमता से जान सकता है।

अलौकिक तत्त्व : कथानक में रूढ़ियों के सदृश अलौकिक तत्त्वों का भी अपना महत्त्व होता है। अलौकिक तत्त्व कथानक में रोचकता बढ़ते हैं और एक विशिष्ट मोड़ को जन्म देकर उसकी अभिवृद्धि में नूतनता उत्पन्न करते है। साथ ही पाठकों के मानस में कौतूहल समुत्पन्न करके कथा के प्रति नूतन आकर्षण बनाये रखते हैं। पात्रों के चरित्रों के विकास में भी इन अलौकिक तत्त्वों का विशेष महत्त्व है। मनुष्य अलौकिक तत्त्वों की कल्पना सदैव से किसी न किसी रूप में अवश्य करता रहा है। जो उसके सब कार्यों को सुगम बना सके और जिसके द्वारा वह

अलभ्य वस्तुओं को पा सके। यद्यपि अलौकिक तत्व सत्यांश एवं यथार्थ से परे होते हैं पर मनुष्य की काल्पनिक अतृप्त आकांक्षाओं की पूर्ति में अवश्य मददगार होते हैं।

यद्यपि कतिपय विद्वान् अलौकिक तत्वो को कथानक रूढ़ियों या लोकविश्वासों के रूप में ही स्वीकार करते हैं, परंतु फिर भी इनमें भिन्नता है। कथानक रूढ़ि में परंपरा का पुट होता है, जबकि अलौकिक तत्वों में रूढ़ता या परंपरा का होना आवश्यक नहीं है। अलौकिक तत्व नवीन भी हो सकते हैं। उनके चमत्कार का तत्व विशेषतया होता है। सामान्य लोक से परे चमत्कार विशेष अलौकिक तत्व कहलाते हैं।

आलोच्य रास काव्यों में अलौकिकता का अंश भी पाया जाता है। रास-काव्यों में प्रयुक्त अलोकिक तत्व महापुरुषों, ऋषि-मुनियों एवं देवों के अलौकिक प्रभाव को प्रदर्शित करते हैं और धर्म के प्रति आस्था उत्पन्न करते हैं। रासकार ने सम्यक्-धर्म के प्रति आस्था दिखाने के लिए, कथावस्तु को आकर्षक बनाने के लिए, मन्त्रादि के प्रभाव को बताने के लिए, महापुरुषों की गरिमा को चरित करने के लिए. प्रमुख पात्रों के चारित्रिक विकास के लिए, जिज्ञासा उत्पन्न करने के लिए निम्न अलौकिक तत्वों का अपने काव्यों में प्रयोग किया है—

१.	धार्मिक पुरुषों के संकट में देवों का उपस्थित होना, संकट दूर करना और शत्रुओ को जहां की की तहां कील देना	सुदर्शन रास
२.	सम्यक् चारित्र के प्रभाव से घातक शस्त्रों का पुष्पों में परिणित होना	श्रीपाल रास
३.	महासती के मात्र चरण स्पर्श से ही नगर के बाहरी कपाटों का खुलना	हनुमन्त रास
४.	विद्या के प्रभाव से सुन्दर विमानों का निर्माण	जीवन्धर रास
५.	समवशरण मे भगवान के चारों मुखों का चारों दिशाओं में दिखना	आदिनाथ रास
६.	मुनि को अन्तराय रहित एवं विधिवत आहार देने से पंचाश्चर्यों का होना	आदिनाथ रास
७.	ऋद्धि के प्रभाव से छोटा-बड़ा रूप बनाना और तीन डगों में समस्त भू-खण्ड को नाप लेना	समकित अष्टांग कथा रास

८. जिनेन्द्र माता की सेवा में देवियों का संलग्न रहना — अजितनाथ रास
९. तीर्थंकरों के पंचकल्याणकों का होना और देवों द्वारा समारोह मनाना — आदिनाथ रास

रासकार ने कथानकों में इन अलौकिक तत्वो का प्रयोग करके जनसामान्य में धार्मिकता को स्थिर किया है और जीवन को समुन्नत बनाने के लिए सम्यक् मार्ग का प्ररूपण प्रस्तुत किया है।

इन अलौकिक तत्वो को भले ही कपोलकल्पित कहा जावे, परतु इनमे भारतीय सस्कृति का यह चिरतन सत्य विद्यमान है कि त्याग, तपस्या और सम्यक् आचरण से असम्भव भी सम्भव हो जाता है। मानव अपनी सीमित ज्ञान से इनका मूल्याकन नही कर सकता।

जैनधर्म आत्मा की अनन्त शक्ति मे विश्वास करता है। उसकी यह चिरतन मान्यता है कि कर्मों का क्षय करके आत्मा परमात्मा बन जाता है। ऐसी स्थिति मे अनन्त शक्ति सम्पन्न आत्मा के प्रभाव से जो अलौकिकता प्रदर्शित होती है वह कैसे कल्पित कही जा सकती है।[1] तप पूतऋषि-मुनियो के प्रभाव को प्रमाणित करने वाले आश्चर्यों को कल्पित नही कहा जा सकता। आत्मा की निर्मलता एव पावनता से दुर्भिक्ष शात होता है, भयावह रोग शमित होता है। मूक पशु बैर-भाव छोड एक स्थान पर आ मिलते है, वनस्पति हरी-भरी हो जाती है और देवगण कमलो की सरचना करते हैं तो इसमे कोई आश्चर्य नही।

वस्तु वर्णन : आलोच्य रास-काव्यो मे इतिवृत्तात्मकता भी है। इसी कारण वर्णनो की दृष्टि से ये कम महत्वपूर्ण नही है। ये वर्णन इन काव्यो मे हमे दो रूपो मे मिलते है—एक वस्तु रूप मे और दूसरे भाव रूप मे। महाकवि ब्रह्म जिनदास भावाभिव्यंजना के साथ वस्तु वर्णन मे भी विशेष रूप से रमे दिखाई देते हैं। वस्तु रूप मे जो वर्णन आये हैं, उनसे कई सास्कृतिक विशेषताओ का पता चलता है। इन वर्णनों मे नगर-वर्णन, जन्म-वर्णन, बाल-वर्णन, रूप-सौन्दय-वर्णन, विवाह-वर्णन, मुनि-वर्णन, दीक्षा-वर्णन, समवसरण (धर्मसभा वर्णन) तप, मोक्ष प्रकृति वर्णन आदि के वर्णन नितान्त मनोहारी हुये हैं। तीर्थंकरो के पचकल्याणकों (गर्भ जन्म, तप, ज्ञान और मोक्ष) के वर्णन मे तो ब्रह्म जिनदास की प्रतिभा विशेष मुखर हो उठी

---

१. जैन कथाओं का सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ ८९–९१।

है। भाषा, भाव, ध्वनि और बिम्ब का सुन्दर सामंजस्य इन वर्णनों की अपनी विशेषता है।

नगर एवं वैभव वर्णन : आदिनाथ रास में अयोध्या नगरी का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

भरत क्षेत्र मांहि रूवडीर, आर्य खंड सविचार तु।
कोसल देस मांहि जाणिये, अयोध्या नगरि गुणसार तु ॥२॥
अमरावती जीम रूवडीए, गढ मंदिर अपार तु।
बारा जोयण लांबी गुणोए, नव जोयण विस्ता तो ॥३॥

राजगृही का वर्णन में राजा-रानी का भी उल्लेख है—

जम्बूद्वीप मझारि सार, भरत क्षेत्र सुजाणो।
भरत क्षेत्र माहि मगध देस, राजग्रह वखाणो॥
श्रेणिक राजा करइ राज, भरे लाछि भंडारो।
चेलणा राणी तसु तणी, रूप सीयल अपारो॥[1]

कई देशों व नगरों का एक साथ नाम वर्णन भी मिलता है—

जम्बूद्वीप मझारिसार पूर्व वि देस वखाणो।
सीता नदी दक्षण जाणि, कच्छा देस वखाणो ॥१॥
वच्छकावती अतिविसाल, नयर गुणधार।
पृथ्वीपुर पाटण सार, विसेसविचार ॥[2]

राजा श्रेणिक के पास अपार वैभव-सम्पत्ति है। सिंहासन पर बैठा हुआ सामन्त क्षत्रियो के मध्य वह इन्द्र सदृश हो रहा है—

गज घोड़ा आदि धन अपार, परिवार विसाल।
जस विस्तार्यो त्रिभुवन माहिं, कीरती गुणमाल ॥५॥
सूरवीर जयवंत सार, महिमा जिम मेव।
न्याय मारगि तीह करे ए राज, गंभीर विसाल ॥६॥
सिंहासन बैठा श्रेणिकराय, सौहे जीम इंद्र।
सामंत मंत्रीय सहीत सभा सौहे जीम चन्द्र ॥७॥[3]

---

१. अजितनाथ रास : दूहा ॥३-४॥
२. वही : ॥१-२॥
३. हरिवंश रास : ॥५-७॥

विजया रथ पर्वत की दक्षिण श्रेणी में पचास नगरों के मध्य रत्नपुर अमरावती के समान शोभित है—

विजयारथ अति चंग, दक्षण श्रेणी बखाणीइए।
पचास नयर उत्तंग, दीसइ अति रलियामणुं ए॥
रत्नपुर तिहां सार, नयर वसि अति रूवडोए।
अमरावती जिम जाणि, धनद आपि घडीए॥[1]

जम्बूस्वामी रास में कवि ने अपने विद्युच्चोर की विभिन्न धार्मिक स्थानों की तीर्थयात्रार्थ भ्रमण का वर्णन किया है, उसमें कई नगरों का उल्लेख हुआ है। जैसे—कन्नौज, जालधंर, मालवा, उज्जैन, कर्णाटिक, सिंघलद्वीप, सौराष्ट्र, तिलकपुर, पाटण, गुजरात, मेवाड़, चित्तौड़गढ़, सिंधुदेश, हस्तिनापुर अयोध्या, कौशाम्बी, वाणारसी, रत्नपुर, चम्पापुर, मथुरा, राजगृही, कुंडलपुर आदि।[2]

मेवाड़ में चित्तौड़ राज्य का वर्णन देखिये—

जंबूद्वीप छि रूवडो, मधि मेरु बखाणो।
दक्षण दिशा निरमलो, भरतक्षेत्र बखाणो॥
मेवाड़ देश छि अति विशाल, तिहां नयर छि सुचंग।
चित्रकूट बखाणीये, दीसे उत्तंग॥
नरपति राजा करइ राज, भरि लाछि भंडार।
लक्ष्मीमती राणी तेह तणी, बहू रूप अपार॥[3]

स्वप्न वर्णन : आलोच्य कवि के रास-काव्यों में यथा-स्थान स्वप्नों का भी वर्णन हुआ है। तीर्थंकरों एवं अन्य महापुरुषों की माताओं को तीर्थंकर या किसी महापुरुष के जन्म से पूर्व रात्रि के पिछले प्रहर में स्वप्न दिखायी देते हैं जो भावी पुत्र के अतिशय चमत्कारों के सूचक होते हैं। तीर्थंकर की माता को सोलह स्वप्न दिखायी देते हैं।[3] महापुरुषों की माताओं को पाच स्वप्न दिखायी

---

१. हनुमंत रास : भास्वीनतीनी ॥१७–१८॥
१. जंबूस्वामी रास : भाव चोपाईनी ॥२१–५०॥
२. रात्रि भोजन रास : भास अशोकरनी ॥२–४॥
३. (क) आदिनाथ रास में महारानी मरुदेवी को।
(ख) अजितनाथ रास में विजया रानी को।
(ग) हरिवंश रास में नेमिनाथ की माता शिवादेवी को।

देते हैं।[1] इन स्वप्नों का फल तीर्थंकर पिता या मुनि बतलाते हैं। स्वप्नों में गज, वृषभ, सिंह, सूर्य, चन्द्र, कमलयुक्त सरोवर, सिंहासनरूढ़ लक्ष्मी, पुष्पमाला, मीन, स्वर्णिम कलश, समुद्र, हेमरत्नजड़ित सिंहासन, विमान, नागभुवन, रत्नराशि, निर्धूम अग्नि आदि दिखायी देते हैं। भद्रबाहु रास मे चन्द्रगुप्त को सोलह स्वप्न दिखायी देते है जो राष्ट्र के भावी सुख-दु:ख के सूचक हैं। आदिनाथ के आहारार्थ आगमन से पूर्व राजा सोमश्री को भी स्वप्न आते हैं।

अन्तिम केवली जम्बूस्वामी की माता सेठ अर्हदास की पत्नी जिनमति को जम्बुस्वामी के जन्म से पूर्व पांच स्वप्न दिखायी देते हैं। इन स्वप्नों के माध्यम से कवि ने नायक के भविष्य की ओर संकेत दिया है और बताया कि पुण्य पुरुषों के शुभागमन का संकेत ही मिल जाता है। पुण्यवान पुरुष ही अतिशयवान होते हैं। अपने पूर्व जन्म मे जिसने तपस्या की है, दान दिया है, कर्मों की निर्जरा की है तथा सम्यक् धर्म का अनुसरण किया है, ऐसे महापुरुष ही अगले भव मे स्वपर कल्याण-कारक एवं मुक्तिगामी होते हैं। नागकुमार की माता को एव धन्यकुमार की माता को पुत्र जन्म से पूर्व पाच स्वप्न दिखायी देते है।[2] पूर्णिमा का चन्द्रमा, उदित होता सूर्य, कल्पवृक्ष, गम्भीर समुद्र और सिंह। धवल वृषभ, पूर्णिमा का चन्द्रमा, उदित सूर्य, कल्पवृक्ष और गज (धन्यकुमार)[3] सुदर्शन के जन्म से पूर्व जिनमति माता को पाच स्वप्न दिखते हैं।[4]

जन्म वर्णन : आलोच्य रास-कवियो मे तीर्थंकरों, राजकुमारो एवं श्रेष्ठि-पुत्रो के जन्म-वर्णन मे अनेक काव्य-रूढ़ियो का प्रयोग किया गया है। तीर्थंकर के जन्म लेते ही सर्वत्र आनन्द छा गया। दशो दिशाएं निर्मल हो गयी। सुगंधित वायु बहने लगी। आकाश बिलकुल स्वच्छ हो गया। तीर्थंकर जन्म से तीन ज्ञान के (मति, श्रुति और अवधि) धारी हुये। शरीर से उनका वर्ण कचन था। अपने

---

१. (क) जम्बूस्वामी रास में अन्तिम केवली जम्बूस्वामी की माता जिनमती को पाच स्वप्न दिखायी देते है।
(ख) सुदर्शन की माता को, धन्यकुमार की माता को पांच स्वप्न दिखायी देते हैं।

२. नागकुमार रास

३. धन्यकुमार रास

४. सुदर्शन रास

सौन्दर्य में उन्होंने कामदेव को भी जीत लिया। आदिपुराण रास में 'आदिनाथ' जन्म-वर्णन देखिये—

> मास नव हुआ गुणवंत, सात दिवस अधिका जयवंत।
> चैत्र मास अंधारा पास, नवमी दिन कहीए गुणभास॥
> उत्तराषाढ़ नक्षत्र सविचार, ब्रह्म जोग कहीए गुणधार।
> हुवे जन्म हुवो आनन्द, नाठो दुरय तणा तीहां कंद॥
> सयल सजन आनंदीया, नीपनो जय-जयकार।
> जनम हुवो जिनवर तणो, प्रथम तीर्थंकर सार॥
> दश दिशा हुई निरमली, सुगंध पवन झलकंत।
> अंबर दीसे निरमलो, जसो मुनिवर चित॥
> कुसुम वृष्टि हुइ निरमली, गंधोदक वलि सार।
> दुंदुभि वाजे सुरतणी, धवल मंगल सविचार॥
> तिन्नि ज्ञान करि लंकर्या, कंचन वरण सरीर।
> रूपे मनमथ जीकीयो, प्रथम तीर्थंकर धीर॥[1]

तीर्थंकर के जन्म होने पर स्वर्ग से इन्द्र-इन्द्राणियां जन्मोत्सव मनाने के लिए आते हैं। भगवान के जन्म से उनके आसन कम्पित हो गये और उनके मस्तकों के मुकुट भी झुक गये—

> आसन कांप्या सुरतणाए, सु० मुगट नम्या तव सार।
> पुष्पवृष्टि सुरेन्द्र करइ, सु०, नाचे सुरस अपार॥
> देव सवि आनंदीयाए, सु०, मनमांहि धरि बहुभाउ।
> अयोध्या हर्वे आइयए, सु०, वाहि ए त्रिभुवन नोराउ॥
> अमरावती जिम सोहीयोए, सु०, अयोध्या नयर सुविसाल।
> जित सत्रु राय धरि आवीयाए, सु०, ते देव गुणमाल॥[1]

इन्द्राणी ने प्रसवागार में जिनमाता की वन्दना की और मायावी बालक को उसके पास सुलाकर बालक जिन को बड़े हर्ष से अपनी गोद मे लेकर बाहर आयी और इन्द्र के हाथों में सौंप दिया। इन्द्र ने अपने हाथों में उन्हें ग्रहण करने से पूर्व

---

१. आदिपुराण रास : भास चोपाईनी ॥२९–३०॥ और दूहा ॥१–४॥

१. अजितनाथ रास : भास माल्हंतडानी ॥१–३॥

उनकी वन्दना की। जिन बालक के अपार सौन्दर्य को अपनी दो आंखों से न देख सकने के कारण इन्द्र ने सहस्त्र नेत्र कर लिये। फिर भी वह तृप्त नहीं हुआ। बाल भगवान को देखते ही सर्वत्र जयनाद हुआ, अप्सराएं नृत्य करने लगी। पंचम स्वरों में संगीत ध्वनि गूंजी। वे बालक का जन्म कल्याण के मनाने के लिए सुमेरु पर्वत पर गये। वहां पांडुक सिला पर सिंहासन पर बालक को विराजमान कर क्षीर-समुद्र से १००८ स्वर्ण कलशो में जल भर कर उनसे अभिषेक किया गया और महोत्सव मनाया गया। इन्द्राणी ने बालक का शृङ्गार किया और जिनमाता के पास पहुंच मायावी बालक के स्थान पर सुला दिया। जिनमाता को जगाकर उसे सुमेर पर्वत पर जन्म कल्याण के समाचार सुनाये। सुनकर सभी आनंदित हुये। —

> सयल लोक आनंदीया, उपनो परमानन्द।
> माय बाप सुख उपनो, वाध्यो परमहकंद ॥
> जित शत्रु राज आणि, जात महोछव करावोए।
> धवल मंगल गीतनाद, नयर माहि भाविजड्योए।
> नयरि सिणगार्यो सार, घरि घरि धामणाए।
> सुर नर जय जयकार, मांगलिक होर अति घणाए ॥[1]

लेकिन हनुमान के जन्म पर कोई महोत्सव नही हुआ क्योकि माता अंजना ने उसे गुफा में जन्म दिया था। परन्तु उसके जन्म होते ही गुफा में प्रकाश व्याप्त हो गया—

> तिणि अवसरि पुत्र जनमीउ ए, सु० अंजना सुंदरि गुणवंति।
> अजू आलू हवउं अति घणुं ए, सु०, गुफा माहि जयवंत ॥

जीवंधर का जन्म श्मसान मे हुआ। कोई खुशी नही मनायी गई। माता विजयावती बहुत दुःखी हुई। उसने पुत्र को गंधोधक सेठ के हाथों दे दिया। जो अपने मृत पुत्र के बदले मे उसे ले गया। घर ले जाकर उसने स्त्रियो को समझाया कि जन्म देते समय वेदना के कारण वह मूर्छित हो गया था। अतः इसे मृत समझा गया, पर वन में ठंडी हवा से यह चेत मे आ गया है। इसलिए मैं इसे ले आया हूं। प्रथम बार पुत्र जन्म के कारण तुम समझ नही सकी थी। सेठ की पत्नी ने पुत्र को स्वीकारा। पुनः जीव को धारण करने के कारण उसका नाम जीवंधर रखा गया और फिर हर्ष मनाया गया। लोगों ने सेठ को बधाइयां दीं। मंगलाचार हुये—

---

१. अजितनाथ रास : दूहा ॥१॥ भास बीनती ॥१—२॥

ए बालक बीजो पुण्यवंत, कमल वदन हुआ जयवंत ।
हृदय उपनो बाध्यो आनंद, ए बालक वाध्यो सुखकंद ।।

सुकुमाल की माता यशोभद्रा अपने पुत्र सुकुमाल के जन्म की बात अपने पति को भी नहीं बताती. क्योंकि उसे किसी मुनि ने बताया है कि उसके पुत्र के जन्म की बात सुनकर उसके पति को वैराग्य हो जायेगा और पुत्र का मुख देखते ही साधु बन जायगा, अतः वह अपने पीयर के बहाने किसी एकान्त स्थान में चली जाती है। वहीं पुत्र को जन्म देती है और यत्नपूर्वक पुत्र को गोपनीय रखती है। परन्तु फिर भी यह बात छिपी नही रहती है। जब वह किसी समय अपने पुत्र के वस्त्र धोने के लिए नदी पर गई होती है तो कोई ब्राह्मण उससे बालक के जन्म का समाचार पाकर शीघ्र ही वह उसके पिता सुरेन्द्रसाह को बधाई देने पहुंचता है, जिसे सुनकर सुरेन्द्रसाह को वैराग्य हो जाता है—

ब्राह्मण एक तिहां आवीयु, ते चूरत अपार ।
पूछण लागु ते कहि, बालक तरणु विचार ।।
तब कह्यु सिरिए सयल विचार, पुत्र जनम तरणु गुणधार ।
तब ब्राह्मण वधाव्युसाह, तम्ह घरि पुत्र भाव्यु गुणवाहि ।।
विस्मय पाम्युं साह अपार, पुत्र जोवा गयु गुणधार ।
पुत्र जन्म जाण्या जयवंत, वैराग्य उपनु तव महंत ।।
पुत्र दीठु गलत्र क्षणवंत, श्रेष्ठी संयम लीधु जयवंत ।
यशोभद्रा दुःख धरि अपार, सुख न पामि एक लगार ।।[1]

पुत्र जन्म पर दान देना, जिन मन्दिर मे ध्वजा चढ़ाना, मंगलाचार, बधावें गाना, आदि कार्यों का वर्णन कवि ने किया है।

धन्यकुमार के जन्म होने पर नाल गाडने के लिए खड्डा खोदते समय पिता धनपाल को स्वर्ण से भरा कलश मिला। उसे धनपाल ने राजा के समक्ष प्रस्तुत किया। राजा ने उस धन को धनपाल का ही मान और उसे वापिस कर दिया—

---

१. सुकुमालस्वामी रास : भास चौपईनी ।।२–५।।

> देखे पवसरि अति रूयडो, नाना बधामणी कान्ह ।
> पुत्र जणी उत्तम करि, बालका काले वलि बाणि ॥
> बारा माहि बरवणी, नाल सालन कांजि ।
> हेम लाखी अति घणो, बालो भरी पुण्यकाज ॥[1]

सुदर्शन के जन्म होने पर जिनमन्दिर मे बधावे गाये गये, परिवार में आनन्द छा गया, माता-पिता की इच्छा पूरी हुई—

> ते घरि पूगी आस, जिणहर देव बधामणाए ।
> धवल मंगल गीत नाच, महोछव होई सोहामणाए ॥[2]

इस प्रकार तीर्थंकर, राजकुमार, श्रेष्ठि-पुत्र आदि के जन्म के भिन्न-भिन्न प्रकार के वर्णन मिलते है । कवि ने इनका मनोहारी वर्णन किया है । जन्म-वर्णन में कवि की रुचि बहुत रमी है ।

बाल वर्णन · कवि के रास-काव्यो में बाल्यावस्था के वर्णन भी मनोहारी चित्रित हुये हैं । द्वितीया के चन्द्र सदृश बालक दिन प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त होता है । उसकी बाल-क्रीडा से सभी आनन्दित होते हैं । उसकी लुभावनी क्रीड़ाएँ सभी को सुहाती है । दशरथ के चारो पुत्रो का बाल्यकाल का वर्णन देखिये—

> च्यारि कुंवर तिहां च्यारि कुंवर तिहां वाधे गुणवंत ॥
> बीज चन्द्र जिम निरमला, कल्पवृक्ष जिम सार मनोहर ।

जीवंधर कुमार अपने पाँच सौ अन्य वणिक कुमारों सहित खेल रहा है—

> जीवंधर नाम सुहावणो, बालो अति गुणवंत ।
> बीज चन्द्र जिम रूवडो, वृध्य पाम्या जयवंत ॥
> पांचसि कुंवर सोहामणा, सरी सखाधि जाणि ।
> बीसंता रलीयावणा, रूपवंत गुण खाणि ॥[3]

जैसे-जैसे जीवंधर बालक्रीडा करता है, माता-पिता आनन्दित होते हैं—

---

१. धन्यकुमार रास : दूहा ॥१–२॥
२. सुदर्शन रास · भास बीनतीनी ॥३॥
३. जीवंधर रास : दूहा ॥१–२॥

अंजना अपने बालक हनुमान की, गुफा में बाल क्रीड़ा को देख सब दुःख भूल

जीम-जीम बाल क्रीड़ा करि हो, तैम-तैम माइ सन्तोष ।
सजन सयल आनंदीया हो, काय दीसि निरदोष ।।

बाल कभी हसता है, कभी रोने लगता है, कभी उठने का प्रयास करते-करते हुये गिर पड़ता है। गिरने के भय से वह धीरे-धीरे पृथ्वी पर पाँव रखता है। उसकी अस्पष्ट वाणी सभी को आनन्दित करती है—

क्षणि हसि क्षणि रडे हो, क्षणि क्षणि माहि आल ।
क्षणि क्षणि भूमि पडे हो, राखि कुंवर सबाल ।।
हलु हलु पग मूके भेदमी हो, ते बाला सकुमाल ।
काला वयण सुहावणा हो, सरस बोलि गुणमाल ।।

अजना अपने बालक हनुमान की गुफा मे बाल क्रीडा को देख सब दु:ख भूल जाती है। उसका पुत्र साक्षात नागकुमार के समान है। वह ३२ लक्षणो से युक्त है। उसकी काया निर्दोष है—

बत्रीस लक्षण अलंकर्याउए सु०, काय दीसि निरदोष ।
अंजना सवे दुख वीसर्याए, सु०, बालक दीठा पूठि अंग ।।
खेलावि सोभागिणीए, सु०, आपणि मन तणि रंग ।[1]

रूप वर्णन : आलोच्य रास-काव्यों मे रूप वर्णन पर्याप्त मिलता है। यह रूप-वर्णन विशेषत: जन्म, युवावस्था, विवाह, दीक्षा-प्रयाण आदि के अवसर पर मिलता है। रूप-वर्णन मे कवि ने संयम का निर्वाह किया है। तीर्थंकर अजितनाथ का बढ़ता हुआ अतिशय रूप सौन्दर्य दर्शनीय है—

जिम जिम वाधे जिण देव, तिम तिम ज्ञान गुणि विस्तरए ।
दश अतिशय अतिचंग, सहजे उपजे गुणधर ए ।।
स्वेद नइ शरीर मल निहार न संभव ए ।
ओणित उजल जाणि, स्वामिय देह बखाणीयए ।।
वज्र वृषभ नाराच, संहनन पहिलो अति सबल ए ।
सम चौरस संस्थान, रूपें रूडा स्वामी जिणंवए ।।

---

1. हनुमन्त रास : मास मालहुंतडानी ।।२७—३१।।

जोवन चढियो अंगि, वस्त्राभरणइ मंडीयाए ।
सोवन वर्ण सरीर, तेजवंत स्वामी सोहीयाए ।।[1]

युवराज वसुदेव का अपार सौन्दर्य अवर्णनीय है। जब वे नगर में क्रीडार्थ निकलते हैं तो नगर की स्त्रियां उन्हें देख काम से विह्वल हो उठती है—

जुगराज पद भोगवि, सोहे जैसो इन्द्र ।
रूप सोभागि आगलो, जीम पूनिम चंद्र ।।
क्रीडा करवा नीसर्या, वन मांहि सविसाल ।
पंच सबद वाजता, माहि मागण माल ।।
ते रूप जोवा कारणि, आवि बहु नारि ।
काम मूकी निज घरतणु, रही तेडी वारि ।।
विह्वल चित्त करि आपणु, भूली तव बाल ।
व्यंजन खारा कारि सार, सुण वणो घालि थाल ।।[2]

स्वप्नों का फल जानने के लिए रानी शृङ्गार करके राजा के पास जाती है। राजा रानी को अर्द्धासन देता है। राजा के पास बैठी हुई रानी साक्षात इन्द्र की इन्द्राणी सदृश लगती है। रूप सौन्दर्य के इस वर्णन में कवि ने संयम का निर्वाह किया है। रीतिकालीन कवियों के सदृश कहीं भी उच्छृंखल नहीं हो पाया है। रानी चेलना का रूप सौन्दर्य ऐसा ही है—

चेलणा तसु तणी, रूपे, जैसी रंभ ।
सीयलवंती गुणे आगली, जिन शासनि स्थंभ ।।[3]

विवाह वर्णन : कवि ने यथा स्थान विवाह का भी सुन्दर वर्णन किया है। अपने नायक का कई कन्याओं से विवाह कराया है। विविध क्षेत्रों में अपने पराक्रम प्रदर्शन से नायक को कई कन्याओं की प्राप्ति होती है। अपने पुत्र-पुत्री के बड़े होने पर माता-पिता को उनके योग्य वर या कन्या की तलाश करनी होती है। राजा यह प्रश्न अपने मन्त्रियों के समक्ष रखता है। मंत्रीगण उसे अपने-अपने तरीके से सलाह देते हैं। अन्त में पुत्री के योग्य वर की तलाश में स्वयंवर रचा जाता है,

---

१. अजितनाथ रास : भास अंमिकानी ।।११–१६।।
२. हरिवंश पुराण रास : भास जसोधरनी ।।४४०–४४३।।
३. वही : दूहा ।।१।।

जिसमें कई राजागण आमन्त्रित होते हैं। कन्या अपनी सखियों सहित वरमाला हाथ में लिए हुए स्वयंवर मण्डप में प्रवेश करती है। सब राजा अपने हाव-भाव एवं शृङ्गार से उसे आकर्षित करने का प्रयत्न करते हैं। एक सखी कन्या को प्रत्येक का परिचय कराती है। अन्त में कन्या योग्य वर के गले में वरमाला डाल देती है, अथवा जो कन्या की प्रतिज्ञा को पूर्ण करता है वह ही उसे पाता है। प्रतियोगिता में विजय प्राप्त कर्त्ता के गले में वरमाला आ पड़ती है। सीता का विवाह प्रसंग इसी प्रकार का है—

सीता आवी तिहां रूपडीए, न०, सुंदरी सहित सुजाण ।।
उलखावे भूप रूवडाए, न०, चाहे आपणे मन रंगि ।
सीता निहाले निरमलीए, न०, जोवय ते रूप उंतग ।।[1]

धनुष तोडने में सब राजा असफल रहते है। रामचन्द्र ही एक मात्र सफल होते है। सीता उनके गले में वरमाला डालती है—

हरष उपणो तिहां अति घणो, नीपणा जय जयकार ।
सयल राजा आचंभिया, स्थंभिया रह्या जिमसार ।।
सीता मन आनंदियो, कंठि घाली वरमाल ।
चंद्र रोहिणी जिम सोहिया, मोहिया ते गुणमाल ।।
सिंहासणि बैठा निरमला, सोहजला गुणरत्न ।
चमर ढले अति ऊजला, सोहजला जिम सील रत्न ।।[2]

विवाह में स्वयंवर के साथ-साथ माता-पिता की भी अनुमति मिलती है। प्रेम विवाह की अपेक्षा अपने पराक्रम प्रदर्शन से कन्या प्राप्ति को विशेष महत्व मिला है।

जम्बूकुमार प्रारम्भ से ही संसार से विरक्त है। वह विवाह के विरुद्ध है, परन्तु माता-पिता के अत्यधिक आग्रह से केवल एक रात्रि के लिए विवाह को स्वीकार कर लेता है। विवाहोत्सव पर जम्बू का शृंगार किया जाता है, मंगलाचार गाये जाते हैं, गायन वादन एवं नृत्यों से इस विवाह में आनन्दोत्सव मनाया जाता है। हाथी पर बैठकर विवाह के लिए प्रस्थान करते समय उसका यह रूप देखते ही बनता है—

---

१. राम रास : भास नरेसूवानी ।।८-१२।।
२. राम रास : भास जसोधरनी ।।२-४।।

जंबूकुमार सोहामणोए, तिन वारियो अति मानणो ।
गज चडिय परणेवासे, चालीयो ए सहीए ।।
वाजित्र वाजे अति घणा, ढोल नीसाण तबल तणा ।
गाजि अंबर धन जिम भ्रम भ्रमिए, सहीए ।।
गीत गावै वर कामिनी, राज हंस गज गामिनी ।
नाचे इ गोरी सरस सहामिणीए, सहीए ।।

विवाहोत्सव पर माता-पिता की इच्छा पूर्ण होती है । जीमरण होता है और खुशियाँ मनायी जाती है । दान दिया जाता है—

प्रमोद मनोरथ पूरीयो, माय बाप हरखीयो ।
सोहलो नीपजु त्याहां, रूवडोए सहीए ।।
सजन सयल भोजन कीयो, मनवांछित दान दियो ।
आनंद नीपनो तब अति घणोए, सहीए ।।[1]

विवाह के प्रसग मे कवि ने दहेज का वर्णन भी किया है । श्रेष्ठि पुत्र धन्यकुमार पर राजा श्रेणिक प्रसन्न होता है और अपनी पुत्री का विवाह उससे कर देता है । साथ ही दहेज मे नगर, ग्राम, हाथी, घोड़े, रत्न, स्वर्ण, वस्त्र और धन आदि भी देता है—

देश पाटण पुर वली दीया, नयर ग्राम सविशाल ।
गज तुरंगम अति घणां, रथ पालकी गुणमाल ।।
रयण कनक मोती घणां, पट्ट कूल सविशाल ।
धन कण पार न पामीइ, धरम सार गुणमाल ।।[2]

कवि ने विवाह से पूर्ण भी प्रेम दिखाया है, लेकिन उसमें उच्छृंखलता नही है । विवाहोपरान्त प्रेम परिपक्व और सार्थक होता है । सुदर्शन मनोरमा को देख कर और भविष्यदत्त भविष्यदत्ता को देखकर प्रथम बार में ही आकर्षित हो जाते हैं । भविष्यदत्त तो भविष्यदत्ता के साथ बहुत दिनों तक एकांत में रहता है लेकिन दोनों ही अपने शील की रक्षा करते हैं ।[3]

---

१. जम्बूस्वामी रास : भास सहीनी ।।७८।।
२. धन्यकुमार रास : दूहा ।।१–2।।
३. भविष्यदत्त रास : भास आनन्दानी ।।१–११।।

मुनि दर्शन एवं धर्म सभा वर्णन : जिस स्थान पर मुनिवर का आगमन होता है वहाँ स्वतः ही सुख शान्ति हो जाती है। षट् ऋतुएं एक साथ फलीभूत हो जाती है। प्रायः मुनि नगर में न आकर नगर से दूर उद्यान में ठहरते हैं। उद्यान माली फूल-फल लेकर राजा को उनके आने की सूचना देता है। मुनि के आगमन विषयक समाचार सुनकर राजा हर्षित होता है और उस दिशा में सात कदम चलकर मुनिवर की परोक्ष वन्दना करता है। मुनि की शुभ सूचना देने वाले माली को राजा पुरस्कृत करता है। तत पश्चात् समूचे नगर में मुनि आगमन एवं उनके दर्शनार्थ चलने की घोषणा करवाता है। फिर राजा-रानी सहित सुसज्जित हो पुरजन एवं परिजन के साथ मुनि के दर्शनार्थ प्रस्थान करता है और उनकी वन्दना करता है। उनके दर्शन कर अपने आपको कृतार्थ अनुभव करता है। तीर्थंकर महावीर के आगमन पर श्रेणिक का दर्शनार्थ गमन देखिये—

तब राजा आनंदीयो, पउठो मनिरंग।
सात पग जाई करी, दीसा नमो बो वंग॥
आनन्द भेरी तब उछली, हुवो जय जयकार।
भवीयण सयल आनंदीया, धन धन अवतार॥
पछे गयवर सीणगारिया, बरण श्रेणिक राय।
इंद्र जीम तब सोहियो, धरी मनि भाव॥
राणी सयल परिवार सहीत, कुंवर वली चंग।
भवीयण श्रावक श्राविका, चाल्या मनरंग॥
वांद्या जिणवर भाव सहित, पूज्या गुणवंत।

मुनि की प्रवचन सभा धर्म सभा कहलाती है। तीर्थंकरों की प्रवचन सभा समवशरण कहलाता है। इस धर्म सभा में १२ प्रकोष्ठ होते है जिसमें देव-देवियां, राजा-रानियां, साधु-साध्वियां, स्त्री-पुरुष तथा पशु-पक्षी अपने-अपने स्थान पर बैठ कर भगवान का प्रवचन सुनते हैं। इस सभा में भगवान सबसे बहुत ऊँचे चारों ओर बहुत दूर तक दिखायी देते हैं। महावीर के समवशरण का वर्णन देखिये—

समवशरण अति निर्मलो, बार सभा गुणवंत।
तीन सिंहासन छत्र तीन, सोहो अवबंत॥
भामंडल झलकंत दीसे, गढ़ मंदिर सोहे।
चोसठ चमर ढुलंति ऊजला, भवीयण मन मोहे॥

साढ़ी बार क्रोड वाजित्र, झुम झुम जिम मेघ ।
मान स्तम्भ सोहे घोर, मिथ्यामत सिंह ।।[3]

वैराग्य वर्णन : इन रास काव्यों में आलोच्य महाकवि का लक्ष्य संसार की असारता प्रकट करना है और प्राणी मात्र को मोक्ष-मार्ग की ओर प्रवृत्त करना है। यही कारण है कि उसने अपने काव्य में पात्रों को उचित समय पर वैराग्य की ओर उन्मुख कर मोक्ष मार्ग में प्रवृत्त किया है। यह वैराग्य विभिन्न निमित्त पाकर प्रकट होता है। कभी उल्कापात होता देख कर, कभी मुनि दर्शन से, कभी अपना पूर्व भव का वृत्तांत सुनकर तो कभी बादलों को विलीन होता देखकर और कभी क्षणिक विद्युत् की चमक को देख कर तथा इष्ट कर्म वियोग पर तथा कभी मृत्यु को देखकर वैराग्य होता है। आदिनाथ को नृत्य करती नीलांजना की अकस्मात मृत्यु को देख कर वैराग्य हो जाता है—

नीलंजसा तेरणो खूटो आयु, मरण पामी ते सुंदरीए ।
क्षीरण मांहि जीव गयो बीजी ठामि, काले गई जम मंदिरीए ।।
तब उपनो स्वामी वैराग्य, संसार सरीर भोग परिहरइए ।
जो जो एह तरणो रूप सौभाग्य, सरीर सहित मटी गयो ए ।।

फिर आदिनाथ ने संसार की असारता पर चिन्तन किया—

धिग धिग ए संसार असार, थिर न दीसे कुल भल्योए ।
चिहुं गति मांहि सुख नवि ठोर, सयल दीसे क्षरण भंगुरए ।।
सरीर चपल जीम मेघ पटल, जल बुबुदा जीम जाणीयुए ।
धन यौवन उतावलो जारिण, नदी पुर जीम वानियए ।।[1]

इसी प्रकार अजितनाथ को 'उल्कापात' देख वैराग्य होता है—

उल्कापात देख करि, उपनु स्वामी वैराग्य ।
संसार चंचल जाणीयु, सरीर भोग असार ।।[2]

राजा सगर अपने साठ सहस्र पुत्रों की मृत्यु का समाचार पाकर वैराग्य ले लेता है। कवि का निम्न कथन कितना सार्थक बन गया है कि मनुष्य को अपनी

---

१. आदिनाथ रास : भास असोधरनी ।।१५–१७।।
२. आदिनाथ रास : भास वानतीनी ।।३–८ ।।
३. अजितनाथ रास : दूहा ।।१।।

प्रिय वस्तु के वियोग से अत्यधिक दुःख होता है। यह दुःख उसे संसार की असारता का बोध कराता है और तब वैराग्य हो जाता है—

> इष्ट विजोग जब नीपजैए, आमे जीव बहु दुख।
> तल तल जीव घणुं करे, कि हिय न आवे सुख ॥
> तब संसार अथिर जाणे, आणे मनि वैराग्य।
> मोह जाल तजिकरि, संजम लेसी सार ॥[1]

अपने पुत्रों की मृत्यु का समाचार पाकर राजा सगर का दुःखी होना, संसार की असारता एवं धर्म को सार तथा शाश्वत मानकर उसकी प्राप्ति के लिए संयम ग्रहण करने का यह वर्णन कितना मार्मिक बन पड़ा है—

> मरण माहि गया मझ पुत्र, तीम हुं जाइ सुं अति बलो हेलि।
> इहां रहे न कोइ थीर, धरम अचल एक सोहो जलो हेलि ॥
> ते धरम साधवा काजि, संजम लेउं हवइ रूयडो हेलि।
> इम कहियन मांहि जाइ, वैराग्य ज्ञान माहि जड्यो हेलि ॥[2]

नेमिनाथ को पशुओं का क्रन्दन सुन वैराग्य होता है। राम-सीता को सांसारिक दुःखों से, जीवन्धर को बन्दर की क्रीड़ा से, नागकुमार को विलीन होते बादलों से, सुकुमाल को स्वाध्याय से वैराग्य हो जाता है। जम्बूकुमार को अपना भवांतर सुन वैराग्य हो जाता है।

वैराग्य कब ग्रहण करना चाहिए, इसका रोचक वर्णन कवि ने प्रस्तुत किया है। धन्यकुमार की पत्नी सुभद्रा अपने भ्राता शालिभद्र के धीरे-धीरे वैराग्य लेने की बात धन्यु को सुनाती है और दुःख व्यक्त करती है। धन्यकुमार यह कह कर पत्नी की उपेक्षा कर देता है कि इसमें कौनसी बड़ी बात है। वैराग्य तो क्षण भर में लिया जा सकता। उसके अनुसार जब भी मन में वैराग्य उपजे, तब ही वह संयम धार लिया जा सकता है। धन्यकुमार शालिभद्र के पास जाकर कहता है कि तुम समय क्यों गंवाते हो ? चिन्ता में मत रहो, जब भी मन में विचार आवे, शीघ्र वैराग्य ले लो—

> धन्यकुंवर चढ्यो तब सार, गयो शालिभद्र घरि गुणमाल।
> शालिभद्र सुणो तम्हे बात, काल समझवी करो गुण ध्यात ॥

---

१ सगरचक्रवर्ती रास : दूहा ॥१–२॥

२. अजितनाथ रास (सगरचक्रवर्ती की कथा) : भास हेलिनी ॥१८–१९॥

जब वैराग्य उपजे सविशाल, तब संयम लीधे गुणमाल ।
सर्वारथसिद्धि पावे जम्बू तणी छांडि, तब जाय पड़े अति बहु रावि ॥[1]

कवि के सभी रास काव्य वैराग्य पोषक हैं। जिसमें सांसारिक असारता एवं धर्म की एक मात्र सार्थकता पर मार्मिक वर्णन हुआ है। जम्बूस्वामी रास तो इसका अनुपम उदाहरण है। कुमारावस्था में इस वैराग्य के लिए जम्बू को सर्वप्रथम अपने माता-पिता और फिर पत्नियों से अत्यधिक वाद-विवाद करना पड़ता है। ये लोग तरह-तरह से जम्बू के वैराग्य को रोक कर उसे संसार मे फंसाने का प्रयत्न करते है, लेकिन जम्बू के अटल दृढ़ निश्चय और उसके सांसारिक असारता के तथ्यों के सामने लाने से उनको पराजित होना पड़ता है तथा अन्त में सभी को स्वीकृति ही नहीं देनी पड़ती है बल्कि वे स्वयं भी वैराग्य ले लेते हैं।[2]

दीक्षा वर्णन : वैराग्य होने के बाद कवि ने संयम ग्रहण वा दीक्षा का वर्णन किया है। तीर्थंकरों के वैराग्य का लोकांतिक देव समर्थन करते हैं। जिनमाता एवं जिनपिता तथा पत्नियों को इस घटना से अपार दुःख होता है। पुत्र, माता-पिता को संसार की असारता बताता है। देवगण उनका अन्तिम शृंगार करते है और देव-निर्मित सुदर्शन पालकी में बैठाकर प्रातःकाल की शुभ वेला में क्रम-क्रम से भूमि गोचरी, राजा विद्याधर एवं देवगण बन में ले चलते है। तत्पश्चात् विशाल वटवृक्ष के नीचे स्फटिकशिला पर पूर्व दिशा की ओर मुख करके सब प्रकार का अंतरंग एवं बहिरंग परिग्रह त्याग कर केश लुंचन कर दिगंबरी दीक्षा ग्रहण करते हैं। देवगण पंच शब्द एवं पुष्पवृष्टि करते हैं। अन्य राजा, रानियां, श्रावक-श्राविकाएं भी साथ में दीक्षा लेती हैं। आदिनाथ की दीक्षा का वर्णन कवि ने कितने सुन्दर रूप में किया है—

सीला उपरि बैठा गुणवंत, पूरब दिशा मुख कीधो जयवंत ।
सोल आभरण उतार्या अंग, राग तणो तिहां कीधो भंग ॥
वस्त्र मूक्या पछे सविचार, दश परिग्रह तणो परिहार ।
अभ्यंतर चौदह परिग्रह घोर, त्याग कीधो तेहनो तिहां जोर ॥
पंच मुष्ठि लोंच कीधो सार, कर कोमल करि गुणधार ।
जाणि करम तणाए कंद, लोंच लीधो स्वामी जिणंद ॥
'नमः सिद्धेभ्यो' कह्यो गुणधार, हृदय कमलि गुण धारिया सार ।
यथा जात रूप धरीयो अंग, समता भाव लीधो उत्तंग ॥

१. धन्यकुमार रास : भास चौपईनी ॥८–९॥
२. जम्बूस्वामी रास : भास रासनी ॥१–४१॥

दिगम्बर हुवा प्रथम जिनदेव, त्रिभुवन भवीयण की जिनसेव ।
अनुपम रूप दीसे जयवंत, जय जयकार स्तवन करे संत ॥[1]

जम्बू के माता-पिता जम्बू को चतुर्थ आश्रम में दीक्षा लेने को कहते हैं तो कुमार जम्बू संसार को असार एवं दुःख की खान बताता हुआ कहता है कि ये विषय-भोग विषधर के समान हैं, मोह-मदिरा के सदृश हैं । इस नारी के मोह की मदिरा में सारा संसार डूबा हुआ है । इस प्रकार माता-पिता को संबोध कर जम्बू दीक्षा या संयम लेने के लिए वन को प्रयाण कर देता है । और तब गुरु की आज्ञा से जम्बूकुमार हर्षित हो संसार से संन्यास ले, अपने कोमल करों से केश लुंचन कर संयम भार ग्रहण करते हैं—

जम्बूकुमार तब हरषीयोए, दिठो तिहां गुणमाल तु ।
कोमल हाथ तब लोंचलीयोए, छेदीय मोहनु जाल तु ॥
सयल सिणगार तब हहर्‌योए, दिगम्बर हुवा विसाल तु ।
अठावीस मूल गुण उचर्‌याए, सहगुण स्वामी भवतार तु ॥

जम्बूकुमार की दीक्षा से प्रभावित हो उसके माता-पिता और पत्नियों ने भी दीक्षा ले ली—

अर्हदास जिनमति निर्मलोए, मन मांहि धरीयो वैराग्य तु ।
संयम लीधो गुरु कन्हेए, सरग मुगति तु गाम तु ॥
च्यारि राणी वली रूवडीए, तेह मनि उपनो भावतु ।
संयम लीधो निरमलोए, सह गुरु कीयो पसाउतु ॥[2]

तप वर्णन : संयम भार स्वीकारने के बाद मुनि को नाना प्रकार की तपश्चर्या करनी पड़ती है । यह वह कठोर स्वरूप है जिसे एक बार ग्रहण करने के बाद कभी छोड़ा नहीं जा सकता । इस अवस्था में साधक को अपनी साधना में आने वाली अनेक बाधाओं को सहना पड़ता है । अपने साधना मार्ग से लेश-मात्र भी विच-लित न होकर अपने कर्म-बन्धनों को तोड़ना ही तप है । सब प्रकार की अभिलाषाओं से परे केवल आत्मचिन्तन में रमे रहना ही तप है । कवि ने अपने काव्यों में इस तप

---

१. आदिपुराण रास : भास चौपईनी २५–२९॥
२. जम्बूस्वामी रास : भास रासनी ॥३६–३९॥

साधना का अद्भुत वर्णन किया है। सुकुमाल की वह कठोर तप साधना हमें विस्मित एवं द्रवीभूत कर देती है। जब सोमदत्त का पूर्व भव का जीव कोहिली बन कर क्रम-क्रम से उनके कोमल अंगों तक को खा डालती है लेकिन धीर-वीर सुकुमाल सब परीषह सहते हैं और अपने चिन्तन से विचलित नहीं होते। मृतक-शय्या पर उनकी तप साधना का यह विस्मित एवं द्रवीभूत कर देने वाला वर्णन देखिए—

> बन मांहि गयु सकुमाल, निरमल ध्यानकि कबहु हेलि।
> मृतक शैया आणि, कायोत्सर्ग लीधु भाव भद्यु हेलि ।।
> तीणि अवसरि ते आंणि, सोमदत्ता जीव दुरधरो हेलि।
> निदान फल बखाणि, कोहली हुइ ते पापिणी हेलि ।।
> थोडी थोडी खाइ, परीसह सहि मुनि अति बहु हेलि।
> अनुप्रेक्षा मनि ध्याइ, ध्यान धरि मनि सोहजलु हेलि ।।
> पहिलि दिन भख्या पाय, दूजि दिनि जांघ कुखली हेलि।
> त्रीजि दिनि पेट बिडारि, अंत्रमाला काढी ग्रति बली हेलि ।।
> धीर वीर मुनि चंग, समाधिमरण कीधु निरमलु हेलि।
> सर्वार्थ सिद्धि बिमान, अहमिन्द्र उपनु सोहजलु ए हेलि ।।[1]

यह अविचलित तपस्या सुकुमाल को सर्वार्थ सिद्धि नामक विमान (स्वर्ग) में अहमिन्द्र का पद प्राप्त कराती है जहां अक्षय सुख है। सच है, तपः साधना से ही जीवन उज्ज्वल बनता है। आत्मा निखर उठती है और सब कर्मों की कड़ियां तोड़कर आत्मा परमात्मा बन जाती हैं।

मोक्ष वर्णन : अपनी तपस्या की चरम सीमा में साधक जब जानता है कि यह शरीर अब रहने वाला नहीं है, जल्दी ही समाप्त हो जाने वाला है तो वह अन्तिम समय सब शारीरिक क्रियाएं छोड़ कर योग धारण कर लेता है। केवल शुक्ल ध्यान में लीन रहता है। अवशिष्ट अघातिया कर्मों का नाश करता है इस स्थिति में वह सर्वोत्कृष्ट सिद्ध पद की ओर उन्मुख रहता है। सामान्यतः तीर्थंकर दो पक्ष का योग धारण करते हैं। अन्तिम समय तीर्थंकर की वाणी का संकोच हो जाता है और तब आठ कर्मों रहित आठ गुण सहित साधक सदा–सर्वदा के लिये "सिद्ध" पद अर्थात् परमात्म पर प्राप्त करता है, जहां आवागमन, जन्म-मरण का चक्कर छूट जाता है यही मोक्ष है। प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ को अपनी उत्कृष्ट योग

---

१. सुकुमाल स्वामी रास : भास हेलिनी ।।१–८।।

साधना के अन्तिम अवस्था में जब वाणी का संकोच हो गया तो उनके पुत्र भरत ने स्वप्न में उर्ध्वगमन सुमेरु पर्वत, रवी, युवराज और प्रधान को देखा। निमित्त ज्ञानी ने बताया कि आदि जिनेश्वर ने वाणी का संकोच कर लिया है। जिसे सुनकर भरत आदि सभी दुःखी हुये। भरत परिवार सहित भगवान की वन्दना को गया—

> आदि जिरणेसर कवडा, आ० संकोच निजवाणि तो।
> चौद दिवस लगाइ कवडो, आ० जोग धर्‌यो जस साथ तो।।
> सुकल ध्यान उत्तीय सुणो, आ० अनेक मुनीश्वर साथि तो।
> तब भरत नरेश दुख धरे, आ०, अनेक सजन अति चंग तो।।
> सोक धरे ते अतिघणो, आ०, हरष आनंद हुवो संग तो।
> भरत नरेश स्वडोए, आ०, चाल्यो सुं परिवा तो।।
> वांधा जिनवर मनिरली, आ०, बैठा तिहां सविचार तो।।[1]

उसी समय स्वर्गस्थ इन्द्रों के आसन कम्पित हुए। उन्होंने अपने अवधिज्ञान से सब कुछ जान लिया। इन्द्र-इन्द्राणियाँ, विद्याधरों, मनुष्यो सभी ने मिलकर महोत्सव मनाया। ये लोग क्षीर सागर से उज्ज्वल जल कलशों मे भर कर लाये और महोत्सव मनाया। फिर अग्निकुमार के देवों ने अपने मुकट से सुगंधित अग्नि उत्पन्न की और भगवान के पार्थिव शरीर का अन्तिम संस्कार किया। उनके साथ दक्षिण दिशा में गणधरों का, पश्चिम दिशा मे केवलि भगवान का अन्तिम संस्कार हुआ। सभी ने संसार की असारता पर विचार किया और भगवान के इस निर्वाण कल्याणक महोत्सव में सम्मिलित होने से अपने को धन्य समझ मन में भावना भाते हुये सभी ने प्रदक्षिणा दी, वन्दना की और जय-जय कार किया। भस्म को अपने शरीर में आदरपूर्वक लगाया कि हमारी भी देह इसी प्रकार की उज्ज्वल तपस्या कर उज्ज्वल गति पावे। इस प्रकार भगवान का निर्वाण कल्याणक मनाया गया। धवल मंगल गीत गाये गये और सभी के द्वारा पुण्य संचय किया गया। उस समय सभी को शोक एवं हर्ष दोनों था। शोक तो इसलिये कि भगवान का वियोग हुआ। हर्ष इसलिये कि भगवान को शाश्वत सुख का स्थान मोक्ष की प्राप्ति हुई।[2]

इसी प्रकार अन्य तीर्थंकरों, मुनिवरों, गणधरों ने मोक्ष प्राप्त किया और सभी ने उनका मोक्ष कल्याण महोत्सव मनाया। मोक्ष कल्याण का यह वर्णन निर्वेद भाव से परिपूर्ण है और शान्त रसात्मक है।

१, आदिनाथ रास : भास आनंदानी ।।१३-१६।।
२. आदिनाथ रास : भास गुणराज ब्रह्मानी ।।१-१५।।

प्रकृति चित्रण : प्रकृति एवं मानव का चिरन्तन साहचर्य है। साहित्यकार को सतत प्रेरक शक्ति यह प्रकृति ही रही है। यों तो धर्म, दर्शन, साहित्य और कला इन सभी में प्रकृति चित्रण को स्थान मिला है; किन्तु काव्य में इसे सर्वाधिक स्थान प्राप्त हुआ है। कवि साधारण मानव की अपेक्षा अधिक संवेदनशील होता है। ब्रह्म जिनदास इसके अपवाद नहीं है। जैन कवियों का सम्बन्ध प्रकृति से पर्याप्त रहा है। जैन मुनि प्रायः नदी के किनारे, वन, पर्वत, कन्दराओं में तप करते थे। प्रकृति का परिशुद्ध वातावरण ही उनका साधना-स्थल हुआ करता था। वैसे तो जैन साधुओं का निर्ग्रन्थ स्वरूप ही शुद्ध प्रकृति का स्वरूप है।

हमारे आलोच्य महाकवि ब्रह्म जिनदास ने इन निग्रंथ मुनियों के साथ रह कर ही आत्मसाधना एवं साहित्य-सृजन किया है। अपने गुरुद्वय भट्टारक सकलकीर्ति एवं भुवनकीर्ति के साथ रहने से प्रकृति से इनका सम्पर्क आवश्यक था। कवि ने अपने उपदेशों एवं सिद्धान्तों को प्रभावोत्पादक बनाने के लिये प्रकृति के उपकरणों को विशेष रूप से अपनाया है। प्रायः आलंबन रूप मे, वातावरण निर्माण में, उद्दीपन रूप मे, संवेदनात्मक रूप में, अलंकार रूप में एवं लोक-शिक्षा के रूप में प्रकृति-चित्रण हुआ है। इनमे प्रकृति का स्वाभाविक वर्णन मिलता है। आलाम्बन रूप में प्रकृति का स्वतन्त्र वर्णन देखिये—

> वनस्पति अयकालि फलि, फल फूल सुरंग।
> कोइल करे टहूंकडा, मोर नचे उतंग ॥
> भमरा रण झण करे, सुआ करे कलि रेव।
> बहके परिमल अति घणो, सवे ब्रह्म देव ॥[1]

सोलह स्वप्नो में भी प्राकृतिक उपकरण दिखायी देते हैं। जैसे—चन्द्र, सूर्य, कमल, कलश, सरोवर, गज, सिंह, वृषभ, मीन' पुष्पमाला, समुद्र, विमान आदि कवि ने वर्णनो में प्रकृति मे ही उपमान ग्रहण किये हैं—

> बीज चन्द्र जिम वृद्धि करइए।
> चन्द्र कला जिम वाधीयुए ॥[2]

अलंकारों के रूप में प्रकृति चित्रण अधिक हुआ है—

---

१. आदिनाथ रास : दूहा ॥१-२॥
२. आदिनाथ रास : दूहा ॥३॥

ज्ञान दिवाकर ऊगीयो, भवियण कमल विकास ।
भावना परिमल महमहे, आनंद निरमल वास ॥[1]

शृङ्गार एवं वैराग्य के प्रसंग में भी प्रकृति में ही उपमान ग्रहण किये गये हैं। एक स्थान पर कवि ने धर्म को महावृक्ष का रूप दिया है। कवि के अनुसार धर्म रूपी वृक्ष की यत्नपूर्वक रक्षा करने पर ही मोक्ष रूपी फल की प्राप्ति हो सकती है। धर्म रूपी वृक्ष के नीचे शान्ति रूपी छाया मिलती है।[2] इसी प्रकार एक स्थान पर कवि ने जीवन को बहती हुई नदी की तरह चंचल बताया है।[3]

उद्दीपन रूप में—उल्कापात, विलीन होते मेघ, विद्युत, मुर्झायी पुष्पमाला, भ्रमर का कमल-पाश में बन्द होना एवं मृत्यु को प्राप्त होना आदि वैराग्य भावना के उद्दीपक उपकरण है। अजितनाथ को उल्कापात देखकर वैराग्य हो जाता है—

उल्कापात देखिकरी, उपनु स्वामी वैराग्य ।
संसार चंचल जाणीयु, सरीर भोग असार ॥[4]

वियोग पक्ष में प्रकृति उद्दीपन रूप न आकर उपमान रूप में ग्रहण की गई है—

चन्द्रमा विण जिम राति, बात न सोहे धर्म विण हेलि ।
तिम हूं तम्ह विण नाथ, किम सोहूं तम विण हेलि ॥
मेघ विण जिम बीज, दणीयर विण जिम कमलोणि ।
जल विण किम जीवि माछलीए, तिम हूं तम्ह विणनारिगु ॥[5]

ऋतु वर्णन में बसंत-ऋतु का वर्णन अनेक स्थानों पर हुआ है—

बसंत मास आव्यु तीणी वार, वनस्पति ह फली अपार ।
भमरा रम झम करि, मधुर साय कोयल बली धरी ॥

---

१. वही ॥४॥
२. धर्मतरुगीत : परिशिष्ट में देखिये ।
३. जीवन्धर रास : भास गुणराज अग्रनी ॥६॥
४. अजितनाथ रास : दूहा ॥१॥
५. हनुमंत रास : भास हेलीनी ॥११-१२॥

फागुन मास उजाली पाख, सरल दीसि जिम पंकज आख ।
अठाई वरत सावुक वलिपंथ, हरष्या भवीयण हुवु मन रंग ।।[1]

तीर्थंकर महावीर के उद्यान मे आगमन पर प्रकृति का चित्रण देखिये—जहां बिना ऋतु के भी प्रकृति अपने विकास को प्राप्त हो गई है—

वनस्पति अवकाले फली, गंभीर विशाल ।
फल फुले करी गह गही, सोहे गुणमाल ।
सूका सरोवर जलि भर्या, कलल सविचार ।
हंस सारस चकवाक, दीसे मोर नाचे सार ।

पशु-पक्षियो के स्वभाव मे भी परिवर्तन आ गया है—

सुवा तीहां कलिरव रहे, मधु करे गुणकार ।
कोयल करे टहुंकडा जो, परीमल बनु फार ।।
सींह गज गाय वाघ दीठा, वैर छांडो घोर ।
हंस मार्जार अही नकुल हैव, ये भोला दीठा थोर ।।
महावीर स्वामी तणे प्रभावि, अति संयमी दीठो ।
विस्मय पाम्यो अति घणो, आणंद मनि पेठो ।।[2]

प्रकृति का वह रूप भी अवलोकनीय है, जहां कवि ने संसार को भयानक वन का रूप दिया है—

संसार अटवी जाणि भारि, जिम हस्तीय जाणो ।
वडकुल जिम जाणीइ, घर कूवा समाणो ।।
सरप जाणो कषाय च्यारि, अज गिरि जिमिकाल ।
मधु बिंदु जिम विषय सुख, मारनी जिम बाल ।।[3]

इस प्रकार प्रकृति के विविध रूप कवि ने प्रस्तुत किये है ।

---

१. जीवन्धररास : भास चौपईनी ।।१—२।।
२. हरिवंश रास : भास असोधरनी ।।११—१५।।
३. जम्बूस्वामी रास : भास असोधरनी ।।४८—४६।।

ब्रह्म जिनदास की रुचि इन वर्णनों में अधिक रमी है। इन सभी वर्णनों में अनोखा आकर्षण है। इनमें सहृदय को रमाने की विलक्षण शक्ति है। इनमें कवि की रसपरिपक्वता, आलंकारिकता तथा अवसरोचित भाषा का प्रयोग मिलता है।

पात्र एवं चरित्र विधान

काव्य में कथानक के साथ-साथ पात्रों का भी अपना महत्त्व होता है। पात्र कथा के जनक होते हैं। कथानक इनके अवलम्बन पर ही विस्तार को प्राप्त करता है। काव्य में कथानक के निर्माण के प्रमुख आधार पात्र ही हैं। पात्रों के अभाव में कथा का अस्तित्व ही असम्भव है। काव्यकार अपने जीवन के कटु एवं मधुर अनुभव पात्रों के माध्यम से ही प्रकट करता है। वातावरण की सृष्टि को सफल बनाने वाले विविध पात्र ही होते है। पात्रों की विविधता कथावस्तु में वैविध्य लाती है। पात्रों के चरित्र-चित्रण में ही काव्य के कथानक के उद्देश्य की महत्ता निहित होती है।[1]

आलोच्य महाकवि ब्रह्म जिनदास ने अपने चरित काव्यों एवं कथाकाव्यों में पात्रों की मनोरम सृष्टि से सौन्दर्य की अभिव्यंजना प्रस्तुत की है। सभी चरित-काव्य विविध पात्रों के चित्रण से संयुक्त है। चरित काव्यों में जहा विविध पात्रों के चित्रण के साथ प्रमुख पात्र के समग्र जीवन का चित्रण चित्रित है, वहां कथाकाव्यों में भिन्न-भिन्न पात्रों के जीवन की विविध झांकियां मिल जाती है। ये सभी पात्र काव्य के उद्देश्य को पूर्ण करने में पर्याप्त सहायक होते है। इन पात्रों की सृष्टि व्यापक भाव-भूमि पर आधारित है।

आलोच्य कवि के चरित प्रधान काव्यों एवं कथा प्रधान काव्यों में आये पात्र प्रायः कुलीन वंश या उच्च कुल से सम्बन्धित हैं। वैसे तो इनमें प्रधान पात्र प्रकारान्तर से त्रिषष्ठिशलाका पुरुष हैं पर फिर भी सामान्यतः प्रत्येक वर्ग का पात्र इनमें दृष्टिगत होता है। सभी पात्र किसी न किसी वर्ग, जाति या समूह का प्रतिनिधित्व करते पाये जाते है। पात्रों के चरित्र-चित्रण मे पर्याप्त विकास मिलता है, पर स्वतन्त्र मनोभावों के अभिव्यंजन एवं मानसिक अन्तर्द्वन्द के लिए इन पात्रों में कम स्थान है। इसका कारण सभी पात्रों की कर्मवाद मे आस्था है।

ये सभी पात्र अपने जीवन के पूर्वार्द्ध में प्रायः भोगी एवं गृहस्थ होते हैं, लेकिन फिर कोई ऐसी घटना घटती हैं कि ये संसार से विरक्त होकर संयम धारण

---

१. हिन्दी साहित्य कोष : भाग–१

कर निर्वाण पथ के पथिक बन जाते हैं। प्रारम्भ के मिथ्या दृष्टि पात्र भी उचित अवसर पाकर सम्यग्दृष्टि बन जाते हैं, उनमें यह परिवर्तन कई कारणों से होता है। पात्रों में सत्प्रवृत्ति के निवेश से मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करना इन काव्यों का अभीष्ट है। यही कारण है कि कुपात्र भी जीवन की विषम यातनाओं को सहता हुआ कथा के अन्त में पश्चाताप एवं आत्मनिन्दा, प्रायश्चित और व्रत तथा संयम रूपी धर्म-साधना की पावन आग में अपने दुष्कृत्यों या दुर्भावनाओं को दूर करके अपने आप को सत्पात्र के रूप में प्रस्तुत करता है और तब ऐसे दुष्ट पात्र भी शिष्ट बन जाते हैं। ये पात्र अपने कथनों के माध्यम से अपनी चारित्रिक विशेषताओं को प्रकट करते हैं एवं जीवन की शुभाशुभ गतिविधियों को सहज रूप में समाज के सन्मुख अभिव्यंजित करते हैं।

आलोच्य रास-काव्यो के पात्रों को प्रमुखतः पांच वर्गों में विभक्त किया गया है—

१. पुरुष पात्र;
२. स्त्री पात्र;
३. देव पात्र;
४. राक्षस; और
४. पशु पक्षी।

इन पात्रों का चरित्र-चित्रण तीन प्रकार से हो सकता है—

१. पात्र के स्वयं के कार्य,
२. अन्य पात्रों के विचार, कथन, मन्तव्य और
३. कवि के कथन एवं व्याख्या द्वारा।

पुरुष पात्र : आलोच्य रास काव्यों के प्रधान पात्रों में त्रेसठशलाका पुरुष है, इनमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, प्रति वासुदेव आदि आये हैं। वैसें सामान्यत: प्रत्येक वर्ग का पुरुष पात्र इनमें दृष्टिगत होता हैं। आदिनाथ, नेमिनाथ, अजितनाथ, महावीर आदि तीर्थंकर हैं। राम, बलदेव, सगर, भरत-चक्रवर्ति हैं। कृष्ण वासुदेव है, रावण प्रतिवासुदेव है, गौतम स्वामी गणधर है। राजवर्ग में यशोधर, श्रेणिक, जीवन्धर आदि है। सुदर्शन सेठ है। जम्बुकुमार, सुकुमाल, धन्यकुमार, भविष्यदत्त, चारुदत्त आदि श्रेष्ठि पुत्र हैं। काष्टांगार कबाड़ी है। श्रीमान पुरोहित पुत्र है। सोमभट्ट ब्राह्मण है। जमदग्नितापसी है। अधिकांश पुरुष पात्र उच्चकुल से सम्बन्धित हैं।

सभी पुरुष पात्र सामान्य मानव जाति से सम्बन्धित हैं तो भी असाधारण मानवता से संयुक्त हैं। इनको यह असाधारणता आरोपित नहीं, अपितु अर्जित है। अपने पुरुषार्थ, शक्ति और साधना के बल पर ही ये साधारण मानव विशिष्ट श्रेणी में पहुंच गये हैं। सांसारिक भोगउपभोग की सभी वस्तुयें इन्हें सुलभ होती हैं, पर किसी निमित्त कारण से वे विरक्त होते हैं और प्रवृज्या ग्रहण कर लेते हैं। संयम भार ग्रहण कर लेने पर इनके साधना-मार्ग में अनेकों बाधायें आती हैं। पूर्वजन्म में कृत कर्म इनको वर्तमान में भोगने पड़ते हैं। अपनी उत्कृष्ट तपस्या एवं साधना से ये कैवल्य पाकर लोक कल्याण के लिए विहार करते हैं और अन्त में अपनी आत्मा का परिष्कार कर परमपद मोक्ष को प्राप्त करते हैं। उच्च कुल से सम्बन्धित पुरुष-पात्रों में राज-पुत्र और श्रेष्ठि पुत्र आते हैं। इन दोनों में परस्पर प्रीति एवं मैत्री होती है। श्रेष्ठिवर्ग जब भी व्यापार हेतु प्रस्थान करता है तो लौटते समय व्यापार में प्राप्त लाभ की महत्वपूर्ण वस्तु राजा को भेंट करता है। ये पुरुष-पात्र धार्मिक एवं अधार्मिक दोनों वृत्तियों वाले हैं। लेकिन अधिकांश पात्र कालान्तर में धर्म में आस्थावान बन कर आत्मोद्धार करते दिखायी देते हैं। जम्बुकुमार, जीवन्धर, धन्यकुमार, नागकुमार एवं भविष्यदत्त ये श्रेष्ठि पुत्र होते हुए भी अतिशय पुण्य के धारी हैं। अपने चमत्कारपूर्ण कार्यों से सभी को प्रभावित करटे हैं और विविध दिव्य वस्तुओं को प्राप्त करते हैं।

पुरुष-पात्रों के चरित्र-चित्रण में पर्याप्त विकास मिलता है। सेठ सुदर्शन शीलवान पात्र है। गृहस्थ जीवन मे ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करता है। वह अतिशय रूपवान भी है। राजकुमार से उसकी मैत्री है। एक बार राजकुमार की अनुपस्थिति में राजकुमार की पत्नीं सेठ सुदर्शन को अपने घर बुलाकर अपनी वासना पूर्ण करना चाहती है। सेठ के नहीं मानने पर वह कलंक लगाती है पर सुदर्शन अपने शील व्रत से अपना उज्ज्वल चारित्र बनाये रखता है। कुम्भकार कुम्भ का दान करने से लोकपाल राजा बनता है।

जम्बूकुमार अपने संसार से विरक्त होने का विचार रखता है। उसकी पत्नियां उसे तरह-तरह से आकर्षित करती हैं, पर वह विचलित नहीं होता और अन्त में सभी को उसकी बात माननी पड़ती है।

चारुदत्त के जीवन में कई उतार-चढ़ाव आते हैं। वह प्रारम्भ से ही विद्याध्ययन एवं गुणीजन संगति में लगा रहता है। अपनी पत्नी से भी वह कभी बात नहीं करता। चाचा रौद्रदत्त चारुदत्त को मुनि दर्शन के बहाने वेश्या वसन्तमाला

के घर लें आता है। बसन्त-तिलका उसे अपने हाव-भाव आकर्षण से डिगा लेती है। चारु सारा धन वेश्याप्रेम में गंवा देता है। पैसा न होने पर वह दुर्गति का शिकार होता है। घर आकर वह पश्चाताप करता है और णमोकार मन्त्र का जाप करता हुआ व्यापार में सफलता पाकर अपना उद्धार करता है।

आदि पुरुष आदिनाथ सर्वप्रथम षट् कर्मों की स्थापना करते हैं। अपनी पुत्रियों को लिपि एवं अंकों का ज्ञान सिखाते हैं। योग्यतानुसार कार्यों का विभाजन करते हैं। जीवन में कर्म पुरुषार्थ का ज्ञान कराते हैं। इस प्रकार वे जैन मान्यता-नुसार आदि पुरुष, आदि ब्रह्मा, आदि गुरु होते है।

स्त्री पात्र : इन रास-काव्यों में विभिन्न प्रकार के स्त्री-पात्र मिलते हैं। ये स्त्री-पात्र विभिन्न वर्गों से सम्बन्धित हैं। इनमें माता एवं स्त्री का रूप सर्वाधिक निखर कर आया है। भगवान जिनेन्द्र देव की जननी के रूप में वह विश्व वन्दनीय हैं। कभी वह महिषी बन कर राज सभा में बैठती है तो कभी चेरी बनकर अपने सतीत्व को भी कतिपय मुद्राओं की उपलब्धि के लिए बेचने को भी बाध्य होती है। कभी वह अपनी प्रवीणता से राजाओं को चकित करती है तो कभी सोत से प्रपीड़ित होकर आलोचना का पात्र बनती है। कभी वह साध्वी बनकर आध्यात्मिक उपदेशों की वर्षा करने लगती है तो कभी वह आवेश में आकर पाप कर्म करने के लिए कटिबद्ध होती है और फलतः अपने सौन्दर्य को खोकर अपकीर्ति के दल-दल में फंस जाती है। कभी वेश्या बन कर अपनी उदर पूर्ति हेतु जघन्य से जघन्य पाप करने को आतुर होती है तो कभी अपने सतीत्व के कारण देवताओं की आराध्या बन जाती है। कभी वह पतिव्रता बन कर एक महान आदर्श की स्थापना करती है तो कभी व्यभिचारिणी बनकर अपनी कामातुरता का प्रदर्शन कर लोक में घृणा की दृष्टि से देखी जाती है।

महारानी मरुदेवी, विजयादेवी, कौशल्या, शिवादेवी आदि जिन माता के रूप में वन्दनीय है। स्वर्गस्थ इन्द्र, इन्द्राणियां भी इन्हें नमन करती है।

राजा सगर को, जम्बुकुमार को, सुकुमाल को इनकी पत्नियां संयम भार लेने से रोकती है, लेकिन सफल नहीं हो पाती है।

अंजना पतिव्रत धर्म का परिचय देती है। उसके सतीत्व के कारण नगर के कपाट सहज ही खुल जाते हैं। सीता अपने शील का परिचय देती है। भविष्यदत्ता विवाह से पूर्व प्रेम प्रकट करती है, पर शील नहीं खोती। नागश्री रात्रि भोजन

का त्याग कर उच्च कुल में जन्म लेती है। वेश्या वसन्तमाला मुद्रा प्राप्ति के लिए चारू को फंसाती है और धन न मिलने पर उसे बाहर निकाल देती है। रेणुश्री शील, संयम का पालन करती हुई अपने पति तापसी को सन्मार्ग पर ला देती है। मैना सुन्दरी कुष्ठ रोग ग्रस्त श्रीपाल को गन्धोदक से रोगमुक्त करती है। सुदर्शन की पत्नी ब्रह्मचर्य को पालती है। राजुल एक मात्र नेमि को अपना पति मानती है और आत्म-साधना में लग जाती है। राजा यशोधर की पत्नि राजा की अनुपस्थिति में कुबड़े से अनुरक्त हो जाती है। कपिला सुदर्शन का शील भग करने का प्रयत्न करती है और असफल होने पर अपने आपको नोच कर सुदर्शन को कलंकित करती है। अग्निला सम्यक् धर्म का पालन कर नेमिनाथ की शासन देवी का पद प्राप्त करती है। रोहिणी अपने पूर्व जन्म मे मुनि का अनादर कराने से दुर्गन्धा बनी, पर कालान्तर में सम्यक्त्व को पालने से वह रोग-शोक से मुक्त हुई। माली की दो लड़कियां जिनमन्दिर की देहली पर मात्र पुष्प चढ़ाने से मरणोपरान्त सौधर्म इन्द्र की इन्द्राणिया बनी।

धन्यकुमार की सौतेली मां धन्य से ईर्ष्याभाव रखती है। वह अपने पति से कह कर धन्य को एव उसकी मा को बाहर निकाल देती है। पर अन्त मे उसकी प्रभावना देख पश्चाताप की अग्नि मे जलती है। रानी अभयामती लज्जा के कारण आत्मघात करती है और पंडिता नाम की सखी भाग कर पटना मे वेश्या बन कर रहने लगती है। सत्यभामा रूक्मिणी से ईर्ष्या करती है। गन्धर्व एव त्रिभुवन रति संगीत एव वीणा-वादन मे कुशलता का प्रदर्शन करती है। सोम शर्मा ब्राह्मण की पत्नी अकारथ ही अपने पति से डडी की मार खाकर अपने भाग्य को कोसती है और अपने अबोध बच्चो को साथ लेकर गिरनार पर्वत पर भगवान की शरण मे रहने लगती है। रानी चेलना सम्राट श्रेणिक को प्रबोधन देकर अपने कर्तव्य का पालन करती है। नेमिकुमार के साथ राजीमति भी अविवाहित रह कर साधना के कठिन मार्ग को ग्रहण करती है। विनयवती लुब्धदत्ता के धन का सदुपयोग कर धर्म प्रभावना करती है। चाडाल पुत्री होली कुकर्म करती है, अगले जन्म मे राक्षसी होती है।

सुकुमाल की माता यशोभद्रा पुत्र बिना बड़ी दुःखी रहती है। पुत्र होने पर उसकी रक्षा एवं पति की रक्षा के लिए घर से दूर रहती है। पुत्र-वात्सल्य के कारण वह उसे एक गढ़ में रखती है और उसे सब वस्तुएं वही उपलब्ध करा देती है। पुत्र के निकल जाने के बाद विलाप करती है। नागकुमार की माता ममत्व से पुत्र की

भूख को शान्त करने के लिए रत्नों के प्रकाश में प्रातः काल का समय बिताती है। पुत्र को मृत देख तरह-तरह से विलाप करती है।

इस प्रकार इन रास काव्यों में सामान्य और विशिष्ट दोनों प्रकार के नारी पात्र मिलते हैं। सामान्य स्त्रियां कामुक, ईर्ष्यालु और साधना के मार्ग में बाधक होती है, जबकि विशिष्ट स्त्रियां सती, साध्वी, संयम-निष्ठ और चरित्र की प्रवीन होती है। ऐसी नारियां स्वयं तो चरित्र को दृढ़ता से पालती ही हैं, पर साथ ही दूसरों को भी सन्मार्ग पर लाने की प्रेरणा देती है। साधनारत स्त्रियों ने स्त्रियोनि छोड़ कर पुरुषगति प्राप्त की है।

मानवेतर पात्र :

देव पात्र : भाव मन की चारित्रिक दृढ़ता, आचरण की गरिमा तथा महानता को प्रतिपादित करने के लिए ही मानवेतर पात्रों की सृष्टि की गई है। आलोच्य रास काव्यों मे मानवीय चरित्रों की प्रभाव गरिमा और व्यक्तित्व की महिमा से ही हम प्रभावित होते हैं न कि दैविक-शक्ति के प्रयोग और चमत्कार से। इन काव्यों मे देव पात्रों की सृष्टि अवश्य हुई है, लेकिन वह अपने आप मे महत्वपूर्ण नही है। मानवीय चरित्रो की महानता का उद्घाटन करने से वह महत्वपूर्ण बनती है।

आलोच्य राम-काव्यों मे देव-पात्र पूर्ण रूप से चित्रित नही हो पाये हैं। इसका कारण कवि का सीमित उद्देश्य रहा है। उस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ही कवि ने आवश्यकतानुसार इनकी सृष्टि की है। देव पात्रो में देव एवं यक्ष आते हैं। ये अलौकिक पात्र नायक को अपने उद्देश्य में सफलता दिखाने में कही तो सहायक बनते हैं और कही कष्ट देकर उन्हे आतंकित भी करते है। शीलवान सुदर्शन पर राजा कुपित हो उसका वध करना चाहता है, तो यक्ष आकर राजा के सेवकों को कीलित कर देता है। धन्यकुमार को घर से निकाल देने पर यक्ष देव आकर उसकी रक्षा करते है। बन्धुदत्त भविष्यदत्ता का शील भंग करने पर उद्यत होता है, उसी समय देव आकर भविष्यदत्ता के शील की रक्षा करते है। काष्टांगार द्वारा जीवन्धर की हत्या के लिए उद्यत होने पर जीवन्धर का उपकारी देव जीवन्धर की रक्षा कर उसे अन्यत्र ले जाता है। ये देव पात्र विरोधियों को कष्ट देकर उन्हें आतंकित करते हैं।

कवि ने महायक्ष विद्याधर की कथा की रचना कर यक्ष के जीवन को स्वतन्त्र रूप से भी चित्रित किया है।

तीर्थंकरों के पंचकल्याणकों में देवपात्रों की सृष्टि विशेषतः उल्लेखनीय है। आदिनाथ रास में भव्य अवस्था में मिथ्यात्व का आचरण करने पर जिन शासन देवी आकर उनके मिथ्यात्व को रोकती है।

राक्षस पात्र : देव पात्रों के सदृश राक्षस पात्र भी सहायक एवं बाधक दोनों रूपों में मिलते हैं। भविष्यदत्त के कार्यों से राक्षस प्रभावित होता है। होलि रास में राक्षस राक्षसी अपने भय के रूप से सभी को भयभीत करते हैं।

पशु पात्र : कवि ने पशु को भी अपने काव्यों में स्थान देकर प्राणि-मात्र के प्रति अपना भाव दिखलाया है। मेंढ़कनी पूजा कथा इसका स्पष्ट प्रमाण है। राजा श्रेणिक के हाथी के पांव से जिन दर्शन को जाता हुआ मेंढ़क कुचला जाता है। मर कर मेंढ़क देव बनता है। अपने सत्कर्म से मनुष्य ही नही पशु भी सद्गति देवगति को पाता है। नागश्री रास मे आर्तध्यान से मर कर जागरा कुत्ता बनता है, पर प्रबोध दिलाने पर अभक्ष्य का त्याग कर सद्गति को पाता है। यशोधर रास में निर्जीव मुर्गो की बलि देने के भाव मात्र से माता पुत्र मर तिर्यंच योनि मे जन्म लेते हैं और ७ भवों तक कभी कुतिया, मोरनी, सर्प, मगरमच्छ, उल्लू आदि बनकर यातनाएं भोगते हैं। सिंह, मृग, व्याघ्र, सूकर, वृषभ, गज आदि मुनि के उपदेशों एवं तपस्या से अपना वैरभाव छोड़ देते है।

अमूर्त पात्र : कवि ने अमूर्त पात्रो की भी सृष्टि की है। जो किसी विशेष मनोवृत्ति के रूप में प्रस्तुत हुए है। 'परमहंस' रास पूरा-पूरा ऐसा ही अमूर्त पात्र प्रधान काव्य है। इसमे शरीर को एक नगरी का रूप देकर आत्मा, जीव या चेतन को उसका राजा बनाया है। चेतना इस राजा की रानी है। माया के कटाक्ष से आत्म राजा चेतना रानी को भुला देता है। माया के वशीभूत हो वह पममहंस स्वरूप आत्मा अपने स्वरूप को भी भूल जाता है। चेतना रानी से रहित होने पर वह चेतना शून्य हो जाता है। चेतना, निवृति, विवेक, सुमति, संयमश्री, सत्य, ज्ञान आदि सारवृत्तियों के प्रतीक पात्र है। माया, प्रवृत्ति, लोभ, मोह, कुमति, काम, राग, द्वेष, प्रमाद, अज्ञान, असत्य आदि कुप्रवृत्तियों के प्रतीक हैं। चेतना, सबुद्धि नायक नायिका है। मोह, माया, कुबुद्धि प्रतिनायक प्रतिनायिका है। इस प्रकार परमहंस आत्मा को राजा बनाकर मोह रूपी शत्रु के साथ युद्ध करने का भाव खड़ा किया गया है और अन्त में परमहंस राजा अपने आंतरिक गुणों से (क्षमा, दया, धर्म, सम्यक्त्व, सदाचार, तप) शत्रु सेना (मिथ्यात्व, प्रमाद, मोह, मद) को परास्त कर मुक्तिरूपी राजा का अधिपति बनता है। यहाँ मूर्त पात्रों के सदृश पात्रों की मनः स्थिति का संघर्ष न

दिखाकर सद्वृत्तियों का स्थूल संघर्ष मात्र दिखाया गया है जिसमें असद् प्रवृत्तियां परास्त होती हैं और सद्प्रवृत्तियां विकसित होती है। इन प्रवृत्तियों को कवि ने पात्रों का रूप प्रदान कर दुःख निवृत्ति का मार्ग प्रशस्त किया है।

इस प्रकार कवि ने अपने इन रास काव्यों में मूर्त और अमूर्त सभी प्रकार के पात्रों की सृष्टि की है। मानव एवं मानवेतर रूपी सभी पात्रों के माध्यम से कवि ने आत्म-साधना की महत्ता प्रकट की है। ऋषि, मुनि, राजा-रानी, सेठ-सेठानी, देव-दानव, मानव (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि नर-नारी) पशु, देवी-देवता, वेश्या सभी प्रकार के पात्र यहाँ मिलते है। ये पात्र अपने कथनों के माध्यम से अपनी चारित्रिक विशेषताओं को प्रकट करते हैं और जीव की शुभाशुभ गतिविधियों को सहज रूप में समाज के सम्मुख अभिव्यंजित करते हैं।

प्रमुख पात्रों की चारित्रिक विशेषताएं

चारित्रिक दृष्टि से पात्र चार प्रकार के माने गये हैं :—

१. **धीरोदात्त** : जो अत्यन्त उदार, शक्ति, क्षमा, धैर्य, दृढ़ता, गंभीरता, आत्म-सम्मान आदि गुणों से युक्त होता है।

२. **धीर प्रशान्त** : जो सन्तोषी, शान्ति प्रिय, विनम्र एवं शान्त स्वभावी हो।

३. **धीर ललित** : जो रसिक, कलाप्रेमी एवं कोमल स्वभावों का हो।

४. **धीरोद्धत** : जो कुटिल, नीतिज्ञ, कपटी एवं प्रचण्ड व्यक्तित्व वाला हो। साथ ही मायावी, आत्म प्रसंकीय, धोखेबाज एवं चपल हो·

इस दृष्टि से आलोच्य रास-काव्यों में सभी प्रकार के पात्र मिलते हैं। आदिनाथ, राम, कृष्ण, भरत, बाहुबलि, लक्ष्मण, हनुमान, जीवन्धर, जम्बूस्वामी, धन्यकुमार, भविष्यदत्त, श्रीपाल आदि धीरोदात्त पात्र है।

भरत (रामरास), तीर्थंकर अजितनाथ, तीर्थंकर नेमिनाथ, यशोधर, सुकुमाल, सुदर्शन आदि धीर प्रशान्त पात्र है।

वासुदेव, पवंनजय, श्रेणिक, चारुदत्त आदि धीरललित पात्र है।

रावण, कंस, काष्टांगार, जमदग्नितापसी, श्रीमाननायक धीरोद्धत पात्र हैं।

चरित्र-चित्रण के आधार तीन है :
(१) कथोपकथन,
(२) स्वगतकथन, एवं
(३) क्रिया-कलाप ।

प्रमुख पुरुष पात्र

तीर्थंकर आदिनाथ : आलोच्य महाकवि ब्रह्म जिनदास ने अपने "आदिनाथ रास" में प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ के मोहनीय गुणों का वर्णन किया है और उनका अतिशय चरित्र व्यंजित किया है ।[1]

"आदिनाथ" अयोध्या नगरी के महाराजा नाभिराज की महारानी मरुदेवी के पुत्र हैं । इनके जन्म से पूर्व माता को सोलह स्वप्न दिखायी देते हैं और जन्म से ही आदिनाथ मति, श्रुत और अवधि तीनों ज्ञानो के धारक है । देवताओं ने इनका नाम 'आदिजिनेश्वर' रखा हैं । कर्म मुक्ति के प्रथम प्रवर्तक के रूप में इनका यह नाम कवि ने सार्थक माना है ।[2] देवी-देवताओ ने इनका जन्म महोत्सव मनाया है । अपनी अतिशय बालकीय चेष्टाओं से आदि जिन ने सभी को आनन्द प्रदान किया है । इनकी बाल वाणी मानो सरस्वती का निवास है । इनकी सामान्य बोली में भी ज्ञान झलकता है । इनके अतिशय शारीरिक सौन्दर्य को देखकर एक नेत्र से तृप्त न होने के कारण इन्द्र सहस्त्र नेत्रों को धारण कर लेता है । ये दस अतिशयों से युक्त है । स्वेद और मल से रहित उनके शरीर का शोणित क्षीरवत् हैं । ५०० धनुष प्रमाण उनके शरीर का वर्णन सुवर्ण (कनक) सदृश हैं । अपने रूप-सौन्दर्य में आदिनाथ मानों दूसरे इन्द्र हैं । पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान उनका मुख सदा शोभायमान रहता है ।[3]

आदिनाथ का विवाह कच्छ महाकच्छ की पुत्रियां सुनन्दा एवं सुमंगला से होता है । यहीं से विवाह प्रथा प्रारम्भ होती है । इन रानियों से भरत और बाहुबलि आदि पुत्र और ब्राह्मी और सुन्दरी पुत्रियाँ होती हैं । आदिनाथ आदि गुरु हैं । वे सर्वप्रथम ब्राह्मी को अक्षर लिपि और सुन्दरी को अंक विद्या गणित तथा भरत आदि कुमारों को अनेक कलाओं, शास्त्रों एवं आगम तत्वों का ज्ञान सिखाते हैं ।

---

१. आदि जिणंद गुण वर्णव, चरित्र जोडूं भवतार ।।१।।
२. आदिनाथ रास : भास माल्हतंडानी ।।५।।
३. वही ।।६–१८।।

इन्हीं के माध्यम से आदिनाथ सर्व प्रथम पुरुषों की ७२ एवं स्त्रियों की ६४ कलाओं का ज्ञान कराते हैं।[1] आदिनाथ के समय भोग-भूमि की समाप्ति एवं कर्म-भूमि का प्रारम्भ हो रहा था। इस संक्रमण काल में ये जनता को सब प्रकार की प्रवृत्तियों से परिचित कराते हैं। आदिजिन प्रारम्भ से ही अप्रतिभ प्रतिभा के धनी है। पिता नाभिराजा भी उनसे विविध कार्यों में परामर्श किया करते हैं। इन्होंने किसी गुरु से शिक्षा नहीं प्राप्त की। वे स्वयं आदिगुरु है। इन्होंने ही अपने समय की प्रजा को कर्म भूमि का ज्ञान कराया है। असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प एवं विद्या आदि की शिक्षा प्रजा को देकर षट्कर्म की स्थापना करते हैं। कर्म एवं योग्यतानुसार चारों वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र की रचना करते हैं। प्रजालोक को कर्मभूमि का ज्ञान कराकर उन्हें जीना सिखाते हैं।[2] इनकी इन विशेषताओं को देखकर पिता नाभिराजा समय पाकर इनका राजतिलक करते है। प्रजा प्रसन्न होकर इनका आदर करती है और इन्हें आदि, ब्रह्मा, प्रजापति और शंकर नाम देती है। इस प्रकार आदिनाथ का अधिकांश समय प्रजा को शिक्षित करने में व्यतीत होता है।

प्रजा कार्य में आदिनाथ इतने व्यस्त रहते है कि उन्हें अपनें भावी तीर्थंकरत्व का ध्यान नहीं आता है। सांसारिक कार्य से उनका ध्यान हटाने के लिए इन्द्र इनकी राज-सभा में नीलंजसा अप्सरा को भेजता है। नीलंजसा अप्सरा शारीरिक हाव-भावों से नृत्य करती हुई मूर्च्छित हो जाती है, जिसे देख संसार की क्षण भंगुरता का ज्ञान होते ही तत्काल आदिनाथ को वैराग्य हो जाता है।[3] इनके वैराग्य का समर्थन लौकांतिक देव भी करते हैं। अपने दोनो पुत्रों को राज्य-पाट सम्भलाकर वे वैराग्य ले लेते हैं। उनके साथ अनेक राजागण भी दीक्षित होते हैं।[4]

अपने तपस्या-काल में आदिनाथ की तपस्या सभी को प्रभावित करती है। इनकी उत्कृष्ट तपस्या के प्रभाव से विरोधी जीव अपना बैर-भाव छोड़ एक स्थान पर आ मिलते हैं।[5] बिना ऋतु के फल-फूल उपजते हैं। छः मास की निरन्तर आत्म साधना के बाद वे शरीर को धर्म क्रिया का साधन मान आहार के लिए भ्रमण करते

---

१. आदिनाथ रास : भास चोपाईनी ॥१–५॥
२. वही ॥१७–२६॥
३. आदिनाथ रास : भास रासिनी ॥२१–२६॥
४. आदिनाथ रास : भास अंबिकानी ॥१–१०॥
५. आदिनाथ रास : भास सहीनी ॥८–११॥

हैं। राजा श्रेयांस इन्हें इक्षुरस का आहार देकर प्रजा मे दान की महिमा प्रकट करते हैं।[1]

अपनी उत्कृष्ट साधना से कैवल्य प्राप्त कर आदिनाथ प्राणी मात्र को सुखी जीवन का मार्ग बताते हैं। जीव, अजीव, तत्व, सम्यक्त्व, मुनि एवं श्रावको के आचार की विस्तृत व्याख्या करते है और अन्तमे अघातियाँ कर्मों को नष्ट कर मोक्ष पाते है।

राम : राम 'रामरास' के नायक है। इन्ही राम का चरित इस रास में निबद्ध है। राम के चारित्र की स्वयं कवि ने प्रशसा की है तथा पात्रो के मुख से भी उनकी पर्याप्त प्रशसा कराई है। कवि ने राम को 'रामदेव' कहा है।[2] अपराजिता रानी मे दशरथ से उत्पन्न अष्टम बलभद्र श्रीरामदेव के चरित्र को पढ़ने या सुनने से दु ख दूर हो जाते हैं ऐसा ब्रह्म जिनदास का मत है।[3]

राम का व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक है। बचपन से ही वे कल्पवृक्ष के समान मनोहर, सर्वांग सुन्दर एवं अपनी क्रीडा से सभी का चित्त हरण करने वाले हैं।[4] जनक द्वारा आयोजित सीता के स्वयवर मंडप मे धनुष को तोड सीता को प्राप्त करते हैं।[5] वे अतिशय बलवान हैं, युद्ध मे जनक के मित्र की सहायता करते है और यश प्राप्त करते हैं। राजा जनक अपनी पुत्री सीता को राम के लिए देना चाहते हैं। अपने आकर्षक व्यक्तित्व के कारण ही राम को अनेक कन्याओ की प्राप्ति होती है। वस्तुत राम की शक्ति और वैभव भी भव्य है। वे शैशव मे ही म्लेच्छो को परास्त करते हैं। अनेक स्थानो पर उनकी शक्ति के प्रमाण मिलते हैं।

राम का शील भी दर्शनीय है। वे पिता के आज्ञापालक है। वे भरत को राज्य दिलाने के लिये दशरथ से कहते हैं। साथ ही भरत से भी राज्य करने को कहते हैं।[6] वे क्षमा एव धैर्य के भण्डार है, क्रुद्ध लक्ष्मण को समझाकर अपनी समचित्तता का प्रमाण देते हैं। उनका भ्रातृ प्रेम अनुपम है। वे अपार विचारवान्

---

१. आदिनाथ रास : भास माल्हतडानी ॥१–२४॥
२ राम रास . भास चोपाईनी ॥१२॥
३. राम रास : भास माल्हतडानी ॥२॥
४. राम रास : वस्तु ॥१॥
५ राम रास : भास मिथ्यातमोडनी ॥१–४॥
६. राम रास : भास रासनी ॥१–२५॥

तथा दयावान् हैं वे सीता को अपार प्रेम प्रदान करते हैं तथा लोकापवाद के कारण उसे छोड़ते हुए उन्हें अपार अन्तर्द्वंद का सामना करना पड़ता है ।[1]

राम परम जिनभक्त है । वे जिनेन्द्र की स्तुति करते हैं । मुनि देशभूषण-कूल-भूषण का उपसर्ग दूर करते हैं । मुनि से श्रद्धा सहित उपदेश सुनते हैं, जिनमन्दिरों का निर्माण कराते हैं, दीक्षा लेते हैं और अपनी अतिशय तपस्या से मोक्ष प्राप्त करते हैं । राम के इस निर्मल चरित्र को जो पढ़ता-पढ़ाता है, सुनता-सुनाता है उसे मनोवाञ्छित फल की प्राप्ति होती है । मुक्ति रूपी अविचल सुख उसे मिलता है । उसके सब विघ्न दूर होते हैं ।[2]

हनुमान : हनुमान पवनंजय और अंजना के पुत्र हैं । उनके गिरने से चट्टान चूर-चूर हो जाती है ।[3] उनका नाम श्री शैलकुमार भी है ।[4] हनुमान परम पराक्रमी तरुण, वीर तथा न्याय के पक्षपाती हैं । रावण जैसा योद्धा उनके अतिशय पराक्रम एवं वीरत्व के कारण सम्मान करता है ।[5] सहस्त्रों कन्याओ से हनुमान का विवाह होता है ।[6] हनुमान वानर वंशी विद्याधर हैं, वानर नहीं है । वन में जाकर उन्होंने वानरी विद्या सीखी है ।[7] वे मातृ भक्त है । अपनी माता के अपमान कर्त्ता नाना को मूर्छित करते हैं ।[8] वे सफल दूत है । सीता की सुधि लाने में उनका प्रमुख हाथ है । वे निर्भीक हैं । वे राम की अनेक प्रकार से सहायता करते है ।[9] राक्षसों को परास्त करते हैं और रावण का मान भंग करते हैं ।[10] हनुमान का सम्पूर्ण जीवन अनेकों पराक्रमों से भरा हुआ है । वे विवेकी जैन हैं । जिनालयों की यात्रा प्रतिष्ठा करते हैं । अन्त में अपने पुत्रों मकरध्वज, अंग, अनंग को शासन सम्भला कर संयम धारण कर लेते हैं । ध्यान योग से अपने कर्मों का क्षय करके केवल ज्ञान प्राप्त करते हैं और अनेकों भव्यजनों को धर्माचरण की ओर सम्बोध कर मोक्ष प्राप्त करते हैं ।

---

१. राम रास : भास जोवडानी ।।१–११।।
२. राम रास : भास चौपाईनी ।।१२–१६।।
३. हनुमंत रास : भास सहीदी ।।२–७।।
४. हनुमंत रास : भा सहीनी ।।२६।।
५. हनुमंत रास : दूहा ।।२–३।।
६. हनुमंत रास : भास रासी ।।८।।
७. हनुमंत रास : चौपाईनी ।।४।।
८. हनुमंत रास : भास रासनीं ।।२७।।
९. वही ।।३१।।
१०. वही । ३०।।

हनुमान के इस पावन चरित्र का स्मरण करने वाला अपार पुण्यवान होता है। उसके जन्म-जन्म के पाप दूर होते हैं और उसे मनोवांछित फल की प्राप्ति होती है।[1]

नेमिनाथ : बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ, हरिवंशीय महाराजा समुद्र विजय के पुत्र हैं। इन्हीं के नाम पर हरिवंश रास का अपर नाम 'नेमीश्वर रास' भी रखा गया है। श्रीकृष्ण नेमिनाथ के चचेरे भ्राता हैं। रूप, गुण, स्वभाव में नेमिनाथ श्रीकृष्ण से कम नहीं हैं। नेमिनाथ के जन्म से पूर्व माता शिवादेवी को सोलह स्वप्न दिखायी देते हैं, जो नेमिनाथ के अतिशय गुणों एवं तीर्थंकर होने के सूचक हैं। स्वयं इन्द्र-इन्द्राणियां आकर उनके गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान एवं निर्वाण कल्याणक महोत्सव मनाते हैं।[2]

नेमिकुमार प्रारम्भ से ही प्रशान्त एवं वैराग्य प्रवृत्ति के हैं। सांसारिक कार्यों में उनकी अभिरुचि नहीं है। श्रीकृष्ण की पत्नियां सत्यभामा एवं रुक्मिणी आदि इन्हें बहुत रिझाती हैं पर ये समदर्शी ही रहते हैं।[3] प्राणी-मात्र की रक्षा अहिंसा की सर्वोत्कृष्ट परिणति नेमिनाथ के उज्ज्वल चरित्र की अपनी विशेषता है। हिंसा के लिए बाड़े में बंधे हुए पशुओं के चीत्कार को सुनकर नेमिनाथ को वैराग्य हो जाता है। अविवाहित राजीमति भी उन्हीं का अनुसरण करती है।[4]

नेमिनाथ अतिशय बलवान भी है। श्रीकृष्ण को वे हस्तनत परीक्षा में पराजित करते हैं। आयुधशाला में शंखनाद कर श्रीकृष्ण एवं समस्त जनों को विस्मित कर देते हैं।[5] केवलज्ञान प्राप्त होने पर नेमिनाथ सभी को आत्म कल्याण के लिए उद्‌बोधन करते हैं। द्वारिका-दाह आदि की सभी बातें पूर्व में ही बतला देते हैं। स्थान-स्थान पर धर्मोपदेश प्रदान कर अन्त में अपनी उत्कृष्ट आत्म साधना से मोक्ष प्राप्त करते हैं।

जम्बूकुमार : श्रेष्ठि पुत्र जम्बूकुमार का पूरा जीवन चरित्र आकर्षक रूप से चित्रित हुआ है। जन्म से ही जम्बू अतिशय गुणों से युक्त है। बाल्यावस्था में वह अपनी क्रीडाओं से सबको आनन्दित करता है।[6] किशोरावस्था में वह बसन्तमाल में

---

१. वही ।।३३–४५।।

२. हरिवंश रास : भास रासनी ।।१–२५।।

३. हरिवंश रास : भास आननूदानी ।।१–११।।

४. हरिवंश रास : भास चौपाईनी ।।१–४०।।

५. हरिवंश रास : रासनी ।।१–२५।।

६. जम्बूस्वामी रास : भास रासनी ।।१५–१६।।

राजगृही के मनरोद्यान में छूटे हुए हाथी को वश में कर सबकी रक्षा करता है।[1] राजा श्रेणिक को विद्याधर की पुत्री दिलाने में मदद करता है।[2] राजा श्रेणिक उसके गुणों से बहुत प्रभावित हैं।

सुधर्म स्वामी के दर्शन से जम्बू को वैराग्य हो जाता है।[3] वह विवाह के लिए तैयार नहीं होता है, पर अन्त में सभी के आग्रह से वह केवल एक रात्रि के लिये विवाह कर लेता हैं। रात्रि-भर उसकी चारों पत्नियां अपने आकर्षक हाव-भाव, कटाक्ष, गीत, कथा, नृत्य, आदि से रिझाती है, पर जम्बू पर इनका कुछ असर नहीं होता है। वह उत्तर में वैराग्य पोषक कथाएं कह कर अपने दृढ़ वैराग्य वीरता का परिचय देता है।[4] किशोरावस्था में वैराग्य जम्बू के दृढ़ चारित्र का द्योतक है। उसे संसार असार एवं कूडा लगता है। वह इसमे लेश मात्र भी नहीं फंसना चाहता है। विवाह के प्रसंग में उसका कथन है कि मैंने जन्म-जन्मांतरों में न जाने कितने ही विवाह किये, अब तो मैं मुक्ति रूपी वधू से ही विवाह करूंगा।[5] इस प्रकार जम्बू का जीवन कुमार से स्वामी चित्रित हुआ है। वे अपनी उत्कृष्ट साधना से अन्तिम केवली हुए।

सुकुमाल : श्रेष्ठि पुत्र सुकुमाल का चरित्र कवि ने घोर परिगृही के रूप में चित्रित किया है। सुकुमार भावनाओ के कारण सुकुमाल नाम रखा गया है। ज्योतिषी के अनुसार सुकुमाल का जीवन वैराग्य दायक है। स्वयं सुकुमाल स्वाध्याय करते हुए विरक्त हो जाता है।[6] माता उसे रोकने का हर तरह से प्रयत्न करती है, लेकिन उसका वैराग्य उत्तंगगढ की दीवारो को भी पार कर देता है।[7] सुकुमाल अतिवीर है। तपस्या सहते हुए पूर्व भव का वैरी उसके अंगों को खा डालता है। शरीर की अन्तडियां निकल आती है, लेकिन सुकुमाल मुनि अपनी साधना से लेशमात्र भी विचलित नही होते। उनकी घोर तपस्या से देवगण भी विस्मित होते है।[8] इस प्रकार उपसर्ग विजेता के रूप मे सुकुमाल का चरित्र वर्णित हुआ है।

---

१. जम्बूस्वामी रास : भास अम्बिकानी ।।१४–१६।।
२. जम्बूस्वामी रास : भास चौपाईनी ।।१–१४।।
३. जम्बूस्वामी रास : भास रासनी ।।१–२७।।
४. जम्बूस्वामी रास : भास सहोनी ।।१–४५।।
५. जम्बूस्वामी रास : भास रासनी ।।१–३३।।
६. सुकुमाल रास : भास माल्हंतडानी ।।१३–१६।।
७, सुकुमाल रास : भास जीवडानी ।।१३–२३।।
८. सुकुमाल रास : भास हेलिनी ।।१७–२७।।

भविष्यदत्त : भविष्यदत्त श्रेष्ठि पुत्र है। इसका पूरा जीवन रोमांचक कथाओं से परिपूर्ण है। वह अपने सौतेले भाई बन्धुदत्त के साथ व्यापार को जाता है।[1] मार्ग में अनेकों कष्टों को सहन करता है। वह जैन विवेकी है। णमोकार मन्त्र में उसकी अत्यधिक आस्था है। संकट की घड़ी में वह इसी का स्मरण करता है। वह अपने मधुर व्यवहार से राक्षस को भी प्रभावित कर लेता है और राजकुमारी को प्राप्त करता है। राजकुमारी के साथ कई दिनों तक एकान्त में शील की रक्षा करता हुआ रहता है।[2] वह मात सेवी है। अपनी मां का वह प्रिय पुत्र है। माता उसके लिए पंचमी का व्रत करती है। अपने-वणिक कार्यों से एवं सत्य व्यवहार से वह राजा को भी प्रभावित करता है। राजा उसको अपनी पुत्री के साथ राज्य भी देता है।[3] अपना भवान्तर सुनकर उसे वैराग्य हो जाता है और धर्माराधन से मृत्यु का वरण करता है।[4]

सुदर्शन : श्रेष्ठिपुत्र सुदर्शन का जीवन शीलवान के रूप में चित्रित हुआ है। इनके जन्म से पूर्व इनकी माता को कल्पवृक्ष आदि पांच स्वप्न दिखायी देते हैं।[5] सबको सुन्दर लगने से सुदर्शन नाम पड़ता है। प्रारम्भ में ही सुदर्शन शीलवान हैं। अपने माता-पिता के साथ वे भी बारह व्रतों का पालन करते हैं। सुन्दरता में साक्षात् कामदेव के सदृश है। पर जितने सुन्दर हैं उतने ही शीलवान भी। उसके मित्र की पत्नी एव रानी उसके सौन्दर्य से आकृष्ट हो, उसको अपनी ओर लुभाने का प्रयास करती है और नहीं मानने पर शील भंग का आरोप लगा कलंकित करती है।[6] लेकिन सुदर्शन दृढ़तापूर्वक अपने शील की रक्षा करते हैं। उनके शील के प्रभाव से यक्षदेव उनकी रक्षा करता है और राज-पुरुषों को दण्डित करता है। सब सुदर्शन के शील की प्रशंसा करते है। राजा रानी को सुदर्शन से क्षमा मागनी पड़ती है।[7]

चारुदत्त : श्रेष्ठिपुत्र चारुदत्त के जीवन में कई मोड़ आते है। प्रारम्भ मे चारुदत्त विद्याध्ययन एवं गुणीजन संगति में ही अपना जीवन व्यतीत करता है।

---

१. भविष्यदत्त रास : भास रासनी ।।१६।।
२. भविष्यदत्त रास : भास वीनतीनी ।।१३–१५।।
३. भविष्यदत्त रास : भास चौपाईनी ।।१–१५।।
४. भविष्यदत्त रास : भास अंबिकानी ।।१–३७।।
५. सुदर्शन रास : भास वीनतीनी ।।३–५।।
६. सुदर्शन रास : भास चौपाईनी ।।१६–३०।।
७. सुदर्शन रास : भास अंबिकानी ।।१–२२।।

अपनी पत्नी से भी बात नहीं करता ।[1] लेकिन वेश्या के सम्पर्क में आकर वह अपना धर्म, कर्म, माता-पिता, पुत्री सभी को भूल जाता है । वह सारे धनको भी गंवा देता है । धन समाप्त होने पर वेश्या उसे पाखाने में पटक देती है । तब वह अपने किये पर पछताता है ।[2] पर चारुदत्त साहसी भी है । धन के अर्जन में वह विदेश गमन करता है । उस काल में वह णमोकार मन्त्र का अनुचिन्तन करता है और धन प्राप्त कर धैर्यपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करता है ।[3]

जीवन्धरस्वामी : जीवन्धर स्वामी का चरित्र बड़े ही कलात्मक ढंग से कवि ने अपने रास में अंकित किया है ।[4] ये श्रेणिक कालीन पात्र है । इनकी जीवन गाथा प्रारम्भ से अन्त तक विविध घटनाओं से संयुक्त है । यह श्रेष्ठि पुत्र और राजपुत्र दोनों है ।

राज्य कार्य में व्यस्त रहता हुआ भी वह धर्माचरण करता रहता है । अपने एवं माता-पिता तथा सांसारिक कष्टों का अनुभव कर संसार से विरक्त हो जाता है । अपने वैराग्य की पुष्टि के लिए वह अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अशुचि आदि बारह भावनाओं का अनुचिन्तन करता है ।[5] अन्त मे अपने पुत्र को राज्य भार सौप कर भगवान महावीर के समवशरण मे पहुंच दीक्षा लेता है । अपनी साधना, ध्यान, तप बल से मुक्ति को प्राप्त करता है । इस प्रकार कवि ने जीवन्धर का उज्ज्वल व कर्मशील चरित्र अंकित किया है । कवि ने प्रारम्भ में ही राजा श्रेणिक के माध्यम से जीवन्धर की अनुपम साधना के दर्शन करा कर जीवन्धर को प्रभाव व्यंजित किया है ।[6]

धन्यकुमार : धन्यकुमार महाराजा श्रेणिक (अपार नाम बिम्बसार) और २४वें तीर्थकर महावीर के समय के प्रमुख पात्र है । इस श्रेष्ठि पुत्र का सम्पूर्ण जीवन कौतूहल एवं विशेषताओं से ओत-प्रोत है । इसकी चारित्रक विशेषताओं को कवि ने अपने रास में वर्णित किया है ।

---

१. चारुदत्त रास : भास अंबिकानी ।।६।।
२. चारुदत्त रास : भास चौपाईनी ।।१–३५।।
३. चारुदत्त रास : भास रासनी ।।१–१६।।
४. जीवन्धरस्वामी रास ।
५. जीवन्धर रास : भास गुणराज बह्माणी ।।५–१७।।
६. जीवन्धर रास : भास असोधरनी ।।३–५।।

धन्यकुमार जन्म से ही अतिशय पुण्यशाली है। इसके जन्म से घर में एक नवीन सुख एवं जागृति आ जाती है। उसकी 'नाल' गाड़ने के लिए जब खड्डा खोदा जाता है तो वहां सोने से भरा चरवा मिलता है। सोने के चरवे को जब राजा को दिया जाता है तो वह धन्य के पिता के लिए उसको वापिस कर देता है। इस प्रकार घर में धन्य के जन्म से ही धन-धर्म की वृद्धि होती हैं।[1]

धन्यकुमार स्वभाव से कोमल, गम्भीर एवं निस्पृह रहता है। इसमें लेश मात्र भी छल-कपट नहीं हैं। दीन दुखियों को वह नित्य प्रति दान देता है। दान से उसकी कीर्ति बढ़ती है। धन्य की सौम्य मूर्ति को देखने मात्र से प्रेम और आनन्द होता है।[2] उसके भाई उसके अतिशय कार्यों से ईर्ष्या करते हैं परन्तु वह सदा आदर ही करता है। साम्य भाव रखता है विरोध को धर्मपूर्वक सहता है।

धन्यकुमार धार्मिक प्रकृति का व्यक्ति है। जब भी उस पर किसी प्रकार का संकट आता है तो वह णमोकार का स्मरण करता है। मुनिगण को देख नत मस्तक हो जाता है।[3] जहां कहीं वह पहुंचता है, सर्वत्र सभी की प्रशंसा का भाजन बन जाता है। वह श्रेष्ठ कलाकार भी है। सुन्दर पुष्पमाला का निर्माण, व्यापार कर्म में सफलता, लक्ष्य बेधने की विद्या, दान-आदि चमत्कारी कार्यों से वह कई श्रेष्ठि पुत्रों एवं श्रेठि पुत्रियों को आकर्षित करता है और उनकी कन्याओं को प्राप्त करता है। राजकुमारियां स्वयं उसको वरण करती हैं।[4]

श्रेठि पुत्र होते हुए भी धन्यकुमार क्षत्रियोचित कार्यों में भी सफलता पाता है। द्यूत क्रीड़ा एवं लक्ष्य बेधने में वह राजकुमारों को सहज ही पराजित कर देता है।[5] राजगृही पहुंचकर वह अपने कार्यों से राजा श्रेणिक को प्रसन्न करता है। श्रेणिक की पुत्री धन्य पर मोहित होती है, पर भाई अभयकुमार उसका विरोध करता है। वह धन्य को ऐसी गुफा में भेजता है जहां से वह लौट न सके। लेकिन वहां भी धन्य को कोई कष्ट नहीं होता, वरन् आदर पूर्वक रत्न, माणिक, मोती आदि

---

१. धन्यकुमार रास : भास वीनतीनी ॥१–४॥
२. धन्यकुमार रास : भास चौपाईनी ॥१–५॥
३. धन्यकुमार रास : भास चौपाईनी ॥८–६॥
४. धन्यकुमार रास : भास रासनी ॥१०–११॥
५. धन्यकुमार रास : भास माल्हंतडानी ॥१३–१८॥

पदार्थ पाता है। श्रेणिक प्रसन्न होकर पुत्री का विवाह धन्य से करता है।[1] साथ ही दहेज में नगर, ग्राम, हाथी, घोड़े, रथ, रत्न, मोती, स्वर्ण आदि धन्य को प्राप्त होते हैं।

धन्य दृढ़ विचारों का है। वैराग्य के विषय में उनका विचार है कि जब भी मन में संसार से विरक्ति पैदा हो वैराग्य ग्रहण किया जा सकता है। अपनी पत्नी सुभद्रा को उसके भाई शालिभद्र के धीरे-धीरे वैराग्य लेने के विषय में धन्य यही बात समझाता है।[2]

धन्य जैसा कहता है वही करता भी है। अपने साले शालिभद्र को वैराग्य के लिए प्रेरित कर स्वयं भी वैराग्य ग्रहण कर लेता है। अपनी पत्नियों के साथ भी महावीर की धर्मसभा में वह दीक्षित हो जाता है। अपने उत्कृष्ट ध्यान, तप से सर्वार्थ सिद्धि नामक स्वर्ग में अहमिन्द्र का पद पाता है।[3]

प्रमुख स्त्री पात्र

सीता : राजा जनक की पुत्री और राम की पत्नी सीता का जीवन चरित भारतीय संस्कृति एवं साहित्य का प्राण है। आलोच्य महाकवि ब्रह्मजिनदास ने भी राम व सीता के उज्ज्वल चरित की गाथा को अपने काव्य या मूल आधार बनाया है जिसमें राम के साथ सीता के संघर्षपूर्ण पावन जीवन की झांकी अभिव्यक्त हुई है। वह श्रेष्ठ भारतीय नारी का प्रतिनिधित्व करती है।

हरिवंशीय राजा जनक की रानी विदेहा से सीता का जन्म होता है। चन्द्रमा की कलाओं के समान उसका रूप-सौन्दर्य वृद्धि को प्राप्त होता है। ७०० अन्य कन्याओं के साथ वह अपनी बालक्रीड़ा से माता-पिता को आनन्दित करती है।[4] सीता के बढ़ते हुए रूप-सौन्दर्य एवं अवस्था को देख जनक पिता उसके विवाह के लिए चिन्तित होते है।[5] स्वयंवर का आयोजन होता है। धनुष को सहज ही तोड़ने वाले सुन्दर राजकुमार राम के गले में लज्जाशीला सीता वरमाला डाल देती है।[6]

---

१. धन्यकुमार रास : वस्तु, दूहा ।।१।। ।।१।।
२. धन्यकुमार रास : भास चौपईनी ।।८–९।।
३. वही ।।१५।।
४. राम रास : भास हेलिणी ।।९–१०।।
५. वही ।।१५।।
६. राम रास : मिथ्यात मोकको ।।३।।

सीता अपने जीवन में पूर्ण पतिव्रत्य आचरण को धारण करती है। राम को वनवास मिलने पर राम के साथ रहती है और उनकी सेवा करती है। अपना सबसे बड़ा धर्म एवं सुख राम की सेवा को मानती है। वन यात्रा में सीता को अनेकों कष्टों का सामना करना पड़ता है, पर उन्हें आनन्दपूर्वक सहन करती है। वह धर्म में आस्था रखती है। संकट आने पर ईश्वर का स्मरण करती है। एक बार अत्यधिक ग्रीष्म में सीता प्यास के कारण व्याकुल होती है। पानी की तलाश में राम-लक्ष्मण-सीता कपिल नामक ब्राह्मण के घर पहुंचते हैं। उस समय ब्राह्मण घर नहीं होता है, ब्राह्मणी होती है। ब्राह्मणी नये पात्रो का पानी बताती है। सीता अनछने पानी पीने के लिए इन्कार कर देती है। पानी छनते समय घर में ब्राह्मण आ जाता है और पानी छानने पर कुपित होता है। उसे समझाया जाता है कि पानी में सूक्ष्म जीव-जन्तु होते हैं अतः छानकर पीना चाहिये। पर वह इसके विपरीत लड़ने पर उतारू हो जाता है। झगड़े में पानी ढुल जाता है। इस झगड़े का कारण सीता अपनी प्यास को मानकर नियम (पानी छानकर पीना) की सिद्धि के लिए और झगड़े की शान्ति के लिए णमोकार मन्त्र का स्मरण करती है, जिसके प्रभाव से मेघ वृष्टि होती है और तब शुद्ध प्राकृतिक जल को छानकर पीया जाता है और शान्ति होती है। इस घटना से सीता की शान्ति प्रियता प्रकट होती है।[4] सीता में राम के प्रति जो अनुराग है, वह शुद्ध पातिव्रत धर्म है। वन में रावण धोखे से उसका अपहरण कर लेता है। उस समय उसके मन की दशा जो हुई, उसे वह ही जानती है। राम के अभाव में उसको कुछ नही सुहाता। वह अपने पति और देवर के बिना विलाप करती है। पति राम, देवर लक्ष्मण, पिता जनक, माता विदेहा और भाई भामंडल आदि को पुकारती है। णमोकार मन्त्र का स्मरण करती है।[1] रावण को पापी कहती है। सीता शीलवती नारी है। उसके एक मात्र पति राम है। राम के अतिरिक्त वह अन्य किसी में अनुरक्त ही नही कल्पना भी पाप समझती है। रावण उसे अपनी पत्नी बनाने के लिए तरह-तरह से मनाता है, नाना प्रकार के प्रस्ताव रखता है, लोभ देता है। लेकिन सीता तो शील का भण्डार है। वह स्वयं रावण से कहती है—रावण, तू गंवार है। मैं परनारी हूं।[5] रावण के आग्रह पर कि मैं तुम्हारे बिना अपनी हत्या कर लूंगा सीता उसे कहती है—तुम जीवघात मत करो।

---

४. राम रास : भास बीमतीनी ॥१–२८॥

१. राम रास : भास चौपईनी ॥८०॥

२. वही ॥७४–७१॥

है, लंकापति ! मनुष्य जन्म को गमाओ मत । इन्द्रियों में अपने मन को मत रमाओ । बहुत समझाने पर भी नहीं मानने पर सीता अपना दृढ़ निश्चय सुना देती है, देख रावण, भले ही सुमेरु पर्वत चल पड़े, समुद्र अपनी मर्यादा लोप दे, अग्नि शीतल हो जावे, परन्तु यह सीता अपने शील व्रत को नहीं छोड़ सकती ।[1]

सीता संकटों से घबराती नही है । प्रत्येक आने वाले संकट को वह स्वयं का कर्म भोग मानती है । लोकापवाद के भय से राम जब गर्भवती सीता को घर से निकाल देते हैं तो भी वह अपने कर्मों का ही भोग मानती है । वह राम से कुछ नहीं कहती है । सेनापति कृतान्त वक्र के माध्यम से राम के पास मात्र यह विनती भेजती है—हे देव, लोकापवाद से जैसे आपने मेरा त्याग किया है, वैसे लोकापवाद से आप कहीं सत्य धर्म को मत छोड़ना ।[2] सीता के इस सन्देश में कितना मार्मिक तथ्य भरा है । इस अवस्था में भी वह अपने परिवार का कल्याण ही अपना धर्म मानती है । अपनी शुद्धि के प्रमाण के लिए वह अग्नि परीक्षा देती है और उसमें खरी उतरती है । पर अन्त में उसे इस संसार की असारता से विरक्ति हो जाती है । वह साध्वी बनकर अपने आत्म-कल्याण में प्रविष्ट हो जाती है ।

इस प्रकार कवि ने सीता के पावन जीवन का प्रदर्शन बड़ी मनोवैज्ञानिक भूमि पर किया है । अपने सत्कर्मों से नारी देवी बन जाती है और सबकी पूज्य बन जाती है । रामरास की सीता वह भारतीय नारी है जिसके जीवन में नाना प्रकार के संघर्ष आते हैं, पर उन सबको सानन्द सहन करती है और अपने सम्यक्त्व भावों से आत्म-कल्याण करती हुई नारी समाज के लिए अनुकरणीय आदर्श छोड़ जाती है ।

अंजना—हनुमान की माता अंजना का चरित्र आलोच्य महाकवि ब्रह्म जिनदास ने अपने काव्य में सुन्दर रीति से चित्रित किया है । जैन साहित्य में हनुमान की गणना पुण्य पुरुषों में की जाती है । अंजना इसी पुण्य पुरुष की जननी है । कवि ने अपने रास में अंजना सहित हनुमान के गुण वर्णन की बात कही है ।[3] उन गुणों को भव्य प्राणी अपने जीवन में अपनायें—

---

१. वही ।।१००–१०१।।

२. राम रास : भास जीवडानी ।।६–१८।।

३. भवीयण जण संबोधवाए, रास कीउ मि चंग तु ।
अंजना गुण बहुवरणकाए, हनुमंत सहित उत्तंगतु ।।४२।। हनुमंत रास ।।

अंजना के जीवन में बहुत संघर्ष एवं कष्ट आते हैं, उन सभी को वह शान्त भाव से अपने ही कर्मों का भोग मानती हुई सहन करती है। पति के प्रति अनन्य प्रेम एवं आस्था, गुरुजनों के प्रति आदर भाव, पुत्र के प्रति वात्सल्य भाव, धर्म में आस्था और प्रत्यक्ष या परोक्ष आपातित कष्टों को अपने कर्मों का परिणाम मानना एवं शान्त भाव से भोगना, विरोधियों के प्रति भी साम्य भाव तथा प्राणी मात्र के प्रति क्षमा एवं स्नेह भाव आदि गुण अंजना के चरित्र की अपनी विशेषताएं हैं जो नारी जाति के लिए ही नहीं वरन् मानव-मात्र के लिए अनुकरणीय है। कवि ने अपने काव्य में अंजना के इन गुणो का वर्णन इसलिए किया है।[1] जिनके पढ़ने से पाप दूर होते हैं और मनवांछित फल मिलता है।

मैना सुन्दरी : मैना सुन्दरी कोटिभट राजा श्रीपाल की पत्नी है। इसके कर्मवाद का सुन्दर चित्रण कवि ने अपने रास में किया है। जैन साहित्य एवं समाज में मैना सुन्दरी की जीवन गाथा एवं उसका आदर्श चरित्र आदरणीय एवं लोकप्रिय है।[2]

मैना भाग्यवादी है। कर्म में उसकी बलवती आस्था है। इसके अनुसार मनुष्य ने अपने पिछले भव मे जैसे कर्म किये है, उसके अनुसार उसे फल भोगने पड़ते है। पिता प्रजापाल इसके इस भाग्यवाद के सिद्धान्त से रुष्ट और कुपित होता है, पर उसे भी मैना अपने पिछले किये हुए कर्म ही मानती है।

मैना सुन्दरी शील और गुणों की माला है। वह प्रसन्नतापूर्वक अपने कुष्ट रोग से पीड़ित पति को पाती है, आदर करती है। उसकी मुनि मे अत्यधिक आस्था है। वह उनसे अपना भवान्तर मालूम करती है। मुनिराज उसके कर्मवाद एवं सम्यक्त्व की प्रशंसा करते हैं।[3] मुनि के आदेश से मैना अपने पति के रोग निवारणार्थ संयम व्रत ग्रहण करती है और आठ दिन तक सिद्धचक्र व्रत एवं पूजा का पालन करती है।[4]

वह नित्य प्रति पूजा एवं व्रत का आचरण करती है और अपने पति की नीरोगता के लिए मंगल कामना करती है। पूजा के पश्चात् गंधोदक लाकर वह

---

१. हनुमंत रास : भास रासनी ।।४२–४३।।
२. श्रीपाल रास।
३. श्रीपाल रास : भास अम्बिकानी ।।१३।।
४. श्रीपाल रास : भास हींडोलानी ।।१–५।।

नित्य प्रति अपने पति के साथ अन्य रोगियों पर भी छिड़कती है। उसके इस आचरण से सभी का रोग दूर हो जाता है और सभी अत्यधिक सुन्दर लगते हैं। श्रीपाल रोग मुक्त हो काम देव के समान सुन्दर हो जाते हैं।[1] इसके इस सुन्दर आचरण से सब उसकी प्रशंसा करते हैं। पिता प्रसन्न होता है। उसके कर्मवाद को स्वीकारता है। उसे सम्पत्ति देता है।[2] श्रीपाल को गया हुआ राज्य वापिस मिल जाता है। मैना श्रीपाल की पटराणी बनती है। श्रीपाल की माता का वह बड़ा आदर सत्कार करती है।[3] इस प्रकार मैना प्रारम्भ से धर्म-परायण नारी है। मैना के चरित्र में सत्कर्म की विजय बताना कवि का अभीष्ट है।

इस प्रकार ब्रह्म जिनदास ने पात्रों की सृष्टि और उनके चरित्र-चित्रण में अपने कौशल का निर्वाह किया है। चरित्र-चित्रण के मूलमंत्र मनोविज्ञान का कवि को पूर्ण ज्ञान है। अपने दृष्टिकोण के अनुसार पात्रों का सुन्दर चित्रण किया है। ब्रह्म जिनदास के काव्यों के पात्र अपनी चारित्रिक विशेषताओं को प्रकट करते हैं। और जीवन की शुभाशुभ गतिविधियों को सहज रूप में हमारे सन्मुख अभिव्यंजित कर देते हैं।

भाव रूप में वर्णन
(रस निरूपण)

आलोच्य महाकवि ब्रह्म जिनदास ने अपने रास काव्यों में इतिवृत्तात्मकता के साथ-साथ रसात्मकता का भी सुन्दर निरूपण किया है। वस्तु-वर्णनों की विविधता के साथ कवि भावाभिव्यंजना में प्रवण दिखायी देते हैं। मार्मिक स्थलों के वर्णन में कवि ने अपेक्षाकृत अधिक रूचि ली है। जिसमें मन के विभिन्न भावों को को अनेक प्रकार से प्रकट किया गया है।

यद्यपि आलोच्य साहित्य में विविध रसों का यथा-स्थान परिपाक हुआ है, पर अंगी रस शान्त रस ही है। कवि का दृष्टिकोण आध्यात्मिक होने के कारण रस-निरूपण की दृष्टि से इन रचनाओं में शान्त रस की ही प्रधानता है। प्रायः सभी रचनाओं की परि समाप्ति शान्त रस में हुई है। शृंगार, वात्सल्य, वीर

---

१. वही ॥६–६॥
२. श्रीपाल रास : दूहा ॥४॥
३. श्रीपाल रास : भास हिंडोलानी ॥१३–१४॥

आदि रस शान्त रस के सहयोगी बनकर आये हैं। शान्तेतर रसों के परिपाक में जहां बाधा पहुंची, उसका प्रमुख कारण कवि का उद्देश्य भोगपरक जीवन की निस्सारता एवं योग परक संयम निष्ठ जीवन की श्रेष्ठता का बीच-बीच में आना-जाना ही रहा है। फिर भी अंगीरस शान्तरस के साथ-साथ वात्सल्य, शृंगार, वीर, बीभत्स, हास्य, करुण, अद्भुत, भयानक, रौद्र आदि रस भी यथा स्थान देखे जा सकते हैं।

इन रास काव्यों में धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष—इन चार तत्वों का विशद् विवेचन हुआ है, फिर भी धर्म साधना के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति का उद्देश्य विशेषतः सर्वत्र मुखरित है। शृंगारादि नव रसों की यहां अभिव्यंजना हुई है, लेकिन आध्यात्मिक वातावरण के परिप्रेक्ष्य में शान्तरस की प्रधानता उलेख्य है। सांसारिक रूपासक्ति तथा वैभव शालिता की इन रास काव्यों की कथाओं में उपेक्षा प्रदर्शित नही हुई है, अपितु यथा अवसर उनके रस पूर्ण चित्रण के साथ-साथ जीवन के चरम लक्ष्य विरक्ति का सहज निरूपण करके महाकवि ने राम की प्रधानता को कभी नहीं भुलाया है। इन काव्यों में एक ओर शृंगार का सुखद सम्मिश्रण है तो दूसरी ओर जीवन की विरक्ति शब्द-शब्द में मुखरित हुई हैं। पेम का मर्मस्पर्शी चित्रण करते हुए काव्य की समाप्ति पर उस राग की निस्सारता को बताकर विरक्ति परिपूर्ण एक महान् उद्देश्य की परिपुष्टि की गई है। इस प्रकार कवि का साहित्य भोग से योग की ओर जाता है।

शान्त रस : शान्त रस के सम्बन्ध मे भरत मुनि का कथन है—ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रिय के निरोध करने वाले और आत्म निष्ठ साधक के द्वारा प्राप्य समस्त प्राणियों के लिए सुखकर व हितकर शान्त रस है। जहाँ न दु;ख रहता है न सुख, न द्वेष और न ईर्ष्या रहती है। समस्त प्राणियों मे समभाव वाला वह शान्त रस प्रसिद्ध माना गया है।[1] संस्कृत आचार्यों ने शृंगार रस को ही रसराज माना है। भव भूति ने सभी रसों का अन्तर्भाव करुण रस में कर करुण रस का रस राजत्व सिद्ध किया हैं।

जैन कवि प्रकृत राग-द्वेषों का परिमार्जन कर अव्यवस्था में व्यवस्था स्थापित कर शरीर से आत्मा की ओर, रूप से भाव की ओर, राग से विराग की ओर बढ़ने

---

१. बुद्धीन्द्रिय कर्मेन्द्रिय संरोधाध्यात्मक संस्थितो पेनः ।
सर्वं प्राणि सुखहितः शान्त रसो नाम विज्ञेय ॥
यत्र न सुखं न दुखं न द्वेषो नापि मत्सरः ।
समः सर्व भूतेषु स शान्तः प्रथितो रसः ॥ भरत मुनि

में ही कवि कर्म की सार्थकता मानते हैं। इसलिए उन्होंने रसों की तुलना में शान्त रस को प्रमुखता दी।[1] संसार की असारता इसकी सभी वस्तुओं की नश्वरता का क्षण भंगुरता तथा परमात्म तत्व का बोध होने से मन को ऐसा विश्राम मिलता है, जो विविध सांसारिक सुख के विषयों के भाग से कभी नहीं मिलता। इसी मानसिक शान्ति का वर्णक पाठक या श्रोता के हृदय में शान्तरस की उद्भावना करता है।[2] जैन साहित्यकारों ने इसी शान्तरस को रस राज माना है। इस शान्ती रस का स्थायी भाव शम या वैराग्य या निर्वेद है। आलम्बन विभाव—तीर्थंकर निर्ग्रंथ साधु है। तत्व चिन्तन, तप, ध्यान, स्वाध्याय, समाधि, साधु-संगति, तीर्थ-स्थान, उपदेश आदि उद्दीपन विभाव है। काम, क्रोध, मान, माया, लोभ. मोह का अभाव नासाग्र दृष्टि ध्यान मुद्रा में प्रकाशन अनुभाव है, धृति मति, विबोध, निर्वेद संचारी भाव हैं। सच तो यह है कि जहां देह धर्मिता छूट जाती है, समरसता की स्थिति आ जाती है वहीं शान्त रस का परिपाक होता है।

शान्त रस का रस राजत्व इसलिए सिद्ध है कि सभी रसों का उद्गम भी इसी रस से होता है और सबका समाविष्ट या विलय इसी मे होता है। मानव जीवन की समस्त वृत्तियों का उद्गम शान्ति से ही होता है। शान्ति का अनन्त भण्डार आत्मा है। जब आत्मा देह आदि पर पदार्थों से अपने को भिन्न अनुभव करने लगती है तभी शान्त रस की उत्पत्ति होती है। वह अहंकार राग-द्वेष आदि से परे विशुद्ध ज्ञान और आनन्द की दशा है, जहां काव्यानन्द और ब्रह्मानन्द दोनों मिलकर एक हो जाते हैं।[3]

जैनाचार्यों ने वैराग्य भावना की उत्पत्ति के दो साधन बताये हैं—एक तत्व ज्ञान और दूसरा इष्ट वियोग व अनिष्टसंयोग। राग की अतिशय प्रतिक्रिया ही वैराग्य है। आलोच्य रास काव्यों में जितने भी नायक हैं, नायकेतर अन्य पात्र भी सामान्यत: भोग भोगकर ही योग मार्ग की ओर अग्रसर होते है। अपने जीवन के प्रारम्भ में ये पात्र सांसारिक सुख वैभव का उपभोग करते हैं। पर उत्तरार्द्ध में कोई निमित्त पाकर वैराग्य ले लेते हैं। इनके जीवन में प्रारम्भ में राग की जितनी अतिशयता रहती है उतनी ही अतिशयता उनके उत्तरार्द्ध जीवन में वैराग्य की होती है। सही तो यह है कि उनके प्रारम्भ का राग उत्तरार्द्ध के वैराग्य का पोषक होता है।

---

१. डा० नरेन्द्र भानावत : साहित्य के त्रिकोण, पृष्ठ २७८।

२. काव्य प्रदीप, पृष्ठ ८६ :

३. डा० नरेन्द्र भानावत : साहित्य के त्रिकोण, पृष्ठ २८३ :

आलोच्य साहित्य में शान्त रस की सरिता प्रवाहित दृष्टि गोचर होती है। इसमें सन्त महाकवि का एक ही लक्ष्य रहा है कि मनुष्य किसी तरह सांसारिक विषयों के फन्दे से निकल कर अपने को पहिचाने। कवि ने अपने प्रमुख पात्रों के द्वारा संसार की असारता को निवृत्ति रूप में अनेक स्थानों पर व्यक्त कराया है। नृत्य करती नीलांजना की मृत्यु को देख कर आदिनाथ को वैराग्य हो जाता है।

> चन्द्रमा विण जिम राति, बात न सोहे धर्म्म विण हेलि।
> तिम हूं तम विण नाथ, किम सोहू तम विण हेलि ।।
> मेघ विण जोम बीज, दणीयर विण जिम कमलीणि हेलि।
> तिम हूं तम विण कंत, किम सोहुं घरितुम्ह विण हेलि ।
> दान विण जिम लाछी, आचार विण कीरति नवि हेलि।
> तिम तुम्ह सुणइ नाथ, अवर ठाम मन किम भीजि हेलि ।।[1]

इसी प्रकार पवनंजय भी अंजना के बिना विलाप एवं अपने कर्मों की निन्दा करता है।

> किहां गई ए सुंदरी नारी, वन मांहि भूलि कामनीए।
> बाघ सिंघ ए खा धोय जाणि, कि मरण पामी ते भामिनीए ।।
> कि गरम खपि जाणि, पछि दीक्षा लीधी नीरमलीए ।
> अर्जिका हुई गुणमाल, तप करि अति उजलुए ।।
> मि परहरी ए बार बरष, ते पाप लागिउ मझ सहीए।
> नारी नि ए दीधो दुःख ते दुःख पाम्यउ सहींए ।।[2]

पवनंजय अंजना के बिना सब कुछ छोड़ मौन रख लेता है और नदी किनारे मुनि सदृश ध्यान लगा लेता है। प्रेम की इस पराकाष्ठा का अद्भुत दृश्य देखिये—

> पवनंजय रह्यउ गुणवंत, नदीय कांठि वृक्ष तलिए ।
> अंजना ए देखउ नारि, तु बोलूं हूं निरमलुए ।।

---

१. हनुमन्त रास : भास हेलिनी ।।१-५।।

२. हनुमन्त रास : भाष वीनतीनी ।।२८-३०।।

इम कही ए बिठउ बीर, बीर भणि मुनिवर समवए ।
ध्यान धरिए रह् यउ जिमसाथ, अंजना कारणि पुरुरमिए ॥[3]

राम की दशा भी कम वियोगजन्य नही है । वे वन में निर्जीव वस्तुओं से भो सीता के बारे में पूछते हैं—

तव रामदेव विह्वल हुवोए, जोवेए वनह मझारि तो ।
कवणे ठामि गई सुन्दरीए, कवण मन मांहि सुक्ष लागि तो ॥[4]

इस प्रकार के संयोग एवं वियोग दोनो पक्ष इन काव्यो मे मिलते हैं ।

यहाँ वैराग्य भाव प्रधान है । इसका आश्रय स्वयं आदिनाथ है । संसार की असारता विभाव है । नीलांजना की मृत्यु आलंबन है । रोग-भोग, संसार के असार एवं नाशवान तत्व उद्दीपन है । संयम अनुभाव है । मोह-पाश से मुक्ति का विचार, विबोध एवं मति नामक संचारी भाव हैं । इसी प्रकार अजितनाथ को, उल्कापात देखकर संस.र से वैराग्य हो जाता है । वानर-वानरी की प्रेम लीला वानरी एवं वनमाली द्वारा फल तोड़ने पर ताड़न के दृश्य से जीवन्धर को वैराग्य हो जाता है । वे वैराग्य पोषक अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आश्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ एवं धर्म आदि बारह भावनाओं का अनुचिन्तन करते है । ये बारह भावनायें अपने आप मे वैराग्य पोषक है[1] सुकुमाल की घोर तपस्या, जम्बू की वार्ताओं में सुदर्शन के ध्यान मे एवं कवि की अधिकांश मुक्तक रचनाओं में शान्त रस मिलता है । वैसे कवि के सभी प्रबन्ध एवं मुक्तक काव्यों की परिसमाप्ति शान्त रस में ही हुई है । दीक्षा, तप, ज्ञान एवं मोक्ष वर्णन में शान्त रस ही विद्यमान है ।

राजा सगर अपने साठ हजार पुत्रों की सर्पदंश से मृत्यु के समाचार सुनकर संसार की असारता पर विचार करता है और वैराग्य लेने की सोचता है—

तब चितवे मन मांहि, सगर नरेन्द्र अति सोहलो हेलि ॥
धिग धिग ए असार संसार, सार न दीसे दुःख भर्यो हेलि ।

---

३. वही, ॥४४–४५॥
४. राम-रास : भास रासनी ॥१२॥
२. जीवन्धर रास : भास गुणराज ब्रह्मनी ॥५–२१॥

मझ तखा कौंवर सुजाण, खीण मांहि थयो वैराग्य थयो हेलि ॥[1]

कोई वृद्ध पुरुष राजा दशरथ को अपनी वृद्धावस्था के कारण गन्धोदक लाकर देने में विलम्ब कर देता है। राजा उसकी वृद्धावस्था देखकर विरक्त हो जाता है—

तरुण पर्णेय साधे जे धीर, ते सही अनोपम वीर ।
बूढापणो जीवनी शक्ति न होइ, सजन जन कह्यु करे नहीं कोइ ॥
जरा वाधि रोग देह न आवी ताहि, त्याहा लगि साधी लेवो एता माहि ।
इम चितवतां मनि उपणो भाउ, दीक्षा लेवो चाल्यो दशरथ राउ ॥[2]

वसुदेव के कामदेव सदृश अतिशय रूप-सौन्दर्य को देखकर नगर की स्त्रियाँ काम ह्विवल हो जाती हैं। उनका यह स्वरूप उनके पतियो को अच्छा नही लगता वे सब मिलकर महाराज समुद्र विजय से शिकायत करते हैं। महाराज समुद्र विजय वसुदेव के नगर भ्रमण पर रोक लगा देते हैं। किसी दासी द्वारा वसुदेव को अब इसका पता चलता है तो उन्हे ससार से विरक्ति मिल जाती है। वे सब कुछ छोड़ कर वन में चले जाते है—

धीग पडो ये खेलवो, धीग् धीग् ये संसार ।
कलंक लागो मझ प्रति घणो, लोक मांही अपार ॥
हुं नीकलंक सोहामणो, कपट नही लगार ।
पण कीधां करम न छूटीये, इम कहि वीचार ॥[3]

शृंगार रस : यद्यपि आलोच्य कवि का साहित्य साधारणत शान्ति या शम प्रधान है, किन्तु वह आरम्भ नही परिणति है। जैन कवि इसे अच्छी तरह जानता है कि पूरे जीवन को शम या विरक्ति का क्षेत्र बना देना प्रकृति का विरोध है। इसलिए उसने शम या विरक्ति को उद्देश्य के रूप में मानते हुये भी सांसारिक वैभव का रूप विलास और कामासक्ति का चित्रण भी पूरे यथार्थ के साथ प्रस्तुत किया है। जीवन का भोग पक्ष सहज आक्राम्य नही होता। जैन

---

१. सगर चक्रवर्ती रास : भास हेलिनी ॥१६–१९॥

२. राम-रास : भास रासनी ॥३२–३३॥

३. हरिवंश रास ॥४८४–४८५॥

दर्शन रूप-शृंगार को अवश्य आकर्षण की वस्तु होने के कारण निर्वाण मार्ग में बाधक मानता है। इस मान्यता के कारण जैन कवियों ने शृंगार का बड़ा ही उद्दाम, वासनापूर्ण और क्षोभकारक चित्रण किया है। जड़ पदार्थ के प्रति मनुष्य का आकर्षण जितना घनिष्ठ होगा उससे विरक्ति उतनी ही तीव्र। श्रमण शक्ति की महत्ता का अनुमान तो इन्द्रिय-भोग-स्पर्द्धा की ताकत से ही किया जा सकता है। इसी कारण नारी के शृंगारिक, रूप, यौवन तथा तज्जन्य कामोत्तेजना आदि का चित्रण सफलता से किया गया है।

जैन पुराणों के चरित्र नायकों की ऊर्ध्व मुखी चेतना आध्यात्मिक वातावरण में सांस लेती है, किन्तु पंक से उत्पन्न कमल की तरह उसकी जड़ सत्ता सांसारिक वातावरण से अलग नहीं है। इसीलिए संसार के अप्रतिम सौन्दर्य का भी तिरस्कृत करके अपने साधना-मार्ग पर अटल रहने वाले मुनि के प्रति पाठक अपनी पूरी श्रद्धा दे पाता है। जैन शृंगार-वर्णन के इस विवरण से इतना स्पष्ट हो जाता है कि धार्मिक काव्यों में जिनका मुख्य उद्देश्य भक्ति का प्रचार था, शृंगार कभी उपेक्षित नहीं रहा। बल्कि इन वर्णनों से इसके अतिशय का भी पता चलता है।[1]

आलोच्य साहित्य की चरम उपलब्धि अध्यात्मवाद की परिपुष्टि ही है। फलत: रूप-सौन्दर्य की आकर्षक आसक्ति में संलग्न मानव को प्रबुद्ध करके कविवर ब्रह्म जिनदास ने एक ओर संसार की क्षण भंगुरता को अभिव्यंजित किया तो दूसरी ओर शृंगारिक साहित्य के निःसत्व को भी सशक्त शब्दों में अभिव्यंजित किया है। अध्यात्म प्रधान यह साहित्य संसार से विरक्ति और मुक्ति में अनुरक्ति रखता है। फिर भी शृंगार रस के संयोग और वियोग के मनोहारी चित्र और मार्मिक प्रसंग पर्याप्त रूप में देखने को मिलते हैं। जो रीतिकालीन कवियों के भाव-सौन्दर्य से किसी प्रकार कम नही है। यह शृंगार शान्त रस का सहायक बन कर आया है। अत: रीतिकालीन जैसी उच्छृखल एवं उद्दाम वासना में ही डूबा नहीं रहता, अपितु विरक्ति में परिणित होने वाला है। उचित समय पर यह शृंगार प्रबोध पाकर जीवन की वास्तविक महत्ता से शून्य नहीं रहता। इस शृंगार वर्णन में मन को सुलाने वाली मादकता नहीं, वरन् आत्मा को जागृत करने वाली मनुहार है।

संयोग शृंगार का वर्णन इन रचनाओं में अधिकांशतया वहाँ हुआ है, जहाँ

---

१. श्री शिवप्रसाद सिंह : विद्यापति, पृष्ठ ११०–११४।

संयम लेने से पूर्व, नायक सांसारिक भोगों में लिप्त हैं। जम्बूकुमार का विवाह चार सुन्दर कन्याओं से होता है। यह विवाह उसने माता-पिता के अत्यधिक आग्रह पर केवल एक रात्रि के लिए किया है। प्रातः काल होते ही उसे संसार से मोह छोड़ कर दीक्षा लेनी है। इस प्रथम एवं अन्तिम रात्रि के मिलन में चारों सुन्दर कन्याएँ उसे नाना हाव-भावों से अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करती हैं—

> च्यार कन्या सोहामणी, तेणे मन्दिरी आवी भामिणी।
> कामिणी सर बोले गज गामिणी ए, सहीए ।।
> ते आवी सेज्या बियठी, जम्बूकुमार नारी दीठी।
> मोह रहित मान दीयूं घणूं ए, सहीए ।।
> हाव-भाव करे घणूं, रूप देखाडि आपनूं।
> ते नारी जम्बूकुमार मनिरलीए, सहीए ।।
> एक नयन विकार करे, बीजी उरि परि हार धरे।
> त्रीजीय हसे सुललित कवडो ए, सहीए ।।[1]

> चोथी सिणगार देखाडे, मोह मन सरीसो अड़े।
> अभिलाष धरे सुंदरी अति घणोए, सहीए ।।
> अनेक विविध क्रीडा करे, जम्बू कुंवर नो हाथ धरइ।
> आलिंगन देवा चाहे सुंदरीए, सहीए ।।[2]

इस शृंगार वर्णन के समक्ष रीतिकालीन शृंगार लीला विशेष महत्त्व नहीं रखती।

पवनंजय को मार्ग में चकवे को चकवी के वियोग में व्यथित देख अपनी पत्नी अंजना के प्रति प्रेम जागृत होता है। वह वहीं से वापिस आकर चुपचाप मिलकर व्यथित अंजना को शान्ति एवं सुख देता है। दोनों का परस्पर मिलन होता है। कवि ने इनके संभोग शृंगार का कितना संयमित वर्णन किया है—

> तव पवन मन हरषीउ, हुव उ मेलापक।
> मोह वाध्यउ तिहां अति घणउ, हूवो मन व्यापक ।।

---

१. जम्बूकुमार रास : भास सहीनी ।।११–१५।।

१. जम्बूस्वामी रास : भास सहीनी ।।१५।।

मीठि दिवस लगि तिहां रहू यउ, हुवउ जय जयकार ।
मेलापक हुवउ रूबडउ, अति सरस अपार ।।[1]

यह वर्णन रीतिकालीन शृंगार जैसा अश्लील नहीं है ।

नीलांजना की आकर्षक नृत्यकला शृंगार रस का उत्तम उदाहरण है—

आंगोपांग मोडे घणाए, हाव-भाव करे राग तो ।
मन रीझे सभा तणोए, रूध्या इन्द्रीय भाग तो ।।
नीलंजस पात्र जाणीए, नाचे सरस अपार तो ।
हाव-भाव रचना करए, मोह तणो विस्तार तो ।।[2]

भविष्यदत्त और भविष्यदत्ता एक स्थान पर छः मास तक अकेले ही रहते हैं । दोनों में परस्पर अत्यधिक प्रीति होती है । एकान्त स्थान में ये दोनो रास, भास, गीत, चंग, गाथा, दूहा, कहानीं, पहेली, काव्य आदि के द्वारा अपना मनोरंजन करते हुये अपने शील की रक्षा करते है ।[3]

यशोधर की रानी राजा यशोधर की अनुपस्थिति में किसी कुबड़ से अनुरक्त हो जाती है । इनकी काम लीला को राजा स्वयं देख लेता है । उसे पत्नी से ही नहीं, वरन् संसार से भी विरक्ति हो जाती है ।[4] श्रीमान् नायक ब्राह्मण होते हुये भी चाण्डाल कन्या मे अनुरक्त हो जाता है । कामलीला करते हुए ये दोनों रंगे हाथों पकड़े जाते हैं ।[5] कृष्ण के पिता वसुदेव के साक्षात् कामदेव रूप-सौन्दर्य को देख कर नगर भ्रमण के समय नगर की स्त्रियाँ काम ह्विवल हो जाती है ।[6] सेठ सुदर्शन के अपार रूप-सौन्दर्य से मित्र पत्नी कपिला ही नहीं रानी अभयामती भी कामान्ध हो जाती हैं । ये स्त्रियाँ सुदर्शन को तरह-तरह से अपनी कामवासना शान्त करने के लिए रिझाती है । सेठ के शील भंग के लिए प्रयत्न करती हैं परन्तु सफलता न मिलने पर सुदर्शन को कलंकित करने के लिए अपने आप को

---

१. हनुमन्त रास : भास जसोधरनी ।।३८–३९।।
२. आदिपुराण रास : भास रासनी ।।२२–२३।।
३. भविष्यदत्त रास : भास वीनतीनी ।।१३–१६।।
४. यशोधर रास : भास साहेलडीनी ।।
५. होली रास : भास चोपईनी ।।
६. हरिवंश पुराण रास : भास जसोधरनी ।।

भोंच डालती है।[1] इस प्रकार कवि के प्रबन्ध काव्यों में स्थान-स्थान पर शृंगार रस देखने को मिलता है।

नायक के वैराग्य संकल्प से ही शृंगार का वियोग पक्ष आरम्भ हो जाता है। नेमिनाथ के वैराग्य संकल्प से उत्पन्न राजुल के वियोग भरे चित्र बड़े ही मार्मिक बन पड़े हैं।[2] जम्बूकुमार को वैराग्य लेते देख जम्बू की पत्नियों पर मानो वियोग का वज्रपात ही हो जाता है—

> हाहाकार हुवो अति घणोए, आक्रंभ करे नर नारि तु ।
> ए कुंवर रलिया मणोए, किम लेसे संयम भार तु ।
> शशिविण रयणि नवि सोहेए, तिम तम्ह विण एक नारि तु ।
> बाला भोला लहुवडाए, किम रही से संसार तु ॥[3]

वियोग शृंगार के तीनों भेद पूर्वानुराग, मान और प्रवास भी इन काव्यों मे यथा स्थान मिलते है। चेलना के चित्र दर्शन पर राजा श्रेणिक मे, अंजना के रूप सौन्दर्य की प्रशंसा सुनने वाले पवनंजय में पूर्वानुराग मिलता है। रानी चेलना, धन्यकुमार आदि की पत्नियों मे मान मिलता है। पवनंजय के चले जाने पर अंजना मे राम-सीता के करुण विलाप मे धन्यकुमार, श्रीपाल, भविष्यदत्त, जीवन्धर आदि के विदेश गमन में प्रवास का वर्णन भी देखने को मिलता है। विरह की स्थिति में ये सभी स्त्रियाँ अपने कर्मों का परिणाम मानती हुई धर्म-पूर्वक जीवन बिताती है। पतिव्रता के रूप मे अनन्य प्रेमिका बन कर उनका विरह उन्हे संयम मार्ग की ओर अग्रसर करता है और अन्त मे वे साधिका बन जाती हैं। यह सम्पूर्ण संयोग एवं वियोग शृंगार शान्त रस की ही पृष्ठ भूमि ही बन कर आया है। फलतः काव्य का पर्यवसान शान्त रस मे ही होता है।

अंजना पवनंजय के बिना व्यथित रहती है। स्त्री के लिए पति ही उसका सर्वस्व है। पति के बिना उसका कुछ भी अस्तित्व नही है—

> अंजना सुंदरी मन माँहि, दुख धरि अति घणउं हेलि ।
> काइ तजि नाथ, कवण दुख दीठउ मझ तणउ हेलि ॥

---

१. सुदर्शन रास : भास चोपईनी ॥
२. नेमिनाथ रास : भास जीवडानी ॥
३. जम्बूस्वामी रास : भास रासनी ॥१७-१८॥

तुम्ह जिसा सुख अपार, सुख अयड स्वामी अकलसल हैसि ।
सार काय हुवि देव, कंत विवस गया अति घणा हैसि ॥

वात्सल्य रस : सन्तान के प्रति माता-पिता आदि की अनुरक्ति अथवा उनका स्नेह वात्सल्य कहलाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आदि विद्वानों ने इसे अलग से स्वीकार नही किया है। उनके अनुसार स्नेह, प्रेम वात्सल्य आदि रति के ही अंग है, जो शृंगार का स्थायी भाव है पर डॉ० नगेन्द्र वात्सल्य रस की सत्ता को पृथक् रूप से स्वीकारते है। उनका कथन है कि वात्सल्य भाव मातृवृत्ति का मनोभव अनुभव है और मातृवृत्ति निश्चय ही जीवन की अत्यन्त मौलिक वृत्ति है। पुत्रेषणा जीवन की सर्वाधिक प्रबल एषणा है। जिसका जीवन के दो परम पुरुषार्थों, धर्म एवं काम से घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः वात्सल्य के रसत्व का निषेध नही किया जा सकता और न उसका शृंगारादि मे अन्तर्भाव ही उचित है और न केवल भाव कोटि तक ही उसका विकास मानना ठीक होगा।[1]

माता-पिता आदि गुरुजनों के हृदय में छोटे बालको के प्रति जो स्नेह उत्पन्न होता है उसी से वात्सल्य रस की निष्पत्ति होती है। उस वात्सल्य रस के दो पक्ष संयोग और वियोग होते हैं। बालक एवं माता-पिता की उपस्थिति में संयोग और एक दूसरे की अनुपस्थिति मे उनकी दशा का वर्णन वियोग वात्सल्य कहलाता है। इस वात्सल्य. रस का स्थायी भाव स्नेह या वात्सलता है जो विशुद्ध रूपेण, निःस्वार्थ भावना से वत्स के प्रति है। छोटे बालक, शिशु आलम्बन होते हैं। माता-पिता आदि गुरुजन आश्रय है। शिशु की भोली-भाली चेष्टाएँ तुतलाना, चंचलता, हंसना आदि उद्दीपन विभाव हैं। आलिंगन, मुग्ध होना, गोद में उठाना आदि अनुभाव है, आलोच्य रास काव्यो में वात्सल्य रस के संयोग एवं वियोग दोनों पक्षों के अनेक स्थल मिलते हैं। इन चित्रों को कवि ने बड़ी तन्मयता से अंकित किया है—बालक आदिनाथ का मनोहारी बाल रूप देखते ही बनता है—

चन्द्र कला जिमवाधीसुए, खेलइ सरस अपार।
मही मण्डल परि रीघलाए, जैसो मेघनि हार॥
हलु-हलु चाले घुंघरोए, पग मूके कोमल फूल।
काला वयण सुहावणा, सुललित बोलइ बोल॥[2]

---

१. रस सिद्धान्त, पृष्ठ ६२।

२. आदिपुराण रास : दूहा ॥६–७॥

बालक आदिनाथ की सरस बाल-क्रीडाएँ, चन्द्रकलाओं के सदृश उनकी शारीरिक वृद्धि, पृथ्वी पर धीरे-धीरे पाँव रखना, अस्पष्ट-तुतलाती मनोहारी वाणी बोलना किसे आकर्षित नहीं करेगी ? यहाँ हलु-हलु एवं काला वयण सु हावणा शब्द बाल-स्वभाव के सुन्दर परिचायक हैं।

बालिका सीता की चेष्टाएँ भी कम मनोहारी नहीं है—

> खीण हंसे ते बालि, खीण-खीण आलि मांडे अति घणी हेलि।
> बाल क्रीडा विनोद, देखी रीझे माता तेहतणी हेलि ॥
> सजन खेलावे चंग, रंग करे बाली निरमली हेली।
> वयण सुहावे चंग, बोले कुंवरी सोहामली हेली ॥[1]

अंजना गुफा में बालक को जन्म देती है। बालक के जन्म से गुफा में प्रकाश फैल जाता है। बालक को देखते ही वियोगिनी अंजना के हर्ष का पारावार नहीं रहा। पर उसे दुःख यह कि इस समय उसके पुत्र का जात-महोत्सव मनाने वाला कोई नहीं है। इस मार्मिक वर्णन में अंजना का वात्सल्य भाव अभिव्यंजित हुआ है—

> तिणि अवसरि पुत्र जनमीउए, अंजना कुंवरी गुणवंत।
> अजुयालू हवउं अति घणुंए, गुफा माहि जयवंत।
> आनंद घणउ ऊपनुंए, नीपनु जय जयकार।
> उछंगि बालक लीउए, अंजना बोली गुणमाल ॥
> आज पुत्र मि जनमीउए, गिरि कंदर मांहि बाल।
> जात महोछव कुणि करिए, सजन रहित सुकुमाल ॥[2]

उस निर्जन स्थान में उसके हृदय के टुकड़े के लिए कौन मृदंग लाकर हर्ष ध्वनि करे, कौन बधावे गावे, तेल, रुई बिना उसकी कैसे रक्षा की जावे, पालने के बिना कैसे झोटे दिये जावें ? इसी चिन्ता में अंजना रुदन करती है और अपने भाग्य को कोसती हुई बालक को पुनः पुनः अपनी छाती से लगाती है—

---

१. राम रास : भास हेलिनी ॥१०–११
२. हनुमन्त रास : भास माल्हंतडानी ॥१९–२१॥

इम कही रवि सुंदरीए, वेव अलंभा देह ।
वली-वली बालकनि निरखइए, हृदय कमल सुं लेइ ॥[1]

बालक हनुमान कभी हंसता है, कभी रोता है तो कभी-कभी उठने के प्रयास से पृथ्वी पर गिर पड़ता है। उसकी इन क्रीड़ाओं से माता-अंजना को सुख-सन्तोष मिलता है। पुत्र को देखकर अंजना पति के वियोग से उत्पन्न अपने दुःख भार को हल्का करती है—

क्षण हसि क्षण रडिए, क्षण-क्षण मांडि म्राल ।
क्षिण ऊठि क्षण भुइ पडिए, क्षणि रीषि ते बाल ॥
क्षण एकि पगला भरिए, तिम-तिम माइ संतोष ।
बत्रीस लक्षण लंकर्याए, काय दीसि निरदोष ॥
अंजना सवे दुख वीसर्याए, बालक दीठा पूति चंग ।
खेलावि सोभागिणीए, आपणि मनतणि रंग ॥[2]

यह बाल-वर्णन सूर के वर्णन से किसी रूप में भी कम नहीं है। बालक हनुमान विमान से नीचे पर्वत पर गिर जाता है। उसे सुरक्षित पाकर माता अंजना को अत्यधिक हर्ष होती है। उसके सारे दुःख दूर हो जाते हैं —

बालक दीठउ आपणउ, तव सुख हवउ अति घणउ ।
आनन्द मनि हवउ, दुःख बहु गयुए, सहीए ॥[3]

बालक जीवंधर का जन्म श्मशान में होता है। सौभाग्य से वह अपने मृतपुत्र को लाने वाले सेठ को मिल जाता है। सेठ उसे घर लाकर अपनी पत्नी के हाथों सौंपता है और यह कह कर शान्त करता है कि जन्म देते समय वेदना के कारण बालक मूर्छित हो गया था, लेकिन वन की शीतल हवा से वह चेतमें आ गया है। श्रेष्ठि पत्नी प्रसन्नता से बालक को स्वीकारती है और स्त्री-पुरुषों को बुलाकर दान देती है, सम्मान देती है। बधावे, मंगलाचार गाये जाते हैं।

---

१. वही ॥२४॥

२. वही ॥२८—३१॥

३. हनुमन्त रास : भास सहीनी ॥२४॥

सुकुमाल की माता बालक सुकुमाल की बड़ी यत्नपूर्वक सुरक्षा करती है। बड़ी साधना के पश्चात् उसे पुत्र की प्राप्ति हुई है। परन्तु निमित्त ज्ञानी ने उसे बताया कि उसके पुत्र का मुंह देखते ही पिता वैराग्य ले लेगा। किसी साधु के देखने मात्र से सुकुमाल भी वैराग्य ले लेगा। इसी भय से वह उसे दूर एकांत में छिपा कर रखती है। किसी साधु को अपने घर नहीं आने देती। पति से भी पुत्र को दूर रखती है।[1]

नागकुमार अपने पूर्व जन्म में अल्पावस्था में किन्हीं मुनि से पंचमी का व्रत ले लेता है। जैसे-तैसे बालक नागदत्त दिन भर तो व्रत को सफलतापूर्वक कर लेता है, पर जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, उसे भूख सताती है। माता उसे भोजन करने के लिए हर प्रकार से समझाती है, पर वह रात्रि को भोजन नहीं करना चाहता। इस पर माता उसे कृत्रिम दिन का प्रकाश दिखाती है। निम्न पंक्तियों में मातृ-वत्सलता देखी जा सकती हैं।

> एक पुत्र कुल मंडणो हो, उपवासे खेद्यो सार।
> हवें जिमाडुं उपाय करी हो, मति मांडी तब घोर ॥
> रतन आणी उद्योत करही हो, देखाडे तब माय।
> विहाणो हुवा पुत्र उठो हो, घुगयो दिनकर भानं ॥[2]

पुत्र जीवन्धर और मां विजया का दीर्घ अवधि के पश्चात् मिलन होता है। माँ विजया पुत्र की प्रतीक्षा में अधीर दिखायी देते हैं :–

> माय जोए तब वाट, निज पुत्र तणी निर्मली हेलि।
> ते दश दिशा लमुजोई, उनया मेघ जिम सोहजली हेलि।

मां का वात्सल्य भाव देखते ही बनता है—

> जीवंधर कुवंर सुजाण, आवंतो दीठो रलियामणो हेलि।
> तब उपनुं मोह अपार, चान्हो आवु तीहां भामण हेलि ॥

वात्सल्य का वियोग पक्ष भी अत्यधिक मार्मिक बन पड़ा है। राजकुमार या राजा, तीर्थंकर या साधुओं की वाणी सुनकर वैराग्य धारण करने को तत्पर होते हैं,

---

१. सुकुमाल स्वामी रास : भास चौपईनी।
२. नागकुमार रास : भास जीवडानी ॥१४–१५॥

तब माता-पिता का वात्सल्य भाव उमड़ पड़ता हैं। जम्बूकुमार के वैराग्य-संकल्प को देख माता-पिता बड़े विह्वल हो उठते हैं। वे रुदन करते हुए कहते है—"पुत्र ! तुम साधना के इस कठोर मार्ग को कैसे सहन करोगे ? अभी तुम्हारी दीक्षा की अवस्था नहीं है।" इनके ये उद्गार निम्न पंक्तियों में देखे जा सकते हैं—

हाहाकार हुवो अति घणोए, आंचभ करे नर नारितु ।
ए कुंवर रलियामणो ए किम लेसे संयम भार तु ।।
पूठे माह तव संचरीए, विह्वल हुईव अपारतु ।
तम्ह विण पुत्र किम रहूंए, माइ कहि सुआरिणतु ।।
वाला कुंवर लहुअडाए, पुत्र तम्हे अति सुकमाल तु ।
भार भेव तप दोहलो ए, जैसी अगनि झाल तु ।।[1]

उपवास में नागकुमार की मृत्यु पर उसकी मां का रुदन पाषाण हृदय को भी द्रवीभूत कर देता है। उसके वात्सल्य भाव की चरमसीमा देखिये, जिसमे वह मृत शरीर से भी मोह करती है—

हा हा ए नंदन तुम गुणवंत, उपवास लागो अति घणोए ।
दिनकर ए उगीयो सार, पारणो करो सोहामणो ए ।।
सह गुरु ए आव्या सार, पुत्र नमोस्तु करो रलियावणो ए ।
आलंगन देउ मझ आज, बोलो सरस सोहामणो ए ।।
छांडे नहीं ए कलिवले जाणि, मोह पामे अति घणो ए ।
सजन सयल रोवे अपार, पिता रोवे अति घणो ए ।
सयल लोक करे हाहाकार, उपवास पीड्यो नंदनोए ।।[2]

शुभकर व विभकर अपनी माता अग्निला (अम्बिका देवी) के अभाव में विलाप करते हैं, जिसे सुनकर अम्बिका देवी का आसन कम्पित हो उठता है—

माइ विहूणा जाणि, शोक भरिया ते कामणा हेलि ।
रडइ ते बाला साल, विलाप करे अति घणु हेली ।।
ले सो मां को नाम, छेह होलि कहे दुःख तणो हेलि ।
तेह नइ पुण्य प्रभाव, आसने कांप्यु अंबिका तणो हेलि ।।[3]

---

१. जम्बूस्वामी रास : भास रासनी ।।१७–२५।।
२. नागकुमार रास : भास गुणराज बह्मनी ।।१२–१५।।
३. अम्बिका देवी रास : भास हेलिनी ।।४–५।।

जब बालक के करुण क्रन्दन एवं रुदन को सुनकर अम्बिका देवी का आसन कम्पित हो सकता है तो सामान्य जन की बात ही क्या ? वे कैसे ऐसे करुण क्रन्दन को सुन कर द्रवीभूत नहीं होंगे ?

राम के बिना माता कौशल्या और सुमित्रा की दशा देखिये—

कौसल्या सुमित्रा माता दवकोए, ते दुःख धरे अपार तो ।
रडे विलाप करे अति घणाए, पुत्र वीण असार तो ।।[1]

इस प्रकार कवि ब्रह्म जिनदास ने वात्सल्य रस के संयोग एवं वियोग दोनों पक्षों का ही सुन्दर वर्णन किया है ।

वीर रस : वीर रस का स्थायी भाव 'उत्साह' है । यह उत्साह कभी युद्ध के लिए, कभी दान के लिए, कभी दया के लिए और कभी धर्म के लिए प्रकट हुआ है । इस कार्य-भेद के अनुसार वीरों के युद्ध वीर, दानवीर, दयावीर और धर्मवीर नाम के चार भेद माने गये हैं । आलोच्य रास काव्यों के नायकों में चारों प्रकार के वीर गुण मिल जाते हैं । अपने गृहस्थ जीवन में राजकुमार और राजा युद्ध में अपनी वीरता का परिचय देते हैं । संयम मार्ग में अग्रसर होने से पूर्व दान देते हैं । दीक्षोपरान्त संयम की रक्षा के लिए आने वाले उपसर्गों एवं परिषहों को बड़ी बहादुरी से सहन करते हैं । प्राणी मात्र के प्रति उनके हृदय में दयाभाव है । प्रत्येक जीव का वे उपकार चाहते हैं । जिन धर्म मे उनकी अनन्य श्रद्धा है । तीर्थंकरों में ये सब गुण एक साथ देखे जा सकते हैं । भरत-बाहुबलि के नेत्रयुद्ध, जलयुद्ध और मल्लयुद्ध के प्रसंग में वीर रस मिलता है । इसी प्रकार राम-लक्ष्मण का रावण के साथ युद्ध, कृष्ण-कंस युद्ध में वीर भाव प्रकट होता है । हनुमान के द्वारा रावण के पक्ष में वरुण के युद्ध के प्रसंग में हनुमान का उत्साह प्रदर्शन दृष्टव्य है—

तव हणवंत उठउ बलवंत, रथ बैसी करी जयवंत ।
झूझकरि जिम मेघकुमार, वरुण कटक उतार्‌यु तीणी वार ।।
वरुण झूझि वसामन वीर, सुपुत्र सू ं एक हणमंत वीर ।
झूझ होइ तिहां अति घणो, हणमंत मान मोड्‌यु तेह तणउ ।
वानर रूप कीउ इम जाणि, लांगूल फेरी तव वाण ।
बान्धु ं तव सात पुत्र, बांध्या सवे साथि ।।[2]

---

१. राम रास : भास रासनी ।।११।।
२. हनुमंत रास : भास चौपईनी ।।२९–३१।।

इस प्रकार के युद्ध वर्णन में कवि ने अनेक वर्णन में रूढ़ियों का सहारा लिया है। दान के प्रसंग में भी उत्साह भाव देखा जा सकता है। वन माली राजा श्रेणिक को उपवन में भगवान महावीर के शुभ आगमन की सूचना देता है। राजा सुनकर भगवान की परोक्ष वन्दना करता है और फिर हर्षित हो उसका वस्त्राभूषण आदि देकर सम्मान करता है—

> तब राजा हरषित हुवो, आनंद अंगन माय।
> सात पग जाई करी, तीण दिशा लागो पाय।।
> तीण दिसा लागो पाये, व धावणी दीधी रूवडी ए।
> वस्त्र भरण अपार, मालिय जिम सोहे सोनेमंडीय।।[1]

राजा श्रेयास आदिनाथ को इक्षुरस का पवित्र आहार दान देकर सर्व प्रथम दानवीर बन जाते है—

> इक्षु रस कलश भरयाए, ते आण्या सविचार तु।
> कर जुगम स्वामी जोडीयाए, दान देह भारतारतु।।
> जिम जिम दान घटे रूवडो, तिम तिम परमाणंद।
> श्रेयांस मनि नीपजि, बाधे घरमह कंद।।[2]

नागश्री, चेलना, अग्निला, सुकान्तसाहु, और श्रीदत्तसाहु ये दानवीर पात्र है। चेलना, मैनासुन्दरी, धन्यकुमार, भविष्यदत्त, नागश्री, सुदर्शन और जम्बूस्वामी, ये सब धर्मवीर और दयावीर पात्र हैं। नागश्री मृत्यु निकट कुत्ते को नमस्कार मंत्र सुनाकर, जीवन्धर आरीयनन्दि को मोदक देकर, दान और दया का महत्व बता कर, जबूकुमार अपनी कुमारावस्था मे ही वैराग्य के प्रति अप्रतिम उत्साह दिखाता है। माता-पिता की करुण पुकार, रूप विवाहिता अतिशय रूपवती नारियों के विविध आकर्षक हाव-भाव और शिक्षा व नीतिपरक कथाएं भी जम्बू के उत्साह को नही गिरा सकीं—

> तब विस्मय बहुमनि ऊपनो, जंबु कुंमर प्रति भणो।
> अचल मन छे एहतणो, एह अनोपम महावीर।।
> जंबु कुंमर कहे जंबु कुंमर कहे सुणो सहूमे सार।
> मेरु गिरिवर जो चले, अगनि कि सीतल होई जलाल।

---

१. आदिनाथ रास : भास वीनतानी ।।५–६।।
२. आदिनाथ रास : भास रासनी ।।२५।। दूहा ।।१।।

> त्रिसूबर चलिवम उवसी, तहवन चलइ मक मन लिरमल ।।
> पहु बवस निस्चय करी, कपी करो तम्हे अंतराय ।
> हूं निरचै तप लेइसु, साथिसु सह गुरुपाय ।[1]

जम्बुकुमार के ये वचन उसके वीर-भाव के द्योतक हैं। सेठ सुदर्शन अपने चारित्र में अनुपम वीर है। पंडिता एवं रानी के द्वारा विषय-भोग के लिए प्रेरित करने पर भी वे ध्यान में लगे रहते हैं, ध्यान अवस्था में भी ये नारियां उसे मोहित करने के लिए तरह-तरह का व्यवहार करती है। परन्तु सेठ सुदर्शन अपने ध्यान से लेशमात्र भी विचलित नहीं होते। निम्न उदाहरण में सुदर्शन की धर्मवीरता दृष्टव्य है—

> श्रेष्ठी सुदर्शन निरमलुए, जाणे सुदर्शन मेरुलु ।
> अविचल ध्यानि पूरी रहाए, सायर जीम गंभीर तु ।।
> अनेक विविध उपसर्ग करिए, रांणी महा विकरालतु ।
> निश्चल मन डोलि नहीए, विलखी हुउ तव नारितु ।[2]

सुकुमाल मुनि की कायोत्सर्गीय घोर तपस्या के वर्णन को पढ़कर उनकी धीर वीरता से कौन प्रभावित नही होगा, जिसमें जंगल के पशु उनके शरीर को खा जाते है और अन्तड़िया बाहर निकाल देते है। लेकिन धीर वीर सुकुमाल मुनि अपनी तपस्या से लेशमात्र भी विचलित नहीं होते।[3]

रौद्र रस : रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध है। शत्रु, अनुचित कार्यकर्ता, अपमानकर्ता इसके आलंबन होते हैं। भरत द्वारा भेजे गये दूत की अहंकार युक्त बातों को सुनकर बाहुबलि को क्रोध आ जाता है। तहा रौद्र रस देखा जा सकता है—

> तव कोप्यो बाहुबलि राज, दूत आउ तम्हे निज राजि ।
> बल जोउं तम्हे स्वामि तणो, बलि बलि बखाणो तम्हे घणो ।।[4]

इस उदाहरण में भरत आलंबन है। आश्रय बाहुबलि है और दूत के द्वारा बाहुबलि को कहे गये अहंकार भरे वचन उद्दीपन विभाव हैं।

---

१. जम्बूस्वामी रास : वस्तु ।।१।।
२. सुदर्शनरास : भास रासनी ।।१५–१६।।
३. सुकुमाल स्वामी रास : भास हेलिनी ।:१–८।।
४. आदिनाथ रास : भास चोपईनी ।।६।।

अंजना की दासी के मुख से अपने प्रति अपमानजनक शब्दों को सुनने पर पवनंजय को क्रोध आने पर रौद्र रस का प्रसंग उपस्थित होता है—

दास तणी छि करकस वाणि, पवनंजय तब सांभलीए ।
कोप उपनु तब मन मांहि, मोह गल्यु मति फेरवइए ।।
धनुष लीउ तब हाथ, बाण चढाव्यु आपणो ए ।
मस्तक छेदूं एह तणु आज, अवगुण बोल्या अभ्रतलाए ।।[1]

जैन साधु को भोजन कराने पर सोम भट्ट अपनी स्त्री अग्निला पर कुपित होता है और उसे घर से बाहर निकाल देता है—

कोपि चढ्यो ते अति घणुं, पीटी अग्निमिला नारि ।
कलहुं कीधू तीणइ अति घणुं, नीकाली तीणी बारि ।।[2]

इसी प्रकार श्रीधर साहू की स्त्री श्यामा के दान न करने के प्रसंग में,[3] राजा द्वारा सुदर्शन पर कुपित होने पर,[4] रेणुकी के पास कुछ भी सांसारिक वस्तुएं न होने पर, तापसी के कुपित होने पर, धनपाल साहू और बन्धुदत्त के झूंठ बोलने पर और उनके कुआचरण करने पर राजा द्वारा कुपित होने आदि के प्रसंगों में रौद्ररस है ।

भविष्यदत्ता अपने देवर बन्धुदत्त पर उसके द्वारा शील भंग का कुआचरण करने पर कुपित होकर कठोर वाणी का प्रयोग करती है और अपना रौद्र रूप दिखाती है—

तब मन मांहि कोप उपनो, जाणि, बोलीय कडूवी करकस वाणी ।
भूत लागो छि तुझनि थोर, तु गहिलों हुवो रे घोर ।।
विकल हुवो गइ थारी साम, माय बहिणि भुजाइ मानि ।
उलखि नहीं पापी गंवार, निश्च पामिसी नरक द्वार ।।[5]

---

१. हनुमंत रास : भास अंबिकानी ।।१६–१७।।
२. अम्बिका देवी रास : दूहा ।।३।।
३. नागश्री रास : भास रासनी
४. सुदर्शन रास : भास गुणराज अह्मनी
५. भविष्यदत्त रास : भास चौपईनी ।।६–७।।

अपनी शील रक्षा के लिए एवं शत्रु को सम्बोधित करने के लिए भविष्यदत्ता के ये कोप भरे शब्द कितने स्वाभाविक लगते हैं। यहाँ उसका रौद्र रूप सार्थक जान पड़ता है।

भयानक रस : इस रस का स्थायी भाव भय है। भीमकाय पुरुष, हिंसक जन्तु, शासक, दण्डदाता आदि आलंबन होते हैं। वन, श्मशान, गुफा आदि उद्दीपन विभाव हैं। राजा सगर के साठ हजार पुत्रों को भयंकर विष धारी सर्प डस लेता है—

> विषे भरया ते जाणि, साठि सहस कुंवर अति बला हेलि।
> मूरछा आवी घोर, धरणी पड्या सवे सोहजला हेलि ॥[1]

यहां भयानक भाव प्रधान है। सगर के साथ पुत्र आश्रय हैं। सर्प आलम्बन है। सर्प की फुंकार और विष उद्दीपन विभाव है।

पुत्र कुणीक अपने पिता राजा श्रेणिक को कारागार में बन्द कर देता है। किसी समय माता चेलना, कुणीक को उसके प्रति राजा श्रेणिक के वात्सल्य भाव का स्मरण कराती है, जिससे प्रभावित हो कुणीक अपने पिता श्रेणिक को मुक्त करने के लिए जाता है। श्रेणिक उसे आते देख भयभीत होता है और मारने की आशंका से स्वयं अपनी तलवार से अपना मस्तक अलग कर देता है—

> ते आवंतो देखीउए, श्रेणिक करी विचार तो।
> ए देखी भय ऊपनोए, मुज देसी मज काल तो ॥
> पुत्र कुखि अवतरयोए, मुझ वैरीय घोर तो।
> इम कही मस्तक कापीउए, असि धरयु घोर तो ॥[2]

काष्टांगार राजा सत्यंधर की गर्भवती रानी विजया को अपने मन्त्र बल से श्मशान में भेज देता है। गर्भवती रानी वहां भयानक स्थान में भयंकर जीव-जंतुओं को देख भयभीत होती है। यहाँ भयानक रस की पुष्टि होती है।[3]

श्रीमान नायक और होलिका अपने अगले जन्म में राक्षस-राक्षसी बन कर अपने प्रति किये गये अपमान का बदला लेने गांव में आते हैं और भयंकर रूप धारण

---

१. सगर चक्रवर्ती रास : भास हेलिनी ॥२॥
२. श्रेणिक रास : भास रासनी ॥१२-१३॥
३. जीवन्धर रास : भास चोपईनी ॥१३॥

कर राज परिवार को डराते हैं। राजा को बांध देते हैं। सब को अग्नि को में जलाने को उद्यत होते हैं। तब सभी भयभीत होते हैं।[1] नागश्री का हार रानी के लिए सर्प बन जाता है। रानी भयभीत होती है। राजा नागश्री के पति श्रीधर साह का वध करने को उद्यत होता है। उसे श्मशान में ले जाया जाता है। इस भयानक दृश्य कों देख कर सभी हाहाकार करने लगते हैं :—

> हार फीटी सरप हवोए, मवर बीजी दुख जाखि तो ॥
> तव राणी दुख उपनोए, रुदन करे अपार तो।
> थर थर कांपी सु दरीए, राय आव्यो तेणीवार तो ॥
> तव राजा कोपि चढ्यों ए, साह धरीयो तेणी बार तो।
> मंसाण माहे चलावीयोए, वध करो अवी चार तो।
> लोक मल्या तिहां अति घणाए, वाजे वाजीत्र रौद्र तो।
> हाहाकार हूवो घणोए, साह दीसे जिम चंद्र तो ॥[2]

वीभत्स रस : वीभत्स का स्थायी भाव घृणा है। घृणित कार्य करने वाला व्यक्ति या घृणित वस्तु आलबन है। धन के अभाव में वसन्तमाला चारुदत्त को गन्दे स्थान पर गिरा देती है। वेश्या का यह कार्य घृणित है। वेश्या आलम्बन है और अन्य वस्तुए उद्दीपन विभाव हैं।[3] अपने पूर्व जन्म मे रोहिणी ने मुनि से घृणा की, उनको कुआहार कराया, जिसके परिणामस्वरूप वह दुर्गन्धा बनी। सब उससें घृणा करने लगे।[4] इसी प्रकार अपने पूर्व भव मे राजपुत्री विशालाक्षी ने दिगम्बर साधु के स्वरूप को देखकर उन पर थूंकी और निन्दा की। उसके इस घृणास्पद कुकर्म को देख कर पिता ने उसकी पिटाई की। अगले जन्म मे वह कुरूपा बनी।[5] इन सब प्रसगो मे वीभत्स रस प्रगट होता है।

हास्य रस : कवि ने कहो-कही पर हास्य एवं व्यंग्य अवसर भी उपस्थित किये हैं। कृष्ण की स्त्रियां नेमिनाथ को रिझाती हैं। वे उनसे उपवन मे अठखेलियां करती है। जल क्रीड़ा के समय कृष्ण के वस्त्रो को तो धो लेती है पर नेमिकुमार

---

४. होली रास : भास हेलिनी ॥१६॥
२. नागश्री रास : भास रासनी ॥३—७॥
३. चारुदत्त रास : भास चौपईनी ॥
४. रोहिणी रास : भास रासनी ॥
५. सोलहकारण रास : भास जसोधरनी ॥

के नहीं। नेमिकुमार जब अपने वस्त्रों को धोने के लिए उनसे कहते हैं तो वे नेमि को विवाह करने के लिए कहती है।[1] यह प्रसंग हास्य एवं व्यंग्य से पूर्ण है। धारीय-नन्दि को खूब खिलाया जाता है, पर पेट नही भरता। उसके पेटूपन से बालक खेल समझ आनन्दित होते हैं।[2] धन्यकुमार एवं पत्नी सुभद्रा मे संयम-वैराग्य को लेकर हास्य-व्यंग्य पूर्ण चर्चा होती है। सुभद्रा अपने भ्राता शालिभद्र के धीरे-धीरे वैराग्य पालने पर दुःख प्रकट करती है। धन्य इस पर हंसता है और कहता है कि धीरे-धीरे व्रत पालन कायरता है। जब भी मन में संसार से विरक्ति हो वैराग्य लिया जा सकता है।[3] काष्टांगार वेश्या को प्रभावित करने के लिये अपने को सुसज्जित करता है जिसमें हास्य की सृष्टि होती है।[4] श्रीमान नायक की पत्नी यज्ञदत्ता उनके प्रणव लीला स्थान को आग लगा देती है। अग्नि लगने पर वे दोनों भयभीत हो नंगे ही बाहर निकलते हैं जिसे देख सभी बाल-गोपाल नर-नारी हंसने लगते है। इसमें एक ही समय शृङ्गार, भयानक, वीभत्स एवं हास्य रस की सृष्टि होती है।[5]

करुण रस : शोक अथवा दु:ख की दशाओं के वर्णन में करुण रस होता है। इस रस का स्थायी भाव शोक है। कवि ने अपने काव्यों में अनेक स्थानों पर करुण भावनाओं की सृष्टि की है। तीर्थंकर आदिनाथ के अनेक मुनीश्वरों के साथ १४ दिन तक योग धारण करने के पश्चात् उत्तम शुक्ल ध्यान में चढने पर उनकी वाणी के संकोच होने की सूचना (स्वप्न से) मिलती है तो भरत आदि सभी को अपार शोक होता है कि वे भगवान के दर्शनों से हमेशा के लिए वंचित हो रहे हैं।

लक्ष्मण के शक्ति लगने पर लक्ष्मण की मृत्यु पर राम के विलाप में करुण रस की धारा फूट निकलती है। सीता हरण पर राम का विलाप भी ऐसा ही शोकाकुल कर देने वाला है।[6]

नेमिकुमार अपने विवाह में सम्मिलित लोगों के भोजन के लिये बन्दी बनाये गये पशुओं का करुण क्रन्दन व चीत्कार सुनकर दु:ख एवं करुणा से व्यथित हो जाते है। क्या पाठक द्रवीभूत नही हो सकते ?[7]

---

१. नेमिनाथ रास : भास बीनतीनी।
२. जीवन्धर रास : भास चौपाईनी।
३. धन्यकुमार रास : भास चौपाईनी।
४. जीवन्धर रास : भास रासनो।
५. होली रास : भास हेलिनी।
६. राम रास : भास चौपईनी।
७. नेमिनाथ रास : भास चौपईनी।

द्वारिका दाह के समय श्रीकृष्ण और बलदेव अपने माता-पिता को बचाने का भरसक प्रयत्न करते हैं, पर सब असफल होता है। इन दोनों भ्राताओं के अतिरिक्त और कोई नही बच पाता। उनके शोक की सीमा नहीं रहती। वे अत्यन्त शोकार्त हो रुदन करते हैं। कुछ समय बाद मृग के धोखे से जरत्कुमार के बाणाघात से पीताम्बर कृष्ण की मृत्यु होती है। उस समय बलदेव कृष्ण की प्यास बुझाने के जल लाने गये होते हैं। वे जल लाते हैं। कृष्ण को पिलाने का प्रयास करते हैं और भ्राता-भ्राता कह कर उन्हें उठाते हैं। उन्हें लगता है जैसे कृष्ण गहरी निद्रा मे सो रहे है। जब उन्हे उनके पाव में बाण लगा हुआ दिखाई देता है तो वे व्याकुल हो विलाप करते है। मोह वश उनके मृत शरीर को छः मास तक अपने कन्धे पर लिए वन-वन मे घूमते रहते हैं। इस करुण दृश्य को पढ़कर, देखकर एवं सुनकर कौन पाषाण हृदय द्रवीभूत न होगा। यह दृश्य सहज ही हमारे हृदय को करुणा सागर मे डूबो देता है। बलदेव के साथ हमारा हृदय करुणार्द्र हो सहानुभूति युक्त हो जाता है।[1]

बालक हनुमान के विमान से नीचे पर्वत पर गिरने पर माता अंजना के दु:ख की सीमा नही रहती है। उसके इस करुणा क्रन्दन से किसे सहानुभूति नहीं होगी—

हाहाकार तव नीपनु' दुख घणउ ऊपनु।
अंजना रोदन करि तव अति घणउं ए, सहीए ॥
हा हा बाल कांइ पडीउ, दुख मोहि मन अडीउ।
निरधार मू'की वछ तु' किहां गयुए, सहीए ॥
सासरो पीहर हूं परहरी, तुम्ह तणि मोहि पुत्र हूं भरि।
काइ' विराग कोउ हुं परहरी ए, सहीए ॥[2]

करुणा रस में सहानुभूति की व्यापकता हो जाने के कारण आश्रय अपने व्यक्तित्व के बन्धनों से पूरे होकर उस सामान्य भाव भूमि तक पहुंच जाता है जो रसानुभूति के लिए आवश्यक है। इसीलिए भवभूति ने "एको रस: करुण एव" कह कर करुण रस को सब रसों का मूल माना है।[3]

---

१. हरिवंश पुराण रास : भास रासनी।
२. राम रास : भास रासनी ॥११–१३॥
३. बाबू गुलाब राय : साहित्य और समीक्षा, पृष्ठ ४३–४४।

अद्भुत रस—कतिपय विद्वान 'अद्भुत रस' को प्रधानता देते हैं; क्योंकि रस में एक प्रकार का चमत्कार अवश्य रहता है। अद्भुत रस मे सबसे अधिक चमत्कार रहता है। इस रस का स्थायीभाव विस्मय या आश्चर्य होता है। कवि ने अपने काव्यों में अनेक स्थलों पर चमत्कार प्रदर्शन कर विस्मय की सृष्टि की है। धर्मपरायण पात्र पर किसी प्रकार का संकट आता है तो वह णमोकार मन्त्र का स्मरण करता है, उसकी भक्ति, उसके उज्ज्वल चरित्र से प्रभावित हो उसके आराध्य उसकी पुकार सुनते है और किसी भी रूप मे आकर उसे संकट से मुक्ति प्रदान करते हैं और शत्रु या आक्रामको को दण्ड देते हैं।

काष्टांगार के राज-पुरुष जीवन्धर पर खड्ग से आक्रमण करने को उद्यत होते हैं कि तत्काल सूरसेन नामक यक्ष अवतरित हो उसकी रक्षा करता है और जीवन्धर को अन्यत्र विमान मे बिठा कर ले जाता है।[1] चम्पानगरी के राजा धारिवाहन की रानी अभयामती सेठ सुदर्शन से अपनी वासना-पूर्ति में असफल जान उस पर शीलभंग का आरोप लगाती है। राजा सुदर्शन पर कुपित हो उसका वध करना चाहता है। सर्वत्र हाहाकार मच जाता है। सेठ सुदर्शन निश्चल भाव से ध्यान मे लीन हो जाता है। राज-पुरुष आकर उस पर तलवार चलाना चाहते हैं। परन्तु साह सुदर्शन के शील के प्रभाव से अस्त्र-शस्त्र फूलो मे बदल जाते है। यक्ष देव आकर सभी राजा के शस्त्रधारी नौकरो को जहां की तहा कील कर देता है। सभी इस दृश्य से विस्मित होते हैं।

साह सुदर्शन निश्चल भाव, जिणवर स्वामी मनि धरीए।
समता भाव करयुं तीणइवार, रागद्वेष बहु परहरयाए।।
समता भाव करयु तीणइ अवसरि रायतणि दूत, खड्ग लेइ बीहामणुए।
साह सुदर्शन कंठि ते वाणे, मोती हार सोहामणुए।।[2]

मैना सुन्दरी के अविचल भावों से आठ दिन तक निरन्तर पूजा पाठ एवं भगवद् भक्ति से एवं गन्धोदक छिड़कने से पति श्रीपाल सहित अन्य सात सौ कोढ़ियों का कुष्ट रोग दूर हो जाता है। मैना सुन्दरी की इस अद्भुत भक्ति से सभी विस्मित एवं प्रसन्न होते हैं। सभी कुष्ठ रोगी कामदेव सरीके बन जाते हैं।[3]

---

१. जीवन्धर रास : भास रासनी।
२. सुदर्शन रास : भास मन्द्रिकानी ॥७–१०॥
३. श्रीपाल रास : भास हींडोलानी।

धवल सेठ नौका यात्रा में श्रीपाल की पत्नी मयरण मंजूषा पर आकर्षित होता है। समझाने पर भी वह नहीं मानता। श्रीपाल को समुद्र में गिरा देता है और मयरण मंजूषा का शील भंग करने को उद्यत होता है। मयरण मंजूषा संकट पाकर जिन स्मरण करती है जिससे शासन देवी प्रकट होती है। वह मयरण मंजूषा की रक्षा करती है और पापी धवल सेठ को दण्ड देती है।[1]

भगवान महावीर के आगमन पर प्रकृति में बिना ऋतु के ही परिवर्तन हो जाता है। प्रकृति बिना अवसर ही विकसित हो जाती है। पशु-पक्षी अपना बैर-भाव छोड़ कर एक जगह आ मिल बैठते हैं। महावीर के इस प्रभाव से सभी विस्मित होते हैं—

वनस्पती अवकाले फली गंभीर विशाल।
फल फूले करी गह गही, सोहे गुणमाल ।।
सूका सरोवर जल भर्या, कमल सवीचार।
सींह गज गाय बाघ वीठा, बैर छांडो घोर।
हंस मार्जार अही नकुल हेव, मोला वीठा थोर ।।
महावीर स्वामी तणो प्रभावि, व्रती संयमी वीठो।
वीस्मय पामो अति घणो, आनन्द मनि पेठो ।।[2]

बालक हनुमान का जन्म गुफा में होता है। उसके जन्मते ही गुफा में प्रकाश फैल जाता है। किसी समय अन्जना का मामा विमान से गुफा के ऊपर से जा रहा होता है कि उसका विमान रुक जाता है। वह विस्मित होता है। नीचे उतरने पर उसने गुफा में बालक हनुमान एवं अंजना को पहिचान लिया। विमान में बिठा कर वह उन्हें अपने साथ-साथ ले जा रहा होता है कि विमान के मोतियों से बने झूमकों से खेलते-खेलते बालक हनुमान नीचे पर्वत पर गिर पड़ता है। सब हाहाकार कर उठते हैं। अंजना के दु.ख की तो सीमा ही नहीं। परन्तु उस समय उन सबके विस्मय की सीमा नहीं रहती जब वे देखते हैं कि बालक के गिरने से पर्वत और शिलाएँ चूर्ण-चूर्ण हो गयी है, परन्तु बालक शिला के नीचे सुरक्षित है।[3]

---

१. श्रीपाल रास : वस्तु।
२. हरिवंश रास : भास जसोधरनी ।।१२–१४।।
३. हनुमन्त रास : भास सहीनी ।।४-८।।

राजा श्रेणिक उस समय विस्मित होता है, जब वह देखता है कि किसी तेज पुञ्जधारी कायोत्सर्गीय साधनारत तपस्वी से गुफा प्रकाशमान हो रही है—

> गिरि कंदर माहि दीठो अंग, उद्योत अपार ।
> तब विस्मय धरणो पामीयुं, तीहा गयो सविचार ॥[1]

अद्‌भुत रस के ये चमत्कार कवि ने अधर्म पर धर्म की विजय के रूप में प्रयुक्त किए हैं। इन चमत्कारों से व्यक्ति एवं लौकिक दोनों पक्षों में सम्यक्त्व की स्थापना होती है। व्यक्ति और समाज दोनों ही सदाचरण की ओर उन्मुख होते हैं। ये चमत्कार भले ही काव्य-रचना की दृष्टि से कृत्रिम जान पड़ते हों, पर इनका काल्पनिक प्रयोग व्यष्टि और समष्टि हित की भावना से परिपूर्ण एवं आवश्यक है।

इन विविध रसों का परिपाक इन काव्यों मे इस रूप में हुआ है कि पाठक एवं श्रोता प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। प्रायः सभी रसों में साधारणीकरण द्वारा व्यक्तित्व की क्षुद्रता जाती रहती है और हमारे हृदय की छिपी हुई उदात्त प्रवृत्तियां जागृत हो जाती हैं। उससे हमें आत्मानन्दानुभूति होती है। इन रसों से सतो गुण का उद्रेग होने लगता है और चित्त की एकाग्रता के कारण आत्मा का स्वाभाविक आनन्द प्रकाशमान हो उठता है।

कविवर ब्रह्म जिनदास ने मानव की प्रत्येक सहज प्रवृत्ति का बड़ी सहृदयता से चित्रण किया है। दीन-हीन की व्यथा क्या होती है? आराध्य के प्रति आराधक की भक्ति में कितनी प्रगाढ़ता है? संघर्षों से जूझने की दृढ़ता तपस्वियों में कितनी अगाध है? काम, क्रोध, मान, माया, लोभ के वशीभूत होकर प्राणी कितना अधम बन जाता है? इन सबकी अभिव्यंजना ब्रह्म जिनदास ने अपने काव्यों मे स्वाभाविक रूप से किया है। पलायनवादी प्रवृत्ति का विरोध करते हुए यथार्थवाद के धरातल पर आदर्शवाद की सुदृढ़ स्थापना कवि ने अपने काव्यों मे की है। उदात्त चरित्रों की सृष्टि ने मानव की हीन भावनाओ की रेखाओं को अस्तित्वहीन बना दिया है। इन रास काव्यों में अभिव्यंजित भावनाओं की गहनता, मार्मिक संवेदना तथा विश्व-बन्धुत्व की कामना इतनी गहरी रेखाओं मे उभरी है कि युगों-युगों तक इनकी लोकोपयोगिता विद्यमान रहेगी।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि आलोच्य महाकवि ब्रह्म जिनदास की साहित्य प्रबन्धपटुता, वर्णन-कौशल, पात्र-चित्रण और रसोपलब्धि आदि की

---

१. जीवन्धर स्वामी रास : भास यशोधरनी ॥४-७॥

दृष्टि से परिपक्व ही नहीं अद्भुत क्षमतावान भी है। इन रचनाओं में कबीर का सा विद्रोह, सूर का सा वात्सल्य, तुलसी की सी लोकहित भावना, मीरा की सी अनुपम भक्ति और कालीदास की सी सरस काव्य सृष्टि का अपूर्व संगम देखा जा सकता है। आलोच्य कवि ब्रह्म जिनदास किसी के आश्रित कवि नहीं थे। अतः इनका साहित्य किसी लौकिक प्रशस्ति का गान न होकर प्राणी मात्र के उज्ज्वल जीवन के लिए शाश्वत मार्गदर्शक है। वस्तुतः मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में ब्रह्म जिनदास अपनी सानी नहीं रखते।

[ख] मुक्तक काव्य

आलोच्य महाकवि ब्रह्म जिनदास की भावधारा प्रबन्ध रूप में ही नहीं मुक्तक रूप में भीं प्रवाहित हुई है। वे एक साथ कवि एवं सन्त दोनों थे। जैन आगम एवं सिद्धान्तों के भी विद्वान् थे। यही कारण है कि जहां उन्होंने आख्यान-परक प्रबन्ध काव्यों का प्रणयन किया वहीं मुक्तक काव्य को भी नाना प्रकार से अनुप्राणित किया है। इन मुक्तको में कवि का व्यक्तित्व एवं कृतित्व दोनों मिलता है। कवि ने कुछ मुक्तकों को रास संज्ञा प्रदान की है तो कुछ को गीत। ये मुक्तक पाठ्य एवं गेय दोनों प्रकार के हैं। तत्व, सिद्धान्त, नीति एवं उपदेश परक गीत पाठ्य कहे जा सकते हैं और स्तुति प्रधान एवं आत्म संबोधन परक गीत गेय कहे जा सकते हैं। इन सभी मुक्तकों के माध्यम से कवि चरित्र निर्माण, आत्मा की पवित्रता, सदाचरण और आराध्य के प्रति अनन्य भक्ति की भावना प्रकट करता है।

कवि का मुक्तक साहित्य प्रगीत काव्य की श्रेणी में भी आ सकता है। अंग्रेजी में इसे Lyric कहते हैं। प्रगीत काव्य मे जो कुछ कहता है, अपने निजी दृष्टिकोण से कहता है। उसमें निजीपन के साथ रागात्मकता रहती है। यह रागात्मकता आत्म-निवेदन के रूप में प्रकट होती है। रागात्मकता में तीव्रता बनाये रखने के लिए उसका अपेक्षाकृत छोटा होना आवश्यक हैं। आकार की इस संक्षिप्तता के साथ भाव की एकता और अन्विति लगी रहती है।[1]

इस प्रकार संगीतात्मकता और उसके अनुकूल सरस प्रवाहमयी कोमल कान्त पदावली, निजी रागात्मकता जो प्रायः आत्म निवेदन के रूप में प्रकट होती है, संक्षिप्तता और भाव की एकता प्रगीत काव्य के प्रमुख तत्व कहे जा सकते हैं। यह काव्य काव्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा अधिक अन्तःप्रेरित होता है और इसी

---

१. बाबू गुलाबराय : साहित्य और समीक्षा, पृष्ठ ५८।

कारण इसमें गीत कला होते हुए भी कृत्रिमता का अभाव रहता है। आलोच्य मुक्तक काव्य इस दृष्टि से प्रगीत काव्य की कोटि में भी परिगणनीय है। इसमें गेयात्मकता भाव की एकता और संक्षिप्तता के साथ आत्म निवेदन का स्वरूप भी स्पष्ट मिलता है। आलोच्य प्रगीत या मुक्तक काव्य को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—१, सिद्धान्त या तत्व परक, २. उपदेशपरक और ३. स्तुति परक। यहां इनका विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत है—

१. सिद्धान्त या तत्व परक रचनाएं

कवि की ये वे मुक्तक-काव्य रचनाएं हैं जिनमें जैन दर्शन के तत्वों का उल्लेख हुआ है। प्रतिमा ग्यारह की भास, बारह व्रत गीत, अठावीस मूलगुण रास और चौदह गुणस्थानक रास, कर्म विपाक रास एवं द्वादशानुप्रेक्षा इसी प्रकार की रचनाएं हैं। इन सभी रचनाओं का सामान्य परिचय पहिले दिया जा चुका है।

इन सिद्धान्त परक रचनाओं में पारिभाषिक शब्दावली का आधिक्य है। दार्शनिक भार के कारण भी ये रचनाएं किंचित् दुर्बोध सी बन गयी है। इन रचनाओं से जैन सिद्धान्त के गृहस्थ एवं साधुओं से सम्बन्धित आचार-विधान का ज्ञान मिलता है और मोक्षमार्ग सम्बन्धी जैन दार्शनिक मान्यताओं का स्वरूप प्रतिभासित होता है।

२. उपदेश परक रचनाएं

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है, महाकवि ब्रह्म जिनदास सन्त, कवि एवं विद्वान तीनों थे। इसमें भी सन्त पहले और कवि पीछे। काव्य-रचना उनका साध्य न होकर साधन था। सन्त होने के नाते मानव-मात्र के इह-लौकिक एवं पारलौकिक जीवन को सफल बनाने के लिए ही उन्होने काव्य का आश्रय लेकर उपदेश परक रचनाओं का प्रणयन किया। वैसे उनकी प्रत्येक छोटी-बड़ी रचनाओं में मानव के आत्म कल्याण का सन्देश निहित है। स्थूल रूप से उनकी उपदेश परक रचनाओं का विभाजन महत्व नहीं रखता है, परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से हम इनको दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं—

१. तात्विक उपदेश,

२. व्यावहारिक उपदेश।

तात्त्विक उपदेश परक रचनाएं

तात्त्विक उपदेश परक रचनाओं में आत्मोत्थान के लिए उपदेश के प्रसंग में कहीं-कहीं पर जैन दर्शन के तत्त्वों की भी चर्चा मिल जाती है। "समकित मिथ्यात रास" "जिजमनि संबोधन" और "धर्मतरु गीत" कुछ इसी प्रकार की उपदेश परक रचनाएं हैं।

"समकित मिथ्यात रास" में कवि ने महिलाओं को मिथ्यात[1] छोड़ने एवं सम्यक्त्व[2] के आचरण का उपदेश दिया है। कवि का महिलाओं को उपदेश है कि वे घर की बातों को छोड़ कर जिन चैत्यालय में स्नानादि से निवृत्त हो शुद्ध वस्त्र धारण कर जिनेश्वर की पूजा करे, गुरु की वन्दना करे और उत्तम तत्व-पदार्थों को समझ कर अपना भव सुधारें।[1]

अतः जीव दया, सत्यवचन, अचौर्य, शील, परिग्रह, परिमाण, दान, पूजा, णमोकार मंत्र का अनुचिन्तन जो त्रिभुवन में सार स्वरूप एवं महत्वपूर्ण हैं और संसार सागर से पार उतारने में कारणीभूत है, का निर्मल आचरण निन्तर करणीय है। १. सोलह कारण व्रत[1], २. दशलक्षण व्रत, पुष्पांजलिव्रत, रत्नत्रयव्रत, सुगंधदशमी व्रत, चंदनषष्टि, निर्दोष सप्तमी, अक्षयनिधिव्रत, अनन्तव्रत, मुक्तावलीव्रत, रत्नावलिव्रत, आकाशपंचमी व्रत, लब्धिविधान व्रत, नन्दीश्वर विधान, मेरु पूजा, शील कल्याण व्रत, चौबीसी पूजा, प्रत्येक पक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी एवं शुक्ल पंचमी का व्रत एवं पुरन्दर विधान का आचरण संसार सागर से पार करने वाला है।

---

१. झूंठी बातों में विश्वास रखना एवं मानना-अन्ध श्रद्धा, मिथ्या श्रद्धान है।

२. ज्ञान—समझपूर्वक आचरण-सत्य में श्रद्धान रखना-सम्यक रूपेण सद्गुरु, शास्त्र एवं देव में श्रद्धान ही सम्यक्त्व है।

१. समकित मिथ्यात्व रास।

१. ये व्रत भाद्रपद मास में सम्पन्न होते हैं। सोलह कारण व्रत में दर्शन, विनय, शील, ज्ञानाभ्यास, वैराग्य, त्याग, तप, साधु समाधि, वैयावृत्य, अर्हन्त भक्ति, आचार्य भक्ति, बहुश्रुत भक्ति, प्रवचनभक्ति, आवश्यकापरिहाणि, प्रभावना और वात्सल्य आदि १६ भावनाओं का और दशलक्षण व्रत में उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य का रत्नत्रय में सम्यक् दर्शन, ज्ञान चारित्र में क्रमशः १६, १० व ३ दिन तक अनुचिन्तन तप, जप, ध्यान, पूजा-पाठ होता है।

इस प्रकार इस मुक्तक रास-काव्य में महाकवि ब्रह्म जिनदास ने मिथ्यात्व एवं सम्यक्त्व के विविध स्वरूपाचरण के त्याग एवं पालन का उपदेश दिया है। भव्यजनों को शाश्वत सुख-शान्ति की प्राप्ति के लिए इसे गाना चाहिये।

समकित रास निरमलोए, मिथ्यात मोड ए कंद तो।
गावो भविमरण रूवडोए, जिम सुख होइ अनंत तो॥

"निजमनि संबोधन" में कवि अपने मन को संबोधित करता हुआ कहता है कि हे क्षपक[1], तुम जिनवाणी को धारण करो—यह संसार असार एवं अस्थिर है। वह धर्म जीव दया और परोपकार में है—

इम जाणी तम्हे धरम करो, जीव दया जगिसार।
जीम एहां फल पामीइ, वली तरीए संसारि॥

जीवदया संसार में सर्वोत्कृष्ट सारभूत धर्म है। मरणोपरान्त भोज करना, प्रति वर्ष बरसी और श्राद्ध करना मिथ्याचरण है। परलोक में गये हुए जीव को भला अब कैसे कुछ पहुंचाया जा सकता है, क्या मृत पुनः आता है—

मूवा बारसी न करो हो, सराधि मिथ्यातमि होइ।
परलोकि जीव किम पामिसी हो, एह वीचार तु जोइ॥

सीता, मन्दोदरी, द्रोपदी, अंजना सुन्दरी, तारा, सुलोचना, राजुल, चन्दनबाला, चेलणा, प्रभावती, अनन्तमति, ब्राह्मी, सुन्दरी, अहिल्या, मयण, मंजूषा, रुक्मिणी, जांबुवती, सत्यभामा, लक्ष्मीमति—ये सब सतियां-पतिव्रता एवं सत्यवती थीं। इनका आचरण सम्यक् था। इन्होंने जप, तप, ध्यान, पूजा, शीलव्रत का आचरण किया इसीलिये इन्हें परमपद मिला—

जिस प्रकार जल से घी और तुष में चोलें नहीं हो सकते उसी प्रकार मिथ्यात्व के आचरण से श्रावक को सम्यक् फल कैसे मिल सकता है।

पाणि मंथिइ जीम घी नहीं हो, तुष माहि चोउल न होइ।
तिम मिथ्या धर्म जय बहुकीजे, श्रावक फल नवि होइ॥[2]

---

1. क्षपक कल्याण में लगा हुआ (ब्रह्मचारी) कर्मों को नष्ट करने वाला साधु।
2. समकित मिथ्यात रास।

यहां कोई वस्तु शाश्वत रहने वाली नहीं है। इसलिये तुम इस अस्थिर संसार से अपने मन को हटा कर दृढ़ कर लो। चौबीस तीर्थंकर, त्रेषठ शलाका पुरुष[1], गणधर[2], नारद, कामदेव और मुनिगण तथा गुरु सकलकीर्ति आदि सभी ने इस असार संसार से मुक्ति के लिये साधना की है। अतः हे क्षपक, तुम सावधान बनो। कर्म, कषाय[3] परीषह[4] तुम्हे मुक्ति नगर का राज नहीं लेने देना चाहते। इनमें मूल आठ कर्म बाधक है। तप रूपी खड्ग से इनका निवारण करो। ध्यान रूपी धनुष को ग्रहण कर रत्नत्रय रूपी तीक्ष्ण बाण से अपने कर्म रिपुओं को मार गिराओं। सब कषायों को छोड़ क्षमा धर्म को धारण करो—यही मेरे मन की बात है। जो सब सुखों का भण्डार है। इसको धारण करने वाला अक्षय सुख को पाता है।

धर्मतरु गीत मे कवि ने माली से "भवतरु" अर्थात् सांसारिक वृक्ष के स्थान पर "धर्मतरु" को सींचने का उपदेश दिया है। इस धर्मतरु को दया रूपी निर्मल जल से सींचो। इसके रत्न रूपी बीज को संयम भाव से यत्नपूर्वक रक्षा करो। क्रोध रूपी दावाग्नि और तुषार रूपी मान से इसको बचाते रहो। माया-लोभ रूपी बेलि को इस पर मत चढ़ने दो। समय-समय पर इसकी देखभाल करते रहो। सत्य शौच की जड़ को मत्सर रूपी कीटों से बचावो। ज्ञान रूपी पुष्पो से सब को सुवास प्रदान करो। तप से धर्म तरु की वृद्धि करो। उत्तम क्षमादिरूप इस धर्म वृक्ष से ही पुण्य फल प्राप्त किया जा सकता है। जिसकी छाया में आत्म शान्ति एवं विश्राम मिलता है। यही धर्म वृक्ष अविनाशी मोक्ष रूपी महाफल का दाता है। इसके दर्शन रूपी बीज को संभाल कर रखना चाहिये। इस बीज से ही वांछित फल लग सकेगा—

व्यावहारिक उपदेश परक रचनाएं

तात्विक उपदेश के सदृश व्यावहारिक उपदेश परक रचनाएं है। व्यावहारिक उपदेशों में तत्व-सिद्धान्त की अपेक्षा सामान्य व्यवहारोपदेश है। जीवड़ा गीत, शरीर सफल गीत और चूनडी गीत इसी प्रकार की रचनाएँ है।

---

१. त्रेसठ श्लाका महापुरुष—२४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव, ९ प्रतिवासुदेव।
२. तीर्थंकरो की दिव्य वाणी को झेलने वाले प्रकाण्ड शिष्य गणधर।
३. जो शुद्ध स्वरूप वाली आत्मा को कलुषित करती है कषाय कहलाती हैं—क्रोध, मान, माया और लोभ ये ४ कषाय त्याज्य हैं।
४. साधनावस्था में आपत्ति आने पर भी संयम में स्थिर रहने के लिए जो शारीरिक तथा मानसिक कष्ट सहने पड़ते हैं उन्हें परीषह कहा जाता है जो २२ होते हैं—जैन सिद्धान्त बोल संग्रह, भाग—१, पृष्ठ १९०।

पूजा गीत में कवि ने सर्व प्रथम पंचामृत जल से अभिषेक की बात कही है, फिर कुंकुम, केसर, कपूर, चंदन, नैवेद्य, पुष्प फल, दीपक आदि से दिन में पूजा करने का उपदेश दिया है। पूजा करने के बाद मुनि को आहारदान देकर स्वयं के पारणे का उपदेश दिया है। फिर प्रसन्नचित हो धवल, मंगलगीत नृत्य आदि से महोत्सव मना कर मनवांछित फल और सर्व सौख्य को प्राप्त करना चाहिये—

> दिन मांहि त्रिकाल जांणि, पूजा घणी कीजे।
> पछइ मुनिवर दान देइ, पारणउ करीजे ॥६॥
> धवल मंगल गीत नाच, महोछव वली कीजे।
> मन वांछित फल पामीइए, सर्व सौख्य लहीजे ॥७॥

संसार की असारता पर जीव मात्र को कवि का उपदेश है—हे जीव, यह संसार असार है। इसमें धर्म ही एक मात्र सार है। तुम्हारी आयु दिन प्रतिदिन क्षीण होती जा रही है। अन्त मे तुम्हारे साथ पाप-पुण्य के अलावा कोई साथ नही जावेगा—

> दिन दिन आयु तुटेरे, एकलडो जीव जाइ।
> पाप पुण्य दोइ साथे आवे, अवर न कोई सखाइ ॥[1]

माता-पिता, भाई-बहिन, पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री ये सब स्वार्थ के साथी है। घर, धन, यौवन, बाजार सब यही रह जाने वाले है। काल का आमन्त्रण आने पर जीव को जाने में देर नही लगती और सगे-सम्बन्धी साथ नही दे पाते—

> धन माहारूं जोवन माहारूं, माहारा अरथ भंडार।
> तेडुं आव्यु जम तणो रे, घडीय न लागे वार ॥६॥

हे जीव, तू कब से सो रहा है, अब भी तू नही चेत रहा है। तुम्हारा मनुष्य जन्म व्यर्थ मे ही चला जा रहा है। ८४ लाख योनियों मे तू भ्रमण कर चुका है। अनन्त काल तक नाना जीव गतियां तूने पायी है। मिथ्यात, माया, कषाय, लोभ आदि के भ्रम में पड़कर नरक में असंख्य दुःख सहे हैं। अनेक कुदेवों के चक्कर में पड़े, पर किसी ने तुम्हारा उद्धार नहीं किया। अतः अब तुम अरिहंत देव की सेवा करो जो भवसागर से पार पहुंचाने वाली हैं—

> जोवए काजे सवे मिथ्यारे, तारिन जाणे कोइ।
> देव अरिहंत तम्हे सेविज्यो रे, जिम पामो भव छेव रे ॥[2]

---

१. जीवड़ा गीत।
२. वही।

हे जीव, क्या तू निष्ठुर हो गया है, जो जिन देव[2] की भक्ति पूजा नहीं करता। जिसने जिनेश्वर स्वामी की आराधना नहीं की, उसने अपने लिए कुछ नहीं किया, पराये घर में ही काम किया। देख, सब कोई धर्म-धर्म पुकारते हैं, लेकिन धर्म का मर्म कोई नहीं जानता। जिसने सत्य धर्म को अपने मन में धारण कर लिया है, उसने मानों मिथ्यात का निवारण कर दिया है—

धरम धरम सहू कहे रे, न जाणे धर्म विचार।
सांचो धरम सो मनि धरो रे, कूडो टालो जोइ रे ॥१३॥

वह धर्म दशलक्षणों वाला है।[3] इसमें निर्ग्रन्थ गुरु है।[4] अठारह दोषों से रहित अरिहंत ही देव हैं। हे जीव तू संसार सागर में भटकता हुआ भ्रमण करता हुआ बहुत थक गया है। अब तो शाश्वत विश्रान्ति के लिए जन्म-मरण के निवारणार्थ सौख्यकरी सम्यक्त्व का दृढ़ता से पालन कर।

शरीर सफल गीत मे कवि ने मनुष्य जन्म की सार्थकता भगवद् भक्ति और सम्यक् आचरण में मानी है। निरन्तर धर्म एवं सम्यक् आचरण मे ही मनुष्य जन्म की सफलता है। बुद्धि वही है जो विचार पूर्वक संयम धारण करे लक्ष्मी की पवित्रता इसी में है कि वह अच्छे स्थान एवं सद् कार्य के लिए वेची जावे। वही मस्तक ऊंचा और उत्तम है जो शाश्वत जिन चरणों में नमित रहे। नेत्रों को सार्थकता इसी में है कि वे जिनदेव का रूपसौन्दर्य देखते रहें। कर्ण उनके वचनामृतों के श्रवण में डुबे, जिह्वा उनके जप में लगी रहे, हाथ उनकी पूजा में, पांव यात्रा-दर्शन मे, हृदय कमल ध्यान में लगे—उसी में शरीर की सफलता है। मुक्ति रूपी महारानी की प्राप्ति तभी होगी।

चूनड़ी गीत मे कवि ने सासारिक चूनड़ी में सम्यक्त्व भावों को अनुपम रूप से आरोपण किया है। कवि के अनुसार वास्तविक चूनडी वह है जो ज्ञान रूपी कुसुम से युक्त होकर तत्त्व पदार्थों के रंग में सम्यकत्व के घाट में रंगी जावे जिसका अचल शील रत्नों से लिखा हो, जिसके मध्य मे सोलह भावनाएँ मण्डित हो, जिसके अगले पल्ले पर २४ तीर्थंकर और गणधर देव हो—ऐसी समकित चून्दड़ी को ओढ

---

२. जिन्होंने कर्मों को एवं विषय-भोगों को जीत लिया है वे जिन है।

३. उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन, ब्रह्मचर्य—ये दश धर्म है।

४. पूर्ण अपरिग्रही वीतरागी दिगम्बर साधु निर्ग्रन्थ गुरु कहलाते हैं।

कर आत्मा रूपी लाडी जिनमन्दिर में रत्नत्रय रूपी मोतियों से थाल सजाकर भक्ति (अर्चना) मंगलाचार करे। फिर धर्मोत्सव मनाकर अपने घर आकर माता-पिता को प्रणाम करे। ऐसा नित्य करने वाले शिव-सुख पाते हैं।

स्तुति परक रचनाएं

यद्यपि आलोच्य महाकवि ने अपनी सभी प्रबन्ध एवं मुक्तक रचनाओं के प्रारम्भ में मंगलाचरण या वन्दना के रूप में तीर्थंकर, गणधर, सरस्वती और गुरु, की स्तुति की है। कथा के बीच-बीच में उनकी महिमा का गान किया है। और अन्त में उनसे अपने उद्धार की याचना की है। लेकिन वे स्वतन्त्र रूप में नहीं हैं। स्वतन्त्र रूप में महाकवि ने कई स्तुति परक गीति काव्यों का प्रणयन किया है। जिनमें तीर्थंकरों, पंचपरमेष्ठियों, तीर्थक्षेत्रों, सरस्वती एवं गुरु आदि का स्तवन मिलता है।

काव्य के प्रारम्भ में वन्दना, स्तुति या मंगलाचरण करने की परम्परा प्राचीन काल से ही भारतीय वाङ्मय में रही है। वन्दना, स्तुति या मंगलाचरण समानार्थी शब्द है। मगलाचरण में दो शब्द हैं—एक मंगल दूसरा आचरण। मंगल शब्द का व्युत्पत्त्यर्थ दो प्रकार से है—एक म+गल—म—अर्थात् पाप को, गल-गलाने वाला। दूसरा मंग–ल—मंग—अर्थात् उमंग या आनन्द या सुख को ल याने लाने वाला। इस प्रकार मंगलाचरण का अर्थ हुआ—विघ्न स्वरूप पापों को दूर कर आनन्द और सुख देने वाले कार्य मे प्रवृत्त होना।[1] ऐसा आचरण जिसमें आत्मा का मल हट जावे और वह अपने निर्मल स्वरूप से महान् आत्माओं के गुणों की ओर उन्मुख हो उनकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न करे। इसीलिए प्राच्य भारतीय कवियों ने अपने ग्रन्थों के आदि, मध्य एवं अन्त में सम्पूर्ण विघ्नों को दूर करने एव ग्रन्थ के सुख-पूर्वक समाप्ति के लिए मंगल का आचरण किया है। शास्त्र के आदि, मध्य एवं अन्त में किया गया स्तुति या वन्दना स्वरूप मगलाचरण सम्पूर्ण

---

१. कवि ने अपनी पंचपरमेष्ठी गुण वर्णन रचना में ऐसा ही मंगल वाचन किया है—

> पंच परम गुरु गावंता, सुणता होइ सुख खाणि।
> विघन हरे घातिक टलें, पढेता निरमल वाणि ॥३॥
> सांकल बंधन त्रूटिसे, रोग क्लेस विणास।
> डह डाकिणी साकिणी फणी, दुःख न आवि पास ॥४॥

विघ्नों को उसी प्रकार नष्ट कर देता है जैसे सूर्य अन्धकार को।[1] रीतिकालीन कविवर बिहारी ने अपनी श्रृंगार रस से परिपूर्ण सतसई में प्रत्येक दस दोहे के पश्चात् एक दोहा भक्ति का इसीलिए रखा है कि वह भौतिक विलासता के जाल में फंस कर अपने जीवन को यूं ही न गमा दे। अभिज्ञान शाकुन्तला में भी कविवर कालिदास ने आदि और अन्त में ईश वन्दना कर अपने आराध्य से अपने सांसारिक आवागमन से मुक्ति की याचना की है, जबकि इसमें दुष्यन्त-शकुन्तला के प्रणय की गाथा काव्य-निबद्ध है।

अपने आराध्य के गुणों की प्रशंसा करना ही स्तुति है। लोक व्यवहार में अतिशयोक्ति पूर्ण प्रशंसा ही स्तुति कहलाती है। किन्तु यह परिभाषा ईश्वर के लिये ठीक नहीं बैठती, क्योंकि ईश्वर अनन्त गुण वाला है, उन गुणों में एक का भी वर्णन हो पाना अशक्य है, अतः वह अतिशयोक्ति नहीं कहला सकती है।[2]

अपनी स्तुति परक रचनाओं में महाकवि ने किसी लोभ-लालच के कारण या ईश्वर को प्रसन्न या सन्तुष्ट करने के लिए स्तुति नहीं की है। उसके आराध्य तो परम वीतराग प्रभु हैं। जिन्होंने सब कुछ परित्याग कर कर्मों की निर्जरा की है। भला जिसने स्वयं भौतिक वस्तुओं का परिहार कर निर्ग्रन्थ स्वरूप स्वीकार किया है, वह औरों को क्या देगा और फिर वीतराग स्वरूप तो ऐसा करने से रोकता है, क्योंकि कोई अन्य का कर्त्ता-दाता नहीं है, मनुष्य के स्वयं के कर्म ही कर्त्ता एवं भोक्ता है। अतः अपने आराध्य के गुणों के स्मरण से प्रेरणा पाकर उनके समान बनने के लिए ही कवि ने स्तवन-साहित्य को रचा है।[3]

प्रत्येक कवि कविता कर्म में प्रवृत्त होने से पूर्व कुछ न कुछ प्रेरणा अवश्य अनुभव करता है। आलोच्य कवि के भी कुछ प्रेरणास्त्रोत अवश्य रहे होंगे। जैन

---

१. सन्तकवि आचार्य श्री जयमल्ल, पृष्ठ ३४।

२. जैन भक्ति काव्य की पृष्ठ भूमि, पृष्ठ २८—२९।

३. पंच परम गुरु पंच परम गुरु सार यतीश्वर ।।
अरहंत सिद्ध आचारिज, उपाध्याय सर्व साधु मुनीश्वर।
गुण वरणव्या अति रूवडा, जू जूवा सुललित निरमर ।।
ते गुण देउ स्वामी निरमला, कृपावंत अति चंग।
तम्हे तणो दास विनय करूं, ध्याइसूं मन तणि रंगि ।।१।।
—पंचपरमेष्ठी गुण वर्णन रास।

साधु अनेक स्थानों पर विचरण करते हैं। विविध व्यक्ति उनके सम्पर्क में आते हैं। आगम सिद्धान्त एवं पुराण ग्रन्थों का स्वाध्याय उनकी चर्या का आवश्यक अंग होता है। नित्य प्रति प्रातः और संध्या से पूर्व श्रावक-श्राविकाओं को प्रवचन देते हैं। इस प्रक्रिया में उन्हें प्रवचन में भगवद् भक्ति का महत्व बताना होता है। प्रवचन के प्रारम्भ में ये जिनेश वन्दना, तो अन्त में स्तुति एवं उपदेशगीति का पाठ करते हैं। इसमें ये लघु गीति काव्यों के गान से श्रोताओं को अध्यात्म भावना की ओर आकर्षित करते हैं। सन्तकवि ब्रह्म जिनदास की भी दिनचर्या ऐसी ही थी। स्वाध्याय एवं प्रवचन तथा श्रावकों की अपनी परिस्थितियां एवं आवश्यकताएँ ही इन प्रगीत काव्यों की प्रेरणाएँ रही है। विविध तीर्थ स्थानों की यात्राएँ, अपने गुरु के प्रति विनय भाव और आत्म-चिन्तन भी इन रचनाओं के प्रणयन मे मूल कारण हो सकते हैं। अपने उपास्य के गुण स्मरण द्वारा आत्मालोचन एवं तद्वत होने की पवित्र भावना सन्त साधुओं की अपनी विशेषता होती है।

आलोच्य स्तुति परक साहित्य को तीन वर्गों मे विभक्त किया जा सकता है—१—व्यक्ति प्रधान स्तुति, २—सस्था प्रधान स्तुति एवं ३—स्फुट स्तुति। व्यक्ति प्रधान स्तुति में व्यक्ति विशेष तीर्थंकर[1] एवं तीर्थक्षेत्र[2] की स्तुति की गई है। जबकि संस्था प्रधान स्तुति परक रचनाओं मे व्यक्ति विशेष का नाम न लेकर उनकी स्तुति की गई है जो अपने आदर्श गुणो के कारण व्यक्ति से संस्था बन गये हैं। जैसे—पंच परमेष्ठी। स्फुट स्तुति में कवि की कामना, पूजा, विधि-भाव एवं प्रतिक्रमण व्यक्त हुआ है।

व्यक्ति प्रधान स्तुति : इस श्रेणी में व्यक्ति विशेष तीर्थंकर एवं तीर्थक्षेत्र की वन्दना कवि ने की है। आदिनाथ वीनती, ज्येष्ठ जिनवर लहान, तीन चौबीसी वीनती, मिथ्यादुक्कड वीनती और गिरनारि धवल ऐसी ही ही स्तुतियां हैं।

---

१. धर्मतीर्थ की स्थापना करने वाले धर्मतीर्थ के प्रवर्तक, तीर्थंकर होते हैं।

२. तीर्थंकरों के जीवन से सम्बन्धित स्थान तीर्थक्षेत्र कहलाते हैं। इनके उपदेश से संसार के अनेक जीव तर जाते हैं, इसलिए ये तीर्थ स्वरूप गिने जाते हैं। प्राणि मात्र हित की उत्कृष्ट अभिलाषी है। तीर्थंकर प्रकृति का बंध करता है। जैन धर्म आध्यात्मिक विकास के ऊँचे शिखर पर पहुंचने वाले महापुरुषों को तीर्थंकर कहा जाता है।

नव पद्यों की अपनी 'आदिनाथ वीनती' में महाकवि ने प्रथम तीर्थंकर भगवान् आदिनाथ से अपना विनय भाव व्यक्त किया है—हे आदिजिणंद, आप तीन लोक के स्वामी हैं और आप ही सच्चे देव हैं। मैं चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करता आ रहा हूँ। चारों गतियों में मैंने अनेक कष्ट पाये हैं। जन्म, जरा, मृत्यु, रोग, दारिद्रय, वियोग के दुःखों को पा चुका हूँ। क्रोध, मान, माया, लोभ, विषय-भोग, राग, द्वेष, मद, मोह आदि ने मुझे बहुत रुलाया है। कुदेव, कुगुरु और कुशास्त्र के मिथ्याचरण में मैं रमा रहा हूँ। सच्चे देव, शास्त्र एवं गुरु के वचनों को नहीं अपनाया। अपने कुटुम्ब के लिए मैंने बहुत पाप कर्म किये हैं। अतः हे जिनेश्वर, अब आप ही मेरे इन पापों का निवारण कीजिये क्योंकि आप ही मेरे माता-पिता, देव, स्वामी और मनोवांछित फलदाता है—

चिहुंगति संसार मांहि, पाम्या दुःखमि अति घणाए ।
जामण मरण वियोग, रोग दारिद्रय जरा तेह तणांए ।।
क्रोध मान माया लोभ, इन्द्री चोरहुं भोल व्योए ।
राग द्वेष मद मोह, मयण पापी घणुं रोलव्योए ।।
सजन कुटुम्ब ने काज कीधा, पाप मि अति घणाए ।
ते पातिक निवार, जिन स्वामी अम्ह तणाए ।।
तूं माता तूं बाप, तूं ठाकुर तूं देव गुरु ।
तू बांधव जिनराज, वांछित फल हवे दान करू ।।[1]

"ज्येष्ठ जिनवर लहान" में कवि ने २४ तीर्थंकरो मे सबसे ज्येष्ठ जिनवर प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ का गुण स्मरण एवं पूजा-भाव व्यक्त किया है। जो प्रथम तीर्थंकर आदि जिनेश्वर महाराज नाभिराय—१४ वें कुलकर[2] के कुल भूषण और महारानी मरुदेवी के हृदय के रत्न हैं, उन पर मैं स्वर्ग की मणियां न्यौछावर करता हूँ। क्षीर समुद्र से स्वर्ण कलशों को भर कर अभिषेक करना चाहता हूँ।

---

१. आदिनाथ वीनती ।।३–७।।
२. कुल की व्यवस्था करने वाला विशिष्ट पुरुष जो अपने समय की समस्याओं का निवारण कर जनता को जीना सिखाता था। इन्हें मनु भी कहा गया है। ये १४ हैं। अन्तिम एवं १४ वें कुलकर नाभिराय प्रथम तीर्थंकर के पिता हुए। बालकों की नाभि काटने की शिक्षा देने से ये नाभिराय कहलाये। —जैन धर्म का मौलिक इतिहास, पृ० ६११–१२

इन्हीं ज्येष्ठ जिनेश्वर ने युगल धर्म[3] का निवारण किया और कर्म भूमि[4] की स्थापना की है। मनुष्य को कर्म का महत्त्व सिखाया। संसार-सागर से तारने वाले इन ज्येष्ठ जिनवर की सेवा में स्वर्ग के देव-देवियां भी पीछे नहीं रहते। गणधर, यतिवर, मुनिवर, ऋषिवर, आर्यिका श्रावक-श्राविका सभी जिनके चरण कमलों की पूजा करते हैं।

आत्मा की निर्मलता एवं कर्ममल के निवारणार्थ ज्येष्ठ जिनवर की कवि ने उदक (जल), चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप एवं फल आदि उत्तम पदार्थों से पूजा का माहात्म्य प्रकट किया है।

पूजा दो प्रकार से होती है—भाव पूजा एवं द्रव्य पूजा। भाव पूजा में भक्त के मन मे पूजा-भक्ति के भाव विचार होते हैं। द्रव्य पूजा जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप और फल इन आठ द्रव्यों से की जाती है यह अष्ट प्रकारी पूजन कहलाती है। द्रव्य पूजा मे द्रव्य चढ़ाते समय प्रत्येक द्रव्य चढ़ाने का उद्देश्य बोला जाता है जैसे—

१. मैं जन्म, जरा, मृत्यु के विनाश के लिए जल चढ़ाता हूँ। अर्थात् जैसे जल से गन्दगी दूर हो जाती है वैसे ही मेरे पीछे लगे हुये ये रोग धुल कर दूर हो जावे।

२. संसार रूपी संताप की शान्ति के लिए चन्दन।

३. अक्षय पद (मोक्ष) की प्राप्ति के लिए अक्षत।

४. काम के विकार को दूर करने के लिए पुष्प।

५. क्षुधा रूपी रोग को दूर करने के लिए नैवेद्य।

---

३. प्रथम तीर्थंकर वृषभदेव से पूर्व मनुष्य नर-नारी के रूप मे युगल मे जन्म पाते और समयान्तर में पति-पत्नी के रूप में परिवर्तित हो जाते थे। पति-पत्नी या भाई-बहिन का उनके बीच कोई नाता नही होता था। सर्वप्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव ने भावी समाज के हितार्थ युगल धर्म का निवारण किया और विवाह परम्परा का सूत्रपात किया। —वही पृ० १६।

४. कल्प वृक्षों का अभाव होने पर असि, मसि, कृषि, शिल्प, वाणिज्य, कला का ज्ञान सर्वप्रथम प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ ने कराकर कर्म भूमि की स्थापना की। आदिनाथ रास

६. अज्ञान रूपी अन्धकार को दूर करने के लिए दीप ।

७. अष्ट कर्मों को जलाने के लिए धूप ।

८. मोक्षफल की प्राप्ति के लिए फल चढ़ाया जाता है ।

अन्त में इन आठों द्रव्यों को मिलाकर अर्घ्य बनता है जो अनर्घ अर्थात् अमूल्य पद की प्राप्ति से उद्देश्य से चढ़ाया जाता है। पूजा भक्ति करने के बाद कवि अपनी आत्मा की शुद्धि का फल मांगता है—

> धवल मंगल गीत महोछव, अरघह पूजरयं ।
> स्तवन करी फल मांगउं, आत्मा निरमलयं ।।[1]

इस प्रकार इस अष्ट प्रकारी पूजा का उद्देश्य भौतिक वस्तुओं की प्राप्ति के लिये नही, वरन् विकारों और उनके कारणों को दूर करके चरम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति के लिए रखा गया है। यह द्रव्य पूजा कहलाती है। जिसमे शरीर और वचन के साथ मन को भी लगाना होता है। मन को लगाना भाव पूजा है। बिना भाव के द्रव्य पूजा भी निष्फल है। द्रव्य तो मन, वचन और काय को लगाने के लिए एक आलम्बन मात्र है। मनुष्य के शरीर, मन और वचन तीनों की एकात्मकता पूजा के लिए आवश्यक है। भाव-पूजा द्रव्य पूजा से बढ़ कर है, क्योंकि उसमें मनुष्य का एकाग्र बिन्दु मन लगा रहता है। क्योंकि भाव शून्य क्रिया कभी फलदायी नहीं होती।[2]

मिथ्यादुक्कड वीनती में कवि ने आदि जिनेश्वर से अपने दोषों को गिनाते हुए उनके दूर करने के लिए वीनती की है ।

तीन चौबीसी वीनती में कवि ने अतीत, वर्तमान और आगत तीनों कालों के २४ तीर्थंकरो की बन्दना की है। सर्व गुणों से युक्त १८ दोष रहित, पापों का

---

१. ज्येष्ठ जिनवर लहान ।।१–१३।।

२. ज्येष्ठ जिनवर पूजा ।

क्षय करने वाले, मुक्ति प्रदाता स्वरूप इन तीनों कालों के २४ तीर्थंकरों की एकचित्त से आराधना करने वाला स्वर्ग और मुक्ति को पाता है। ये मनोवांछित फल देने वाले हैं।

"गिरनारी धवल" के अत्यन्त लघु गीत में कवि ने तीर्थक्षेत्र गिरिनार[1] के प्रति अपनी भक्ति भावना व्यक्त की है। कवि ने गिरिनार पर्वत पर जहाँ से २२ वें तीर्थंकर नेमिनाथ ने निर्वाण प्राप्त किया था, जिनालय की तीन प्रदक्षिणा देकर अत्यधिक भक्ति की है और फिर स्नान कर शुद्ध स्वच्छ वस्त्र पहिन कर जिन मन्दिर में प्रवेश कर जिनेश्वर के दर्शनों से अपने नेत्रों को सफल किया है—

यह जिनवर पूजा सभी प्रकार के भौतिक एवं आध्यात्मिक सुख की प्रदातृ है—

तेह तणी संख्या नवि जाणूं, वर्तमान अतीत वखाणूं ।।
अनागत जिनदेव ।।२५।।
सर्व गुण कर पाप क्षयंकर अठारह दोष रहित दिगम्बर ।।
सुगति-सुगति दातार ।।१६।।
एक चित्ति जे भवि आराधे, सरग मुगति तेहे लां साधे ।।
वांछित फल दातार ।।१७।।

कवि की अपने उद्धार के लिए, अपने समान बना लेने के लिए चौबीस तीर्थंकरों के चरणों में कर बद्ध विनती इस प्रकार है—

हुं करमें पीडियो जिनस्वामी, चरण तम्हारे रह्यो शिरनामी ।।
तम्ह सरिखो करो देव ।।१९।।

मुझे मेरे गुरु ने बताया कि आपके समान अन्य कोई नहीं है। आप ही मेरे अपार पुण्यों के कारण हो—

जिणवर पूज्याइं पुण्य, लक्ष्मी आवे अति घणी हेलि ।
रूप सोभाग अपार, पुत्र कलत्र संपत्त तणी हेलि ।।

---

१. गिरनार सौराष्ट्र प्रान्त में जूनागढ़ के निकट है। २२ वें तीर्थंकर नेमिनाथ ने इसी पर्वत पर दीक्षा धारण की, तपस्या की, केवल ज्ञान और मोक्ष प्राप्त किया।

जिणवर पूजये राज लाभ, इंद्र नागेन्द्र तणो हेलि ।
चक्रवर्ति पद होइ, सरग मुगति सुख अति घणु हेलि ॥३॥

जिसने यह जिन पूजा-भक्ति नहीं की वह सांसारिक मोह पाश में ही बंधा रहा—

जिणवर स्वामी देव, जिणइ न पूजा भनि रली हेली ।
ते करीसे परसेव, संसार मोहे रह्या कली हेली ॥१२॥

कवि की यह भक्ति हमें सूर, तुलसी जैसे सगुण भक्त कवियों का स्मरण करा देती है। कवि की इस पूजा में भावों का अधिक महत्व है। जिसके बिना पूजा निष्फल है।

महाकवि ने तीर्थंकरों आदि की स्तुति के साथ तीर्थंकरों के मुख से प्रसूत जिनवाणी का भी स्तवन एवं गुण वर्णन किया है। जिसमें कवि ने जिनवाणी के गुणों का गान किया है। इसलिये कृति का नाम जिनवाणी गुणमाल है। इसे सरस्वती जयमाल भी कहा गया है। जिनवर के मुख से उद्भूत वाणी साक्षात् सरस्वती ही है।

अमृत सदृश जिनवाणी मधुर, गम्भीर और सुहावनी है। दोषों से रहित एवं गुणों की निधि है। मन को हरने वाली है। जो विशाल पूर्व श्रुत ज्ञान के अंगों से युक्त है। जो तत्वों—पदार्थों की प्रकाशिका है। जिसके पढ़ने से ज्ञान उत्पन्न होता है, जो अज्ञानान्धकार को दूर करने वाली है। चन्द्रकला के सदृश शीतल दामिनी है। परम ब्रह्म अरिहंत के मुख कमल से अक्षय रूप में उत्पन्न हुई है। बारह अंगों[1] से युक्त है ऐसी विशाल वाग्वादिनी अनेकों गुणों से संयुक्त पूजनीय है—

जिनवर वाणी अमिमिय समाणी, गंभीर मधुर सोहामणी ।
दूषण रहिता बहुगुण सहिता, मनोहर रलीया मणी ॥२॥

---

१. जिनवाणी के १२ अंग हैं—१. आचारांग, २. सूत्रकृतांग, ३. स्थानांग, ४. समवायांग, ५. व्याख्या प्रज्ञप्ति, ६. ज्ञातृ कथा, ७. उपासक, ८. अंतकृत, ९. अनुत्तर अंग, १०. प्रश्न व्याकरण, ११. विपाक सूत्र, १२. दृष्टिवाद
—सरस्वती जयमाल।

सुलल प्रकाशन दीपहु तेज, सुपहुता भविजन उपजे हेज ।
सु शीतल भरि शशिकला सुविशाल, मिथ्या तिमिर फेडण विशाल ।।४।।

सु परम ब्रह्म मुख कमल अमंद, सु बार, अंगह सहित विचंद ।
सु सरस्वती वाग्वादिनी, ते पूजउ जिनवाणी गुणमाल ।।५।।

जिनवर मुख कमल से उत्पन्न वाणी को गणधरों से द्वादशांग रूप में ग्रथित किया है। इन्द्रों, नरेन्द्रों, मुनिवरों ने तीन लोक में जिसकी ज्योति फैलायी है, जो त्रिभुवन में सार स्वरूप भव्यजनों से वंदित है, वह सुरभारती शारदा विशाल गुणों वाली है। जिन शासन की शोभा है। ऐसी अज्ञान तिमिर नाशिका ज्ञान की प्रकाशिका जिनवाणी को जो पढ़ते हैं, गुनते हैं उनकी बुद्धि का विकास होता है और मनवांछित सुमति का फल मिलता है—

सु जिनवर मुख कमल उत्पन्न, सु द्वादशांग श्रुत निष्पन्न ।
सु गणधर ग्रथित ज्ञान विशाल, ते पूजो जिनवाणी गुणमाली ।।१०।।
सु मुनिवर विस्तारित गुणवंत, सु त्रिभुवन माहि ज्योति जयवंत ।
सु भवियण वंदित त्रिभुवनसार, सो जिन शासन सोहे सिणगार ।।१२।।
अज्ञान तिमिर हर ज्ञान दिवाकर, पढ़े गुणे जे ज्ञान धणी ।
ब्रह्म जिनदास भासे विबुध प्रकासे, मन वांछित फल बुधि घणी ।।

"गुरु जयमाल" में कवि ने साधु से लेकर तीर्थंकर तक के निर्ग्रन्थ स्वरूप के सभी गुणों की वन्दना की है। इसके सकल मुनि स्वरूप के सभी गुणों की स्तुति की गई है। जिनके चरण कमलों में सुर असुर सभी नमित होते हैं। जिनकी कृपा से मन प्रसन्न एवं शान्त रहता है, जिनका स्वप्न सांसारिक दुःखों का निवारक है—

सकल यतीश्वर नमित सुरासुर, अनुदीन चरण कमल नमु ं ।
तम्ह परसादि मन उल्लासि, स्तवन करी भव दुःख गमु ।।१।।

उन गुणों से युक्त निर्ग्रन्थ मुनियों को, गणधरों को और यतिवरों को मन, वचन और काय की एकाग्रता से कवि नमस्कार करता है—

एह गुण व्यापि गुणवंत नमु ं निर्ग्रन्थ मुनि जयवंत नमु ं ।
गणधर यतिवर पाय नमु ं, मन वचन काय सकल करवि नमु ं ।११।

इनकी वन्दना स्तवन से कवि अपने मन-वचन-काय की सफलता मानता है और स्वयं के लिए निर्ग्रन्थ उज्ज्वल दीक्षा की कर-बद्ध विनती करता है—

श्री मुनिवर स्वामी नमुं शिरनामी, बेइ कर जोडी विनय करुं ।
दीक्षा अति निर्मल द्यो मुझ उजली, ब्रह्म जिनदास भणि कृपा करी ।।१४।।

कवि ने गुरु जयमाल में निम्न प्रकार से संख्यात्मक गुणों का उल्लेख किया है—१. आत्म ध्यान, २. राग-द्वेष, ३. रत्न-सम्यक् दर्शन ज्ञान और चारित्र, ४. क्रोध, मान, माया और लोभ ५. पंचाचार, ६. पंचमहाव्रत, पंच इन्द्रिय, ६. षट् काय, षट् द्रव्य, षट् काल, ७. भयसात, सातगुणस्थानक, ८. अष्ट ध्यान, अष्ट कर्म, अष्ट मद, ९. नव नय, नव तत्व, नवशील, १०. दशलक्षण धर्म, ११. ग्यारह प्रतिमा, १२. बारह तप, १३. तेरह चारित्र, १४. चौदह मल, १५. पंद्रह प्रमाद, १६. सोलह भावना, १७. सतरह संयम, १८. अठारह दोष, १९. उन्नीस समास जीव, २०. बीस मार्गणाएं, २१. इक्कीस चतुर्गुण लक्ष्य, २२. बावीस परीषह, २३. तेवीस स्थानक कलित, २४. चौवीस जिनवर या तीर्थंकर ।

"गौरी भास" में कवि ने जिनेन्द्र देव से अपने सांसारिक भ्रमण के कारणों को गिनाते हुए उनकी कृपा प्राप्त करने की याचना की है ।

चौरासी लाख योनियों में मैं अनादि काल से भ्रमण करता आ रहा हूँ । पंच मिथ्यात्व, प्रमाद, चार कषायों में मैं वशीभूत रहा । सम्यक्त्व, ज्ञान चारित्र और तप की आराधना नहीं की । अठारह दोष रहित देव को मैं नहीं पहिचान सका । धर्म गुरु के आश्रय के बिना मैंने दुःख ही पाया । चारों गतियों में भटका, पर कहीं सुख नहीं मिला । सद्गुरु की कृपा से मैंने आपको पहिचाना है । हे देव, जन्म-जन्म में मैं मन-वचन-काय से आपकी सेवा करना चाहता हूँ । यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो मैं आपसे अधिक नहीं चाहता हूँ । मुझे राज्य, लक्ष्मी, गज, घोड़े, इन्द्रिय सुख, स्त्री आदि कुछ नहीं चाहिये । क्योंकि ये सब दुःख के कारण हैं । मैं तो आपसे मात्र सम्यक्त्व, ज्ञान, चारित्र प्राप्त करने की इच्छा करता हूँ । हे स्वामिन् आप मुझे शाश्वत सुख की विधि का मार्ग निर्ग्रन्थ दीक्षा दीजिये जिससे मैं मोक्ष का द्वार पा सकूं—

जो तम्हे तूठा मझ स्वामी देव, अवरुं न मांगु देव ।
न मांगु राज ने कारिमोए, न मांगु लाछी दे देव ।।९।।

न मांगु गज घोड़ा अश्वार, न मांगु इन्द्रिय सुख ।
न मांगु नारी सोहामणीए, ते आलें भवि भवि दुःख ॥१०॥
मांगु सु समकित निरमलोए, ग्यांन मांगु अवतार ।
चारित्र मांगु सोहामणोए, तप मांगु सविचार ॥११॥
दीक्षा देउ मझ निरमलीए, स्वामिय सौख्य भण्डार ।
ब्रह्म जिणदास इणी परिभणीए, जिम पामो मोक्ष दुवार ॥१२॥

कवि का यह भक्ति परक साहित्य दास्य भाव प्रधान है। अपने आराध्य को कवि ने स्वामी एवं स्वयं को उसका दास माना है—

तू जीव दयालू स्वामी सार, वली करम निवारो मोह जाल ।
हूं तम्ह तणो दास छू भोलो, मझ चिहुं गति वमन फेरो टालो ॥[1]
ते गुण दे स्वामी निरमला, कृपावंत अति चंग ।
तम्हे तणो दास विनय करू', ध्याइसू मन तणि रंग ॥[2]
तू माता तू बाप, तू ठाकुर तू' देव गुरु ।
तू बांधवजिनराज वांछित फल हवे दान कुरु॥[3]

स्फुट स्तुति : चौरासी जाति माला" में जिनेन्द्र देव के अभिषेक के पश्चात् होने वाले माला की बोली के उत्सव में सम्मिलित होने वाली ८४ जातियों का नामोल्लेख हुआ है। जिन्होंने माला लेने के लिए अपनी भक्ति का मूल्य प्रदर्शित किया है। इसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यों को भी सम्मिलित किया गया है। अन्त में चतुर्थ जैन श्रावक जाति का उल्लेख हुआ है। कवि ने इसमें बताया है कि जिनेन्द्र की माला को प्राप्त करने के लिए सभी जाति के लोग अपना अहोभाग्य मानते हैं। माला की बोली लगाने मे एक जाति से दूसरी जाति वाले व्यक्तियों में प्रतिस्पर्धा रहती है।

माला की बोली लगाना और उसे ग्रहण करना आज भी जैन समाज में बहुत पुण्य कार्य माना जाता है। इसे धारण करने वाला साक्षात् इन्द्र होता है। माला भी साक्षात् जिनेन्द्र देव के अभिषेक के समय उनके चरण कमलों में रखी

---

१. मिथ्यादुक्कड वीनती ॥१७॥
२. पंचपरमेठी गुण वर्णन रास ॥११॥
३. आदिनाथ वीनती ॥७॥

गयी होने से पवित्र एवं अमूल्य होती है। ग्रहण करने वाले का मूल भाव धार्मिक होता है उसकी कीर्ति बढ़ती है और उसे धर्म लाभ होता है। माला लेने एवं पहिनने वाले का समाज में आदर भाव होता है। लोगों की धर्म के प्रति आस्था बढ़ती है—

जिणे जिम मांगिय माल जिण संत सो ।
तिणे तिम लाधीय सुणो ह गुण ईश तो ॥[1]

कवि के अनुसार राजा महाराजा भी उसका आदर करते हैं और इसे ऊंचे मूल्य पर खरीद कर धर्म लाभ लेते हैं। स्वर्ण, रत्न, माणिक्य एवं मोती आदि से भी बढ़कर इस माला का आदर होता है माला लेने वाले दोनों लोकों में विजय पाते हैं।

कवि का यह मुक्तक काव्य भक्ति रस से परिपूर्ण है। यह भक्ति सगुण एवं निर्गुण दोनों से संयुक्त है। "कवि का "पंचपरमेष्ठी गुण वर्णन रास" इसका सर्वाधिक उत्कृष्ट प्रमाण है। निर्गुण भक्ति तो इस रूप में है कि कवि ने किसी व्यक्ति विशेष की स्तुति न करके गुणों की स्तुति की है। सगुण भक्ति इस रूप में है कि गुणों को धारण करने वाले, आत्मा से परमात्मा बनने वाले उन महापुरुषों का ध्यान किया गया है। यह ध्यान गुणों की प्राप्ति के लिए किया गया है। महापुरुषों का रूप-आकार तो माध्यम मात्र है। वह साधन है, जबकि साध्य उनके गुण है। साध्य अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति के लिए साधन अर्थात् सगुण भक्ति की गई है। इस प्रकार कवि की भक्ति परक मुक्तक रचनाओं में सगुण एवं निर्गुण दोनों का अद्भुत समन्वय मिलता है। कवि ने स्थान-स्थान पर आत्म-ज्ञान पर सम्यक्त्व के श्रद्धान् एवं उसके पालन पर अधिक बल दिया है। वैसे पूजा-परक भक्ति साहित्य सगुण भक्ति का प्रतीक है। निष्कर्षतः कवि की भक्ति ज्ञानात्मिका भक्ति है। पर वह ज्ञान प्रधान है।

वस्तुतः ब्रह्म जिनदास के उक्त काव्यों में एक ओर प्रबन्ध की घाटी में महाकाव्य की गुरु गम्भीरता ग्रहण किये हुए हैं, तो दूसरी ओर खण्डकाव्य के लघु भूधर इसमें विद्यमान है। इन काव्यों में एक ओर गीतों की मधुरमय स्त्रोतस्विनी प्रवाहित है तो दूसरी ओर मुक्तक का सुन्दर विकास इनमें परिव्याप्त है। इन काव्यों की मन्दाकिनी में स्नान कर सभी प्राणी अपना तन-मन पवित्र कर सकते हैं।

---

१. चौरासी जाति माला।

भक्ति परक काव्य रचना के अतिरिक्त ब्रह्म जिनदास की काव्य रचना का उद्देश्य मानव को पापात्मक कार्यों से निवृत्ति एवं पुण्यात्मक कार्यों में प्रवृत्ति करने का मार्ग बतलाता है। तीर्थंकरों की भक्ति, स्तवन, पूजा आदि पुण्यात्मक प्रवृत्ति है जबकि हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील एवं परिग्रह जैसे पापात्मक कार्यों में प्रवृत्ति दुःख का कारण है, पाप बन्ध का कारण है और परम्परा से संसार जाल में फंसाने वाला है। कवि के अधिकांश काव्य मानव को अशुभ से हटा कर शुभ की ओर लगाने का सन्देश देते हैं। प्रद्युम्न, श्रीपाल, सुदर्शन, भविष्यदत्त, हनुमान के जीवन की उपलब्धियां उनके द्वारा पूर्व जन्म में किये गये शुभ कार्यों का फल मात्र है और वे शुभ कार्य हैं संसार से विरक्ति, रागद्वेष आदि कषायों से निवृत्ति, तपःसाधना, आत्मध्यान आदि। इन पुण्य पुरुषों के जीवन में यदि कहीं विपत्ति, अनिष्ट का संयोग, इष्ट का वियोग अथवा सुख संपत्ति का अभाव हुआ है तो उसके मूल में उन महापुरुषों के पूर्व जन्मों में किये गये अशुभ कार्यों अथवा भावों का ही फल हैं। नहीं तो कोटीभट्ट श्री पाल को कुष्ट रोग नहीं होता तथा प्रद्युम्न को जन्म लेते ही माता का वियोग नहीं सहना पड़ता। इसलिए जैन कवियों ने मानव मात्र को अशुभ से शुभ में प्रवृत्त करने के उद्देश्य से ही काव्य रचना की है। वे न स्वान्तः सुखाय कृतियों का निर्माण करते हैं और न अपनी काव्य निर्माण शक्ति को प्रदर्शित करने का ही भाव रखते है। यही कारण है कि वे अपने काव्यों को वीर एवं शृङ्गार रस प्रधान नहीं बना पाये। उनका उद्देश्य अपने काव्य के पात्रों के शुभाशुभ कार्यों एवं उनके फल को प्रस्तुत करना है न कि अपनी कृतियों को केवल काव्य गुण प्रधान बनाना है। जब कवि अपने चरित नायक के अतिशयों, ऋद्धियों अथवा अन्य चमत्कारिक कार्यों का वर्णन करता है तो वह अपने पाठकों के हृदय में शुभ अथवा पुण्य वर्द्धन के कार्यों में प्रवृत्त होने की बात करता है। इस प्रकार महाकवि ब्रह्म जिनदास की जितनी भी कृतियां हैं वे सब मानव को अशुभ से हटाकर शुभ की ओर ले जाने वाली है।

कला विधान

मानव-मात्र की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह एक ओर अपने भावों, विचारों और आकांक्षाओं की अभिव्यंजना करना चाहता है तो दूसरी ओर अपने सौन्दर्य ज्ञान के द्वारा उन्हें सुन्दरतम बनाकर उनमें एक अद्भुत चमत्कार भी उत्पन्न करना चाहता है। इसी आधार पर काव्य के भी दो आधारभूत तत्व हो जाते हैं— एक भाव पक्ष और दूसरा कला पक्ष। इन दोनों पक्षों का समुचित संयोग एवं सामंजस्य ही श्रेष्ठ काव्य का लक्षण है। जीवन में जो सम्बन्ध आत्मा और शरीर का है, वही सम्बन्ध काव्य में भाव पक्ष और कला पक्ष का है। भाव पक्ष यदि

काव्य की आत्मा है तो कला पक्ष उसका शरीर। कला पक्ष कविता का साधन-पक्ष होता है।

काव्य का उद्देश्य प्रेषणीयता एवं प्रभावोत्पादकता है। कला पक्ष इस प्रेषणीयता को पथ देता है। अतः भाव पक्ष काव्य में एक साध्य है, उद्देश्य है और आत्मा है, तो कला पक्ष साधन या शरीर है। वह काव्य का अलंकरण है। बाह्य दृष्टि से काव्य का शृंगार है। इस बाह्य पक्ष के बिना मनुष्य आन्तरिक पक्ष की ओर आकर्षित नहीं हो सकता। काव्य की आत्मा या उसके अन्तः पक्ष की ओर मनुष्य का ध्यान आकर्षित करने के लिए कवि को अपने काव्य के शरीर रूपी बाह्य पक्ष को सजाना या सुन्दर बनाना होता है। उसके लिए वह भाषा-शब्द चयन, अलंकार और छन्द-संगीत आदि के सुन्दर उपकरणों का प्रयोग करता है।

कविवर ब्रह्म जिनदास कवि-हृदय लेकर पैदा हुए थे। इसी कारण उनके काव्य में सहजता, मार्मिकता और निर्मल उपदेश प्रवणता के दर्शन स्थान-स्थान पर होते हैं। कविता करना उनका लक्ष्य नहीं था। कविता तो उनके भावों की सहज प्रवाहिका बन कर आयी है। उनका प्रमुख उद्देश्य महापुरुषों के चरित्र वर्णन से जन-सामान्य को परिचित कराकर उनको सन्मार्ग में प्रवृत्त होने के लिए उपदेश देना एवं अपने आराध्य के गुणों का स्मरण कर उनके सदृश गुणों को अपने जीवन में ग्रहण करना था। अपने विचारों एवं आगम के सिद्धान्तों को जन-साधारण तक पहुंचाने के लिए तथा आत्मिक शान्ति हेतु आराध्य भक्ति में अनुरक्त रहने के लिए ही कविता करना इन्हें इष्ट था। अतः काव्य के कला पक्ष की ओर उनका आग्रह नहीं था। फिर भी उनकी कविता में कवित्व का नितान्त अभाव नहीं है।

भाव पक्ष की भांति ब्रह्म जिनदास के साहित्य का कला पक्ष भी बड़ा सुन्दर एवं भव्य है। इन दोनों पक्षों के माध्यम से उनके साहित्य का सन्तुलित, मनोरम एवं मार्मिक रूप निखरा है। आलोच्य महाकवि अपनी अनुभूति में जितने सच्चे और खरे हैं, अभिव्यक्ति में उतने ही स्पष्ट और सीधे। कलात्मक चमत्कार का प्रदर्शन कर किसी का हृदय जीतना उनका उद्देश्य नहीं था। वरन् काव्य के माध्यम से संजीवन निर्माण की सही दिशा बताना ही इनका लक्ष्य था। पुनरपि, मध्यकालीन सन्त एवं भक्त कवियों से उनका कला पक्ष किसी भी प्रकार में निम्न नहीं है। काव्य-कला की दृष्टि से आलोच्य साहित्य खरा उतरा है।

भाषा

विचारों के वाहक के रूप में भाषा का महत्त्व किसी से छिपा नहीं है। भावों की अभिव्यक्ति के लिए वह अनिवार्य तत्त्व है। सन्त महाकवि ब्रह्म जिनदास अपने समय के बहु भाषाविज्ञ थे। आगम, सिद्धान्त एवं पुराण ग्रन्थों के पठन-पाठन तत्व-

चर्चा एवं तीर्थयात्रा और आत्म-साधना में इनका समय व्यतीत होता था। इस दृष्टि से वे संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी, गुजराती एवं हिन्दी आदि बहुत-सी भाषाओं पर वे अधिकार रखते थे। इनका साहित्य इस तथ्य का साक्षी है। फिर भी इन्होंने अपना अधिकांश साहित्य हिन्दी में ही (पूर्व रूप "मरु गुर्जर") रचा है। कवि के समय में संस्कृत, अपभ्रंश, मरु गुर्जर आदि भाषाओं में साहित्य सृजन हो रहा था। इनका मुख्य क्षेत्र राजस्थान और गुजरात का सीमावर्ती प्रान्त—ईडर, डूंगरपुर, उदयपुर, घलियाकोट, बांसवाड़ा आदि स्थान थे। बागड़ प्रान्त इनका मुख्य साधना स्थल रहा। मरु गुर्जर उस प्रान्त की भाषा थी। इसलिए इनकी रचनाओं पर राजस्थानी व गुजराती भाषा का एक साथ प्रभाव स्पष्ट दिखायी पड़ता है।

डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल के अनुसार—"इनकी भाषा को राजस्थानी की संज्ञा दी जा सकती है। यह समय हिन्दी का एक परीक्षण काल था और वह उसमें खरी सिद्ध होकर आगे बढ़ रही थी।..................गुजराती शब्दों को हिन्दी वालों ने अपना लिया था। जिसका स्पष्ट उदाहरण ब्रह्म जिनदास एवं बागड़ प्रदेश में होने वाले अन्य जैन कवियों की रचनाओं से मिलता है।"[1]

महाकवि ब्रह्म जिनदास विद्यापति, कबीर एवं रइधू के समकालीन थे। जिस भाषा को ब्रह्म जिनदास अपने काव्य रचना का माध्यम चुना, वह इनके मुख्य साधना-स्थल की लोक-भाषा (मरु-गुर्जर भाषा) थी। यद्यपि कवि बहु भाषाविज्ञ थे। संस्कृत मे भी महाकाव्यों का इन्होंने प्रणयन किया है, फिर भी अधिकांश रूप से साहित्य-सृजन तत्कालीन लोक भाषा में ही रचा। जन-सामान्य के प्रबोध की दृष्टि से सरल देश भाषा में साहित्य-सृजन ब्रह्म जिनदास को अभीष्ट था। देश भाषा की महत्ता बतलाते हुए ब्रह्म जिनदास का कथन है कि जिस प्रकार कठोर नारियल का बालक कुछ उपयोग नहीं जानता, लेकिन साफ करके उसकी गिरी देने से वह बड़े आनन्द से उसका स्वाद लेता है, उसी प्रकार जन-साधारण संस्कृत के कठिन ग्रन्थों का रसास्वादन नहीं ले सकता। अपनी देश-भाषा में रचित साहित्य को जन-साधारण शीघ्र ग्रहण कर लेता है। इसलिए देश-भाषा मे यह साहित्य रचा गया है।[2]

---

१. राजस्थान के जैन सन्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृष्ठ ३७।

२. कठिन नालीय ने दीजि बालक हाथि, ते स्वाद न जाणे।
छोल्या केल्या द्राख दीजे, ते गुण बहु माने ॥३॥
तीम ए आदि पुराण सार, देसाभासा बखाणुं।
प्रगट गुण जीम वीस्तरे, जिण सासण बखाणुं ॥४॥

— आदिनाथ रास

भाषा विज्ञान का यह सामान्य नियम रहा है कि जब-जब साहित्यकारों ने किसी भाषा विशेष को व्याकरण के जटिल नियमों में बांधा है, तब-तब जन-साधारण ने सामान्य लोक भाषा को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। जब संस्कृत कठोर नियमों में जकड़ दी गई, तब प्राकृत लोक भाषा के रूप में प्रचलित हुई। जैन साहित्य के मूल स्रोत आगम ग्रन्थ प्राकृत भाषा में ही रचे गये हैं। यह वह युग था जब जनपदीय भाषाओं का तिरस्कार किया जाता था और अधमपात्रों के मुख से संस्कृत के स्थान पर प्राकृत का प्रयोग कराया जाता था। पर जैन तीर्थंकरों ने इस बात की परवाह न करते हुए अपनी अमरवाणी का उद्बोध प्राकृत के माध्यम से ही किया। जब प्राकृत को भी कठोर कारागृह में बन्दी बना दिया गया, तब जैन साहित्यकार अपनी बात अपभ्रंश में करने लगे। जब अपभ्रंश से हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती आदि भाषाएं विकसित हुई, तो जैन साहित्यकार अपनी बात इन्हीं जनपदीय लोकभाषाओं में सहज भाव से कहने लगे। यह भाषागत उदारता उनकी प्रतिभा पर आवरण नही डालती, वरन् भाषाओं के ऐतिहासिक विकास क्रम को सुरक्षित रखे हुए हैं।[1]

महाकवि ब्रह्म जिनदास सन्त और कवि दोनों थे। आत्म-साधना, स्वाध्याय, प्रवचन, लोकोपदेश एवं पठन-पाठन उनके दैनिक कार्यक्रम के अंग रहे हैं। साहित्य प्रणयन उनके लिए विशुद्ध कला की वस्तु कभी नही रहा। वरन् वह धार्मिक प्रचार, प्राणी मात्र के इह लौकिक एवं पार लौकिक हित-साधन का अंग बन कर आया है। इसके लिए उन्होंने जन-साधारण के समझ की दृष्टि से अपने समय में प्रचलित मरु-गुर्जर लोक भाषा को अपनाया। यही कारण है कि कवि की भाषागत अभिव्यक्ति सहज, सुबोध और सरल बन पड़ी है। ५०० वर्ष पूर्व में प्रयुक्त होते हुए भी यह मरु-गुर्जर भाषा आज भी सरलता से पठनीय एवं बोधगम्य है। इसमें कोई अत्युक्ति नहीं है कि यह भाषा मध्यकालीन साहित्यिक एवं लोक भाषा में वर्तमान हिन्दी के सर्वाधिक सन्निकट है। इस दृष्टि से कवि का हिन्दी भाषा साहित्य के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

भाषा पर ब्रह्म जिनदास का अपना अधिकार है। भाषा भावानुकूल ढलती-चलती हैं। प्रबन्ध रचनाओं में भाषा का प्रवाह एवं माधुर्य गुण सुरक्षित है तो मुक्तक रचनाओं में उसका गाम्भीर्य एवं सारल्य सुरक्षित है। लोक भाषा में प्रयुक्त कवि की समस्त रचाएं शान्त रस प्रधान हैं और चित्त को द्रवीभूत करने वाली हैं। अतः माधुर्य गुण से युक्त है। राजस्थानी एवं गुजराती से अभिज्ञ व्यक्तियों के लिए यह भाषा सरल व सुबोध पदों से युक्त होने के कारण सर्वत्र प्रसादगुण प्रधान है।

---

१. डॉ० नरेन्द्र भानावत : साहित्य के त्रिकोण, पृष्ठ २२६–२२७

और रस के प्रसंग में कहीं-कहीं ओज गुण भी मिल जाता है। प्रबन्ध रचनाओं में भाषा की प्रवाहमानता निम्न उदाहरण में देखी जा सकती है—

मगध देस मांहि नयर सार, राजगृह वखाणे।
श्रेणिक राजा करि ए राज, तिहां अति सुजाण।
चेलणा राणी तस तणी, रूपि जैसी रम्भा।
सीयलवंती गुणे आगली, जिण सासण थंभ॥
एक बार श्रेणिक राय, चाल्यो गुणवंत।
वन जो वानी कारणी, ते अति जयवंत॥
गिरि कंदर मांहि दीठो चंग, उद्योत अपार।
तव विस्मय घणो पामीयुं, तीहां गयो सविचार॥
जीवंधर स्वामी दीठा चंग, मुनिवर भवतार।
तेज पुंज रद्धिवंत, वांद्या सविचार॥[1]

भाषा की इस प्रवाहमानता का एक उदाहरण और भी द्रष्टव्य है—

भवियण भावि सुणउं, हुं कहे सूं वखाणो।
जंबु कुंवर नु चरित्र सार, गावुं मधुरीय वाणी।
अंतिम केवली हुवउ चंग, स्वामी गुणवंत।
मगध देश माहि नयर सार, वरधमान सुनाम।
ब्राह्मण वसि तिहां अति घणा, भणि वेद पुराण।
आर्जवसु ब्राह्मण वसि, तिणि नगर सुचंग।
सोमा ब्राह्मणी तस नारी, तीणी नयर सुचंग॥[2]

मुक्तक रचनाओं में भाषा का गाम्भीर्य एवं सारल्य निम्न उदाहरणों में द्रष्टव्य है—

आदि जिणेसर भुवि परमेसर, सयल दुख विणासणो।
भुवि कमल दिणेसर मोह तिमिरहर, तत्व पदारथ भावणो॥
हूं विनती करूं हवे आपणीय, तूं त्रिभुवन स्वामी सुणी धणीय।
जे पाप करया ते कहूं अमुक्त, ते मिथ्या दुक्कड़ होऊ मझ॥[3]

---

१. जीवंधर स्वामी रास : भास जसोधरनी ॥१–७॥
२. जम्बूस्वामी रास : भास जसोधरनी ॥१–५॥
३. मिथ्यादुक्कड़ विनती ॥१–२॥

श्री जिनवर वाणी अमिय समाणी, गंभीर मधुरीय सोहामणीय ।
दूषण रहिता बहु गुण सहिता, मनोहरा रलीयात्म वणीय ।।[1]

गुण

गुण को रस का धर्म कहा गया है। वे रस के उत्कर्षक हैं। चित्त को द्रवीभूत करने वाला आनन्द प्रधान माधुर्य गुण है। मन में उमंग, जोश और उत्साह पैदा करने वाला गुण ओज होता है। जहां अर्थ तुरन्त प्रतीत हो जाय वह सरल, सुबोध पद प्रसादगुण का व्यंजक होता है।[2] ब्रह्म जिनदास के काव्यों की भाषा में ये तीनों गुण देखे जा सकते हैं। परन्तु प्रधानतः इनका साहित्य माधुर्य गुण से परिपूर्ण है। राजस्थान एवं गुजरात प्रान्तवासियों के लिए तो कवि की भाषा प्रसाद गुण से युक्त है। वीर एवं रौद्र रस के प्रसंग में कहीं-कहीं ओज गुण भी मिल जाता है।

माधुर्य गुण : वात्सल्य, शृंगार, करुण एवं शान्त रस में माधुर्य गुण मिलता है—

चन्द्रकला जिम वाधीयुए, खेलइ सरस अपार ।
मही मंडल परि रिखताए, जैसो मेवमिहार ।।
हलु हलु चाले घुंघरोए, मम मूके जीम फूल ।
काला वयण सुहावणा, सुललित बोलइ चंग ।।[3]

प्रसाद गुण : यह गुण प्राय: सर्वत्र मिलता है—

हूं निकलंक सोहामणो, कपट नहीं लगार ।
पण कीधां करम न छूटीये, ईम कही विचार ।।
कलंक रहित मनि चितवे, चिंता अनेक विचार ।
तो कलंकी कीम नीसतरि, दुख तणो भंडार ।।
ईम जाणी नीवर्ष करो, पाय मा करो मन्हे कोय ।
ब्रह्म जिणदास भणे नीरमलते जिम नीकलंक सुखी होय ।।[4]

---

१. सरस्वती जयमाल ।।१।।
२. बाबू गुलाबराय : साहित्य और समीक्षा, पृष्ठ ६६–७१
३. आदिनाथ रास ।।६–७।।
४. हरिवंश पुराण रास ।।४८५–४८७।।

ओज गुण : वीर रस में ओज गुण द्रष्टव्य है—

> तव हणवंत, उठउ बलवंत, रच वैसी केरी जयवंत ।
> झूझ करि जिम मेघकुमार, वरुण कटक कलाएयु तीणीवार ।।
> वरुण झूझि बलागल वीर, पुपुज सूं एक हणवंत वीर ।
> झूझ होइ तिहां अति घणो, हणवंत मान मोड्यु तेह तणु ।।
> वानर कम कीउ इम जाणि, लांगूल फेरी तव याण ।
> वाल्यु तव सात पुत्र, बांध्या सवे साथि ।[1]

शब्द प्रयोग

वाक्य का निर्माण शब्दों से होता है। शब्द चयन से ही कवि की कुशलता एवं विद्वता का परिचय मिलता है। सुन्दर शब्दों के प्रयोग से वाक्य स्वतः सुन्दर बन जाता है। वस्तुतः वाक्य की निर्भरता शब्द चयन पर है। अतः भाषा के विवेचन में कवि के शब्द चयन और शब्द भण्डार पर विचार आवश्यक है। आलोच्य महाकवि ब्रह्म जिनदास की रचनाओं में प्रयुक्त शब्द कोष पर ध्यान देने से ही इनकी भाषा का स्वरूप समझा जा सकता है। ब्रह्म जिनदास संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी, गुजराती और हिन्दी आदि बहुत-सी भाषाओं के ज्ञाता एव विद्वान थे। उनके काव्यों में इन सभी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग मिलता है। उनके द्वारा प्रयुक्त प्रमुख शब्दों का परिचय निम्न प्रकार है—

तत्सम शब्द :

यद्यपि आलोच्य कवि ने अपने काव्यों मे जन-साधारण के बोध की दृष्टि से अपने समय मे प्रचलित लोक भाषा का ही अधिक प्रयोग किया है। इसके मूल में उनकी उपदेश वृत्ति प्रधान है। संस्कृत शब्दावली के प्रयोग से भाषा को बोझिल नहीं होने दिया है, फिर भी संस्कृत के तत्सम शब्दों के प्रयोग से वे बच नहीं पाये हैं। संस्कृत भाषा के विद्वान होने के नाते इस भाषा के शब्द इनकी हिन्दी रचनाओं में सहज ही आ गये हैं। निम्न पद्य अवलोकनीय है—

> अज्ञान तिमिर हर ज्ञान दिवाकर, वदई गुरुने ज्ञान घणी ।
> ब्रह्म जिनदास भाखे विबुध प्रकासे, मन वांछित फल बुद्धि घणी ।।

---

1. हनुमंत रास ।।२९-३१।।

जु जिनवर मुख कमल उत्पन्न, जु द्वादश अंग अमृत सीचन ।
जु गणधर ग्रथित जाल सुविशाल, ते पूजो जिनवाणी गुणमाल ॥[1]

सकल यतीश्वर नमित सुरासुर अनुदिन चरण कमल नमुं ।
जम्ह परसादि मन उल्हासि स्तवन करि भव दुःख गमुं ॥[2]

इनके अतिरिक्त काव्योंमें प्रयुक्त प्रमुख तत्सम शब्द इस प्रकार है—मोचक, परिमल, ज्ञानवंत, विवेक, कनक, प्रथम, षट्, पंचाचार, पचाश्रव, चंद्र, तीर्थंकर, व्रत, मेदिनी, सर्वार्थसिद्धि, कुरंग, अच्युत, सचराचर, पुत्र, उभयगति, अनुचर, संयम, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह सरस्वती, भवदुःख, अश्रुपात, रत्नत्रय, धर्म, सुर, नर, अभ्यतर, पचभुष्ठी, मानुषोत्तर, क्षुधा, त्रीणि, प्रदक्षिणा, स्वस्तिक, मंगलाचार, नमोस्तु, अतरीक्ष. दिगम्बर, श्रावक, जातिस्मरण भवातर, परिषह, वन्दना, क्षपक, अष्टापद, परिहार आदि ।

तद्भव शब्द :

वे शब्द जिनमें विकार पैदा होने से अपने मूल रूप संस्कृत से दूर जा पड़े हैं । कवि ने अपने काव्य मे इन तद्भव शब्दो का प्रयोग बहुत किया है । लगता है ये विकारी शब्द अपने मूल रूप से हटकर प्राकृत या अपभ्रंश की यात्रा करके आये हैं—

सजल सयल आनदीया, नीपनो जय-जयकार ।
जनम हुवो जिणवर तणो, प्रथम तीर्थंकर सार ।
तिणि ज्ञान करि संकरया, कंचन वरण सरीर ।
रूपे मनमथ जीतीयो, प्रथम तीर्थंकर धीर ॥[3]

अन्य प्रमुख तद्भव शब्द इस प्रकार है—दीवो (दीपक, द्वीप), सोहइ (शोभति), थिर (स्थिर), अवर (अपर), मझारि (मध्य), जुगति (युक्ति), पखाल (प्रक्षाल), पांय (पद), मयण (मदन), सयल (सकल), नयर (नगर), सायर (सागर), राय (राजा), भवीयण (भव्यजन), कुंवर (कुमार) काज (कार्य), दीठ (दृष्टि), सीयल (शीतल,). आस (आशा), सहीए (सखी), समाणी (समान), वीर्ज्य (वीर्य), वयण (वचन), मूरति (मूर्ति), सहोदरी (सहोदरी), उपनो (उत्पन्न), भरतार (भर्ता), दुह

---

१. सरस्वती जयमाल ॥७—११॥
२. गुरु जयमाल ॥१॥
३. आदिनाथ रास ॥१—४॥

(द्धि), सिणगार (शृङ्गार), वयण (वचन), रयण (रत्न), कूखि (कुक्षि), नयण (नयन), नउल (नकुल), खितिपाल (क्षेमपाल), संजम (संयम), मुगति (मुक्ति), मारग (मार्ग), अमिय (अमृत), गैवर (गजवर) आदि।

कवि के राजस्थान और गुजरात के सीमावर्ती प्रदेशों के होने के कारण उनके साहित्य में इन दोनों प्रान्तों के शब्द भी मिलते हैं—

राजस्थानी शब्द—कीधा, लीधी, वाध्यो, वधामणो, भण, मोकली, वखाण, सिणगार, मयण, घणी, इणीपरि, रांणा, घणुं, म्हारो, बीजा, आपणी, मरण, खमाव्यो, बिण, सोहावणो, सासण आदि।

गुजराती शब्द—प्रणमीने, तणो, चंग, हवूं, रलियावणो, रूवडो, निरमल, भामणो, उर्छगि, मनिरंग, फेडंते, जिणंद, तम्हे, अम्हे, अभंग, पाम्या, भणी, मूंसाल, नीपजिए, तेडवा, बीहामणी आदि।

आलोच्य महाकवि ने अपने काव्यों में कई संख्यात्मक पारिभाषिक शब्दों का भी प्रयोग किया है। इन्हें हम शब्द रूढ़ियां भी कह सकते है—

एक	—	आत्मा, आत्मध्यान।
दो	—	राग-द्वेष, पाप-पुण्य।
तीन	—	रत्नत्रय, गुप्ति, गुणव्रत, छत्र, सिंहासन।
चार	—	कषाय, गति, मंगल, शिक्षाव्रत, चारघाति व अघाति कर्म।
पांच	—	आचार, आस्रव, इन्द्रिय, समिति, गति, अणुव्रत।
छह	—	षट्काय दया, द्रव्य, कर्म, मन, काल, षट् आवश्यक।
सात	—	भय, नरक, गुणस्थानक, बसन।
आठ	—	ध्यान, मद, कर्म, मंगल, प्रातिहार्य, सम्यक्त्व के आठ गुण, सिद्धों के गुण।
नौ	—	नय, पदार्थ, शील, बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव।
दश	—	दशधर्म, दश अतिशय।
ग्यारह	—	प्रतिमा, गणधर। (तीर्थंकर महावीर के)
बारह	—	तप, चक्रवर्ती, भावना, श्रावक के व्रत, जिनवाणी के द्वादश अंग।

तेरह	—	चारित्र्य ।
चौदह	—	मल, गुणस्थान, मार्गणाएं ।
पन्द्रह	—	प्रमाद ।
सोलह	—	षोडश कारण भावना, सोलह स्वप्न ।
सतरह	—	संयम ।
अठारह	—	दोष ।
उन्नीस	—	जीव समास ।
बीस	—	प्ररूपणाएं ।
इक्कीस	—	चतुर्गुण लक्ष्य, श्रावक के गुण ।
ऊावीस	—	परीषह ।
तेवीस	—	स्थानक कलित ।
चौबीस	—	तीर्थंकर, परिग्रह ।
पच्चीस	—	उपाध्यायों के पच्चीस गुण ।
अठावीस	—	मुनियों के २८ मूल गुण ।
चौतीस	—	अरिहन्तों के चौतीस अतिशय ।
छत्तीस	—	आचार्यों के गुण ।
छियालीस	—	अरिहतों के गुण ।
तरेसठ	—	शलाका महापुरुष ।
चौंसठ	—	चंवर ।

कवि ने अपनी गुरु जयमाल नामक कृति में इन संख्यात्मक शब्दों का विवरण दिया है ।

मुहावरे एवं लोकोक्तियां

मुहावरे एवं लोकोक्तियां काव्य के ही अंग होते हैं । रस गुण एवं अलंकारो के सदृश ये भी काव्य के भाव एवं कला दोनों पक्षों के उत्कर्षक होते हैं । ये अर्थ को व्यंजना एवं मार्मिकता मे विशेष सहायक होते है । भाषा को प्रौढ़ एवं घरेलू बनाने के लिए इनका प्रयोग किया जाता है । इन लोकोक्तियों एवं मुहावरों से लक्ष्यार्थ या व्यंग्यार्थ ग्रहण किया जाता है । ब्रह्म जिनदास ने

अपनी रचनाओं में प्रेषणीयता एवं प्रभावोत्पादकता बढ़ाने के लिए मुहावरों एवं लोकोक्तियों का भी यथा स्थान प्रयोग किया है। यथा—

१—अंधा आगलि कियो जिम नृत्य।[1]

२—बहिरा आगलि गावे गोत।[2]

३—ओसर खेत जिम बोवो बीज, निफल गया नवि आव्यौ बीज ।।[3]

४—आंख मांहि खटकि जिम त्रुंण, काढ्या पूठि सुख पामि मन्य ।।[4]

५—उनयो मेघ देखी करीए, फोडो घडो गमार तु ।
परलोक सुख के कारणोए, कंत छोडि संसार तु ।।[5]

६—सरीर चपल जीम मेघ पटल, जल बुदुबा जीम जाणीय ए ।।[6]

७—तडकउं सेवंतो छांहि आवसि, तिम धरम करतां सुख ऊपजि ।।[7]

८—कीधा करम न छूटीयाए, किम कीजि रोस ।।[8]

९—माण मि दांत लोहमि चंणाए, गयवर किम बंधि थाइ तो ।
काजल भरी उरडाए, पिसी करी किम नासराइ तो ।।[9]

१०—रहट घटि जिम आवी जाइ ।।[10]

११—जेसु बीज क्षेत्र रोपीजि, तैसा फल ते उपजि ।
जेहवा कर्म कीजि, तेहवा भोगवि जिए ।।[11]

१२—कपूर मांहि कपूर पडए, धरमाया धरम विशाल ।।[12]

१३—मेरु अचल चले जो चंग, समुद्र मर्यादा लोपे उत्तंग ।
अग्नी उन्हीं सीतल होए जाण, तहुवन लोपउ सील सुख खाण ।।[13]

---

१. परम हंस रास : भास चौपाईनी ।।३१।। २. वही।
३. जम्बूस्वामी रास : भास चौपाईनी ।।३१।।
४. जीवन्धरस्वामी रास : भास चोपाईनी ।।२।।
५. जम्बूस्वाम्मी रास : भास रासनी ।।२।।
६. आदिनाथ रास : भास रासनी ।।१४।।
७. हनुमन्त रास : भास सहीनी ।।१३।।
८. वही : भास अम्बीकानी ।।११।।
९. जम्बूस्वामी रास : भास रासनी ।।११।।
१०. जीवन्धर रास : भास गुणराज बहानी ।।८।।
११. हनुमन्त रास : भास सहीनी ।।१४।। १२. वही।
१३. राम रास : भास चौपईनी ।।१४।।

सूक्तियां

सूक्तियां भी काव्य का महत्वपूर्ण अंग होती हैं। सूक्तियों के प्रयोग से काव्य की शोभा बढ़ती है और पाठकों को अपने बौद्धिक स्तर के उन्नयन के लिए सामग्री मिलती है। इस सूक्तियों में जीवन के महत्वपूर्ण अनुभव एवं शिक्षाएं निहित रहती हैं। कविवर ब्रह्म जिनदास की रचनाओं मे ऐसी अनेकों शिक्षा पूर्ण एवं नीति पूर्ण सूक्तियां मिलती हैं जो उनके निर्मल एवं गम्भीर हृदय तल से प्रसुस्यूत प्राणी मात्र के इहलोक एवं पारलौकिक जीवन के लिए ग्रहणीय हैं। कवि ने स्थान-स्थान पर सुन्दर उक्तियों का प्रयोग किया है। जिससे इनकी काव्य रचनायें सौष्टव एवं गाम्भीर्य गुण से युक्त हुई हैं। यहां कतिपय सूक्तियां प्रस्तुत हैं—

१—सीयल सरीरह आभरण, सोने भारी अंग।
मुख मंडण साचो वयण, विण तंबोल हुरंग ॥[1]

२—कंठ विण गीत नवि सोहेए, गीत राग विण जाणि तो।
दान विण धन किम सोहेए, दान विवेक विण आणि तो ॥[2]

३—लोक तणु भय हूं मूंकियो, तिण धर्म्म मत छोड़ि।
सत्य पदारथ छोडियो, तो आवै बहु राडि ॥[3]

४—कमल विण सरोवर, चन्द्रमा विण रयणि कहीइ।
सीयल बिण नर नारी, समकित विण जिम बुद्धि कहीइ ॥[4]

५—जीव दया व्रत रूवडु, सचराचर जयवंत।
धर्म सहु माहि आगलु, पाप निकंद बलवंत ॥[5]

६—परनारी जे मनमांहि धरे, ते कहुं किम संसार उतरि।
इह लोकि परलोकि करि विणास, करम न आवि तेहनी पास ॥[6]

---

१. आदिनाथ रास : दूहा ॥१॥
२. राम रास : भास रासनी ॥२४॥
३. वही भास जोवडानो ॥१८॥
४. परमहंस : भास वीनतीनी ॥६॥
५. सुकुमाल स्वामी रास : दूहा ॥४॥
६. वही।

७—जिम कुसुम परिमल विणाए, जल सीयल विण जाणि तो ।
जिम विद्या विणा नर न होहिए, जिम किरण विण भान तो ॥[1]

८—ए संसार अथिर तम्हे जाणि, जग माहि दुःख सुख जाणि ।
संजोग विजोग बहु नीपजेए ॥[2]

९—एकलु आवि जाइ, एकलु सुख दुख भोगविए ।
पाप पुण्य करि एकलु जाणि, एकलु हुं कर्म जोगविए ॥[3]

१०—शरीर एह्न जबु जाणि, आत्मा जुजबु वखांणीए ।
माय बाप बंध जाणि, कर्म संजोग वखांणीए ॥[4]

११—शुचि ए नहि शरीर, अपवित्र सात धातु कही पूरीयोए ।
पवित्र ए आतमा देह, देह मांहि करमि धरयोए ॥[5]

१२—जिहां धर्म तिहां जय, जिहां पाप तिहां विणास तो ।
इम जाणी तम्हे धर्म करो, कहे ब्रह्मचारी जिणदास तो ॥[6]

१३—विद्या अरथ भंडार, विद्या जस बहु उजलो हेलि ।
विद्या ठाकर मांन, विद्या मन होइ निरमलु हेलि ॥[7]

१४—जे साधर्मी गुणे आगलाए, सरल चित्त उत्तंग तो ।
संगति कीजे तेह तणीए, तिहां धरम विस्तार तो ॥[8]

१५—जीव न ब्राह्मण वाणियो, जीव महारो नवि होइ ।
सुभ असुभ करम भोगवि, कंत विचारी जोइ ॥[9]

---

१. जीवन्धर रास : भास रासनी ॥२॥
२. वही : भास भद्र बाहुनी ॥१७॥
३. जीवन्धर रास : भास गुणराज ब्रह्मनी ॥८॥
४. वही ॥९॥ ५. वही ॥१९॥
६. आदिनाथ रास ; भास रासनी ॥३॥
७. अम्बिका देवी रास : भास हेलिनी ॥९॥
८. भविष्यदत्त रास : भास रासनी ॥१५॥
९. रात्रिभोजन रास : दूहा ॥६॥

अलंकार

काव्य में अलंकारों का प्रयोग सौन्दर्य एवं चारुता की वृद्धि के लिये होता है। जो काव्य के शरीर में सौन्दर्य-वृद्धि करके उसकी आत्मा के रस-उत्कर्ष में योग देते हैं। अलंकारों के प्रयोजन एवं परिभाषा के सम्बन्ध में भारतीय काव्य शास्त्रियों में भिन्न-भिन्न मत रहे हैं। आचार्य दण्डी की परिभाषा ठीक है—कि काव्य के शोभा-कारक धर्म ही अलंकार है। काव्य की शोभा में वृद्धि करने वाले उपकरणों को अलंकार कहा जाता है। सभी काव्य-शास्त्रियों ने अलंकारों को काव्य को अस्थिर धर्म माना है।[1] अतः काव्य के लिये अलंकार अनिवार्य नहीं हैं क्योंकि काव्य की आत्मा रस है।

महाकवि ब्रह्म जिनदास ने अपने काव्यों में अलंकारों का प्रयोग न चमत्कार प्रदर्शन के लिए किया है और न ही शोभा कारक मानकर। उनके काव्य में अलंकार अनायास ही आ गये है। वहां प्रयत्न साध्य अलंकार नहीं है। ये तो वाणी के वेग से स्वतः ही सागर की थिरकनों से रत्नराशि के सदृश बिखर गये है। यद्यपि सादृश्य मूलक अलंकारों का प्रयोग विशेष रूप से हुआ है, परन्तु शब्दालंकार अर्थालंकार और उपमालंकार भी दृष्टव्य हैं—

अनुप्रास : जहां व्यंजनों की आवृत्ति हो, वहां अनुप्रास होता हैं, यथा—

१—सहीय समारणीय सरसीय, बरसीय रूप महंत ।।

२—सर्वार्थ सिद्धि सुहावरणो, अहिमेन्द्र गुणधर।

३—कुंवर वा काजि कुंवरि पढ़ो, हम कहि त्रिभुवन राय।

३—त्रिभुवन तारण तम्ह तणा पाय, भाग्य विण किम पामीयाए।

पुनरुक्ति : जहां भाव की रोचकता को बढ़ाने के लिये एक ही शब्द कई बार कहा जाए, उसे पुनरुक्ति कहते हैं, यथा—

१—जिम जिम मेरु फले जिण हसइए, सु० तिमतिम थाइ संतोष।

1. विश्वनाथ : साहित्य दर्पण, ।।१०-११।।

२—हलु हलु चाले सुंदरीए, कुंपय मूके जिम फूल ।[1]

३—बांधि बांधि तलिया तोरण, मांडपि अतिहि उछाह ।

४—खीण मोटी खीण लहुबडीए, खीण खीण गोरी वानि सो ।

उपमा : जहां एक वस्तु की दूसरी वस्तु के समान बनाया जावे—उपमेय को उपमान के समान बतलाया जावे, वहां उपमा अलंकार होता है । उपमानों के चुनाव में कवि बहुत सजग रहा है । उसकी दृष्टि केवल रूढ़ि बद्ध या शास्त्रीय उपमानों पर ही नहीं रही, लोक जीवन एवं लोकमानस से भी उपमानों का चयन किया गया है । यथा—

१—जिणवर वाणी अमीय समाणी, गंभीर मधुर सोहावणीए ।

२—चन्द्र कला जिम वाधीयुए, खेलइ सरस अपार ।

३—मुख विकस्यो अति रूवडी, जैसु पुनिम चंद्र ।[2]

४—बीज चन्द्र जिम वृद्धि करइए, काय दीसइ निरदोष ।

५—अंबर दीसे निरमलो, जैसो मुनिवर चित्त ।

६—सरीर चपल जिम मेघ पटल, जल बुबुडा जीम जाणीयुए ।
धन जोवन उतावलो जाणि, नदीयर जिम वानियाएं ।।

७—परिमल विण कुसुम जिम, शशि विण रयणी जाणि ।
तिम सीयल विण नरनारि, सोहि नहि दुख खाणि ।।

रूपक : उपमेय और उपमान के अभेद को रूपक कहते हैं । जहां उपमेय में उपमान का अभेद आरोप हो, वहा रूपक अलंकार होता है । यथा—

१—चरण कमल स्वामी तणां जोड, उघाडूं मुगति किवाड़ ।

२—मिथ्यात तिमिर फेडण सुविशाल ।

३—अज्ञान तिमिर हर, ज्ञान दिवाकर, पढइ गुणइ जे ज्ञान धणी ।[3]

---

१. आदिनाथ रास : भास रासनी ।
२. जीवन्धर रास : भास गुणराज बडी ।
३. चूनडी गीत ।

उत्प्रेक्षा : जहां उपमेय में उपमान की संभावना की जाती है। अर्थात् एक वस्तु को दूसरी वस्तु मान लिया जावे तो वहां उत्प्रेक्षा अलंकार होता है। कवि की रचनाओं में यह अलंकार अनायास ही प्रयुक्त हुआ है—

१—जाणे सरसति मुखि वसीए, मधुरीय सुललित वाणि।

२—कुंवर पदे पछे सोहिया हो, जाणे नाग कुमार।

३—रूप जोवन अति रूवडोए, जाणइ बीजो इन्द्र।
एक जिह्वा किम बोलीयाए, उपमा रहीत जिणंद ॥[1]

उदाहरण : उदाहरण अलंकार में पहले साधारण रूप से कोई बात कह दी जाती है और फिर उसे समझाने के लिये उसका निरूपण किया जाता है—

पुत्र करी अति सोहीया, आदि जिणंद गुणवंत तो।
जीम चंद्र नक्षत्र करि, पूनिम तणो जयवंत तो ॥[2]

दृष्टान्त : जहां एक वस्तु का कथन करके उसके उदाहरण स्वरूप दूसरी बात कही जाय अथवा जहां उपमेय और उपमान वाक्यों एवं उनके धर्मों में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव हो, वहां दृष्टान्त अलंकार होता है। यथा—

१—कल्पवृक्ष छांडी उत्तंग, अवर वृक्ष सु कीजे किम रंग।[3]
पर काजनि कैसी चिन्त, ते अम्ह आगलि कहो मित्त ॥

अतिशयोक्ति : जहां सम्भावना की सीमा से परे कोई बात कही जाय—

हरिण सिंघ आय, गाए मोर भुजंगम मोह थाए।
आवइए प्रीति करि तिहां, अति घणीए सहीए ॥
दश अतिशय स्वामी वेगलाए, जिणवर सहज सभाव।
स्वेद मल थका वेगलाए, शोणित क्षीर समानि ॥[4]

कारणमाला या गुम्फ : जहां कोई वस्तु एक दूसरे का कारण हो—

वैराग्य विण संजम नही ए, संयम विण गुण सेविणो।
गुण विण ध्यान न उपजिए, ध्यान विण नहि ज्ञान तु ॥

---

१. आदिनाथ रास।
२. आदिनाथ रास। ३. वही। ४. वही।

ज्ञान विज्ञान जिम जाणीयए, कुमति मास्या पुण काहि जो ।
निमित्त पामि मनि उपजए, वैराग्य सविशाल तो ।।[1]

स्मरण : किसी को देखने से पहले की स्मृति हो जाय—

१—अंगांस तव देखियाए, विमम्बर रूप सार तु ।
जाति स्मरण तव उपनोए, जाण्यो सयल वीचार तु ।।[2]

विरोधाभास : जहां वास्तव मे विरोध न होकर विरोध का आभास हो—

जिम जिम दान बढे कवणो, तिम तिम परमाणंद ।
अंगांस मनि चींपवि, बाधे धरमह कंद ।।[3]

उभयालंकार—जहां शब्द एवं अर्थ दोनों में रमणीयता उत्पन्न हो—

दिन दिन बाला वृद्धि करे हो, सुहावला सुजाण ।
बारि समुद्र जिम सोहिया हो, जाणे शसीकर भाणी ।।
तिणी पालखी बैठा आदि जिणंद, सोहइ जैसो पूनिमचंद ।
जाणइ संयमश्री वरी चंग, परणेवा चाल्या सुगति सुरंग ।।[4]

इस उदाहरण में पुनरुक्ति, अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा एवं रूपक अलंकारों का एक साथ सुन्दर प्रयोग हुआ है । इस प्रकार इन अलकारो का प्रयोग श्लाघनीय है । इन अलंकारो से काव्य के भाव एवं कला दोनो पक्षों की ही शोभा मे वृद्धि हुई है ।

शैली

काव्य को उसकी शैली ही रोचक बनाती है । शैली की प्रांजलता और प्रवाहात्मकता के कारण ही काव्य मे उत्सुकता, सम्बद्धता एव सुबोधता रहती है । शैली कलाकार के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होने के साथ-साथ पाठक को मोहित करने का भी साधन है । इस दृष्टि से शैली, कवि एवं उसके काव्य का आवश्यक तत्व है ।

ब्रह्म जिनदास ने अपने सभी प्रबन्ध काव्यों को रास संज्ञा प्रदान की है, जब कि मुक्तक रचनाएं गीत रूप मे रची गयी है । रास संज्ञक रचनाओ की दृष्टि से निम्न बिन्दु विचारणीय हैं—

---

१. आदिनाथ रास ।   २. वही ।   ३. वही ।
४. आदिनाथ रास ।

(१) 'रास काव्य' लोक जीवन की अखंड परम्परा है, शास्त्रीय शैली का नहीं।

(२) रास वर्ण्य वस्तु न होकर वर्णन शैली है।

(३) रास काव्य नृत्य गीतात्मक एवं अभिनयात्मक लोक परम्परा की शैली है। (डा० सुमन राणे—हिन्दी रासो काव्य परम्परा, पृ० २८, २९)

(४) वस्तुतः रास अथवा रासक शब्द उतने ही व्यापक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है, जितने में स्वयं काव्य, जिसमें एक ओर प्रबन्ध की घाटी में महाकाव्य की गुरु गम्भीरता है, दूसरी ओर खण्ड काव्य के लघु भूधर एक ओर गीतों की मधुमय स्त्रोतस्विनी दूसरी ओर मुक्तक का विन्यास।

(५) रास काव्यों के रूप गठन में पूर्ववर्ती प्राकृत अपभ्रंश काव्यों का काफी प्रभाव है। विशेषतः चरित काव्य एवं कथा काव्यों का प्रभाव सर्वाधिक है।

इस आधार पर—

(क) रासो एक चरित काव्य है—ऐतिहासिक महापुरुषों के नाम पर लिखे गए चरित काव्य भारतीय साहित्य की अपनी विशेषता है। महापुरुषों के जीवन चरित के साथ-साथ अन्य सम्बन्धित ऐतिहासिक पात्रों एवं घटनाओं का विवरण भी इनमें रहता है। आलोच्य चरित प्रधान रास काव्य ऐसे ही काव्य हैं।
१. आदिनाथ रास।

(ख) रासो रासक काव्य है—ये रास काव्य 'रासक या रासो काव्य' है। हेमचन्द्र ने अपने काव्यानुशासन में रासो या रसिक काव्यों को गेय रूपक माना है। गेय रूप होने के कारण रस युक्त होने पर ये रास कहलाए। आलोच्य रास काव्य गेय रूप एवं रस युक्त हैं।

(ग) रासो भक्ति काव्य है—ये सभी रास काव्य भक्ति रस से पूर्ण है। अतः भक्ति प्रधान काव्य है। भक्ति के साथ ऐतिहासिक तथ्यों का भी ध्यान रखा गया है। भक्ति के साथ शृंगार एवं वीरता का भी वर्णन भी इनमें मिलता है।

रास की रचना पद्धति को समझने के लिए भाषा एवं छन्दों की भांति साहित्य स्वरूप के विषय में सर्वप्रथम अपभ्रंश साहित्यकारों की ओर निगाह दौड़ानी पड़ती है। अपभ्रंश महाकाव्यों का स्वरूप संस्कृत महाकाव्यों से कुछ भिन्न ही है। लेकिन इनमें संस्कृत महाकाव्य की भांति भिन्न-भिन्न छन्दों की योजना भी मिलती है। इस विषय

में श्री केशवराम शास्त्री का मत है कि अपभ्रंश महाकाव्यों के स्थान पर रास काव्यों की रचना होने लगी जिसमें सन्धियों का स्थान कडवा, भास, ठवणि या ढाल ने ले लिया। ये ही काव्य कालान्तर में विकसित होकर पौराणिक पद्धति के ढाल या भास बद्ध जैन आख्यान काव्यों में परिणित हुए।[1] हमारे आलोच्य कवि की रचनायें भी भासबद्ध हैं। कवि ने प्रत्येक के पद्य को भास नाम दिया है।

इन भासों में कवि ने अपने विचारों को सामान्य जनता तक पहुंचाने के लिए भिन्न-भिन्न शैलियों को अपनाया है—

संवाद शैली—कवि ने इस शैली का प्रयोग कई स्थलों पर किया हैं। जम्बू-कुमार के वैराग्य प्रसंग में उनकी सद्यः परिणीता पत्नियों के साथ हुए संवाद विशेष उल्लेखनीय हैं।

जंबू—जंबु कुंवर कहे भामिणी बात सुणो तम्हे अम्हतणी।
संसार सार न दीसे, दुःखि भर्यो ए सही ए॥

पत्नी—चौथो आश्रमि तप कीजे, मनुष्य जन्म फल लीजे।
परलोक साधीइ स्वामी, निरमलोए सहीए।[2]

इस संवाद शैली में कवि ने दृष्टान्त एवं उदाहरणों का भी सुन्दर प्रयोग किया है।

वर्णनात्मक शैली

वर्णनवृत्ति की विशेष रुचि तो कवि की है ही। कवि के सारे रास काव्य वर्णन प्रधान हैं, जिनमें कथा से कथाएं निकलती हैं। चरित प्रधान काव्य वर्णनों से भरे हुए हैं—

ए कथा हवइ इहां रही, अवर सुणो विचार।
समोसरण हवि वरणवुं, महावीर तणो अवतार॥[3]
अवंतिका भावि सुणउ आज, कथा कहूं मनोहर।
सुकुमाल गुण विशाल, रास कहुं निरभर॥[4]

---

१. डा० दशरथ शर्मा एवं डा० दशरथ ओझा : रास एवं रासान्वयी काव्य, पृष्ठ १६-२०।
२. जम्बूस्वामी रास।
३. आदिनाथ रास।
४. सुकुमाल स्वामी रास।

प्रश्नोत्तर शैली

तीर्थंकर की माता से देवियां प्रश्न करती हैं जिनका उत्तर तीर्थंकर माता स्वाभाविक, गम्भीर एवं सार्थक रूप से देती हैं। ये उत्तर अपने आपमें सूक्तियां हैं जो इह लोक के लिए अभ्युदय कारक एवं परलोक में निःश्रेयस को देने वाली है—

प्रश्न : देवी पूछे मधुरी वाणी, कहो राणी तम्हे सुजाणि।
पुरुषोत्तम कवण संसारि, ते माता तम्हे कहो सविचार ॥

उत्तर : धरम अरथ साध्यो जिणे, काल ते होवि साध्यो सिद्ध ठाम।
ते पुरुषोत्तम कहिए देवि, सुर नर खेचर करे नित सेव ॥

प्रश्न : का पुरुष कोण कहिए माय, ते कहो जिम लागूं पाय।

उत्तर : ए च्यारि पदारथ छे सार, साधा न सके का पुरुष गंवार ॥

प्रश्न : कवण विवेकी कहो गुणवंत, देव धरम उलखे अयवंत।

उत्तर : पात्र कुपात्र जाणे विचार, ते विवेकी सुणो गुणधार ॥

प्रश्न : अविवेकी कोण गुणहीण, उ० देव कुदेव न जाणे वीण।

उत्तर : पशु जिम जनम नीगमें आपणो, मिथ्या भाव छे वलि घणो।

प्रश्न : कवण सूर इणे संसारि, मोह मयण आणवे हारि।

उत्तर : राग द्वेष जीते घनघोर, मन इन्द्री निवारे जोर ॥[1]

इस प्रकार कवि ने तीर्थंकर माता की सेवा के प्रसंग में इस शैली को अपनाया है। ये प्रश्नोत्तर सामयिक एवं सार्थक बने हैं।

संवाद, वर्णनात्मक प्रश्नोत्तर, सम्बोधन एवं गीत शैली में कवि ने प्रभावोत्पादकता का समावेश किया है। इनके प्रयोग से काव्य की रोचकता बढ़ी है। इन शैलियों के सहारे अपने भाव एवं महापुरुषों का चरित्र बड़े ही सहज ढंग से पाठकों के लिए प्रस्तुत किये हैं। ये शैलियाँ रोचकता एवं जिज्ञासा के तत्त्वों से पूर्ण है। इन विभिन्न शैलियो का प्रयोग कवि की अनुपम कला का परिचायक है।

---

१. आदिनाथ रास।

इसके प्रयोग से काव्य का रसास्वादन नाटक एवं कथा की तरह जन साधारण के लिए सहज ग्राह्य हो गया है।

छन्द विधान

छन्द योजना की दृष्टि से आलोच्य रास-काव्य विचित्र वैविध्य लिए हुए हैं। इनकी छन्द योजना संस्कृत, पाली, प्राकृत और हिन्दी आदि से प्राय: भिन्न दिखायी देती है। अपभ्रंश का दूहा और चौपई छन्द इनमें पर्याप्त मिलता है। 'वस्तु' छन्द का प्रयोग भी बहुत हुआ है। लेकिन वह षट्पदी न होकर दसपदी है। जिसके अन्तिम चार चरण सम्पृक्त हैं। दूहे को निकालने से यह 'वस्तु' छन्द अपूर्ण होगा। दूहे और वस्तु छन्द को छोड़कर शेष सभी छन्दों को कवि ने 'भास' नाम दिया है। जो सन्धियों (सर्ग) के प्रतीक हैं। इन्हें ढाल भी कहा गया है।[1] ये सभी गेय हैं। छन्द शास्त्र में इनका विवरण नही मिलता। कवि ने अपने समय की प्रचलित रागों को भास युक्त किया है। इस प्रकार कुल २८ भास छन्दों का प्रयोग हुआ है। प्रगीति काव्यों में मुक्तक छन्दों का प्रयोग हुआ है। किन्ही के अन्त में 'घत्ता' छन्द का भी प्रयोग मिलता है। मुक्तक रचनाओं को कवि ने 'गीति' नाम दिया है। जब कि प्रबन्ध रचनाओं को रास के साथ कवित्त भी कहा है।[2] सभी छन्द मात्रा वृत्त है। जिनमें प्रमुख छन्द इस प्रकार है—

वस्तु छन्द : कवि ने अपने सभी प्रबन्ध काव्यों का प्रारम्भ एवं अन्त इसी के माध्यम से किया है। इसीके माध्यम से कवि ने अपने आराध्य का स्मरण एवं वन्दना की है तथा कथानक के प्रारम्भ की सूचना भी दी है—

> वीर जिणवर वीर जिणवर, पाय प्रणमेसुं ॥
> सरसती स्वामिणी वली तवुं हुवे बुधि सारहुं वेगि मांगु ;।
> गणधर स्वामी नमस्करूं, श्री सकलकीरति गुरु पाय वांदुं ॥
> मुनि भुवनकीरति पाय प्रणमीने, करि सुं हुं रास हुवे चंग ॥
> ब्रह्म जिनदास भरणे निरमलो, रामायण मति रंग ॥[3]

---

१. रास और रासान्वयी काव्य, पृष्ठ २० ।

२. (क) रास कीयो मि निरमलोए, भाव सहित विशालतु ।
आदि पुराण जोई करीए, सुगुम कीयो गुणमाल तु ॥१७॥ आदिनाथ रास ।
(ख) कवित्त कीयो मि रूवडुं, गुण वरणव्या गुणवंत ।
जीवंधर स्वामी मुनि तणां, भाव धरी महन्त ॥१॥ जीवंधर रास ॥

३. राम रास ॥१॥

यह वस्तु छन्द अपनी विशेषताएँ रखता है। वस्तु शब्द का अर्थ है कथानक की रूप-रेखा का ज्ञान। यह एक प्रकार से 'कड़वक' का संक्षिप्त रूप है। इसके प्रथम चरण के प्रथम अर्द्धांश की बार-बार पुनरावृत्ति होती है। अतः यह ध्रुवपद की तरह है। वस्तु के मूल शरीर में दो ही चरण होते हैं, जबकि हेमचन्द्र एवं प्राकृत पिंगल के अनुसार इसमें चार चरण माने जाते हैं। हेमचन्द्र ने इसका नाम रड्डा बताया है। जिसमें कुल ६८ मात्राएँ होती है। अन्त में दोहा होता है। रास काव्यों में इसे सर्वत्र छन्द कहकर घोषित किया गया है।[1]

वस्तु छंद की रचना इस प्रकार है—इसके प्रथम चरण में ७+७+८=२२ मात्राएँ और अंतिम मात्रा लघु होती है। द्वितीय एवं तृतीय चरण में १२+१६+२८ मात्राएँ होती हैं। प्राकृत पिंगल के अनुसार चौथे चरण में ११+१६+२७ मात्राएँ होती हैं। और सबसे अन्त में २४ मात्राओं (१३+११) का दोहा होता है।[2] इस वस्तु छन्द से ही कथा की परिसमाप्ति हुई है—

> रास कीयो रास कीयो अति मनोहर ।।
> अनेक कथा गुणि आगलो, राम तणो गुणो सार निरमल ।
> एक चित्त करी सांभलोए, भाव धरवी मनमाहि उज्जल ।।
> श्री सकल कीरति पाय प्रणमीने, ब्रह्म जिणदास भणे सार ।
> पढे गुणे जे सांभले, तहने पुण्य अपार ।।[3]

दूहा छन्द : यह शब्द संस्कृत के 'दोधक' से उत्पन्न माना जाता है। यद्यपि यह छन्द गुजराती, ब्रज, राजस्थानी और हिन्दी आदि में बहुतायत से मिलता है। तथापि अपभ्रंश की ज्येष्ठा पुत्री होने के कारण राजस्थानी में इस छन्द का प्रयोग शुद्ध रूप में मिलता है। राजस्थानी में यह 'दूहा' नाम से प्रसिद्ध है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार जैसे श्लोक अनुष्टुप संस्कृत का, गाथा प्राकृत की प्रतीक हो गयी, इसी प्रकार दोहा अपभ्रंश का।[4] अपभ्रंश को दूहा विद्या कहा गया है। इसकी लोकप्रियता किसी से छिपी नहीं है। अधिकांश कवियों ने इसे अपनाया है। श्री नरोत्तमदास स्वामी के अनुसार राजस्थानी, गुजराती एवं हिन्दी में इसे अपभ्रंश

---

१. रास और रासान्वयी काव्य, पृष्ठ १६३ ।

२. वही ।

३. राम रास ।

४. हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृष्ठ ९२ ।

की बधीती स्वरूप स्वीकार किया गया है। वस्तुतः दूहा छन्द राजस्थानी साहित्य एवं जनता का अनन्य प्रिय छन्द रहा है। मुक्तक काव्य धारा का अंग होते हुए भी दूहा प्रबन्ध कथा के आनन्द को द्विगुणित करता है। जैन कवियों ने इस छन्द को बड़े प्रेम से अपनाया है। इसके उद्भव एवं विकास में इनका योगदान अविस्मरणीय है। अल्पकाय होने से इसे सरलता से याद किया जा सकता है।

कवि ने इसे मुक्तक एवं प्रबन्ध दोनों का वाहन बनाया है। उपमा, रूपक एवं उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों से कवि ने इन छन्द की लोकप्रियता में वृद्धि की है। काव्य में यह भावाभिव्यक्ति एवं कलात्मकता का उत्कृष्ट आदर्श बनकर आया है। कई रचनाओं का प्रारम्भ एवं अन्त इसी छन्द से हुआ है।

दोहे छन्द के प्रथम एवं तृतीय चरण में १३ और द्वितीय एवं चतुर्थ चरण में ११ मात्राएँ होती हैं। अन्त में लघु आवश्यक है। कवि ने अपने रास काव्य में इसी दूहे का प्रयोग किया है—

> कलंक रहीत मनि चींतवे, चींता अनेक विचार।
> तो कलंकी कीम नीस्तरि, दुःख तणो भंडार॥

इसी छन्द से कवि कथा परिवर्तन की सूचना देता है—

> ए कथा हवें इहां रहीं, अवर कथा कहुं सार।
> सगर चक्रवरती तणी, जिम आणो पुण्यभांन॥

भास छन्द : भास शब्द बंध या संधियों के सूचक हैं। इन्हें अन्यत्र ढाल भी कहा गया है। रासो काव्य, गेय प्रधान होने के कारण संस्कृत के सर्ग एवं अपभ्रंश के संधियों के स्थान पर 'भासो' में बांधे जाने लगे। रास काव्यों को विभिन्न भागों (संधियों एवं सर्गों) में विभक्त कर गेय रूप प्रदान किया गया है।[1] इनमे प्रयुक्त राग रागिनियों के उदाहरण इस प्रकार हैं—

भास चौपईनी

> अरम विनोद काया अपार, तब महीमा सावे गुणधार।
> सकल सहोदर पूगी आस, जनम होसे मुगति हि निवास॥

---

१. रास और रासान्वयी काव्य, पृष्ठ १५।

भास रासनी

मचकेवी रांगी कवडीए, लोपि सुती पुण्यवंत तो ।
पाछिलो रयणी सोहावलीए, सपन दीठा सुललित तो ॥

भास वीनतीनी

सांभली चरम विचार, श्रेणिक राणो हर्षियोए ।
ऊभो रह्यो गुणवंत, दुइ कर जोडी गह गह्योए ॥

भास जशोधरनी

भवीयण भावि सुण आज, कथा कहुं मनोहर ।
सुकुमाल स्वामी गुण विशाल, रास कहुं निरभर ॥

भास तीन चौबीसीनो

सुख भोगवे तिहां अति चंग, सयल सजन आपणे मन्दिरंगि ।
दुःख तणो नहीं संग ॥

भास अंबिकानी

अग्निलीला बोली तीणे वारि, कांइ नीकालो मझ धणीय ।
कवण अन्याय कीयो मे कंत, बात सुणु तम्हे अम्ह तणीए ॥

भास हेलिनी

विद्या अर्थ भण्डार, विद्या जस बहु ऊजलो हेलि ।
विद्या ठाकर मांन, विद्या मन होइ निरमलो हेलि ॥

भास सहीनी

जैसु बीज क्षेत्र रोपीजि, तैसु फल ते ऊपजि ।
जेहुवां कर्म कीजि, तेहुवां भोगवीजिए, सहीए ॥

भास आनन्दानी

पुत्र जन्म हुवो रूवडो आनन्दारे, नीपनी जय जयकार तो ।
सयल सजन आनन्दीया, आ० पुहुइ न माइ भार तो ॥

भास माल्हतंडानी

उत्तम पात्र दान दीजिये, सुरणो सुन्दरे, तो उत्तम गति होइ ।
सुरपति फल पामीयेए, सु० सु०, तीर्थंकर पद जोइ ।।

घत्ता

अज्ञान तिमिर हर ज्ञान दिवाकर, पढइ सुणइ जे ज्ञानं घणी ।
ब्रह्म जिनदास भासे विबुध प्रकासो, मन वांछित फल बुद्धि घणी ।।

इस प्रकार महाकवि ब्रह्म जिनदास ने अपने काव्यों को उपर्युक्त दूहा, वस्तु, चौपई और घत्ता आदि छन्दों एवं गेय युक्त विभिन्न भासों में निबद्ध किया है। संख्या विशेष की दृष्टि से कवि ने सर्वाधिक रूप से भास चौपईनी, भास रासनी, भास वीनतीनी, भास यशोधरनी भास सहीनी, भास अंबिकानी आदि भासों एवं दूहे छन्द का प्रयाग किया है।

□□□

अध्याय 5

दार्शनिक विचारधारा

मनुष्य अपने आस-पास अनेक प्रकार के पदार्थ देखता है। वह संसार के बीच अपने आपको अकेला नहीं पाता, अपितु अन्य पदार्थों से घिरा हुआ अनुभव करता है। वह यह समझता है कि मेरा संसार के सब पदार्थों से कोई न कोई सम्बन्ध आवश्यक है। किसी न किसी रूप में मैं सारे जगत से बंधा हुआ हूँ। जिस समय मनुष्य इस सम्बन्ध को समझने का प्रयत्न करता है उस समय उसका विवेक जाग्रत हो जाता है, उसकी बुद्धि अपना कार्य संभाल लेती है। उसकी चिन्तन शक्ति उसकी सेवा में लग जाती है। इसी का नाम दर्शन है। दूसरे शब्दों में दर्शन जीवन एवं जगत को समझने का एक प्रयत्न है। दार्शनिक जीवन एवं जगत को खण्डशः देखता है, क्योंकि दोनों की अखण्ड सत्ता होती है, जिसका प्रभाव जीवन के प्रत्येक कार्य पर पड़ता है। जीवन व जगत के इस सम्बन्ध को समझना ही दर्शन है।[1]

हिन्दी साहित्य दर्शन के ही क्रोड़ में पला है। भक्तिकाल में यह दर्शन द्वैतवाद, अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद आदि में विभक्त हो गया। आधुनिक काल में भी कवि दर्शन से मुक्त होकर नही चले। वे मार्क्सवाद, फ्रायडवाद, गाँधीवाद, आस्तिकवाद आदि विभिन्न विचारधाराओं से प्रभावित रहे हैं।[2] भारतीय दर्शनों की चिन्तन एवं मनन की धुरि आत्मा और विश्व का स्वरूप ही रही है। इसी का श्रवण, दर्शन, मनन, चिन्तन और निदध्यासन जीवन के अन्तिम लक्ष्य रहे हैं।

विभिन्न दर्शनकार ऋषियों ने अपने-अपने दृष्टिकोणों से वस्तु के स्वरूप को जानने की चेष्टा की है और उसी का बार-बार मनन-चिन्तन किया है। जिसका स्वाभाविक फल यह है उन्हें अपनी बलवती भावना के अनुसार वस्तु का वह स्वरूप स्पष्ट झलका और दीखा। भावनात्मक साक्षात्कार के बल पर भक्त को भगवान का दर्शन होता है, उसकी अनेक घटनाएँ सुनी जाती हैं। शोक या काम की तीव्र परिणति होने पर मृत इष्टजन और प्रिय कामिनी का स्पष्ट दर्शन अनुभव का विषय ही

---

१. डा० मोहनलाल मेहता, जैन दर्शन, पृ० १२।

२. उषा बाफना, सन्त कवि जयमल्ल, पृ० १०५।

है ।[1]

कालिदास का यक्ष अपनी भावना के बल पर मेघ को सन्देशवाहक बनाता है और उसमें दूतत्व का स्पष्ट दर्शन करता है । गोस्वामी तुलसीदास को भक्ति और भगवद् गुणों के प्रकृष्ट भावना के बल पर चित्रकूट में भगवान राम के दर्शन अवश्य हुए होंगे । आज भी भक्तों की परम्परा अपनी तीव्रतम प्रकृष्ट भावना के परिपाक से अपने आराध्य का स्पष्ट दर्शन करते हैं । यह विशेष सन्देह की बात नहीं है । इस तरह अपने लक्ष्य और दृष्टिकोण की प्रकृष्ट भावना से विश्व के पदार्थों का स्पष्ट दर्शन विभिन्न दर्शनकार ऋषियों को हुआ होगा, यह निस्सन्देह है । अतः इसी भावनात्मक साक्षात्कार के अर्थ में दर्शन शब्द का प्रयोग हुआ है । यह बात हृदय को लगती है और सम्भव भी है । फलितार्थ यह है कि प्रत्येक दर्शनकार ऋषि ने पहले चेतन और जड़ के स्वरूप उनका परस्पर सम्बन्ध तथा दृश्य जगत की व्यवस्था के मर्म को जानने का अपना दृष्टिकोण बनाया । पीछे उसी को सतत् चिन्तन और मनन धारा के परिचालक से जो तत्त्व साक्षात्कार की प्रकृष्ट और बलवती भावना हुई—उसके विशद् और स्फुट आभास से निश्चय किया कि उसने विश्व का यथार्थ किया है तो दर्शन का मूल उद्‌गम दृष्टिकोण से हुआ है और उसका अन्तिम परिपाक है—भावनात्मक साक्षात्कार में ।[2]

धर्म और दर्शन एक-दूसरे के पूरक शब्द हैं । धर्म की अनेक व्याख्याओं और दर्शन की विचारधाराओं का मिलान करने पर धर्म और दर्शन अलग-अलग दिखायी नहीं देते हैं । यद्यपि विवेचन के सौन्दर्य की दृष्टि से दर्शन को विचार पक्ष और धर्म को आचार पक्ष के रूप से पृथकतया देखा जा सकता है तथापि इनका ऐकान्तिक पार्थक्य असम्भव है । जैन धर्म और दर्शन के विषय में भी यह बात लागू होती है । जैन दर्शन का मूल विचार अहिंसा है और अहिंसा के फलित होने वाला आचार जैन धर्म है ।[3]

प्रत्येक धर्म अपना एक दर्शन भी रखता है । दर्शन में — आत्मा क्या है ? परलोक क्या है ? विश्व क्या है ? ईश्वर क्या है ? आदि पर विचार होता है । धर्म के द्वारा आत्मा को परमात्मा बनाने का मार्ग बताया जाता है । विचारों का मनुष्य के आचार पर बड़ा प्रभाव पड़ता है । इसी से दर्शन का प्रभाव धर्म पर बड़ा गहरा होता है । दर्शन साध्य तो धर्म साधन है ।[4]

---

१. प्रमाण वार्तिक : २।२८२ ।
२. डा० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य, जैन दर्शन, पृ० ३४ ।
३. पद्मपुराण और रामचरित मानस, पृ० २५१ ।
४. पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री, जैन धर्म पृ० ६९—७० ।

हिन्दी का सन्त काव्य वैदिक दर्शन और श्रमण दर्शन से अधिक प्रभावित रहा है। जैन सन्त कवियों की रचनाओं का मूलाधार तो जैन दर्शन ही रहा है। इसीलिए अनेक विद्वानों ने तो जैन साहित्य को दर्शन या धार्मिक साहित्य तक भी कह दिया है। किन्तु यह स्मरणीय है कि उसमें पारिभाषिक दर्शन की सी शुष्कता नहीं है। जैन दर्शन जीवन-दर्शन है। वह व्यर्थ के काल्पनिक आदर्शों के गगन की उड़ान नहीं, वरन् पग-पग पर जीवन के प्रत्येक व्यवहार में ढलने की वस्तु है।[1] भूतपूर्व राष्ट्रपति एवं प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने जैन-दर्शन की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार बतलायी है—इसका प्राणिमात्र का यथार्थ रूप में वर्गीकरण, इसका ज्ञान सम्बन्धी सिद्धान्त, प्रख्यात सिद्धान्त स्याद्वाद एवं सप्तभंगी अर्थात् निरूपण की सात प्रकार की विधियाँ और उसका संयम प्रधान नीतिशास्त्र अथवा आचार शास्त्र। इस जैन दर्शन में अन्यान्य भारतीय विचार पद्धतियों की भाँति क्रियात्मक नीति-शास्त्र का दार्शनिक कल्पना के साथ गठ-बन्धन किया गया है।[2] इन समस्त विशेषताओं को सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के नाम से संक्षेप में कहा जा सकता है। इन तीनों से ही मोक्ष का मार्ग मिलता है। सम्यग्दर्शन होने पर ही सम्यग्ज्ञान होगा और सम्यग्ज्ञान होने पर ही सम्यक् चारित्र होगा। तभी मोक्ष मिलेगा। तत्वार्थ श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहते हैं। जिस जिस प्रकार से जीवादि पदार्थ व्यवस्थित है, उसी प्रकार से उनकी अवगति को सम्यक्ज्ञान कहा जाता है। संसार के कारण की निवृत्ति के प्रति उद्यत ज्ञानी जिन अच्छे कामों को करता है, उसे सम्यक्चारित्र कहा जाता है। सम्यक् शब्द यहां साभिप्राय है।[3]

ब्रह्म जिनदास के काव्यों पर जैन धर्म एवं दर्शन का पूर्ण प्रभाव है। कथा के माध्यम से जैन साहित्य, धर्म एवं दर्शन का ज्ञान कराया गया है जो कवि का अभीष्ट रहा है। नायक के वैराग्य ग्रहण के पश्चात् साधनावस्था में हमें जैनत्व की झलक स्पष्ट मिल जाती है। केवलज्ञान प्राप्त हो जाने पर भगवान आदिनाथ ने प्राणी मात्र को आत्म उपदेश देते हुये सात तत्व, नौ पदार्थ, षट् द्रव्य, सम्यक्त्व के आठ अंग, चार अनुयोग, श्रावक एवं मुनि के आचार आदि की विस्तृत व्याख्या की है, जिनसे जैन दर्शन के तत्वों की जानकारी मिलती है।[3]

---

१. उषा बाफना : सन्त कवि जयमल्ल, पृ० १०५।

२. डा० राधाकृष्णन् : भारतीय दर्शन, पृष्ठ २७०।

३. डा० रमाकान्त शर्मा : पद्मपुराण और मानस, पृष्ठ २५१।

४. आदिपुराण रास : भास तीन चौबीसीनी ॥६–२७॥

जैन दर्शन का प्रयोजन आत्मा के परमहित का प्रतिपादन करना है। आत्माका परमहित मोक्ष निर्वाण है। वह ही परम पुरुषार्थ है। मोक्ष परमोत्कृष्ट निराबाध सुख स्वरूप है। वह मोक्ष न तो केवलज्ञान से, न ज्ञान रहित चारित्र से और न ज्ञान और चारित्र रहित दर्शन से ही प्राप्त होता है। वह तो सम्यक्त्व विशिष्ट इन तीनों के समुदाय से प्राप्त होता है।[1] सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ही मोक्ष का मार्ग है।[2]

सम्यग्दर्शन

जीवादितत्वों का सच्चा श्रद्धान ही सम्यग्दर्शन है।[3] तत्व सात है—जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। इनमें पाप और पुण्य ये दो और जोड़ देने से नौ पदार्थ हो जाते हैं।

> जीव अजीव आश्रव बन्ध जाणो, संवर निर्जरा मोक्ष बखाणो।
> तत्व सात ए मानो ।।१०।।
> पाप पुन्य सहित सविचार, पदारथ कहीए गुणधार।
> इम जाणो तम्हे सार ।।११।। आदि पुराण रास ।।

विश्व में इन तत्वों के अतिरिक्त कुछ अन्य शेष नहीं है। इन्हीं में विश्ववर्ती सभी पदार्थों का समावेश हो जाता है।

जीव या आत्मा : इन्द्रिय, बल, आयु तथा श्वासोछ्वास इन चार प्राणों द्वारा जो जीता है, प्राण धारण करता है, वह जीव है। स्वचेतनात्मक स्वभाव से जो जीता है वह जीव है। यह जीव उपयोगमयी, अमूर्तिक, कर्त्ता, अपने शरीर के परिमाण वाला, भोक्ता और उर्ध्वगमन स्वभाव वाला है।[4] इस जीव के दो भेद हैं—एक सिद्ध और दूसरा संसारी। जो कर्म बन्धनों से मुक्त है, शाश्वत सुख को प्राप्त करने वाले हैं वे सिद्ध जीव है। कर्म बन्धन से बद्ध जो जीव एक गति से दूसरी गति में जन्म लेते हैं और मरते हैं वे संसारी जीव कहलाते हैं। संसारी जीव गति के भेद से चार प्रकार के होते हैं—नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देव। कवि ने संसारी

१. पं० चैनसुखदास न्यायतीर्थ : जैन दर्शन सार, पृष्ठ १।
२. सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः : तत्वार्थ सूत्र अध्याय १, सूत्र १।
३. तत्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् : तत्वार्थ सूत्र अध्याय १, सूत्र २।
४. पं० चैनसुखदास न्यायतीर्थ : जैन दर्शन सार, पृष्ठ २।

जीवों को दो भागों में बांटा है—एक भव्य और दूसरा अभव्य। भव्य जीव सम्यक् धर्म के आचरण करने वाले होते है जो संसार से छूट जाते हैं। अभव्य जीव मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्या चारित्र से अनेक योनियों में भटकते हैं। उनके लिये मोक्षद्वार दुर्लभ है। ये संसारी जीव चारों गतियों मे सम्यक्त्व के अभाव में अनन्त काल तक परिभ्रमण करते रहते हैं।[1]

जैन दर्शन प्रत्येक संसारी आत्मा को कर्मों से बद्ध मानता है। यह कर्म बन्धन उसके किसी अमुक समय मे नही हुआ, किन्तु अनादि से है। जैसे खान से सोना सुमैल ही निकलता है वैसे ही संसारी आत्माए भी अनादिकाल से शुद्ध ही हों तो फिर उनके कर्म बन्धन नही हो सकता क्योकि कर्म बन्धन के लिये आन्तरिक अशुद्धि का होना आवश्यक है। उनके बिना भी यदि कर्म बन्धन होने लगे तो मुक्त आत्माओं के भी कर्म बन्धन का प्रसंग उपस्थित हो सकता है और ऐसी अवस्था मे मुक्ति के लिए प्रयत्न करना व्यर्थ हो जायेगा। इस प्रकार जैन दृष्टि से जीव जानने देखने वाला, अमूर्तिक, कर्त्ता, भोक्ता, शरीर परिणाम वाला और अपने उत्थान-पतन के लिए उत्तरदायी है।[2] जैन दर्शन जीव बहुत्ववादी है। वह प्रत्येक जीव की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार करता है। उसका कहना है कि यदि सभी जीव एक होते तो एक जीव के सुखी होने से सभी जीव सुखी होते और एक जीव के दुःखी होने से सभी जीव दुःखी होते, एक के बन्धन से भी बन्धन बद्ध होते और एक की मुक्ति से सभी मुक्त हो जाते। जीवों की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं को देखकर ही सांख्य ने भी जीवों की अनेकता को स्वीकार किया है। जैन दर्शन का भी यही मत है।[3]

यह जीव "आत्मा" नाम से भी कही जाती है। आध्यात्मिकता से यह आत्मा तीन प्रकार का है—बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। जो शरीर वगैरह में आत्म बुद्धि करता है, वह बहिरात्मा है। उससे उल्टा अर्थात् जिसे स्वपर का भेद ज्ञान हो जाता है वह अन्तरात्मा है और जो कर्म मल की कालिमा से रहित हो जाता है वह परमात्मा कहा जाता है। परमात्मा बनना ध्येय है, अन्तरात्मा होना उसका कारण है और बहिरात्मा होना तो छोड़ने योग्य है। सामान्य आत्मा की अपेक्षा इन तीनों में कोई भेद नहीं है। सम्पूर्ण आत्माओं में परमात्मा बनने की शक्ति मौजूद है। जैन दर्शन में ईश्वर नाम की कोई भिन्न आत्मा नहीं मानी जाती।

१. आदि पुराण रास : भास तीन चौबीसीनी ॥१२–१७॥
२. पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री : जैन धर्म, पृष्ठ ९२।
३. वही : पृष्ठ ९३–९४।

परमात्मा ही ईश्वर है। यह भेद कर्मों का कारण है। कर्ममल के छूट जाने पर आत्मा परमात्मा बन जाती है।[1]

आत्मा सदा अमर रहती है। नाना योनियों में परिभ्रमण करते रहने पर भी इसके स्वरूप में कोई अन्तर नहीं आता। जैन दर्शन में आत्मा को चैतन्य एवं ज्ञान रूप कहा गया है। जिसमें न कोई रस है, न कोई रूप और न किसी प्रकार की गन्ध है। अतएव जो अव्यक्त है, शब्द रूप भी नहीं है, किसी भौतिक चिह्न से भी नहीं जाना जा सकता और न ही जिसका कोई निर्दिष्ट आकार ही है। उस चैतन्य गुण विशिष्ट द्रव्य को आत्मा या जीव कहा जाता है।[2]

कविवर ब्रह्म जिनदास ने अपने "परमहंस रास" में परमहंस स्वरूप शुद्ध स्वभावी गुण वाले आत्मा का चित्रण किया है। कवि ने काया रूपी नगरी में आत्मा को परमहंस राजा के रूप में माना है। निश्चय नय से वह आत्मा परमहंस स्वरूप ही परमहंस त्रिभुवन नगरी का राजा है। यह अनन्त गुणों वाला है, जिसके नाम स्मरण से पाप चले जाते हैं। जो तीन लोक में निर्मल, निष्कलंक, गुणवन्त, जयवन्त और सहस्रनाम का धारी है। अतीत, अनागत, वर्तमान मे जो जन्म, जरा और मृत्यु से परे अजर और अमर कहलाता है। निश्चय रूप से वह त्रिभुवन में नहीं समाता, लेकिन व्यवहार में जो शरीर वाला है और योग और ज्ञान से ही जो गम्य है।[3]

जिस प्रकार पाषाण में सोना, गोरस मे घृत, तिलों में तेल, काष्ट में धुआं, कुसुम मे परिमल, शब्द में ध्वनि, जल में शीतलता, उसी प्रकार आत्मा में शरीर का का निवास है—

> पाषाण मांहि जिम सोनो होइ, गोरस मांहि घृत नु जोइ।
> तिल मांहि तेल जिम वसे अंग, तिम शरीर आतमा अभंग॥
> काष्ट अग्नि मांहि धरणी त्रेह, कुसुमइ परिमल रस मांहि नेह।
> मावैं शब्द शीत जिम नीर, तिम आतमा वसै जग शरीर॥[4]

---

१. पं० चैनसुखदास न्यायतीर्थ : जैन दर्शन सार, पृष्ठ १५–१६
२. आचार्य कुन्दकुन्द : प्रवचन सार २–८०
३. परमहंस रास : भास चौपाईनी ॥२–5॥
४. वही ॥११–१२॥

अन्तरात्मा या आत्मोन्मुखी जीव ही परमहंस है। लेकिन जब तक काम, क्रोध, लोभ, मोह, मान, माया, राग द्वेषादि कषाय के चक्रव्यूह से बद्ध होकर चेतना का ध्यान करना छोड़ देता है, तब वह केवल बहिरात्मा मात्र हो जाता है—

माया सु मेल कीयो, परम हंस अपार।
एक मेक देह हुआ, न करे केहनी सार॥
परमहंस परमात्मा, ते नाम गयो तस चंग।
बहिरात्मा जीव तणो, नाम पाम्यो सुरंग॥[2]

विवेक के बिना सुमति नहीं, सुमति के बिना सम्यक्त्व नहीं और सम्यक्त्व के बिना आत्मा परमात्मा नही बन सकती।[3]

अजीव : आत्म तत्त्व को छोड़ कर जो कुछ दिखायी पड़ने वाला स्थूल तथा न दिखायी पड़ने वाला सूक्ष्म पदार्थ ही सब अजीव तत्त्व कहा जाता है। मुख्य रूप से दो ही तत्त्व हैं। बाकी आस्रव वगैरह पांच तत्त्व तो इन दोनों के पर्याय हैं। इस अजीव तत्व के पांच भेद हैं—पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल।[4] ये पांच मिलकर अर्थात् जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश और काल षट् द्रव्य कहलाते हैं।[5] काल को छोड़कर शेष द्रव्यों को पंचास्तिकाय कहते है। ये पांचो द्रव्य शरीर के सदृश बहु प्रदेशीय हैं। द्रव्य नित्य और अनित्य होते हैं। क्योंकि प्रत्येक द्रव्य उत्पाद, विनाश और ध्रौव्य स्वभाव वाला है। द्रव्य में गुण ध्रुव होते हैं, परन्तु पर्याय की दृष्टि से वह उत्पाद और विनाशवान है। पुद्गल रूप, रस, गन्ध और स्पर्शवाला है।[3] रूपी है, मूर्तिक है और परमाणु और स्कन्ध दो भेदों वाला हैं। धर्म द्रव्य जीव और पुद्गलों को चलने मे तथा अधर्म द्रव्य जीव और पुद्गलों के ठहरने में सहायक है। सभी द्रव्यो को स्थान देने वाला आकाश द्रव्य है। जो सर्व व्यापी है। जो वस्तु मात्र के परिवर्तन मे सहायक है—उसे काल द्रव्य कहते हैं। पुद्गल के अलावा सभी द्रव्य अमूर्तिक हैं।

---

१. परमहंस रास . दूहा ॥१—२॥
२. वही : ॥४—५॥
३. अजीव तत्व पांच भेद जाणो, पुदगल धर्म अधर्म्म बखाणो।
आकाश काल सुजाण ॥१८॥ आदिनाथपुराण रास।
४. षट् द्रव्य तणा भेद ए साह, कहीया सुललीत ए गुणाधार।
जीव आदि सविचार ॥१९॥ आदिनाथ पुराण रास।
५. रूपवत पुद्गल तम्हे जाणो, अवर अमूर्त सही बखाणो।
चेतना लक्षण जीव ॥२०॥ आदिनाथ पुराण रास।

आस्रव : आत्मा में उत्पन्न होने वाले मोह-राग-द्वेष भावों के निमित्त से कर्मों का आना ही आस्रव है। जीव आदि कर्मों का बन्ध तभी सम्भव है जब जीव में कर्म पुद्गलों का आगमन हो। अतः कर्मों के आने के द्वार को आस्रव कहते हैं। वह द्वार जिसके द्वारा जीव में सर्वदा कर्म पुद्गलों का आगमन होता है, जीव की ही एक शक्ति है, जिसे योग कहते हैं। यह शक्ति शरीर धारी जीवों की मानसिक, वाचनिक और कायिक क्रियाओं का सहारा पाकर जीव की ओर कर्म पुद्गलों को आकृष्ट करती है। मन, वचन द्वारा कार्य की क्रिया को योग कहते हैं। यह योग ही आस्रव का कारण होने से आस्रव कहा जाता है। शुभाशुभ कर्मों का आगमन ही शुभाशुभ आस्रव है। ब्रह्म जिनदास के शब्दों में—

> पुद्गल जीवातणो अवतार, बंध होए एक सविचार।
> तव आस्रव अपार॥
> मन वचन काय कषाय शुभाशुभ आस्रव जीव काय।
> आवइ अति हि अपार॥[1]

बन्ध : आत्म प्रदेशों के साथ कर्माणुओं का तरह एक-मेक हो जाना बन्ध है। दूसरे शब्दों में जीव और कर्म के परस्पर में मिल जाने को बन्ध कहते है। शुभ भावों से पुण्य बन्ध होता है और अशुभ भावों से पाप बन्ध। ब्रह्म जिनदास के अनुसार बन्ध में कर्म पुद्गलों का जीव के साथ सम्बन्ध रहता है। जब जीव और कर्म परस्पर में स्थित हो जाते है तो बन्ध होता है।

> स्थिति करम करे जब घोर, ते बन्ध कहिए घन घोर।
> करम तणो अति पूर॥[2]

संवर : आस्रव के रोकने को संवर कहते हैं अर्थात् नये कर्मों का न आना ही संवर है। आत्मा का जो चेतन परिणाम कर्मों के आस्रव को रोकने में कारण है और उस कर्मों का आते हुए रुक जाना द्रव्य संवर है। ब्रह्म जिनदास के अनुसार सम्यक्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप से कर्मों के व्यापार को रोकना चाहिये तभी जीव को कर्म बन्धन से छुटकारा मिल सकता है।

> समकित ज्ञान चारित्र तप सार, आस्रव रुंधी तन्हे सविचार।
> करम तणो अपार॥२४॥

---

१. आदि पुराण रास : भास तीन चौबीसी ॥२१-२२॥
२. आदि पुराण रास : भास तीन चौबीसी ॥२३॥

निर्जरा : संवर पूर्वक पूर्व संचित कर्मों का तप, धर्म आदि द्वारा झड़ना निर्जरा है। यह सविपाक और अविपाक दो प्रकार की होती है। सविपाक में कर्म फल देने के बाद झड़ते हैं और अविपाक मे बिना फल दिये झड़ जाते हैं। संवर पूर्वक निर्जरा ही मोक्ष का कारण है। संवर पूर्वक निर्जरा में एक ओर तो नये कर्मों के आगमन को रोक दिया जाता है और दूसरी ओर पहले बंधे हुये कर्मों को जीव या आत्मा से धीरे धीरे जुदा कर दिया जाता है। कविवर ब्रह्म जिनदास के अनुसार तप, जप एवं ध्यान के बल से ही कर्मों की निर्जरा हो सकती है।

तप जप ध्यान बले कर्म बालि, करम तणी निर्जरा सविचारि।

करम तणो अपार ॥[1]

मोक्ष : आत्मा का कर्म बन्धन से पूर्णतः मुक्त हो जाना ही मोक्ष है। आत्मा की सिद्ध दशा का नाम ही मोक्ष है। ब्रह्म जिनदास के शब्दो मे कर्मों से मुक्त होने पर आत्मा निरालम्ब अर्थात् शुद्ध स्वभावी निष्कलक निराबाध और अनन्त आनन्द रूप हो जाता है, तब वह मोक्ष को पाकर शिव स्वरूप—सफल लोक कल्याण बन जाता है।

तब आत्मा निरालंब हुओ, करम थको तहां हुओ जुओ।

मुगति पामि सिद्ध भयो।[1]

सम्यग्ज्ञान

सम्यग्ज्ञान मोक्ष मार्ग मे द्वितीय रत्न है। केवली अरहन्तावस्था का ज्ञान अर्थात् केवल ज्ञान पूर्णत. सम्यग्ज्ञान है। इसके पहले के ज्ञान यदि सम्यग्दर्शन युक्त है तो वह भी अपनी-अपनी मर्यादा मे सम्यक् है। संशय विपर्यय और अनध्यवसाय सहित ज्ञान मिथ्याज्ञान कहलाता है। मिथ्याज्ञान भव-भ्रमण के कारण हैं। जीवादि सप्त तत्वों का संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय से रहित ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है।[3] कवि के अनुसार—

तत्व जाणी निरमला, देव धर्म गुणधार।

प्रीक्षा जाणे निरमली, ते ज्ञान भणसार ॥[4]

---

१. आदिनाथ रास : भास तीन चौबीसीनी ॥२५॥
२ आदिनाथ रास : भास तीन चौबीसीनी ॥२६॥
३ तत्वार्थ सूत्र : उमास्वामि १।८।
४. आदिनाथ रास : दूहा ॥२॥

जिसमें त्रिकाल गोचर अनन्त पदार्थ अपनी गुण पर्यायों सहित अति समता के साथ प्रतिभा सहित होते हैं वह सम्यग्ज्ञान कहलाता है। वह ज्ञान मति, श्रुत, अवधि, मनः पर्यय और केवल के भेद से पाँच प्रकार का है।[1] जिस ज्ञान में सम्यग्दर्शन नहीं होता वह ज्ञान कुज्ञान या मिथ्याज्ञान कहलाता है। मिथ्याज्ञान कुमति, कुश्रुति और कुअवधि के भेद से तीन प्रकार का है। सम्यग्ज्ञान को प्रमाण कहते हैं, प्रमाण होने से वह ज्ञान स्व और अपूर्व पदार्थ का निश्चयात्मक होता है। ज्ञान अपना और परका ज्ञान कराने वाला है जो अपने-अपने अनुभव से सिद्ध है। इसलिए स्व तथा पर के जानने मे समर्थ ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है।[2]

चार अनुयोग : जैन वाङ्मय को चार अनुयोगो में विभक्त किया गया है जो चार वेद स्वरूप माने गये है। चार अनुयोग—प्रथमानुयोग, द्रव्यानुयोग करणानुयोग और चरणानुयोग। प्रथमानुयोग मे त्रेशठ शलाका महापुरुषो के चरित्रो द्वारा पाप-पुण्य के फल का कथन हुआ है। इसमे पुराण तथा कथा काव्य परक साहित्य (काव्य) आता है। द्रव्यानुयोग मे षट् द्रव्य, सप्त तत्व और स्व पर भेद विज्ञान का वर्णन है। इसमे सिद्धान्त ग्रन्थ आते हैं। करणानुयोग मे गुणस्थान, मार्गणा स्थान तथा तीन लोक का वर्णन है। इसमे खगोल शास्त्र आते है। चरणानुयोग मे गृहस्थ एव साधुओ के आचरण विषयो का वर्णन है। इसमे आचार शास्त्र आते है। ये सब जैनागम ग्रन्थ हैं। ये पुराण, सिद्धान्त, आगम और चारित्र ग्रन्थ सम्यग्ज्ञान के कारण है। इस ज्ञान के बिना चारित्र नही आ सकता।[3]

सम्यक्चारित्र

सम्यग्ज्ञान के पश्चात् जीवन मे आचरण की आवश्यकता होती है। आचरण बिना ज्ञान का महत्व नही है। जीवादि तत्वो मे श्रद्धा, ज्ञान एव आत्मोत्थान के मार्ग मे उनका आचरण ही मोक्षमार्ग है। आत्म स्वरूप मे रमण करना ही चारित्र है। मोह, राग-द्वेष से रहित आत्मा का परिणाम साम्यभाव है और साम्य भाव की प्राप्ति ही चारित्र है। अशुभ भाव से निवृत्त होकर शुभ भाव मे प्रवृत्ति को भी व्यवहार से चारित्र कहा गया है। जैन दर्शन मे बाह्याचार की अपेक्षा भाव शुद्धि

---

१. तत्वार्थ सूत्र—मति श्रुतावधि मनः पर्यय केवलानिज्ञानम् १।९

२ जैन दर्शन सार, पृष्ठ ५५—५७।

३. शान्तिनाथ रास : रास अंबिकानी ॥१—५॥

पर विशेष बल दिया गया है। भाव शुद्धि बिना बाह्याचार निष्फल है। बाह्याचार शुद्ध होने पर भी यदि अभिप्राय में वासना बनी रहती है तो उसका आत्म-हित की दृष्टि से कोई मूल्य नहीं है। विषय कषाय की वासना का अभाव ही सच्चा चारित्र है। वासना का क्रमशः कम होते जाना ही चारित्र की दशा में क्रमिक विकास है।[1] अहिंसा, सत्य आदि रूप परिणाम अन्तर के भाव है और वह रूप मानसिक, वाचिक और कायिक क्रिया बाह्य भाव है। यहाँ चारित्र्य यत्न साध्य है। कविवर ब्रह्म जिनदास के अनुसार जो तत्व हैं वे ही आचार है और उनके ही अनुसार चारित्र का पालन करना चाहिए और शाश्वत पद को पाना चाहिए :—

ते तत्व जे आचार, चारित्र पालो चंग।
ते चारित्र बखाणीइ, पामे संग अभंग ॥[2]

चारित्र के दो रूप हैं। एक प्रवृत्तिमूलक और दूसरा निवृत्तिमूलक। प्रवृत्ति-मूलक अंश बन्ध का कारण है, निवृत्ति अबन्ध का कारण है। ये दोनों ही चारित्रों का प्राण है। अहिंसा और उसके रक्षक हैं —सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। ये पांचों जैनाचार का मूल हैं। इसी को एक देश से गृहस्थ पालते हैं और सर्व देश से मुनि पालते हैं।

श्रावक का चारित्र

जैन संघ के चार अंग बतलाए गए हैं—मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका। जैन-गृहस्थ श्रावक-श्राविका कहलाते है। श्रावक-श्राविका ही आगे चलकर मुनि, आर्यिका बनते हैं। श्रावक का आचार एक प्रकार से मुनि आचार का नींव रूप है। उसी पर आगे मुनी आचार का भव्य प्रासाद खड़ा होता है। धर्म सुनने वाला श्रावक होता है। श्रावक अपूर्ण साधक होता है। वह अपनी गार्हस्थिक परिस्थितियों के कारण श्रमण की तरह पूर्ण साधक नहीं हो सकता। अतः जीवन की बुराइयों को पूर्ण रूप से छोड़ नहीं सकता। वह एक देश धर्म का पालन करता है।[3] श्रावक अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के एक देशपालन के साथ मांस, मधु और मदिरा का सर्वथा त्याग करता है। इसके अतिरिक्त रात्रि भोजन एवं अनछने पानी का उपयोग नहीं करता।

---

१. आदिनाथ रास : दूहा ॥३॥

२ आदिनाथ रास : दूहा ॥३॥

३. अर्हत प्रवचन, पृष्ठ ६५।

जीव दया जगि सार, सत्य वचन भाखि भवपुए ।
अचौरिजव्रत चंग, ब्रह्मचर्य रलिया मण पे ।
परिग्रह संख्या जाणि, श्रावक धर्म सुहावणु ए ।।४।।
कंदमूल बीजफूल, अथाणा सवे टालियाए ।
रात्रि भोजनतु नीम, अवर पाप सवे टालियाए ।।५।।[1]

देव पूजा, गुरु उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और त्याग (दान) इन षट् कर्मों को श्रावक पालता है । श्रावक के बारह व्रत बतलाए गए हैं ।[2] अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि पांच अणुव्रत, दिग्व्रत, देशव्रत और अनर्थदण्डव्रत आदि तीन गुणव्रत और सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग परिमाण और अतिथिसंविभाग—चार शिक्षाव्रत । इस प्रकार श्रावक के बारहव्रत है । ब्रह्म जिनदास ने अपने "बारह व्रत गीत" में इनका वर्णन किया है । प्रत्येक व्रत की व्याख्या मुक्तक रचनाओं के साहित्यिक अध्ययन शीर्षक मे की जा चुकी है ।[3]

"प्रतिमा ग्यारह की भास" में कवि ने श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं का उल्लेख किया है । श्रावक के ग्यारह दर्जे ग्यारह प्रतिमाएँ कहलाती है ।

श्रावक की आध्यात्मिक उन्नति में ये प्रतिमाएँ क्रमशः सोपान स्वरूप हैं । ग्यारह प्रतिमाएँ हैं—दर्शन प्रतिमा, व्रत प्रतिमा, सामयिक प्रतिमा, प्रोषधोपवास प्रतिमा, सचित्त विरत प्रतिमा, दिवा मैथुन विरत प्रतिमा, ब्रह्मचर्य प्रतिमा, आरम्भ विरत प्रतिमा, परिग्रह विरत प्रतिमा, अनुमति विरत प्रतिमा और उद्दिष्ट विरत प्रतिमा ।[3]

मुनि धर्म

कर्म बन्धन के पूर्णतः विनाश के लिये जो श्रम करते है वे श्रमण, मुनि, यति, योगी या साधु अथवा अनगार कहलाते है ।[4] ये संसार से पूर्णतः विरक्त होते हैं । श्रावकों के १२ व्रतों के समान मुनियों के भी तेरह प्रकार जो चारित्र होता है ।

---

१. सागारधर्मामृत ।।१३।।

२. सुकुमालस्वामी रास : भास वीनतीनी ।

३. विस्तृत जानकारी के लिये, मुक्तक रचनाओं का साहित्यिक अध्ययन : अध्याय देखिये ।

४. अर्हत प्रवचन पृष्ठ १०५

जिनमें पांच महाव्रत, पांच समिति और तीन गुप्ति होते हैं। श्रावक जिन अहिंसादि पांच अणुव्रतों का एक देश से पालन करता है, साधु उन्हें पूरी तरह से पालते हैं। इसीलिये इनके व्रत महाव्रत कहलाते हैं। मन, वचन, काय से उत्पन्न पाप युक्त प्रवृत्तियों को रोकना ही गुप्ति है। मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति ये तीन गुप्तियां है।[1] इर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण और उत्सर्ग ये पांच समितियां हैं। समितियो से यत्नाचार को बल मिलता है और हिंसा का परिहार होकर आत्म शुद्धि का मार्ग प्रशस्त होता है साधु गुप्ति समिति महाव्रत आदि के पालन में पूर्ण सावधानी रखते हैं। महाकवि ब्रह्म जिनदास ने मुनियों के अठावीस मूलगुणों में इन सब का वर्णन किया है।[2]

ध्यान : कवि ने साधक अवस्था के लिये तप के साथ ध्यान पर भी विशेष बल दिया है।[3] इन्द्रियों को वश में करने वाले मुनि राग-द्वेष का क्षय कर ध्यानोपयोग से मोह का विनाश कर अवशिष्ट कर्मों का क्षय कर देते हैं। ध्यान में आत्मानुभूति आवश्यक है। अन्तर्मुहूर्त तक वस्तु में लीन जो मानस ज्ञान है वह शास्त्र में ध्यान कहलाता है। उसके शुभ और अशुभ दोनों भेद है, राग-द्वेष से युक्त अशुभ ध्यान हैं और राग-द्वेष रहित एकाग्र मन ही शुभ ध्यान है। धर्म में एकाग्र मन वाला वैराग्य में लवलीन ज्ञानी आत्मा धर्म ध्यानी ही समस्त संकल्प विकल्पों को छोड़कर आत्म स्वरूप मे मन को स्थिर कर आनन्द पूर्वक जो चिन्तन किया जाता है वह उत्तम धर्म ध्यान है। मन्द कषाय वाले आत्मा के धर्म ध्यान और मन्द तप कषाय वाले के शुक्ल ध्यान होता है।[4]

गुणस्थान : जीव के आध्यात्मिक विकास के क्रम को गुणस्थान कहते है।[5] जैन दर्शन मे संसार के सब जीवो को चौदह स्थानों में विभाजित किया गया है। ये स्थान गुणस्थान कहलाते है। गुण का अर्थ है—जीव और स्थान का अर्थ है क्रम। इस क्रम के चौदह भेद हैं। मिथ्यादृष्टि, सासादन, मिश्र (सम्यक् मिथ्यात्व) अविरत सम्यक्त्व देश विरत, प्रमत्त विरत, अप्रमत्त विरत, अपूर्व करण, अनिवृत्ति

---

१. तत्वार्थ सूत्र ७।७
२. अठावीस मूल गुण रास।
३. आदिनाथ रास : भास तीन चौवीसीनी ॥२५॥
४. कार्तिकेयानुप्रेक्षा ४७०।
५. अर्हन्त प्रवचन, पृष्ठ ३६।

करण, सूक्ष्म साम्पराय, उपशान्त मोह, क्षीणमोह, संयोगकेवली और अयोग केवली। ये गुणस्थान आत्मा के गुणों के विकास क्रम को लेकर माने गये हैं।

अनुप्रेक्षा

किसी वस्तु का बार-बार चिन्तवन करना अनुप्रेक्षा कहलाती है। इनसे कर्मों का संवर होता है इसलिये मोक्ष मार्ग में इनका बहुत महत्व है। मुमुक्षु प्राणी अपने वैराग्य को पुष्ट करने के लिये संसार की अनित्यता सम्बन्धी भावनाओं का चिन्तवन करता रहता है। ये बारह भावनायें द्वादशानुप्रेक्षा भी कही जाती है।

बारह भावनाएं इस प्रकार हैं—(जीवन्धर रास में)

१. **अनित्य भावना**—इस संसार में कोई नित्य-शाश्वत नहीं है। राज्य, लक्ष्मी, यौवन—सब चंचल है। नदी के चंचल जल की तरह क्षण-क्षण में क्षीण वान है।[1]

२. **अशरण भावना**—धर्म के अतिरिक्त जीव का कोई शरण नहीं है। धर्म के विना यह जीव जन्म-मरण के चक्र में निरन्तर चलता रहता है।[2]

३. **संसार भावना**—यह संसार असार है। इसमें कुछ भी सार नहीं है। जो दु:खो से भरा है। रहट के समान यह जीव संसार में भ्रमण करता है।[3]

४. **एकत्व भावना**—यह जीव अकेला ही संसार में आता-जाता है, अकेला ही सुख-दु:ख भोगता है, अकेला ही पाप-पुण्य करता है और कर्म बन्ध करता है।[4]

---

१. चंचलए राज भंडार, धन जोवन उतावलोए।
   नदीतरणा पूर जिम जाणि, खिण उछोटइ चंचल ए ॥५॥

२. शरण न दीसे ए कोइ, जीव कारणि धर्म विनाए।
   जामरण ए मरण विकार, वलि वलि जीव पामि घणुंए ॥६॥

३. संसार ए असार सार, सार न दीसे दुखी भर्योए।
   रहट घडि जिम आवी जाइ, जीव कर्मी पासि पर्योए ॥७॥

४. एकलु आवि जाई, एकलु सुख-दुख भोगविए।
   पाप पुण्य करि एकलु जाणि, एकलु ह कर्म बांधवि ए ॥८॥

५. अन्यत्व भावना—शरीर और आत्मा भिन्न-भिन्न हैं। माता-पिता बन्धु सब कर्म संयोग हैं। आत्मा से इनका कोई सम्बन्ध नहीं है।[1]

६. अशुचि भावना—यह शरीर रुधिर, मांस, चर्बी, हड्डी आदि सप्त-धातुओं से बना हुआ अपवित्र और अशुचि है। केवल आत्मा ही पवित्र है, जो कर्मों के कारण शरीर में धरी है।[2]

७. आस्रव भावना—मिथ्यात्व और कषाय के योग से ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मों के आगमन का चिन्तवन आस्रव भावना है।[3]

८. संवर भावना—सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र के ध्यान के बल से कर्मों को रोकना संवर है।[4]

९. निर्जरा भावना—बारह प्रकार के (अभ्यन्तर और बाह्य) तप से कर्मों की निर्जरा करनी चाहिये।[5]

१०. लोक भावना—यह जीव अपने पाप-पुण्योदयों से तीन लोक में अधम, मध्यम या उत्तम गति को पाता है।[6]

११. दुर्लभ भावना—इस संसार में मनुष्य जन्म, आर्यखण्ड, श्रावक धर्म, उत्तम गुरु, बुद्धि विवेक, आयु, पंचेन्द्रिय सुख, सम्यक्त्व, ज्ञान, चारित्र, संयम, तप, ध्यान, निर्मल मन, जिनेश्वर देव आदि अत्यन्त दुर्लभ है। पुण्य एवं भाग्य बिना ये नहीं मिलते।[7]

---

१. शरीर ए जु जबु जाणि, आत्मा जु जबु बखाणी ए ॥६॥
२. शुचि ए नहि शरीर, अपवित्र सात धातु करी पूरीयोए।
 पवित्र ए आत्मा देव, देह माहि करमि धर्योए ॥१०॥
३. आश्रव ए करम विपाक, अष्ट प्रकारि अति घणाए ॥११॥
४. समकित ए ज्ञान अभ्यास, चारित्र करि कर्म रूधीए।
 ध्यान बलि कर्म आवतांटालि, संवर इसी परि रूधिइए ॥१२॥
५. बार भेद तप करि चंग, कर्म बाली करूं निर्जराए ॥१३॥
६. त्रिभुवन ए तणुं विचार, चितवि गुण आपणु एं।
 अधमध्य उत्तमगति ठाम, जीव पामि पाप पुण्य फलिए ॥१४॥
७. दुर्लभ ए माणस जन्म, मरज खण्ड अति दुर्लभ ए।
 दुर्लभ ए श्रावक धर्म, सहु गुरु दर्शन दुर्लभ ए ॥१५॥

१२. धर्म भावना—उक्त दुर्लभ वस्तु मिलने पर भी धर्म सर्वोत्कृष्ट वस्तु है। यह धर्म उत्तमक्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन और ब्रह्मचर्य स्वरूप दशलक्षणों वाला है।[1]

इस असार संसार में शरीर को रोगों का कारण मानकर वैराग्य भावना पूर्वक एक मात्र उत्तम धर्म का अवलम्बन ही उचित है।[2] इस प्रकार की वैराग्य भावनाओं का चिन्तवन मुमुक्षु प्राणी के लिये आवश्यक है।

परमात्मा या ईश्वर (परम ब्रह्म)

जैन दर्शन के अनुसार प्रत्येक आत्मा अपनी स्वतन्त्र सत्ता को लिये हुए मुक्त हो सकता है। आज तक ऐसी अनन्त आत्मा मुक्त हो चुकी हैं और आगे भी होंगी। ये मुक्त जीव ही जैन धर्म में परमात्मा या ईश्वर स्वरूप हैं। इन्हीं में से कुछ मुक्तात्माओं को जिन्होंने मुक्त होने से पहले संसार को मुक्ति का मार्ग बतलाया था, जैन धर्म तीर्थंकर मानता है। ज्ञानावरणादि कर्म बन्धनों से मुक्त शुद्धोपयोगी आत्मा ही मुक्तात्मा या परमात्मा है।[3] यही सर्वज्ञ है। कर्म बन्धनों को काटने वाला ही सर्वज्ञ होता है। सर्वज्ञ को केवली भी कहते हैं, क्योंकि उसका ज्ञानदर्शन आत्मा के सिवा किसी अन्य सहायक की अपेक्षा नहीं करता। चार घातिया कर्मों के नाश करने से उसे "अरिहन्त" भी कहते हैं। कर्मरूपी शत्रुओं को जीतने से जिन कहलाता है। इनके उपदेश से संसार के अनेक जीव तर जाते हैं। इसलिये वे तीर्थ स्वरूप गिने जाते हैं।[4] तीर्थंकर किसी परमात्मा का अवतार रूप नहीं होते। बल्कि संसारी जीवों में से ही कोई जीव प्रयत्न करते-करते लोक कल्याण की भावना से तीर्थंकर पद पाता है। इनकी उपदेश सभा को समवशरण कहते हैं, जिसके बारह प्रकोष्ठ में सभी प्राणी श्रोता रूप में उपस्थित होते हैं। प्रत्येक जीव में इस प्रकार ईश्वर बनने की शक्ति है, लेकिन ये ईश्वर ससार के संचालन में कोई सम्बन्ध नहीं रखते। जैन दर्शन के अनुसार सृष्टि स्वयं सिद्ध है। जीव अपने अपने कर्मों के अनुसार स्वयं ही सुख-दुःख पाते हैं।

दुर्लभ ए बुद्धि विवेक, आयु इन्द्रिय पंचि दुर्लभ ए।
दुर्लभ समकित सार, ज्ञान चारीत्र वेइ दुर्लभ ए ॥१६॥

१. पामीया ए भाव सहित, तो धर्म कीजि रूवडो ए।
दश लक्षणी ए धर्म जगि सार, अनुदिन पालो भावि जडया ए ॥२०॥

२. वैराग्य ए भावना भावि, भाव सरस सोहावणोए।
संसारए भोग सरीर, रोग जिम जाणि भामणोए ॥२१॥

३. प्रवचनसार १।१४।

४. जैन धर्म, पृष्ठ १२२।

मुक्ति या मोक्ष

आत्मा के समस्त कर्म बन्धनो से छूट जाने को मोक्ष कहते हैं। सिद्धावस्था मुक्ति का सूचक है। मानव-आत्मा की चरम आध्यात्मिक उन्नति का परिणाम ही मुक्ति है। आत्मा के गुणो को कलुषित करने वाले दोषो को दूर करके शुद्ध आत्मा की प्राप्ति को सिद्धि या मुक्ति कहते है। मुक्तावस्था मे उसके अनन्त ज्ञान, अनन्त-दर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य आदि स्वाभाविक गुण विकसित हो जाते हैं। मुक्त जीव बन्धन से छूट कर ऊर्ध्वगमन करता है और लोक के अग्र भाग मे पहुंच कर स्थिर हो जाता है। फिर वहाँ से लौट कर नही आता। कवि इस स्थान को शिवपुर पाटण बतलाता है और उसकी प्राप्ति के लिए विनती करता है—

सिव पुरपाटण कवडु अविचल ठांम अभंग।
देउ स्वामी मभ निर्मलु, ब्रह्म जिणदास भणि चंग ।।[1]

मुक्त अवस्था मे बिना शरीर के केवल शुद्ध आत्मा मात्र रहता है। उसका आकार उसी शरीर के समान होता है जिससे आत्मा ने मुक्तिलाभ किया है। मुक्त हो जाने के बाद आत्मा जीना, मरना, बुढापा, रोग, शोक, दुःख, भय आदि से रहित हो जाता है क्योकि ये चीजें शरीर के साथ सम्बन्ध रखती है और शरीर वहाँ होता नही। मुक्तपना आत्मा की शुद्धावस्था का ही नामान्तर है।[2] जहाँ सर्वदा आत्मा निराकुलतारूप आत्म सुख मे मग्न रहता है। ब्रह्म जिनदास के अनुसार मनुष्य जन्म मे ही सयम पालने से मुक्ति सिद्ध होती है।

पछि मनुष जन्म लही करी, उत्तम कुल उत्तंग।
सयम लेइ जिणवर तणु, मुगति साधसि गुणचंग ।।[3]

इस प्रकार महाकवि ब्रह्म जिनदास की विचारधारा जैन दर्शन से पूर्ण रूपेण प्रभावित है। उनका कौशल यह रहा है कि उन्होने उसे सहज एव सरल रूप मे चित्रित कर उसे व्यवहार योग्य बना दिया है। कथा के माध्यम से स्पष्ट कर उसमे कवि ने सरलता, सरसता एव स्वाभाविकता प्रदान की है। दर्शन जैसे गूढ विषय को भी ब्रह्म जिनदास ने सरस एवं सरल ग्राह्य बना दिया है। जिससे पाठक मानसिक आनन्दानुभूति के साथ बौद्धिक एवं आध्यात्मिक खुराक भी प्राप्त करता है।

---

१ जीवन्धर रास . दूहा ।।४।।
२. अर्हत प्रवचन, प० चैनसुख दास न्यायतीर्थ पृष्ठ १४१-१४२।
३ जीवन्धर रास : दूहा ।।२।।

□□□

अध्याय 6

सांस्कृतिक चित्रण

मानव के रहन—सहन और आचार—विचार से सम्बन्धित उन सभी परम्परागत बातों से संस्कृति का सम्बन्ध बताया गया है, जो उसकी विविध विषयक रुचियों के परिष्कार और शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक शक्तियों के विकास में सहायक होती हैं। इस आधार पर संस्कृति के दो पक्ष हो जाते हैं। पहले का सम्बन्ध उन बातो से है, जिसका निर्माण रहन-सहन आचार-विचार आदि से सम्बन्धित वातावरण, सस्कार और सम्पर्क आदि के फलस्वरूप हुआ करता है और दूसरे पक्ष का सम्बन्ध परम्परा से अर्थात् उन बातों से है जो मानव अपने पूर्वजों से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से ग्रहण करता है। प्रथम पक्षीय विषयों की नींव मानव के जन्म काल से ही पड़ जाती है और उसके रहन-सहन, आचार-विचार आदि पर जिन बातों का आरम्भ से ही प्रभाव पड़ने लगता है उनमे प्रमुख है—प्रकृतिक वातावरण, जीवन की सामान्य रूपरेखा, पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक स्थिति। द्वितीय पक्ष के अन्तर्गत विभिन्न विषयों के विश्वास और मान्यताओं के साथ-साथ अनेक पर्वोत्सव आदि आते हैं, जिनसे जीवन के प्रति समाज के दृष्टिकोण की संकुचितता या व्यापकता का सहज ही परिचय मिल जाता है।

महाकवि ब्रह्म जिनदास सन्त महापुरुष थे। उनका सम्पूर्ण साहित्कि प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर उन्मुख होता है। उनके साहित्य-सृजन का मुख्य लक्ष्य सांस्कृतिक चित्रण नहीं था, तथापि उनके प्रबन्ध एवं मुक्तक काव्यों में उच्च-कोटि का सांस्कृतिक चित्रण मिल जाता है। ब्रह्म जिनदास भले ही अपने आचार-विचार में निवृत्तिवादी रहे हों, पर समाज एवं सस्कृति से कट कर वे कभी नहीं चले। वे धर्मोपदेष्टा एवं धर्म-सुधारक थे। समाज को सन्मार्ग पर लाने के लिए उन्होंने साहित्य सृजन किया। जन-साधारण की सांस्कृतिक परम्पराओं एवं उसके दैनिक व्यवहारों से वे भली-भांति परिचित थे। जन मानस में आध्यात्मिक एवं धार्मिक चेतना भरने के लिए कविवर ब्रह्म जिनदास ने जिस विशाल साहित्य की

सरचना की उसमे लोक-संस्कार, रहन-सहन, रीति-रिवाज आचार-विचार, लोक-व्यवहार आदि के स्वाभाविक चित्रण से पूर्ण सास्कृतिक चेतना के कई स्थल मिलते हैं । ये स्थल भाव-वर्णन एवं वस्तु वर्णन मे भी देखे जा सकते हैं ।

ब्रह्म जिनदास के काव्यो का इसी आधार पर सास्कृतिक अध्ययन निम्न बिन्दुओं के परिप्रेक्ष्य मे प्रस्तुत किया जा रहा है—

(क) पारिवारिक जीवन चित्रण
(ख) सामाजिक जीवन चित्रण
(ग) राजनीतिक जीवन चित्रण
(घ) धार्मिक जीवन चित्रण ।

(क) पारिवारिक जीवन चित्रण

मनुष्य के जीवन मे परिवार का विशिष्ट स्थान होता है । परिवार से विलग होकर साधु ही रह सकता है । लेकिन साधु को भी प्रारम्भिक अवस्था मे परिवार में रहना होता है । मनुष्य का समुचित रूपेण जीवन-यापन परिवार मे ही सम्भव है । परिवारो का सगठन ही समाज होता है । मनुष्य का जन्म, लालन-पालन, रहन-सहन आदि कार्य परिवार द्वारा ही सम्पन्न होते है । इस परिवार मे माता-पिता, पुत्र-पुत्री, भाई-बहिन, पति-पत्नी आदि होते है । ये सब एक ही परिवार के अग होते है जो अपने सम्बन्धो का निर्वाह करते हैं

परिवार का गठन एवं सम्बन्ध

महाकवि ब्रह्म जिनदास के रास-काव्यो के अध्ययन से सूचित होता है कि उस समय सयुक्त परिवार प्रथा प्रचलित थी । परिवार के सभी सदस्य एक ही स्थान पर रहते थे और एक ही जगह बनाया हुआ भोजन करते थे । सभी परिवार के सदस्य एक दूसरे की भावनाओ को उचित स्थान देते थे । पारिवारिक सम्बन्धो की दृष्टि से माता, पिता, भाई, बहिन, सास, श्वसुर, चाचा, देवर, भाभी, पुत्र, पुत्री आदि के उल्लेख मिलते हैं ।

माता-पिता : परिवार का मुखिया पिता ही होता था ।[1] सभी उसकी आज्ञा का पालन करते थे । माता गृह स्वामिनी होती थी, जो परिवार के सब कार्यों का

---

१ जीवधर स्वामी रास : भास गुणराज बहुगी ।।१।।

ध्यान रखती थी।[1] पत्नी अपने पति की आज्ञाकारिणी होती थी। पिता के बाद पुत्र ही घर की देखभाल करता, पर माता की आज्ञा शिरोधार्य होती थी।[2] पुत्र पर माता-पिता दोनों का समान वात्सल्य भाव होता था।[3] पुत्र के बिना माता-पिता बड़े दुःखी एवं चिन्तित रहते थे। पुत्र प्राप्ति के लिए वे व्रत, पूजा, जप, तप, अनुष्ठान आदि करते थे।

पति-पत्नी की धार्मिकता : पुरुष की अपेक्षा स्त्री अधिक धर्मानुरागिणी होती थी। राजा श्रेणिक की अपेक्षा रानी चेलना अधिक जिन धर्म में अनुरक्त थी।[4] इसी प्रकार अग्निला भी थी।[5] कही-कही पर पत्नी की अपेक्षा पति अधिक धर्मानुरागी मिलते है। जम्बूकुमार, राजा यशोधर, सुकुमाल, सेठ सुदर्शन, धनपाल ये सब अपनी पत्नियों की अपेक्षा अधिक धर्मात्मा प्राणी थे। पति-पत्नियो मे परस्पर विभिन्न धर्मावलम्बी भी हुआ करते थे। प्रारम्भ मे श्रेणिक बौद्ध धर्म का अनुयायी था, जबकि चेलना जैन धर्मानुयायिनी थी। सोमभट्ट वैदिक धर्मावलम्बी था तो उसकी पत्नी अग्निला जिनधर्म मे श्रद्धा रखती थी। इसी प्रकार तापसी जमदग्नी एव रेणुकी थे।[6]

पुत्र का स्थान : परिवार मे पुत्र का महत्त्वपूर्ण स्थान होता था। उनके बिना पति-पत्नी को कोई कार्य रुचता नही था। विशेषतः पत्नी पुत्र के लिए अधिक व्याकुल होती थी। सुकुमाल की माता यशोभद्रा पुत्र बिना बड़ी दुःखी रहती है। पुत्र के बिना अपने जन्म को व्यर्थ समझती है। मुनि के मुख से पुत्र होने की बात सुनकर वह प्रसन्न होती है, पर उसके दीक्षा लेने की बात से वह उसकी यत्नपूर्वक रक्षा में लग जाती है।[7] सेठ भानुदत्त की पत्नी देवदत्ता पुत्र प्राप्ति के लिए दान, पूजा आदि सद्धर्म का आचरण करती है और मिथ्यात्व को छोड़ती है। पुत्र के बिना उसे सारा कुल-वैभव निस्सार प्रतीत होता है।[8]

---

१. सुकुमाल स्वामी रास : भास चौपईनी ॥५॥
२. यशोधर रास : भास वैराग्य जीवडानी ॥२६॥
३. जम्बूस्वामी रास : भास सहीनी ॥२०॥
४. श्रेणिक रास : भास चौपईनी ॥११॥
५. अम्बिका देवी रास : भास वीनतीनी ॥४—५॥
६. सासर वासा को रास : भास हेलिनी ॥५॥
७. सुकुमाल स्वामी रास : भास चौपईनी ॥५॥
८. भावदत्त रास : भास वीनतीनी ॥२॥

पति-पत्नी के सम्बन्ध : पति पत्नी परस्पर एक दूसरे का सम्मान करते थे। द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथ के गर्भ में आने से पूर्व माता विजया को १६ स्वप्न दिखायी देते हैं, उनका फल जानने के लिए विजया अपने पति महाराजा जितशत्रु के पास जाती है। रानी को आती देखकर राजा उसके लिये अर्द्धासन देकर सम्मान भाव प्रकट करते हैं।[1] उस समय पति को पत्नी सर्वस्व मानती थी। पति के बिना वह अपना जीवन निस्सार समझती थी। अंजना को पवनंजय के बिना कुछ नहीं सुहाता है। पति की मान्यता के बिना नारी को कहीं स्थान नहीं मिलता था। पति से तिरस्कृत पत्नी का कोई आदर नही करता था। पवनंजय द्वारा अंजना का अपमान होने पर अंजना की सास ने भी उसका तिरस्कार कर दिया और उस गर्भवती अंजना को घर से निकाल दिया। पीहर पहुंचने पर माता-पिता, भाई-भोजाई किसी ने उसको स्थान नहीं दिया।[2] श्रीधर साहु ने अपना कहना न मानने पर अपनी पत्नी सोमा को घर से बाहर निकाल दिया। पिता ने भी उसको आश्रय नहीं दिया।[3] पति की अनुपस्थिति में, पति के वियोग में पत्नी शृङ्गार नही करती थी, तांबुल नहीं खाती थी, नेत्रों में काजल नहीं लगाती थी, कुंकुम नहीं लगाती थी और न ही मोतियों का हार धारण करती थी।[4]

सास-बहू : सामान्यतः उस समय सास-बहू में बड़ा प्रेम रहता था। सास बहू को देखकर फूली न समाती थी तो बहू भी उसका कम आदर नहीं करती थी। सास कमलावती और बहू भविष्यानुरुपा के प्रेम को देखकर धनपाल अपने किये पर पछताने लगा। इसी प्रकार श्रीपाल के बिना श्रीपाल की मां और मैना सुन्दरी भी बहुत दिनो तक प्रेम से एक साथ धर्म ध्यान करती हुई रहती थी।[5]

परिवार के अन्य सदस्य : परिवार मे चाचा, मामा, भोजाई, बहिन, भाणज आदि का भी समुचित स्थान था। अपनी बहिन एवं भाणेज को मामा एवं मामी बड़े प्रेम से अपने घर सम्मान देते थे। जीवन्धर एवं हनुमान का उनकी माता सहित उनके मामा के यहां कई दिनों तक निवास रहा।[6] पिता के अभाव

---

१. अजितनाथ रास : भासचौनतीमी।
२. हनुमंत रास : भास हेलिनी।
३. नागश्री रास : भास हेलिनी।
४. भविष्यदत्त रास : भास जीवडानी।
५. श्रीपाल रास : भास रासनी।
६. हनुमन्त रास : भास चौपाईनी।

में भानजे का पालन-पोषण मामा भी करता था। यही नहीं मामा अपने भानजे को उसके खोये हुये शासन को पुनः दिलाने में हर प्रकार से मदद करता था। काष्ठांगार के विरुद्ध युद्ध में जीवन्धर के मामा गोविन्द ने जीवन्धर की सहायता की थी।[1]

देवर-भाभी : उस समय परिवार में देवर-भाभी के बड़े मधुर सम्बन्ध होते थे। प्रायः भाभी देवर से हास्य विनोद किया करती थी। कृष्ण की पत्नियां सत्यभामा एवं रुक्मिणी अपने देवर नेमिकुमार से तरह-तरह से हास्य विनोद किया करती थी।[2] कई बार जो कार्य पुत्र के लिए माता स्वयं करते हुए लज्जित होती थी, उसे वह अपने देवर से कहकर करा लिया करती थी। श्रेष्ठिपुत्र चारुदत्त विवाह के पश्चात भी पूर्ववत अध्ययन एव साधु संगति मे लगा रहा। अपनी विवाहिता पत्नी से बात तक नहीं करता था। माता ने संकोच वश यह बात बेटे चारु से स्वयं न कहकर अपने देवर रोद्रदत्त से कहा कि वह अपने भतीजे की पत्नी की ओर आकृष्ट करे। चाचा रोद्रदत्त चारु को स्त्री स्वभाव की ओर आकृष्ट करने के लिए वेश्या के घर ले गया।[3] कहीं-कहीं देवर अपने पतित कार्य का परिचय देता है। बन्धुदत्त अपनी भाभी भविष्या से विवाह करने के लिए शीलभंग करने को उद्यत होता है। भविष्यदत्ता उसे समझाती है कि मै तेरी भाभी हूं। तू कु-आचरण मत कर। पर बन्धुदत्त नहीं मानता और अन्त मे दण्ड का भागी होता है।[4] लक्ष्मण[5] एवं नेमिकुमार[6] अपनी भाभियों का मातृवत आदर करते थे।

सपत्नियां : ब्रह्म जिनदास के रास-काव्यों में सपत्नियों का भी वर्णन मिलता है। राजघराने एवं उच्चकुलीन या पैसे वाले व्यक्ति एक से अधिक पत्नियां रखते थे। कभी-कभी अपनी पत्नी से किसी कारणवश असन्तुष्ट होकर भी सामान्य परिवार के पुरुष अन्य स्त्रियां भी रख लेते थे। ऐसी स्थिति मे सौतों के विभिन्न रूप उस समय मिलते थे। प्रायः ये सपत्निया एक दूसरे से ईर्ष्या भाव रखती थी। वे पति पर एक मात्र अपना ही अधिकार रखना चाहती थी। पर सभी सपत्नियां

---

१. जीवन्धर रास : भास रासनी।
२. हरिवंश रास : भास पञ्चोधरनी।
३. चारुदत्त रास : भास अम्बिकानी।
४. भविष्यदत्त रास : भास रासनी।
५. राम रास : भास रासनी।
६. हरिवंश रास : भास रासनी।

ऐसी नहीं होती थी। जीवन्धर, जम्बूकुमार, सुकुमाल, धन्यकुमार, भविष्यदत्त आदि की स्त्रियों में परस्पर बहिनों जैसा प्रेम था। वे स्त्रियां परस्पर मिलकर पतिसेवा, सास-श्वसुर सेवा एवं पारिवारिक तथा धार्मिक कार्यों को सम्पन्न करतीं थी। पढ़ी लिखी विवेकवती स्त्रियां अपनी सपत्नियों के प्रति भी प्रेम भाव रखती थी जबकि स्वार्थी एवं संकुचित विचारों की अनपढ़ और अधार्मिक नारियां सत्नियों से ईर्ष्या भाव।

जीवन चर्या :

ब्रह्म जिनदास के रास-काव्यों के अनुसार उस समय के लोगों की जीवन चर्या के विविध रूप थे। पुरुषों एवं स्त्रियों के अपने-अपने कार्य होते थे। फिर भी सामान्यतः उस समय के श्रावक-श्राविका प्रात. स्नानादि से निवृत्त हो शुभ्र वस्त्र धारण कर जिन मन्दिर में जाकर दर्शन, भक्ति एव पूजा कर स्वाध्याय करते और मुनि के उपदेशों का श्रवण करते थे।[1] कुसुमावती और पुष्पावती नामकी दो माली पुत्रियां रोजाना पांच-पाच पुष्प जिन मन्दिर में ले जाकर चढ़ाती थी। जिन-भक्ति करती थी।[2] इसी प्रकार जिनदास साहू की पुत्री नित्य प्रति जिनाभिषेक एवं जिनपूजा करती थी। सोमा ब्राह्मणी जल से भरा एक घड़ा प्रतिदिन मन्दिर में रखने जाती थी।[3] लोग यथा शक्ति नित्य दान भी दिया करते थे।[4]

स्त्रियों के कार्य : अपनी धार्मिक दिनचर्या के बाद घर आकर पुरुष एवं स्त्रियां अपने-अपने कार्यों में जुट जाया करते थे। सामान्यतः स्त्रियां भोजन बनाना परोसना, पानी भरना एवं अन्य घरेलू कार्यों में लगी रहती थी।[5] पति के साथ धार्मिक कार्यों में भी सम्मिलित होती थीं।[6] पति की अनुपस्थिति में दान-धर्म का उत्तरदायित्व वे सम्भाल लेती थी।[7] बच्चों का पालन-पोषण, पति सास-श्वसुर की सेवा-शुश्रूषा, आतिथ्य सत्कार, किसी विशेष उत्सव पर मंगलाचार आदि कार्य

---

१. पूजा गीत।
२. मालिणी पूजा कथा ॥१–२१॥
३. ज्येष्ठ जिनवर पूजा कथा ॥२–१३॥
४. नागश्री रास : भास रासनी ॥१–१८॥
५. अम्बिकादेवी रास : भास वीनती ॥१–२३॥
६. धन्यकुमार रास : दूहा ॥१५॥
७. नागश्री रास : भास सहीनी ;॥१४–१५॥

महिलायें क्रिया करती थीं।[1] घर की आन्तरिक व्यवस्था की जिम्मेदारी ये ही पूर्ण करती थी। वे गृहस्वामिनी होती थी।

पुरुषों के कार्य : पुरुष घर से बाहर आजीविका के लिए अर्थोपार्जन में व्यस्त रहते थे। धर्मोपार्जन करना उनका प्रमुख कार्य होता था। घर के लिए वस्त्र, खाद्य, आदि सामग्री का संचयन भी पुरुष ही करते थे। इसके अतिरिक्त पुरुष वस्त्र उद्योग आदि का व्यापार किया करते थे। व्यापार के लिए विदेश यात्रा किया करते थे।[2] नगर या ग्राम में मुनि आगमन होने पर सपरिवार धर्म प्रवचन सुनने जाते थे।[3] पुत्र की शिक्षा-दीक्षा विवाह एवं व्यवहार आदि का कार्य पिता को करना होता था।[4]

शिष्टाचार :

उस समय शिष्टाचार के विभिन्न रूप प्रचलित थे। परिवार के सभी सदस्य अपने-अपने पद के अनुसार आचरण करते थे। बड़ों का छोटों के प्रति किया गया शिष्ट आचरण आशीर्वाद के रूप में अभिव्यक्त होता था तो छोटों का बड़ों के प्रति किया गया शिष्टाचार अभिवादन के रूप में प्रकट होता था।

इस अभिवादन एवं आशीर्वाद के विभिन्न प्रचलित रूप हमें मिलते हैं—

अभिवादन के विविध रूप : किसी कार्य में सफलता पाने पर, किसी विदेश यात्रा से लौटने पर पुत्र माता-पिता के चरण स्पर्श करता था। जीवन्धर दीर्घकाल के बाद मां को देखकर उनके पांवों में गिर पड़ता है।[5] जीवन्धर के साथी ५०० कुमार नन्दकुमार को दूर से ही देखकर हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं। जम्बूकुमार दीक्षा देने के लिए मुनिवर से वीनती करता है। वह तीन प्रदक्षिणा देकर मुनिवर की वन्दना करता है। अंजना १२ वर्ष बाद पवनंजय को पाकर उसके सामने हाथ जोड़ कर खड़ी रहती है। प्रायः स्त्रियां साधुओं के चरण स्पर्श न कर दूर से ही

---

१. सुकुमालस्वामी रास : भास चौपाईनी।
२. जीवन्धरस्वामी रास : भास हेलिनी ।।४–५।।
३. जम्बूस्वामीरास : भास रासनी ।।२३।।
४. जीवन्धरस्वामी रास : भास जीवडानी ।।३६।।
५. हनुमंत रास : भास जसोधरनी ।।२३।।

हाथ जोड़कर नत मस्तक हो नमोस्तु कह दिया करती थीं। अंजना ने गुफा में अमितिगति मुनि को इसी प्रकार नमोस्तु किया था।[1] बहू सास के चरण स्पर्श करती थी।[2] इसी प्रकार वन्दना, हाथ जोड़ना, झुकना, नमोस्तु कहना, चरण स्पर्श, प्रदक्षिणा आदि अभिवादन के रूप थे।

आशीर्वाद के विभिन्न रूप : आशीर्वाद (आशीष) देना, आलिंगन देना, मुख से प्रीति वचन या धर्मवाक्य बोलना आशीर्वाद के रूप थे। बड़े लोग छोटों के प्रति व्यक्त करते थे। अंजना की सास ने अंजना को आलिंगन देकर, जीवन्धर को पिता ने आलिंगन देकर, माता ने छाती से लगाकर, अपना आशीर्वाद दिया। जीवन्धर को आरीयनन्दि गुरु ने "सुख से रहने" का आशीष दिया।[3] बड़ों के द्वारा छोटो को आलिंगन देना आशीर्वाद का शिष्टाचरण था। धन्य की स्त्रियां सास एव श्वसुर को पांव लगी।[4] सास श्वसुर उनके इस आचरण की प्रशंसा करते थे। राजा श्रेणिक को मुनि ने "धर्मवृद्धि हो" के रूप मे आशीष प्रदान किया था।[5]

जन्मोत्सव : पुत्र के जन्म होने पर उस समय बड़ा उत्सव मनाया जाता था। नो मास तक गर्भावस्था के काल को धर्म, पूजा, दान आदि सत्कार्यों से बिता कर स्त्री पुत्र का प्रसव करती थी। तीर्थंकर के जन्म पर विशेष महोत्सव मनाने के लिए देव-देवियां उपस्थित होकर जन्माभिषेक महोत्सव मनाते थे। द्वितीय तीर्थकर अजितनाथ के जन्म होने पर समस्त लोक मे आनन्द छा गया। माता-पिता को अपार हर्ष हुआ। जब जयकार की ध्वनि हुई दशों दिशायें स्वच्छ हुई, सुगधित वायु चलने लगी। आकाश शुभ्र हो गया। देवताओ ने पुष्पवृष्टि की, दुंदुभि बजायी और देवियो में मगलाचार गाये। शिशु अजितनाथ का शरीर कंचन वर्ण का था। रूप सौन्दर्य में वे कामदेव से भी बढ़कर थे। मति, श्रुति और अवधि तीन ज्ञान के धारी थे। उनके जन्म से देवताओं के आसन कम्पित हो उठे, उनके मस्तक के मुकुट स्वत: ही झुक गये। देवराज इन्द्र, इन्द्राणियों के साथ तीर्थंकर के जन्म स्थान पर गया। इन्द्राणी ने प्रसवागार में प्रविष्ट हो मायावी बालक को जिनभगवान के स्थान पर सुलाकर जिन बालक को लाकर देवराज के हाथों सौंप दिया। वे सब जिन बालक को लेकर सुमेरु पर्वत पर पहुंचे और वहां उन्होने क्षीर सागर से भर कर लाये गये १००८ कलशों से जिन बालक का अभिषेक

---

१. हनुमंत रास : भास चौपाईनी ॥१२॥
२. श्रीपाल रास . भास हिंडोलानी ॥१३॥
३. जीवन्धर रास : भास रासनी ॥१४॥
४. धन्यकुमार रास : भास हेलिनी ॥७—८॥
५. श्रेणिक रास : भास रासनी ॥३०॥

किया। वन्दना, भक्ति, पूजा आदि करके महोत्सव पूर्वक वापिस लौट आये। समस्त अयोध्या नगरी में जिन बालक का विशाल जन्म-महोत्सव मनाया गया। सम्पूर्ण नगरी को सजाया गया। घर घर में बधावे गाये गये। इन्द्र ने नाटक का आयोजन सभी को आनन्दित किया।[1]

राजकुमार के जन्म पर विशाल जन्मोत्सव मनाया जाता था। नागकुमार के जन्म पर दान दिया गया। धवल, मंगल, गीत, नृत्य आदि से समारोह मनाया गया। मन्दिर में बधावे गाये गये।[2] राजा श्रेणिक ने अपने पुत्र अभयकुमार के जन्म पर दास-दासियों को पुरस्कृत किया। जेल के कैदियों को छोड़ने एवं नगर को सजाने के आदेश दिये। गरीबों को दान दिया गया। महोत्सव मनाया गया। प्रजा को कर माफ कर दिया गया। गणिकायें नृत्य कर आनन्दोत्सव मनाने लगी।[3] श्रेष्ठि पुत्र के जन्म पर भी परिवार में महोत्सव मनाये जाते थे।

'जीवन्धर कुमार' के जन्म की विचित्र घटना मिलती है। जीवन्धर राजा सत्यन्धर का पुत्र था। गर्भावस्था में उसकी माता विजया को दुष्ट मन्त्री काष्टांगार ने अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए मन्त्र विद्या की शक्ति से श्मसान में पहुंचा दिया। जीवन्धर का जन्म वहीं श्मसान में हुआ। श्मसान मे जन्म होने पर भी उसका भाग्य बलवान था। वह गन्दोधक नाम के सेठ को मिल गया जो उस समय अपने मृतपुत्र को लेकर श्मसान में आया हुआ था। सेठ ने शिशु जीवन्धर को ले जाकर अपनी सेठानी के हाथों सौंपते हुए कहा कि प्रसव की वेदना के कारण बालक बेहोश हो गया था, वन की हवा से यह होश में आ गया। फिर सेठ ने उसका राज्योचित् जन्म महोत्सव मनाया। दुष्ट मन्त्री काष्टांगार के शासन सम्भालने से सभी प्रजाजन असन्तुष्ट थे। पर सेठ गन्दोधक के घर पुत्र-जन्म के कारण प्रसन्नता छायी हुई थी। काष्टांगार ने प्रसन्न हो सेठ को अपना अमात्य बना लिया। मन्त्रीं बन कर गन्दोधक ने पुत्र जन्म पर नगर को शुद्ध कराया। नवीन जिनालयों का निर्माण कराया गया। जिनालयों में मंगलाचार गाये गये, पूजा रची गयी, बधावे गाये गये और ५०० वणिक पुत्रों सहित महोत्सव मनाया गया। नर-नारियों को दान दिया गया। कामिनियों ने बधावे गाये। बालक को देख सब आनन्दित हुए। सभी ने सेठ गन्दोधक एवं सेठानी सुनन्दा को बधायी दी।[4]

जम्बूकुमार के जन्म पर सभी सज्जनों ने मिलकर महोत्सव मनाया। धवल-मंगल गीत गाये गये और जिन मंदिर में ध्वजा बांधी गयी।[5] भविष्यदत्त, धन्यकुमार,

१. नागकुमार रास : भास चौपईनी ॥१३॥
२. श्रेणिक रास : भास चौपईनी ॥१५-२०॥
३. जीवन्धर स्वामी रास : भास चौपईनी ।
४. जम्बूस्वामी रास : भास रासनी ॥१३-१४॥
५. अजितनाथ रास : भास तीम चौबीसनी ।

सुदर्शन, चारूदत्त आदि के जन्म पर भी ऐसा ही हुआ। धन्यकुमार के जन्म पर नाल गाड़ने के लिए खड्डा खोदते समय स्वर्ण का पात्र मिला। राजा को सूचित किया गया। राजा ने धन उसी को वापिस दे दिया।[1] सुकुमाल के जन्म पर कोई महोत्सव नहीं किया गया क्योंकि इससे पिता पुत्र की सुरक्षा नहीं थी। सुकुमाल की माता उसे छिपा कर रखती थी। हनुमान का जन्म पर्वत की गुफा में हुआ। साधन हीन होने के कारण माता अंजना कुछ नही कर सकी। अंजना का ममता युक्त वात्सल्य भाव जन्म महोत्सव के लिए दुःखी ही रहा।[2]

नामकरण : जन्म महोत्सव के कुछ समय बाद शिशु का नामकरण किया जाता था। प्रायः बालक के गुण, स्वभाव, रूप-सौन्दर्य आदि के आधार पर नाम रखा जाता था। तीर्थंकरों का नाम देवताओं द्वारा भी रखा जाता था। युगल प्रकृति का निवारण होने पर कर्मानुसार प्रकृति की संरचना एवं मार्ग निर्देशन सर्व-प्रथम आदिजिनेश्वर ने ही किया। देवताओं ने मिलकर इनका नाम आदिजिनेश्वर रखा।[3] सांसारिक कर्मों के जीतने में अद्वितीय होने से 'अजितनाथ' नाम रखा गया।[4] शिला पर सुरक्षित बचने से अजना ने हनुमान का नाम शैल कुमार रखा। लेकिन मामा ने अपने नगर हनुहर के नाम पर उसका नाम हनुमान रखा।[5]

विद्याध्ययन : ब्रह्म जिनदास के रास काव्यों से पता चलता है कि पुत्र-पुत्री की पांच वर्ष की अवस्था होते ही पिता को उसके पढ़ाने की चिन्ता हो जाती थी। बालक की शिक्षा के लिए यातो घर पर ही शिक्षक (पण्डित) की व्यवस्था कर दी जाती थी, या उसे पाठशाला में पढ़ने भेजा जाता था। बालिकाओं के लिए प्रायः घर पर ही शिक्षक पढ़ाने आते थे। पण्डित ही उस समय शिक्षक कहलाते थे। प्रत्येक बालक को शिक्षा दिलाना उस समय के परिवार का विशेषतः माता-पिता का आवश्यक धर्म होता था।

आदिनाथ रास के अनुसार आदिजिनेश्वर ने अपने पुत्र-पुत्रियों को सर्व-प्रथम "ॐ नमः सिद्धेभ्यः" बोलना सिखलाया। और फिर अ–आ

---

१. धन्यकुमार रास : भास चौपईनी ॥१–८॥
२. हनुमन्त रास : भास माल्हंतडानी ॥१९–२५॥
३. आदिनाथ रास : भास माल्हंतडानी ॥५॥
४. अजितनाथ रास भास वीनतीनी ॥१०॥
५. हनुमन्त रास : भास सहीनी ॥२५–२६॥

आदि ५२ अक्षरों का ज्ञान कराया। पुत्री ब्राह्मी को लिपि एवं अनेक शास्त्रों का ज्ञान कराया। सुन्दरी पुत्री को अंक व गणित विद्या एवं विविध कलाओं को सिखाया। भरत एवं बाहुबलि आदि पुत्रों को अनेक शास्त्रों के ज्ञान के साथ ७२ कलाओं की शिक्षा दी गयी थी।[1]

उस समय प्रायः विद्याध्ययन के आरम्भ के लिए ५ वर्ष से ७ वर्ष की आयु निश्चित् थी। जीवन्धर की पाँच वर्ष की आयु होने पर पिता गन्धोदक को उसे विद्या आरम्भ कराने की चिन्ता हुई।[2] धन्यकुमार को ७ वर्ष की आयु में पढ़ने बिठलाया गया।[3] भविष्यदत्त, चारुदत्त ने भी पांच वर्ष की आयु में पढ़ना आरम्भ किया। फिर भी पढ़ने के लिए उम्र का प्रतिबन्ध नहीं होता था। अधिक उम्र होने पर भी अध्ययन किया जाता था। यह प्रौढ़ अध्ययन प्रायः गृहस्थ छोड़ कर साधु के पास होता था। माता-पिता की मृत्यु के उपरान्त भवदेव ने मुनि के पास आकर विद्या ग्रहण की।[4]

विद्या आरम्भ के अवसर पर उत्सव भी मनाये जाते थे। धन्यकुमार के विद्यारम्भ पर जिन मन्दिर में उत्सव मनाया गया। धवल, मंगल-गीत गाये गये।[5] जम्बूकुमार के विद्यारम्भ पर देव, शास्त्र एवं गुरु की पूजा की गयी और महोत्सव मनाया गया।[6]

विद्याध्ययन घर पर भी किसी पण्डित द्वारा कराया जाता था तो विद्यालय में शिक्षा की व्यवस्था थी। सम्पन्न लोगो के पुत्र-पुत्रियों की शिक्षा की व्यवस्था घर पर भी होती थी। सामान्य परिवार के बालक-बालिकायें पाठशाला में पढ़ने भेजे जाते थे। जम्बूकुमार पाठशाला में पढ़ने भेजा गया जहाँ जैन-पण्डित पढ़ाता था।[7] धन्यकुमार ने भी जैन उपाध्याय के पास जाकर शिक्षा पायी।[8]

---

१. आदिनाथ रास : दूहा ।।५।। भास चौपईनी ।।१–५।।
२. जीवन्धर रास : दूहा ।।१–२।।
३. धन्यकुमार रास : भास चौपईनी ।।११।।
४. जीवन्धर रास : भास चौपईनी।
५. धन्यकुमार रास : भास चौपईनी ।।११।।
६. जम्बूस्वामी रास : भास रासनी ।।२०।।
७. वही ।।२१।।
८. धन्यकुमार रास : चौपईनी ।।१२।।

दशरथ के चारों कुमारों की शिक्षा पण्डित के घर पर सम्पन्न हुई।[1] मैना सुन्दरी ने मुनिवर के पास शास्त्रों का अध्ययन किया।[2] जीवन्धर की शिक्षा की रोचक घटना मिलती है। अपनी भस्म व्याधि जीवन्धर कुमार के द्वारा दूर कर दिये जाने के कारण आरीयनन्दी मुनि बालक जीवन्धर से प्रभावित हुए। उन्होंने प्रत्युपकार में जीवन्धर सहित ५०० कुमारों को सात वर्ष तक विद्याध्ययन कराया।[3] सीता ने घर पर ही गुरु के पास अध्ययन किया।[4]

विवाह

जैन आगमों में विवाह के तीन प्रकारों का उल्लेख मिलता है।[5]

१. वर एवं कन्या दोनों पक्षों के माता-पिताओं द्वारा आयोजित विवाह।
२. स्वयंवर विवाह और
३. गन्धर्व विवाह।

ब्रह्म जिनदास के रास-काव्यों में हमें विवाह के विविध रूप मिलते हैं। उक्त प्रकारों के अतिरिक्त कला कौशल देखकर विवाह, भविष्यवाणी से एवं उपहार में विवाह के प्रकार भी मिलते हैं।

विवाह की आयु : यद्यपि इन रास-काव्यों में हमें उस समय में किये जाने वाले विवाह के लिए निश्चित् आयु की जानकारी नही मिलती है, तथापि सामान्यतया पुत्र-पुत्री में यौवन का आगमन देख माता-पिता विवाह की चर्चा प्रारम्भ कर देते थे। साधारणतः समान वय, रूप-सौन्दर्य, वैभव, कुल गुण शिक्षा व्यवसाय एवं जाति उस समय के विवाहों का आधार था। उच्चकुल में अल्पायु में विवाह के उदाहरण नहीं मिलते। विवाह के प्रसंग में घर के बड़े-बूढ़े एक दूसरे परामर्श लेते थे।[6] लड़के का मौन विवाह की स्वीकृति समझा जाता था।[7] आदिनाथ के यौवन

---

१. राम रास : भास सहिलनी ॥४–५॥
२. श्रीपाल रास : भास जसोधरनी ॥६॥
३. जीवन्धर रास : भास रासनी ॥५॥
४. राम रास : भास हेलिनी ॥१३॥
५. डा० जगदीश चन्द जैन : जैनागम साहित्य में भारतीय समाज पृष्ठ २५३।
६. हनुमन्त रास : भास वीनतीनी ॥३०–४५॥
७. चारुदत्त रास : भास अंबिकानी ॥७॥

को देखकर पिता नाभिराजा हर्षित हुए। उन्होंने पुत्र के लिए कच्छ महाकच्छ की पुत्रियाँ सुनन्दा एवं सुमंगला को ब्याहा।[1] विशेष अवसर पर पुत्री की स्वीकृति भी लेनी पड़ती थी। स्वीकृति आवश्यक समझी जाती थी। सुर सुन्दरी का उसकी इच्छानुसार विवाह किया गया था। पिता के पूछने पर मैना-सुन्दरी ने अपने भाग्य की बात कही।[2]

विवाह समारम्भ : माता-पिता द्वारा आयोजित विवाह में साधारण तथा वर कन्या के घर जाता था। अरिष्ट नेमि ने सब प्रकार की औषधियों से स्नान कर दिव्य वस्त्र धारण कर आभूषणों एवं मंगलों से विभूषित हो गंधहस्ति पर सवार होकर विवाह के लिए प्रस्थान किया। कन्या राजीमति को भी इस विवाहोत्सव पर सर्वालंकार से विभूषित किया गया। मंगलमय वाद्य बजने लगे, ध्वजायें फहरायी गई, शंखों की ध्वनि सुनायी दी, मगल गीत गाये जाने लगे। बरात में दूर-दूर के राजा महाराजा भी सम्मिलित हुए।[3]

अरिष्ट नेमि के समान जम्बूकुमार को बड़े आग्रह से विवाह करने के लिए मनाया गया। उस समय धवल-मंगल गीत गाये गये। जम्बू का सर्वालंकारों से शृंगार किया। हाथी पर सवार होकर उसने विवाह हेतु प्रस्थान किया। उस समय ढोल, निसांण और तबले आदि वाद्य यन्त्रों की ध्वनि से आकाश गूंज उठा। राज हंस एवं हाथी के सदृश चलने वाली सुन्दरी कामिनियों ने गीत गाये। एवं नृत्य किये। इस प्रकार कुमार तोरण द्वार पर पहुंचा तो उसकी जय-जय के शब्दों से मानो उसे बधाइयाँ दी जाने लगी और फिर कुमार ने विवाह मंडप-चंवरी में बैठ चार कन्याओं से विवाह किया। इस विवाह से माता-पिता सभी सज्जन हर्षित हुये। प्रमोद मनोरथ पूर्ण हुआ। घर आकर आनन्द मनाया गया और सभी सज्जनों को भोजन कराया गया और मन वांछित दान दिया गया।[4]

इसी प्रकार पवनंजय भी हाथी पर बैठ कर अंजना को परणने चला। तोरण एवं ध्वजाओं से विवाह मंडप को सजाया गया। इस अवसर पर वर पक्ष वाले कन्या को और कन्या पक्ष वाले वर को देखने के लिए बड़े ही लालायित हो

---

१. आदिनाथ रास : भास माल्हंतडानी ॥१८-२१॥
२. श्रीपाल रास : भास जसोधरनी।
३. नेमिनाथ रास (हरिवंश पुराण रास) : भास समकित रासनी ॥१-८॥
४. जम्बूस्वामी रास : भास सहीनी ॥१-८॥

रहे थे। स्वयं वर और कन्या का तो कहना ही क्या ? वे मन ही मन एक दूसरे को देखने को आतुर हो रहे थे। पवनंजय से तो रहा नहीं गया, उसका धैर्य टूट गया और वह चुपचाप अपने मित्र को साथ लेकर विवाह से तीन दिन पूर्व ही अंजना को देखने आ गया। तोरण द्वार पर सास ने पवनंजय का सुन्दर आतिथ्य किया। फिर उसे चंवरी में बिठाया गया और अंजना के साथ पाणि-ग्रहण संस्कार सम्पन्न हुआ। उस समय दो पक्ष तक बरात को ठहराया जाता था।[1]

स्वयंवर विवाह : स्वयंवरों के माध्यम से भी उस समय विवाह होते थे। प्रायः राजा महाराजा ही अपनी कन्याओं के लिए स्वयंवर रचाते थे। मध्यम वर्ग के लोगों में स्वयंवर की प्रथा नही थी। स्वयंवर में—यौवन अवस्था को प्राप्त होने पर राजकुमारियां सभा मे उपस्थित हो विवाहार्थियों में से किसी एक को अपना पति चुन लेती थी और उसके गले में वरमाला डाल देती थी। स्वयंवर प्रणाली में राजकुमारी की अपनी शर्त होती थी—जो राजा या कुमार उस शर्त को पूर्ण कर देता था उसी के गले में कन्या वरमाला डाल कर उसका वरण कर लेती थी। सीता, द्रोपदी, गंधर्व सेना आदि के लिए स्वयंवर रचा गया था।

गंधर्व विवाह : इस विवाह में वर और कन्या अपने माता-पिता की अनुमति के बिना ही और बिना किसी धार्मिक विधि विधान के एक दूसरे को पसन्द कर लेने पर विवाह कर देते थे। स्त्री और पुरुष एक दूसरे के सौन्दर्य को देखकर परस्पर आकृष्ट हो जाते थे। भविष्यदत्त और भविष्यदत्ता में परस्पर एक दूसरे को देखते ही प्रीति हो गयी।[2]

अपहरण : कन्या या विवाहिता के अपहरण भी उस समय होते थे। सीता, सुभद्रा, रुक्मिणी, चेलणा आदि का क्रमशः रावण, अर्जुन, कृष्ण और श्रेणिक ने अपहरण किया। कृष्ण ने रुक्मिणी का हरण किया।[3] श्रेणिक ने चेलना का अपहरण किया एवं विवाह किया।[4]

भविष्यवाणी से विवाह : *साधु मुनियों एवं ज्योतिषियों की भविष्यवाणी*

---

१. हनुमन्त रास : भास अंबिकानी ॥२७–३३॥
२. भविष्यदत्त रास : भास यशोधरनी ॥४–५॥
३. हरिवंश रास : भास वोनतीनी।
४. श्रेणिक रास : भास रासनी।

के आधार पर भी विवाह होते थे। गन्धर्व सेना के लिए मतिसागर मुनि ने बताया कि उसका विवाह राजपुर नगर में होगा।[1]

कला कौशल देखकर विवाह : किसी कन्या के कला-कौशल से प्रभावित होकर भी पुरुष विवाह के लिए उत्सुक हो जाते थे। इसी प्रकार पुरुष की किसी कला से आकृष्ट होकर कन्या भी उससे विवाह की स्वीकृति दे देती थी। जीवन्धर की वीणा वादन से मुग्ध हो गन्धर्वसेना ने उसे अपने पति रूप में वरण कर लिया।[2] धन्यकुमार की विविध कलाओं से श्रेणिक पुत्री आकृष्ट हो उस पर मोहित हो गयी।[3]

दहेज

विवाह में कन्या के साथ-साथ भेंट में दहेज देने की प्रथा उन दिनों थी। दहेज में कई बहुमूल्य सामग्री दी जाती थी। धन्यकुमार को श्रेणिक ने विवाह में कन्या के साथ हाथी, घोड़े, रथ, रत्न, कनक, मोती, वस्त्र, अपार धन, ग्राम और नगर भी दिये।[4] भविष्यदत्त को कुमारी के साथ वस्त्र, आभूषण, सब रिद्धियां भेंट स्वरूप मिली।[5] भूमिपाल राजा ने भविष्यदत्त को प्रसन्न हो अपनी पुत्री सुमित्रा के साथ चमर, छत्र, सिंहासन एव राज्य करने के लिए देश भी दिया।[6] यह दहेज पिता की प्रसन्नता की प्रतीक था।

समाधिमरण (मृत्यु)

जैनागमों में मरण के दो प्रकार माने गये हैं।

१. नित्य मरण,

२. तद्भव मरण।

प्रतिक्षण आयु का घटना नित्य मरण है। शरीर का समूल नाश होना

---

१. जीवन्धर रास : भास भद्रबाहुबली ॥१५॥

२. जीवन्धर रास : भास चौपईनी।

३. धन्यकुमार रास : भास माल्हंतडानी ॥१७-२५॥

४. धन्यकुमार रास : दूहा ॥१-२॥

५. भविष्यदत्त रास : भास चौपईनी ॥१-८॥

६. वही : भास रासनी ॥१०-१५॥

तद्भव मरण है। नित्य मरण का क्रम निरन्तर चलते रहने से आत्म-परिणामों पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। लेकिन तद्भव मरण में कषायों एवं विषय वासनाओं की न्यूनाधिकता के अनुसार आत्म-परिणामों पर अच्छा बुरा प्रभाव अवश्य पड़ता है।[1] इस तद्भव मरण की सम्यक् परिशुद्धि के लिए सल्लेखना या समाधिपूर्वक मरण का विधान किया जाता है। जिसके अन्तर्गत मरण के समय प्राणी भूतकालीन समस्त कृत्यों की सम्यक् आलोचना करते हुए शरीर और कषायादिक को कृश करने के लिए आत्म समाधि लगा लेता है। उस समय वह अन्य जल का परित्याग कर शरीर से मोह छोड़ देता है। साधुओ का यह योग निरोध कहलाता है। जब कोई उपसर्ग, दुर्भिक्ष, बुढ़ापा और रोग ऐसी हालत में पहुंच जाय जिसका प्रतिकार नही हो सके तो उस समय धर्म के लिए शरीर छोड़ना सल्लेखना या समाधिकरण कहलाता है। शरीर धर्म का साधन है। इस दृष्टि से यदि शरीर धर्मसाधन मे सहाय्य हो तो उसे नष्ट नही करना चाहिए। यदि वह विनष्ट होता हो तो शोक नही करना चाहिए। धर्म का साधन मानकर ही शरीर को स्वस्थ रखना चाहिए। किन्तु जब शरीर धर्म का बाधक बन जाय तो शरीर को छोड़ धर्म की रक्षा करनी चाहिये। शरीर नष्ट होने पर पुनः मिल सकता है पर धर्म दुर्लभ है।[2]

समाधिकरण का उद्देश्य है अन्त क्रिया को सुधारना। जब मृत्यु सुनिश्चित् है तो राग-द्वेष और परिग्रह को छोड़ कर शुद्ध मन से सबसे क्षमा मांगे और जिससे अपराध बन पड़ा हो उसे क्षमा कर दे। फिर बिना किसी छल के अपने किये हुए पापों की आलोचना करके और मृत्यु पर्यन्त किसी प्रकार की सांसारिक अभिलाषा के महाव्रतों को ग्रहण करे।

इस प्रकार श्रावक अपने विधि नियमों के साथ जीवन निर्वाह करता हुआ शान्ति और निर्भयता के साथ मृत्यु का आलिंगन करके अपने मानव जीवन को सफल बनाता है। सुदर्शन पर कुपित हो राजा ने जब उसका वध करना चाहा तो उसने दो प्रकार से अनशन ले लिया कि यदि सुदर्शन बचा तो वह (सुदर्शन) पूजा व पारणा करेगा नही तो आमरण अनशन है। फिर सुदर्शन ने ८४ लाख योनी के जीवों से क्षमा चाही और स्वयं ने भी क्षमा दान दिया। णमोकार मन्त्र

---

१. भट्टाकलंक देव : तत्वार्थ राजवार्तिक, पृष्ठ ७–२२।
२. जैन धर्म, पृष्ठ २१८।

का स्मरण करता हुआ सब प्रकार के राग-द्वेष को छोड़ वह समता भाव-पूर्वक निश्चल मन से जिनेन्द्र देव के ध्यान में लग गया। उसके इस ध्यान के प्रभाव से यक्ष देव ने प्रकट हो राज पुरुषों को जहां की तहां कील कर दिया और उसकी रक्षा की।[1] इसी प्रकार जीवन्धर ने संकट आने पर अनशनपूर्वक साधना की और संकट से मुक्ति पायी।[2] यही प्रक्रिया मृत्यु के समय भी होती थी। सुकुमाल स्वामी ने मृत्यु के तीन दिन शेष रहने पर समाधिमरण ले लिया था।[3] तीन दिन की निरन्तर अविचलित कठोर विस्मयकारी घोर परिषह से युक्त आत्म साधना कर सुकुमाल इस असार संसार को छोड़ स्वर्ग में अहमेन्द्र का पद पाया। अगर, चन्दन, कपूर से उनके साधक शरीर का अन्तिम संस्कार किया गया।

(ख) सामाजिक जीवन चित्रण

आदिपुराण के अनुसार प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव ने समाज व्यवस्था की आधार शिला रखी। जो लोग शारीरिक दृष्टि से सुदृढ़ और शक्ति सम्पन्न थे, उन्हें प्रजा की रक्षा, सन्तों के पालन एवं दुष्टो के निग्रह कार्य में नियुक्त कर क्षत्रिय शब्द की संज्ञा दी। जो कृषि, पशुपालन व वस्तुओं के क्रय-विक्रय अर्थात् वाणिज्य कला में निपुण सिद्ध हुए उन्हें वैश्य (वणिक) वर्ण की संज्ञा दी। जिनमें ये दोनों कलायें नहीं थी उन्होंने इन दोनों वर्णों की सेवा की अभिरुचि प्रकट की उन्हे शूद्र की संज्ञा दी गई। इस प्रकार गुणकर्म के अनुसार वर्ण विभाजन हुआ। जन्म के स्थान पर कार्य को प्रधानता मिली। लोगों को समझाया गया कि सब अपना-अपना काम करते हुए एक दूसरे का सम्मान करें, कोई किसी को तिरस्कार की भावना से न देखे।[4]

कुछ समय बाद ऋषभ देव के पुत्र भरत चक्रवर्ती ने उन व्यक्तियों को जिन्होंने तीर्थंकर ऋषभदेव से ब्रह्म विद्या सीखी, जो अहिंसा धर्म को पालते थे, जो गृहस्थों में सर्वोत्तम थे, जो प्रतिदिन देव-दर्शन, स्वाध्याय, गुरु पूजा, संयम, तप और त्याग आदि षट् कार्यों को पालते थे। ऐसे श्रावकों को ब्राह्मण (माहण) की

---

१. जैन धर्म का मौलिक इतिहास : पृष्ठ २५–२६ ।

२. सुदर्शन रास : भास अम्बिकाणी ।

३. जीवन्धर रास : भास रासनी ।

४. सुकुमाल स्वामी रास : भास हेलिमी ।

संज्ञा थी ।[1]

ब्रह्म जिनदास के रास काव्यों के अनुसार उस समय उपर्युक्त चारों वर्ण समाज में विद्यमान थे । यद्यपि वर्णों ने जाति व्यवस्था का रूप ले लिया था, फिर भी निम्न कुल में उत्पन्न व्यक्ति यदि सदाचरण करता तो उसका सम्मान होता था और उच्च कुल में जन्म लेने पर भी यदि कदाचरण करता तो अपमान पाता था । किसी भी कुल में उत्पन्न व्यक्ति सम्यक् धर्म को पाल सकता था । फिर वह साधर्मी हो जाता था ।[2]

आश्रम व्यवस्था

उस समय सम्पूर्ण जीवन को चार आश्रमों में विभक्त किया गया था । यद्यपि ब्रह्म जिनदास को रास काव्यो मे चारों आश्रमों—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं सन्यास का स्पष्ट उल्लेख नही मिलता है, परन्तु नायक के वैराग्य के समय चतुर्थ आश्रम की चर्चा अवश्य आती है । जम्बूकुमार, राजा सगर आदि से इनकी पत्नियां चतुर्थ आश्रम में दीक्षा लेने को कहती हैं ।

प्राय: पांच वर्ष तक की शिशु अवस्था के पश्चात् पांच या सात वर्ष से २५ वर्ष तक विद्याध्ययन की अवस्था होती थी । युवावस्था के चिह्न दिखने पर विवाह हो जाया करता था । तभी से गृहस्थाश्रम आरम्भ हो जाता था । सफेद बाल दिखने पर वैराग्य लेने का अवसर आ जाता था । वान प्रस्थ का रूप वैराग्य ग्रहण दीक्षा के लिए प्रस्थान एवं साधना का आरम्भ था । साधना की चरम सीमा शरीर के क्षीण होने पर प्रकट होती थी । उस अवस्था को सन्यास या सल्लेखन कहा जाता था ।

आमोद-प्रमोद एवं मनोरंजन

इस समय आमोद-प्रमोद और मनोरंजन के अनेक साधन थे । छोटे बालकों के लिए कन्दुक क्रीड़ा तो प्रौढ़ों के लिए जल क्रीड़ा, वन क्रीड़ा और द्यूत क्रीड़ा आदि थे । महापुरुषों एवं बुद्धि जीवियों के लिए मनोविनोद के साधन नाटक, कहानी, पहेली, शास्त्रार्थ आदि थे ।

---

१. आदिनाथ रास : भास तीनों चौबीसनी ।
२. नागश्री रास : दूहा ।।१—७।।

भविष्यदत्त ने भविष्यदत्ता के साथ अपने एकान्तवास के समय को काव्य, रास, भास, फाग, गीत, गाथा, दूहा, पहेलियां एवं वार्ता गोष्ठि द्वारा मनोरंजन करते हुए व्यतीत किया। श्रीकृष्ण ने अपनी पत्नी सत्यभामा के साथ जल क्रीड़ा की थी। रुक्मिणी अपने देवर नेमिनाथ से उसके विवाह प्रसंग को लेकर मनोविनोद किया करती थी।[1]

वीणा वादन भी उस समय मनोरंजन का साधन था। जीवन्धर कुमार वीणा वादन में अति पटु था। अपनी वीणा वादन की चातुरी से उसने स्वयंवर मण्डप में सभी को विस्मित एवं मुग्ध कर दिया। राजकुमारी गन्धर्वसेना ने प्रसन्न हो उसे पति रूप में वरण किया।[2]

पुनर्जन्म

कर्मवाद के इस विश्वास से स्वतः उस समय के लोगों का पुनर्जन्म के प्रति विश्वास व्यक्त होता है। लोगों का विश्वास था कि इस जन्म मे भी वे जैसा करेंगे अगले जन्म मे वे वैसा ही पायेंगे। उस समय कोई मुनि से अपने पूर्व जन्म की बात पूछता तो मुनि उसके पिछले भवों का वर्णन उसके सामने कर देते थे। भविष्यदत्त ने मुनि ज्ञानसागर से अपने वर्तमान जीवन के सुख-दुःख का कारण पूछा, मुनि ने उसके पूर्व भवों में किये गये शुभ-अशुभ कर्मों का वर्णन (भवान्तर) उसे सुना दिया। जिसे सुनकर भविष्यदत्त को वैराग्य हो गया और उसने पत्नी के साथ जिन दीक्षा ले ली।[3] उस समय लोग प्रायः साधुओं से अपना पूर्व जन्म का वृतान्त सुनते थे। पुनर्जन्म में उनकी अत्यन्त आस्था थी। अपने पूर्वभव के वृत्तान्त को सुनकर वे सावधान होते और भावी जीवन को सुधारने के लिए वर्तमान जीवन में सम्यक् धर्म, दर्शन, ज्ञान और चारित्र का पालन करते थे।

ज्योतिष

इसी प्रकार उस समय का समाज ज्योतिष में भी विश्वास रखता था। सुकुमाल की माता निमित्तज्ञानी साधु से ही अपने पुत्र के जन्म, पति एवं पुत्र के वैराग्य की बात जानकर एकान्त स्थान में जाकर रहने लगी और पुत्र को गुप्त स्थान

---

१. हरिवंश पुराण रास : भास असोवरनी।
२. जीवन्धर स्वामी रास : भास चौपईनी।
३. भविष्यदत्त रास : भास रासनी।

में रख कर सुरक्षा करने लगी। फिर भी पुत्र जन्म की बात गुप्त न रही और पुत्र एवं पति का वियोग उसे सहना ही पड़ा।[1] इसी प्रकार स्त्रियां पुत्र न होने पर किसी ज्योतिषी या निमित्त ज्ञानी साधु से पुत्र जन्म की बातें पूछ लेती थीं। अपने पुत्र के विदेश जाने के पश्चात्, बहुत दिनों तक उसके समाचार न पाकर कमलश्री बहुत दु:खी हुई। एक बार वह समाधिगुप्त मुनि के दर्शन करने गयी। वहाँ उसने उनसे अपने पुत्र के आने के विषय में प्रश्न किया। मुनि ने बतलाया कि १२ वर्ष पूर्ण होने पर वैशाख मास की शुक्ल पंचमी की रात्रि को तुम्हारा पुत्र तुमसे अवश्य मिलेगा। मुनि की बात सत्य हुई। कमलश्री को मुनि के बताये समय पर ही पुत्र मिल गया।[2]

शकुन-अपशकुन

शकुन-अपशकुनों का ज्यादा विवरण इन काव्यों में नहीं मिलता। यदाकदा ही शकुन-अपशकुनों पर विचार किया जाता था। सम्यक् धर्म मे आस्तिक व्यक्ति इनको नही मानते थे। छीकना, स्त्री का दाहिना अंग फड़कना, पुरुष का वाम अंग फड़कना अशुभ कार्यों के सूचक थे। लोकापवाद के भय से राम द्वारा परित्यक्ता गर्भवती सीता के रथ में बैठते समय छींक हुई, जिसकी परस्पर लोगों ने चर्चा की। परन्तु शीलवती सीता ने इसको कुछ महत्त्व नहीं दिया।[3]

मन्त्र विद्या

उस समय लोग अपने कार्य की सिद्धि के लिए मन्त्र विद्या का भी प्रयोग करते थे। काष्टांगार ने मन्त्री बनने के बाद राज्य छीनने एवं राजा बनने के लिए अपनी मन्त्र सिद्धि का प्रयोग किया। उसका विद्यामन्त्र गर्भवती रानी विजयावती को लेकर उड़ गया और श्मसान में जाकर रख दिया। भयंकर जीव-जन्तुओं के बीच गर्भवती रानी वही रही और पुत्र को जन्म दिया।[4]

'णमोकार' मन्त्र में उस समय लोगों का बड़ा विश्वास था। वे इसे बड़ी श्रद्धा से स्मरण करते थे। यह पंच नमस्कार उनके जीवन की दिनचर्या का आवश्यक अंग सा बन गया था। उनका विश्वास था कि यह मन्त्र सर्व विघ्नों का विनाशक है

---

१. सुकुमाल स्वामी रास : भास चौपईनी।
२. भविष्यदत्त रास : भास भासनी।
३ राम-रास : भास हेलिनी।
४. भविष्यदत्त रास : भास चौपईनी।

एवं मंगलकारक है। अतः वे सुख-दुख में, कष्ट एवं विपदाओं की घड़ी में तथा मांगलिक कार्यों में इसका स्तवन एवं स्मरण करते थे।[1]

नागश्री ने मरणासन्न कुत्ते को यह मन्त्र सुनाया, जिसके प्रभाव से कुत्ता मरकर यक्ष बना। उस यक्ष ने कालान्तर में नागश्री की संकट में सहायता की।[2] इन रास काव्यों में जब-तब भी किसी पात्र पर संकट आया, उसने इस मन्त्र के गुण स्मरण से संकट पर विजय पायी। श्रेष्ठी पुत्र चारुदत्त को इस मन्त्र में अटूट आस्था थी। वह अपने जीवन में पद-पद पर इसका स्मरण किया करता था। वसन्तमाला वेश्या ने चारु की इस प्रकृति को जानकर इसी मन्त्र के उच्चारण से अपने आपको जैन बताकर उसे आकर्षित किया।[3] समुद्र में झकोलों के बीच उसने अपने आपको इस मन्त्र के स्मरण से डूबने से बचा लिया।[4] अपने जीवन के अनेकों सुख-दुःखों के अवसरों पर चारु ने णमोकार का स्मरण किया और यश, शान्ति एवं सुख को प्राप्त किया।

विविध व्यवसाय

आजीविका के लिए धनोपार्जन हेतु उस समय विविध प्रकार के व्यवसाय थे। आदिनाथ रास मे आजीविका के लिए षट् कर्मों का उल्लेख हुआ है। तीर्थंकर भगवान आदिनाथ ने सर्व प्रथम कर्म भूमि की स्थापना की। उन्होने ही सबसे पहले लोगों को कर्म की महत्ता का ज्ञान कराया और षट् प्रकार के कर्मों की स्थापना की। षट् कर्म थे असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, विद्या और शिल्प।[5]

सैनिक कर्म, कृषि, व्यापार, अध्यापन, कलाकर्म और सेवा कर्म आजीविका के प्रमुख साधन थे। ये सभी कर्म जीवन-यापन एवं सामाजिक व्यवस्था के लिए आवश्यक थे। युद्धों में राज्य की रक्षा के लिए सैनिकों, राज्य कार्य के लिए लिपिकों, अन्नोत्पादन के लिए कृषको, वस्तुओं के आदान-प्रदान के लिए वाणिकों, शैक्षणिक कर्म के लिए पण्डितों का समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान था।

सैनिक कर्म : राज्य एवं प्रजा की रक्षा के लिए, शान्ति व्यवस्था बनाये

---

१. जीवन्धर रास : भास चौपईनी।
२. नागश्री रास : भास गुणराज भूमनी।
३. चारुदत्त रास : भास चौपईनी।
४. चारुदत्त रास : भास रासनी।
५. आदिनाथ रास : भास चौपईनो।

रखने के लिए राजा लोग शस्त्रधारी पुरुषों को अपने यहां रखते थे। ये सैनिक राज्य की आन्तरिक संघर्ष एवं बाहरी आक्रमणों से राज्य की रक्षा करते, अपराधियों को दण्ड देते और शान्ति एवं न्याय व्यवस्था को बनाये रखते थे। राज्य की रक्षा उनका प्रमुख धर्म होता था। ये राजा के विश्वास पात्र होते थे। इन्हें राज पुरुष भी कहा जाता था।[1] जिस राजा की जितनी अधिक संख्या में सेना होती, वह उतना ही बड़ा होता था। लोग सेना में प्रविष्ट होकर अपना उदर पोषण करते थे। समाज में राज-पुरुषों का पर्याप्त प्रभाव था। वे राजा की आज्ञा के पालक होते थे। इनके कार्य में जनता हस्तक्षेप नहीं करती थी। शस्त्रधारी राज पुरुषों को देखकर प्रजा भयभीत हो जाती थी। सैनिकों की कार्यकुशलता से प्रसन्न होकर राजा उन्हें पुरस्कृत करते थे।[2]

अध्यापन कर्म : प्रज्ञावन्त लोग पढ़ाने का कार्य करते थे। प्राय: जैन एवं ब्राह्मण पण्डित ही इस कार्य को किया करते थे। वे समाज के तीनों वर्णों ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य परिवार के बालक-बालिकाओं को शस्त्र एवं शास्त्र विद्याओं का ज्ञान कराते थे। राज्य व समाज के द्वारा इनका भरण-पोषण होता था। शासन व समाज पण्डितों का सम्मान करता और उन्हें पुरस्कृत करता था। राजा दशरथ ने अपने पुत्रों की शिक्षा के पश्चात् उनके गुरु को बहुत मात्रा में दान दिया।[3] इस प्रकार उस समय विद्वान् अध्यापन कार्य से अपनी आजीविका का उपार्जन किया करते थे।

कृषि कार्य : कृषक अन्न उत्पादन करके, अन्न का विक्रय करके उससे प्राप्त धन से या उसके बदले आवश्यक सामग्री लेकर जीवन-यापन करते थे।

कला कर्म : चित्रकार चित्रकला से, कुम्भकार कुम्भ निर्माण से, गंधर्व गायन कला से, शिल्पकार निर्माण कला से अपनी आजीविका उपार्जन किया करते थे। इसी प्रकार, मालाकार, स्वर्णकार एवं सूत्रकार आदि का अपना-अपना व्यवसाय था। श्रेणिक रास में भरत नाम के चित्रकार का उल्लेख आता है। वह नगर-नगर में अपनी चित्रकला को दिखाता रहता था। एक बार उसने राजकुमारी चेलना का चित्र बना कर राजा श्रेणिक को दिखाया, जिसे देख श्रेणिक मोहित

---

१. आदिनाथ रास : भास रासनी।
२. आदिनाथ रास : भास रासनी।
३. राम रास : भास सहिलडिनी।

हो गया और उसने चित्रकार को पुरस्कृत किया।[1] सुव्रदत्त विनयवती कथा में शिल्पकार का, मालनी पूजा कथा में मालाकार का तथा ज्येष्ठ जिनवर पूजा में कुम्भकार का उल्लेख आता है। कुसुमावली और पुष्पावती नाम की माली की पुत्रियां पुष्प बेच कर पैसा कमाती थी।

दास कर्म : उस समय राजघरानों एवं उच्चकुलों में दास-दासियां रखने की प्रथा थी। राजघरानों में दास-दासियां राजा-रानी के सेवक होते थे। प्रत्येक रानी की सेवा-सुरक्षा के लिए दासियां होती थी। इसी प्रकार राजाओं के अपने अंगरक्षक एवं दास होते थे। ये लोग परिचारक कर्म के द्वारा अपनी आजीविका प्राप्त करते थे। अच्छे सेवक एवं शुभ सूचना लाने वाले दास विशेष रूप से पुरस्कृत होते थे।[2]

दूत कर्म : दूत कर्म भी उस समय आजीविका का साधन था। दूत एक राजा के समाचार दूसरे राजा तक पहुंचाने का कार्य करते थे। दूत प्रायः अवध्य होते थे। विशेष शुभ-सन्देश लाने वाला दूत पुरस्कृत होता था।[3]

सारथी कर्म : वाहन चालक कार्य भी जीविकोपार्जन का साधन था। सारथी रथ में राजाओं-रानियों को बिठाकर ले जाया करते थे। वनगमन, यात्रा, युद्ध एवं शिकार के समय भी रथ चालक का कार्य ये ही करते थे।[4]

वाणिज्य कर्म : वस्तुओं का आदान-प्रदान करने वाला वणिक कहलाता था। वणिक लोग वस्तुओं का व्यापार किया करते थे। अपने स्थान की वस्तुओं को बाहर ले जाकर बेचते और बाहर (विदेशों) की वस्तुएं लाकर अपने स्थान में बेचा करते थे। इस वाणिज्य कर्म के माध्यम से वे अपार धन सम्पत्ति अर्जित करते थे। एक स्थान स दूसरे स्थान पर जाकर वस्तुओं के क्रय-विक्रय में ये लोग पटु होते थे। जलपोतों एवं नोकाओं से विदेश यात्राएं करते और अनेक प्रकार के संकटों को सहते हुए अन्त में सम्पत्ति का संचय करते थे। व्यापार मार्ग में चोरों ठगों, लुटेरों का भय रहता था। वणिक लोग वस्त्र, कपास, रत्न, कंचन, माणिक, मोती, कुंकुम, रोली, काजल, कपूर, ताम्बूल आदि वस्तुओं का क्रय-विक्रय करते थे।

---

१. श्रेणिक रास : भास बाहुनी।
२. राम रास : भास रासनी।
३. आदिनाथ रास : भास वीनतीनी।
४. हरिवंश रास : भास चोपईनी।

चारुदत्त अपने अन्य वरिणक साथियों के साथ पूर्व देश की ओर व्यापार के लिए गया। मार्ग में वे चोरों से अपनी रक्षा करते हुए सावधानी पूर्वक नदी-नाले पार करते हुए बलक देश पहुंचे। वहाँ से पालिसपुर आये। कपास के व्यापार से हार कर आगे मलयागिरी पहुंचे, वहां से व्यापार करते हुए उन्होंने रत्नों का संग्रह किया। दुर्भाग्य से चोर चुरा ले गये। पाटण होते हुए कंचन द्वीप से वस्त्र एवं कंचन लेकर अपने देश लौट आये।[1]

भविष्यदत्त अपने भाई बन्धुदत्त के साथ व्यापार के लिए कंचनपुर गया। मार्ग में उसने भविष्यदत्ता राजकुमारी को प्राप्त किया। तिलकपुर, पाटण एवं हस्तनापुर पाटण से स्वर्ण, रत्न, माणिक, मोती, कुंकुम रोली, काजल, कपूर और ताम्बूल आदि लेकर वह घर पहुंचा।[2]

साहित्य संगीत और कला

"साहित्य, संगीत और कला विहीन व्यक्ति का कुछ भी महत्व नहीं है। मनुष्य के जीवन में इन तीनों की महत्ता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।[3] ब्रह्म जिनदास से रास काव्यों से पता चलता है कि आज से पांच सौ वर्ष पूर्व का समाज साहित्य, संगीत एवं कला में पर्याप्त रुचि रखता था। इन तीनों का ज्ञानार्जन उस समय के समाज का आवश्यक अंग था। कवि की सम्पूर्ण काव्य रचना साहित्य, संगीत एवं कला की सुन्दर त्रिवेणी संगम स्थलीय है।

भविष्यदत्त एवं भविष्यदत्ता ने बहुत दिनों तक अपने एकान्त समय को साहित्य, संगीत एवं कला के त्रिवेणी संगम में व्यतीत किया। उन्होंने रास, भास, गीत, चंग, गाथा, दूहा, कहानी, पहेली, काव्य वीणा-वाद, प्रीति एवं मधुर वाणी द्वारा घर, मन्दिर और वन में शील पूर्वक आनन्द मनाया।[4]

इस प्रकार कवि के रास काव्य साहित्य, संगीत एवं कला के त्रिवेणी संगम हैं। इन रास काव्यों ने गायन, वादन एवं नृत्य तत्व की प्रधानता है। कथा-साहित्य के तत्वों का सन्निवेश तो इनमें ही है

---

१. चारुदत्त रास : भास रासनी।
२. भविष्यदत्त रास : भास रासनी।
३. साहित्यसंगीतकलाविहीन : साक्षात्पशु पुच्छविषाणहीनः ॥
 भर्तृहरि : नीतिशतक।
४. भविष्यदत्त रास : भास वीनतीनी।

सामान्य जीवन चित्रण :

आवास : आलोच्य रास काव्यों में उच्च कुलों के लिए प्रसाद, मध्यम वर्ग के लिए गृह एवं निम्न वर्ग के लिए कुटिया का आवास स्थान के रूप में उल्लेख हुआ है। राजाओं के प्रासाद राजमन्दिर एवं सौध भी कहलाते थे। प्रासाद में आंगण, चौक, पोली एवं स्तम्भ होते थे। मुख्य कक्षों में सभा कक्ष होते थे। उस समय प्रासाद प्रायः बहुत ऊंचे होते थे। धवल गवाक्ष प्रासादों की विशेषता थी। देवालयों के साथ रंग मण्डप (सभा कक्ष) होते थे। दीवारें बहुत ऊंची होती थी। भविष्यदत्त के लिए किसी देव ने रंग मण्डप की उत्तंग भित्ति पर पेन्सिल से मार्ग दर्शन सूचक शब्द लिखे। प्रासाद धवल और हरित होते थे।[1] प्रासाद की ऊंचाई सात मंजिल तक होती थी। अंजना अपनी सखियों के साथ सातवीं मंजिल में बैठी गोष्ठी कर रही थी।[2] समुद्र विजय का भी सात मंजिल का प्रासाद था। प्रासाद स्थानों में भूगृह भी होते थे। सब ओर से सुरक्षित होने से वे सर्वतोभद्र भी कहलाते थे। अपने पुत्र की सुरक्षा के लिए सुकुमाल की माता भूगृह में रहती थी। बड़े होने पर सुकुमाल की रक्षा के लिये सर्वतोभद्र गढ़ बनाया गया।[3] प्रायः प्रासाद स्तम्भों पर अवस्थित होते थे।

नगर स्थान : कवि ने अपने काव्य में विविध स्थानों का उल्लेख किया है—जम्बूद्वीप, भरतक्षेत्र, मगध, राजगृह, विपुलाचल, कोसलदेश, अयोध्यानगर, कुरुजांगल, हस्तनागपुर, काशी, वाराणसी, मतालपुर, पोदनपुर, तिलकपुर पाटण, वर्धमान, कन्नौज, अंगवर, जालंधर, मालवा, उज्जैनी, वराड, महाराष्ट्र, कर्नाटक, सिंघलद्वीप, आहीर, गजपंथा, तुंगी, वडवाणी, लाडदेश, पावागिरी सौराष्ट्र, शत्रुंजय, गुर्जरदेश, अम्बावती, मेवाड़ देश, बागड़, चित्तोडगढ़, आबू शिखर, कंडलपुर, सम्मेदशिखर, मेघनगर, पल्लवदेश आदि। कवि ने अपने प्रमुख पात्रों की यात्रा प्रसंग में इन स्थानों का उल्लेख किया है। विद्युत चोर ने इन सभी स्थानों की यात्रा की थी।[4]

खाद्य पदार्थ : उस समय खाद्य पदार्थों में दूध, दही, घृत, मोदक, खीर, खांड, भात, दाल, घेवर, तालमखाणें, तेल, लवण आदि थे। फलों में आम्र, केला,

---

१. भविष्यदत्त रास : भास रासनी।

२. हनुमन्त रास : भास अम्बिकानी।

३. सुकुमाल स्वामी रास : भास चौपाईनी।

४. आदिनाथ रास : भास मोडनी।

नारियल, द्राख, खजूर, दाडिम, बीजोरड़ा, जामुन, इक्षु आदि प्रयुक्त होते थे। ताम्बूल एवं श्रीखण्ड का प्रयोग भोजनपरान्त होता था।

वस्त्राभूषण : उस समय पट्कूल और धोती शरीर के ऊपरी एवं अधो वस्त्रों में थे। विशेष अवसरों पर शुभ्र धवल वस्त्र धारण किये जाते थे।[1] राज्याभिषेक एवं विवाह के अवसर पर स्त्री-पुरुष सुन्दर वस्त्राभूषण से सुशोभित होते थे। मुकुट, कंकण, कुंडल, हार, मुद्रिका, कंठी, मेखला, नूपुर आदि सोलह प्रकार के आभूषण विशेष अवसरों पर धारण किये जाते थे। धर्मसभा, राजसभा आदि स्थलों पर जाते समय और उत्सव विशेष के अवसरों पर प्रायः स्त्रियां अपेक्षाकृत अधिक आभूषण धारण किया करती थी। नागश्री जब रानी से मिलने गयी तो वह अत्यन्त कीमती हार को पहन कर गयी थी। वह हार रानी को अति प्रिय लगा। उसने राजा से कह कर हार अपने लिये रख दिया।

शृङ्गार प्रसाधन : कुंकुम, पुष्प, चंदन, अंजन, दर्पण, तिलक, मलयागिर, केसर, रोली, ताम्बूल, पुष्पमाल एवं अन्य सुगंधित द्रव्य आदि शृङ्गार के प्रसाधन थे। पुरुष की अपेक्षा स्त्रियां शृङ्गार अधिक करती थी। रानियां एवं श्रेष्ठि पत्नियां अपने स्वप्नों का फल जानने के लिये जब अपने राजा के पास जाती थी या अन्य किसी उत्सव मे सम्मिलित होती थी तो उससे पूर्व प्रायः वे अपना शृङ्गार किया करती थी। शृङ्गार मे विशेषतः तिलक, काजल, पुष्प एवं सुगंधित द्रव्यों का प्रयोग करती थी। कई बार शृङ्गार करने में व्यस्त रहने से वे आगंतुको तक को भूल जाती थी। यथा सम्भव पुरुष भी शृङ्गार किया करते थे। काष्टांगार ने वेश्या के पास जाने से पूर्व अपने आपका शृङ्गार किया। उसने ताम्बूल से दांत रचाये। धोबी से शुद्ध वस्त्र उधार लेकर पहिने, माली से पुष्प माला धारण की और गन्धी से इत्र लगवाया।[2] स्वयंवर, विवाहोत्सव, जन्मोत्सव एवं राज्याभिषेक के अवसरों पर सुगन्धित द्रव्यों एवं शृङ्गार प्रसाधनों का उपयोग किया जाता था।

मुद्रा : उस समय मुद्रा के रूप में दीनारों का प्रचलन था। काष्टांगार ने वेश्या को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये पांच दीनारें एकत्र की और वेश्या को सप्रेम भेंट की।[3] नागश्रीं का पति सेठ धनदत्त रोजाना एक दीनार दान में देता था।[4] ये दीनारे उस समय के सिक्कों की प्रतीक थी। अन्य सिक्कों में "टंका" बहुत प्रचलित था।

---

१. नागश्री रास : भास हेलिनी।
२. जीवन्धर रास : भास चौपईनी।
३. जीवन्धर रास : भास चौपाईनी।
४. नागश्री रास : भास रासनी।

धातु एवं खनिज पदार्थ : रत्न, हीरे, माणिक, मोती, स्वर्ण, कांच आदि धातुओं का उस समय व्यापार होता था। रत्नों एवं मोतियों के आभूषण बनाये जाते थे। इनसे बने हार उच्च कुलों में विशेष रूप से धारण किये जाते थे। वणिक लोग व्यापार से लाये गये इन धातु पदार्थों को सबसे पहिले अपने नगर के राजा को उपहार स्वरूप देने जाते थे। भविष्यदत्त ने अपने नगर के राजा को इन धातुओं को भेंट स्वरूप दिया, जिससे भविष्यदत्त का सम्मान बढ़ा।[1]

वाहन : हाथी, घोड़े, पालकी, रथ, बैलगाड़ियां आदि वाहनों का चलन उस समय था। उच्च कुल के व्यक्ति हाथी, घोड़े, पालकी, रथ आदि का प्रयोग करते थे। सामान्य वर्ग का समुदाय बैलगाड़ियों का ही प्रयोग करता था। प्रायः व्यापार कर्म के लिये बैलगाडियों का ही उपयोग होता था। जलपोतों का प्रयोग व्यापार के लिए होता था। राजवर्ग का वैरागी व्यक्ति दीक्षार्थ पालकी में ले जाया जाता था।[2]

वाद्य यन्त्र : ढोल, निसांण, मृदंग, तबले, भुरंग, वीणा, कंसाल आदि वाद्य यन्त्र थे जो जन्मोत्सव, विवाहोत्सव एवं बसन्तोत्सव के अवसरों पर विशेष प्रयुक्त होते थे। ये वाद्य यन्त्र पाँच प्रकार के मोहक शब्दों को उत्पन्न करते थे।[3]

(ग) राजनैतिक जीवन चित्रण :

जैन आगमों में चाणक्य के अर्थशास्त्र एवं ब्राह्मणों के धर्मसूत्रों की भांति शासन-व्यवस्था सम्बन्धी विधि-विधानों का व्यवस्थित उल्लेख नहीं मिलता। जो कुछ संक्षिप्त उल्लेख उपलब्ध होते हैं, वे केवल कथा-कहानियों के रूप में है। जो साधारणतया तत्कालीन सामान्य जीवन का चित्रण करती है। श्रमण धर्म के अनुयायी होने के कारण जैन विद्वानों ने तप, त्याग और वैराग्य के ऊपर ही जोर दिया है। इह लौकिक जीवन के प्रति उन्होने उतनी रुचि नहीं दिखायी।[1] कवि ब्रह्म जिनदास राजनीतिक प्रलोभनों से बहुत दूर थे। उनका अधिकांश समय अपन आराध्य की उपासना एवं साहित्य साधना मे ही व्यतीत होता था। उनके सभी काव्य वैराग्य एवं धार्मिक भावना से ओत-प्रोत है। फिर भी अनेक स्थलों पर उनके समय की राजनीति से सम्बन्धित कई तथ्यों के संकेत मिल जाते हैं।

---

१. भविष्यदत्त रास : भास रासनी।
२. भविष्यदत्त रास : भास वीनतीनी।
३. जम्बूस्वामी रास : भास सहीनी।

राजा और राजपद :

आदि पुराण रास के अनुसार प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव ही प्रथम राजा थे। जिन्होंनें भारत की प्रथम राजधानी इक्ष्वाकु भूमि (अयोध्या) में राज्य किया। इसके पूर्व न कोई राज्य था. न राजा। वह एक ऐसा राज्य था जहां सभी लोग अपने अपने धर्म का पालन करते हुए सदाचार और आनन्द पूर्वक जीवन यापन करते थे। वह भोग भूमि थी। इसमें किसी प्रकार का वैमनस्य और लड़ाई-झगड़ा नहीं था। कालांतर में जब मनुष्य धर्म से च्युत होने लगे, वृक्षों का प्रभाव कम होने लगा और प्रजा में अव्यवस्था फैलने लगी तब लोग एकत्रित होकर भोग भूमि के अन्तिम एवं १४वें कुलकर नाभिराजा के पास पहुंचे। नाभिराजा ने उन्हें अपने पुत्र ऋषभदेव के पास भेजा [1] ऋषभदेव ने अपने अवधिज्ञान से भोग-भूमि की समाप्ति जानकर कर्मभूमि की स्थापना की।[2]

ऋषभदेव ने प्रथम बार प्रजा के लिए षट् कर्म असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प और कला की स्थापना की। व्यक्तियों के गुण-स्वभाव के आधार पर कार्यों का विभाजन किया और क्षत्रिय, वैश्य और सेवक वर्ग की स्थापना की।[3] कुछ समय बाद इनके पुत्र भरत ने अहिंसा, धर्म एवं नित्य स्वाध्याय आदि षट् कर्मों का पालन करने वाले उत्तम श्रावकों को ब्राह्मण (माहण) की संज्ञा दी।[4]

ऋषभदेव के विशिष्ट व्यक्तित्व को देखकर प्रजा लोक के अनुरोध पर महाराज नाभिदेव ने ऋषभदेव को राज पट्ट पर बिठला कर राजतिलक किया। ऋषभदेव प्रथम राजा बने।

राज्याभिषेक :

राज्याभिषेक के अवसर पर अन्य नगरों के राजा महाराजा भी एकत्र होते थे। नगर को विविध ध्वजाओं एवं तोरण द्वारों से सजाया जाता था। राज-प्रासाद के प्रांगण में कुंकुम छिड़का जाता, मोतियों से चौक पूरा जाता था। फिर सभी की अनुमति से तीर्थों के मन्त्रपूरित, सुगन्धित द्रव्यों से युक्त जल से भरे कलशों

---

१. डा० जगदीशचन्द्र जैन : जैनागम साहित्य में भारतीय समाज, पृष्ठ ४१।
२. आदि पुराण रास : भास चौपाईनी।
३. आदि पुराण रास : भास चौपाईनी।
४. आदि पुराण रास : तीन चौबीसीनी।

से विविध मांगलिक बाद्यों की शुभ ध्वनि के मांगलिक वातावरण में अभिषेक किया जाता और उत्तम सुशोभित सिंहासन पर बिठलाया जाता था।[1]

राज्याभिषेक के बाद यदि आवश्यक होता तो नवाभिषिक्त राजा अपने अधीन उपशासकों की भी नियुक्तियां करता था। ऋषभदेव ने राज्याभिषेक के बाद हस्तिनापुर का शासक सोम एवं श्रेयांस राजा को, वाराणसी का शासक अकम्पनाचार्य को, राजगृह का शासक हरिकांत को बनाया।[2] राज्याभिषेक के अवसर पर बन्दियों को कारागार विमुक्त कर दिया जाता था। पीड़ितों को अभयदान और प्रजा को बारह वर्ष के लिए कर से मुक्त कर दिया जाता था।[3]

उत्तराधिकारी :

सामान्यतः राजा का ज्येष्ठ पुत्र ही उत्तराधिकारी होता था। एक से अधिक पुत्र होने पर राजा बड़े पुत्र को अपना उत्तराधिकारी तथा अन्य पुत्रों को छोटे-छोटे राज्यों का उपशासक बना देता था। ये उपशासक अन्ततः उत्तराधिकारी से ही सम्बद्ध होते थे। बड़े पुत्र के अस्वीकारने पर छोटे पुत्र को उत्तराधिकारी बना दिया जाता था। यदि पुत्र नाबालिग-अवयस्क या छोटा होता तो राजा का मन्त्री या भ्राता राजपुत्र के वयस्क होने तक शासन संचालन करता था। इस स्थिति में कभी-कभी मन्त्री या राजा धीरे-धीरे अपना अधिकार जमा लेता था और राजपुत्र को या तो देश बाहर कर देता या मरवा डालता था। पिता प्रजापाल की मृत्यु के समय श्रीपाल पुत्र दो वर्ष का था। आनन्द नामक मन्त्री श्रीपाल की ओर से राज करने लगा। श्रीपाल का काका वीरदमन अत्यन्त लोभी था। उसने आनन्द मन्त्री से मिलकर श्रीपाल एवं उसकी माता को देश से निकाल दिया और स्वयं शासन करने लगा।[4] अमात्य बनने के बाद काष्टांगार को लोभ सवार हो गया। उसने अपने मन्त्र बल से गर्भवती रानी को श्मशान में फिकवा दिया, राजा को मार डाला और स्वयं शासक बन बैठा।[5]

---

१. आदि पुराण रास : भास अम्माडानी।

२. वही।

३. जीवन्धर रास : भास रासनी।

४. श्रीपाल रास : भास हिंडोलानी।

५. जीवन्धर रास : भास चौपाईनी।

यदि राजा के एक से अधिक पुत्र होते थे तो उनकी परीक्षा की जाती। जो राजपुत्र परीक्षा में सफल होता, उसे युवराज बनाया जाता। राजगृह परीक्षा के राजा उपश्रेणिक के ५०० पुत्र थे। एक दिन उसने किसी जोशी को बुलाकर उससे राज्य के उत्तराधिकारी के विषय में पूछा। जोशी ने निमित्त शास्त्र देखकर बताया कि राजसभा में ५०० राज्यपुत्रों को बुलाकर उनके हाथ में एक-एक कलश दीजिये। जो कुमार उन कलशों को अपने हाथो से ले जावे, वे राज्य में सफल नहीं होंगे। लेकिन जो कुमार अपने नौकर के हाथों कलश सौंप कर ले जायेगा वही राज्य का अधिकारी होगा। निमित्त ज्ञानी के इस कथन के आधार पर राजा ने परीक्षा ली उसमें श्रेणिक राजकुमार सफल हुआ।[1]

कभी-कभी राजा के द्वारा किसी अन्य रानी से वचन बद्ध होने पर न तो श्रेष्ठ पुत्र को राज्य मिलता और नहीं योग्य व्यक्ति को। ऐसे समय उसे अपनी प्रेमिका को दिये गये वचनों को पूर्ण करने के लिए राज्य का अधिकारी उसके पुत्र को बनाना पड़ता था। राजा दशरथ के द्वारा रानी कैकेयी को पूर्व में वचन दे दिये जाने के कारण राम का राज्याभिषेक स्थगित करना पड़ा और भरत को राज्य देना पड़ा।[2]

कुणीक ने अपने सौतेले भाइयों के सहयोग से अपने पिता राजा श्रेणिक से राज्य छीन लिया और पिता को कारागार मे डाल दिया। पांवों में बेड़ी डाल दी। कारागार में भी वह पिता को तरह-तरह के कष्ट देने लगा। एक बार कुणीक अपने पुत्र लोकपाल को खिला रहा था। पुत्र के प्रति इस मोह को देख रानी चेलना ने कहा कि इसी प्रकार तुम्हारे पिता भी तुमसे मोह करते थे। जब तुम्हारा पुत्र बड़ा होगा तो वह तुम्हें भी बांधेगा और पावों में बेड़ियां डालेगा। माता के इन वचनों को सुनकर कुणीक के मन में दया पैदा हुई। वह श्रेणिक को बन्दीखाने से मुक्त करने चला। उसे आते देख श्रेणिक ने भयभीत हो तलवार से अपना मस्तक अलग कर प्राणान्त कर लिये।[3]

शासन व्यवस्था :

राज्य परिषद : राजा, युवराज, अमात्य, श्रेष्ठि और पुरोहित ये राज्य परिषद् के अंग थे। राजा के दीक्षा लेने पर या उसकी मृत्यु हो जाने पर युवराज

---

१. श्रेणिक रास : भास बीनतीनी।

२. राम रास : भास चौपाईनी।

३. श्रेणिक रास : भास रासनी।

को राज पद पर अभिषिक्त किया जाता था, जो राजा का श्रेष्ठ पुत्र अथवा भाई आदि में से होता था। युवराज अणिमा, महिमा आदि आठ प्रकार के ऐश्वर्य से युक्त होता, बहत्तर कलाओं, विविध भाषाओं एवं शस्त्र तथा शास्त्र कलाओं में निपुण होता था।[1] सभा मण्डल में वह राज काज की देखभाल करता। राजकुमार को युद्धनीति की आरम्भ से ही शिक्षा दी जाती। यदि कोई पड़ौसी राज्य उपद्रव करता तो उसे शान्त करना राजकुमार का कर्तव्य होता था। राजा की देख-रेख में वह राजनीति का अध्ययन एवं अनुभव प्राप्त कर लेता था।[2]

राज्य-अधिष्ठान में अमात्य अथवा मन्त्री का पद अत्यन्त महत्वपूर्ण था। वह अपने नगर एवं राजा के सम्बन्ध मे सदा चिन्तत रहता था और व्यवहार तथा नीति में निपुण होता था। राजा श्रेणिक का प्रधान मन्त्री अभयकुमार साम, दाम, दण्ड और भेद मे कुशल, नीति शास्त्र मे पण्डित और गवेषणा में चतुर था। यद्यपि वह राजकुमार था तथापि राजा ने उसके गुणो से प्रभावित हो उसे अपना प्रधान नियुक्त किया। राजा श्रेणिक उससे अपने अनेक कार्यों और गुप्त रहस्यों के बारे में मन्त्रणा किया करता था।[3] सबसे अधिक बुद्धिमान ही प्रधान मन्त्री होता था।

प्रधान अमात्य के अतिरिक्त अन्य मन्त्री भी हुआ करते थे। जिनसे राजा अपने विविध कार्यों मे परामर्श लिया करता था। इन मन्त्रियो को कई विषयों का ज्ञान होता था। बुद्धिमान व्यक्ति ही मन्त्री नियुक्त होते थे। महेन्द्रपुर के राजा महेन्द्र की शासन व्यवस्था में अनेकों मन्त्री थे। अपनी पुत्री अजना के वर के लिए उसने अपने मन्त्रियों से जानकारी ली। बुद्धिसागर, मतिसागर, ज्ञानसागर, श्रुत-सागर आदि मन्त्रियों ने विविध राजकुमारो के नाम गिनाये। अन्त में सन्देह पारग मन्त्री के अनुसार पवनंजय से विवाह निश्चित कर दिया गया।[4]

मंत्रीगण राजा, नगर एवं प्रजा के हित तथा शान्ति के लिए परामर्शदाता होते थे। राजा की अनुपस्थिति में ही शासन संचालन करते थे। व्यक्तिगत स्वार्थों से परे प्रजा का हित सर्वोपरि होता था। राजा सत्यन्धर के नाश की बात मंत्री काष्ठांगार के मुख से सुनकर अन्य मन्त्रियों ने इसका घोर विरोध किया।[5]

---

१. आदिनाथ रास : भास चोपाईनी।
२. राम रास : भास रासनी।
३. श्रेणिक रास : भास रासनी।
४. हनुमन्त रास : भास त्रीगतीनी।
५. जीवन्धर रास : भास चौपाईनी।

मंत्रियों का परामर्श राजा को मानना पड़ता था। वे राजा के अधीन होने के नाते राजा का सम्मान करते ही थे। राजा भरत की अधीनता जब पोदनपुर के राजा बाहुबलि ने स्वीकार नहीं की तो उनमें परस्पर युद्ध निश्चित हो गया। चूंकि वे दोनों ही भ्राता थे एवं दोनों ही पर्याप्त बलवान थे। दोनों ओर के युद्ध में अनावश्यक अनेक प्रकार की हानियों के देखकर दोनों के मंत्रियों ने अपने-अपने राजाओं से निवेदन किया कि वे स्वयं ही युद्ध करके निर्णय करलें। दोनों राजाओं ने अपने-अपने मन्त्रियों की बात मानली और स्वयं ही युद्ध करने लगे।[1]

राजा के प्रधान पुरुषों में मन्त्रियों का विशेष स्थान होता था। मंत्रियों का चयन स्वयं राजा अपनी बुद्धि चातुर्य्य के आधार पर करता था। सत्यवान्, धार्मिक एवं नीति निपुण अधिकारी होते थे। कभी राजा शीघ्रता में या भावुकता में किसी गलत मन्त्री को नियुक्त करता तो अन्य मन्त्री उससे असन्तोष प्रकट करते थे। राजा सत्यन्धर ने लकड़हारे काष्टांगार को भावुकता में अपना मन्त्री बनाया तो धर्मदत्त आदि अन्य मंत्रियों ने असन्तोष व्यक्त किया।[2] लेकिन राजा ने इस ओर कोई ध्यान नही दिया। अन्त में यह काष्टांगार ही राजा की मृत्यु का कारण बना। काष्टांगार के राजा बनने से सारी प्रजा रुष्ट थी। उस समय केवल गन्धोदक सेठ के घर में पुत्रोत्सव हो रहा था। गन्धोदक की प्रसन्नता को देख काष्टागार ने उसे अपना अमात्य बना लिया।[3]

गार्हस्थिक एवं धार्मिक कार्यों के लिए उस समय की शासन व्यवस्था में पुरोहितों का भी स्थान होता था। समय-समय पर राजा के धार्मिक कार्यों में सहायक होते थे। निमित्त शास्त्री स्वप्नों एवं शुभाशुभ शकुनों के फल से राजा को अवगत कराते थे। राज्य परिषद् में इनका सम्मान होता था।[4]

श्रेष्ठि वर्ग का भी कम महत्व नहीं था। राजा उसका उचित सम्मान करता था। हस्तिनापुर के राजा ने भविष्यदत्त को अपना दामाद बना लिया।[5] अर्हदास नगर सेठ था। श्रेष्ठि पुत्र जम्बूकुमार तो राजा श्रेणिक का विश्वस्त बन गया था। दीक्षा लेने जाते समय स्वयं राजा रानी ने अपने हाथों से उसका अन्तिम शृङ्गार किया।[6]

---

१. आदिनाथ रास : भास चौपाईनी।
२. जीवन्धर रास : भास रासनी।
३. वही।
४. श्रेणिक रास : भास वीनतीनी।
५. भविष्यदत्त रास : भास चौपाईनी।
६. जम्बूकुमार रास : भास रासनी।

इसके अतिरिक्त विद्वान्, सामन्त, गणनायक, दण्डनायक, कोट्टपाल, मल्लक, वैद्य, सेनापति, सारथी, दास, दूत, दासीया, अंगरक्षक, द्वारपाल, रक्षक आदि कितने ही वर्ग उस समय के राज्य संगठन के अंग होते थे।[1]

न्याय व्यवस्था : प्रजा में भले बुरे सब प्रकार के व्यक्ति हुआ करते थे। आन्तरिक व्यवस्था के लिए न्याय-व्यवस्था आवश्यक थी। प्रायः प्रजा पर राजा या प्रधान अमात्य ही न्यायाधीश का कार्य करते थे। न्यायकर्ता राजा बड़े निरंकुश होते थे। साधारण सा अपराध हो जाने पर भी अपराधी को कठोर से कठोर दण्ड दिया जाता था। शील भंग करने पर, किसी की हिंसा करने पर या मिथ्या भाषण करने पर राजा द्वारा उसके वध की घोषणा होती। राजपुरुष उसे पकड़ कर श्मशान में ले जाकर उसका वध कर देते थे। यद्यपि भोगभूमि में हा, मा, धिक् की दण्ड व्यवस्था थी पर उसके बाद कर्मभूमि में जैसे-जैसे अपराध बढ़ते गये दण्ड व्यवस्था भी कड़ी होती गई। उस समय न्याय व्यवस्था सर्व सुलभ थी। पीड़ित कभी भी राज दरबार में उपस्थित हो अपनी कथा सुना सकता था। न्याय में पक्षपात नहीं होता था।

राजा श्रेणिक के समय किसी समुद्रसेन नामक सेठ के दो नारियां थीं। बड़ी वसुकांता, छोटी वसुमित्रा। छोटी वसुमित्रा के एक पुत्र था। वह पुत्र दोनों ही स्त्रियों को प्रिय था। कुछ दिनों बाद सेठ के मरने पर पुत्र को लेकर दोनों में झगड़ा हो गया। दोनों ही पुत्र को अपना-अपना बताने लगी। वे राजा के पास पहुंची। राजा का मंत्री अभयकुमार बड़ा बुद्धिमान था। उसने छुरी निकाल कर जैसे ही बालक पर चलाना शुरू किया, छोटी स्त्री वसुमित्रा रुदन एवं विलाप करने लगी। उसने निवेदन किया कि मैंने पुत्र को जन्म नहीं दिया। इसे ही पुत्र दे दीजिए। अभयकुमार समझ गया कि बालक इसीका है, क्योंकि इसी के हृदय में पुत्र स्नेह है। उसने छोटी स्त्री को बालक दे दिया और न्याय किया।[2]

किसी व्यक्ति ने एक बनिये से रुपया उधार लिया। समय पर उसने चुकाया नहीं। बनिये ने तकादा किया, पर ऋणकर्ता ने उसे रुपया न देकर उसे मार डाला। राजा ने उसे प्राणदण्ड की सजा दी।[3]

---

१. आदिनाथ रास : भास रासनी।
२. श्रेणिक रास : भास रासनी।
३. सुकुमाल स्वामी रास : भास बीनतीनी।

□□□

अध्याय 7

मूल्यांकन

विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी के 'ब्रह्म जिनदास' 'भट्टारक सकलकीर्ति के कनिष्ट भ्राता एवं शिष्य थे। ये मदन रूपी शत्रु को जीतने वाली ब्रह्मचारी, क्षमा-निधि, अत्यन्त दयालु, देव, शास्त्र, गुरु की भक्ति में तत्पर एवं जिनेन्द्र के चरण-कमलों के चंचरीक सार्थक 'जिनदास' नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त थे ।

अपने गुरुद्वय भट्टारक सकलकीर्ति और भट्टारक भुवनकीर्ति के सदृश 'ब्रह्म जिनदास' भी प्राकृत संस्कृत, गुजराती एवं हिन्दी के उद्भट विद्वान् और कवि थे। इन्होंने संस्कृत एव हिन्दी भाषा के माध्यम से मां भारती की अनुपम सेवा की। संस्कृत भाषा में १५ एवं हिन्दी भाषा में ७० लघु-वृहत् काव्यों के प्रणयन से मां-भारती के भण्डार को भर कर अपना अमूल्य योग दिया।

'ब्रह्म जिनदास' एक साथ विद्वान्, सन्त एवं कवि थे। इनका अधिकांश समय आत्म-साधना के अतिरिक्त अध्ययन एवं अध्यापन में व्यतीत होता था। इन्होंने अपने शिष्यों को हिन्दी एवं संस्कृत का ज्ञान करा कर उनमें धर्म एवं साहित्य के प्रति रुचि जागृत् की और उन्हें साहित्य-सृजन की ओर प्रेरित किया। इन्होंने अनेक प्रदेशों मे विहार करके जनता का कल्याण किया। इनके सन्तत्व, विद्वत्व एवं कवित्व से सम-सामयिक एवं परवर्ती विद्वान्, श्रावक-श्राविकायें एवं शिष्यगण प्रभावित हुए। इनकी रचनाओं की भिन्न-भिन्न समय और स्थानों पर की गई प्रतिलिपियां इस तथ्य की साक्षी है।

'ब्रह्म जिनदास' प्रारम्भ से ही साहित्य-सृजन में अग्रणी रहे। विविध विधाओं मे रचित इनका विशाल साहित्य इन्हें सरस्वती का वरद् पुत्र सिद्ध करता है। सस्कृत भाषा पर इनका अच्छा अधिकार था। संस्कृत में काव्य रचना के साथ लोक भाषा (मरु:गुर्जर-पुरानी हिन्दी) से इनका विशेष अनुराग था। उस समय सस्कृत केवल विद्वानों के लिए ही बोधगम्य थी। जन-साधारण के बोध से वह परे थी। इसीलिए ब्रह्म जिनदास ने जन-सामान्य के बोध की दृष्टि से तत्कालीन लोक भाषा हिन्दी में अपना ८० प्रतिशत साहित्य रचा। यही नहीं राम चरित्र, हरिवंश पुराण एवं जम्बूस्वामी चरित्र जैसे विशाल ग्रन्थों का प्रणयन संस्कृत में करने के

पश्चात् पुनः उसी विशाल रूप में उसका हिन्दी में रचा जाना कवि की हिन्दी भाषा के प्रति विशिष्ट अनुराग एवं सेवा-भावना का प्रतीक है।

विशाल परिमाण के रचित 'ब्रह्म जिनदास' की कृतियों का मूल्यांकन सहज कार्य नहीं है। अपनी लघु-बृहत् ७० कृतियों से इन्होंने हिन्दी साहित्य की समृद्धि में विशेष योग दिया है। पुराण, चरित, कथा रास, आख्यान, रूपक सिद्धान्त, स्तवन, गीत आदि नानाविध रूपों मे काव्य रचना कर ब्रह्म जिनदास ने अपनी विद्वत्ता, अनुभवशीलता एवं लोक कल्याणकारी प्रवृत्ति का परिचय दिया है। ये रचनायें महाकाव्य एवं खण्ड-काव्य तथा मुक्तक के गेय एव पाठ्य वर्ग में आती हैं।

ब्रह्म जिनदास जन्म-जात कवि थे। कवि हृदय इनमें विद्यमान था। इनके काव्यों मे स्वाभाविकता, मार्मिकता, मौलिकता एव वैराग्यमूलक उपदेश प्रवणता के दर्शन स्थान-स्थान पर होते थे। सरस्वती की इन पर विशेष कृपा थी। इनका प्रत्येक वाक्य काव्य बद्ध होता था। हिन्दी साहित्य के इतिहास की दृष्टि से इनका काल भक्तिकाल का पूर्वार्द्ध है। ये विद्यापति, कबीर एवं रइधू के समकालीन थे। इनके काव्य मे निर्गुण एव सगुण दोनो का व्यापक समन्वय मिलता है।

इनके काव्य नायक प्रधानत. तीर्थंकर, मोक्षगामी, पैंराणिक एव ऐतिहासिक आदर्श महापुरुष रहे है। इनकी सृष्टि व्यापक भाव-भूमि पर हुई है। इन पात्रो मे सत्प्रवृत्ति के निवेश से मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करना इनका मुख्य उद्देश्य है। अपने आराध्य के प्रति प्रगाढ़ भक्ति, ससार की असारता का विचार एव वैराग्य ग्रहण, अहिसा मय जीवन-यापन और स्व-पर कल्याण की भावना के साथ उत्कट आत्म-साधना मे रमण इन चरित नायको की मुख्य प्रवृत्तियां हैं।

आलोच्य कवि की वर्णनशक्ति बड़ी अद्भुत है। अप्रतिहत गति से इनकी प्रतिभा वर्णनीय विषयो को वास्तविक रूप मे प्रकाशित करती चली गयी है। एक बात को अनेक ढंग से कहने का कौशल कवि को प्राप्त है। सभी प्रकार के वर्णन काव्य के सौन्दर्य को और भी कलान्वित कर देते हैं।

विविध रसो का परिपाक ब्रह्म जिनदास के काव्यों में मिलता है। अंगी रस शान्त रस होते हुए भी वात्सल्य, शृ गार, वीर, करुण, अद्भुत रौद्र, वीभत्स आदि अन्य रसों से साधारणीकरण द्वारा व्यक्तित्व की क्षुद्रता जाती रहती है और उदात्त प्रवृत्तियां जाग्रत होती हैं।

भाव पक्ष की भांति ब्रह्म जिनदास के साहित्य का कला पक्ष भी बड़ा भव्य है। भाषा पर इनका अपना अधिकार है। वेगवती धारा की भांति-अजस्र गति से

यह पाठक को अपने साथ बहाए ले चलती है। प्रबन्ध काव्यों में भाषा का प्रवाह एवं माधुर्य परिलक्षित है तो मुक्तक रचनाओं में उसका गाम्भीर्य एवं सारल्य। भाषा में प्रसाद गुण है। गुजराती एवं राजस्थानी शब्दों के साथ जैन दर्शन के पारिभाषिक शब्द भी प्रयोग में आये हैं।

अलंकार प्रयत्न साध्य न होकर सहज ही काव्य में प्रयुक्त हुए हैं। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अनुप्रास, उदाहरण, दृष्टान्त, अतिशयोक्ति, स्मरण, कारण माला आदि के प्रयोग से कलापक्ष की शोभा में वृद्धि हुई है। सांग रूपक का प्रयोग कवि के बुद्धि चातुर्य का परिचायक है।

भाषा को गति देने वाला छन्द विधान भी कम रमणीय नहीं है। दोहा, चौपई, वस्तु एवं भास छन्दों का कवि ने सफलता-पूर्वक प्रयोग किया है। भास को अधिक गेय रूप देने के लिए कवि ने इसमें राग-रागिनियों को अपनाया है, जिससे काव्य की लोकप्रियता और संगीतात्मकता में सहज ही वृद्धि हुई है।

ब्रह्म जिनदास के कृतित्व का एक अन्य पक्ष !उसका सांस्कृतिक चित्रण है। तत्कालीन समाज, रीति-नीति, आचार-विचार, परम्पराओं और मान्य दृष्टिकोणों को समझने के लिए यह सांस्कृतिक सामग्री अत्यन्त मूल्यवान है।

ब्रह्म जिनदास के साहित्य की मुख्य विशेषता यह है कि इनके कथा-चरित काव्यों के माध्यम से जैन धर्म का दार्शनिक पक्ष सहज रूप में उजागर होता है। विविध प्रसंगों पर जीवन के आध्यात्मिक उत्थान के लिए दार्शनिक सिद्धान्तों का जैन-सामान्य के हित में सरल रूप में प्रस्तुतीकरण कवि की अपनी विशिष्ट देने है। अपने काव्य नैपुण्य से दर्शन जैसे गूढ़ विषय को भी ब्रह्म जिनदास ने सरस, सरल एव हृदयग्राही बना दिया है।

सुभाषितों एवं सूक्तियों के स्थान-स्थान पर प्रयोग से काव्य की शोभा में वृद्धि हुई है। धर्म, शील, सत्य, अहिंसा, क्षमा, वैराग्य, विद्या, संगति आदि पर अनेकों जीवन स्पर्शी सूक्तियां मिलती हैं, जो ब्रह्म जिनदास के निर्मल एवं गम्भीर हृदय तल से अनुस्यूत हैं। इनमें कवि का गम्भीर ज्ञान परिपक्व अनुभव विद्यमान है।

ब्रह्म जिनदास का अधिकांश साहित्य रास रूप में मिलता है। इससे लगता है कि इनके समय में 'रास-साहित्य' को विशेष लोकप्रियता प्राप्त थी। अब तक हिन्दी साहित्य के तथा कथित आदिकाल में जो यह धारणा चली आ रही थी कि रास-काव्य वीर काव्य ही होते हैं, गलत सिद्ध हो जाती है। कवि के जो रास-काव्य

मिले हैं, वे अधिकांशत: भक्ति प्रधान मिले हैं। अकेले ब्रह्म जिनदास के द्वारा ५० से भी अधिक रास संज्ञक काव्यों का प्रणयन वस्तुत: हिन्दी साहित्य के इतिहास की अनोखी घटना है। ये रास-काव्य प्राय: गायन एवं नृत्य से युक्त होते थे। इनमें भक्ति, वीर, श्रृंगार एवं वैराग्य सभी का सुन्दर पुट मिलता है। इस दृष्टि से ब्रह्म जिनदास 'रास-शिरोमणि' कहे जा सकते हैं।

ब्रह्म जिनदास की महत्वपूर्ण देन इनकी अनुपम हिन्दी सेवा है। इन्होंने हिन्दी भासा में इतनी अधिक कृतियों की रचना उस समय की थी जब हिन्दी लोकप्रिय भाषा भी नहीं बन सकी थी। संस्कृत में काव्य-रचना पाण्डित्य का प्रतीक समझा जाता था। इन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा हिन्दी मे काव्य-सृजन के लिए उपयुक्त वातावरण बनाया जो परवर्ती कवियों के लिए लाभदायक सिद्ध हुआ।

वस्तुत: ब्रह्म जिनदास उन विरले सौभाग्यशाली महाकवियों में से थे, जिन्हें अपने समय में ही प्रसिद्धि मिल जाती है। इन्होंने काव्य-रचना के लिए जिस लोक प्रचलित हिन्दी भाषा को माध्यम चुना, उससे जन-सामान्य को भी बौद्धिक खुराक मिली। सम-सामयिक व्यक्तियों ने इनकी प्रतिभा को पहिचाना। इनके समय में ही इनकी रचनाओं की प्रतिलिपियों की यत्र-तत्र स्वाध्याय हेतु मांग होने लगी थी।

काव्य के दोनो रूपों प्रबन्ध एवं मुक्तक के भाव एवं कला दोनों ही दृष्टि से ब्रह्म जिनदास अपनी सानी नहीं रखते। साहित्यिक सौन्दर्य, धर्म-प्रचार, दार्शनिक पृष्ठभूमि एवं सांस्कृतिक चित्रण-सभी दृष्टियो से ये हिन्दी के महाकवि सिद्ध होते हैं। इतिहासकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को यदि इस कवि की उपलब्धि हो जाती तो वे भी इन्हें हिन्दी का महाकवि सिद्ध करते।

हिन्दी का १५ वीं शती का भक्तिकाल ब्रह्म जिनदास जैसे अद्‌भुत प्रतिभावान् महाकवि को पाकर अपने स्वर्ण युग में चार चांद लगा लेता है। वस्तुत: कवि-ब्रह्म जिनदास अपने युग के प्रतिनिधि कवि हैं और भक्ति कालीन सन्त साहित्य में सर्वोपरि गणनीय है। भाव, भाषा, वस्तु विधान सभी दृष्टियो से इनका काव्य-सृजन हिन्दी के गौरव को द्विगुणित करता है।

अद्यावधि ब्रह्म जिनदास की हिन्दी भाषा में कुल ७० हिन्दी रचनाएँ मिली हैं, जिनमें प्रबन्ध एवं मुक्तक दोनों प्रकार के काव्य हैं। इन रचनाओं की हस्तलिखित प्रतियाँ विशेषकर जयपुर, उदयपुर, ऋषभदेव, डूँगरपुर एवं ईडर आदि के भिन्न-भिन्न भण्डारों में उपलब्ध होती हैं, जो सभी अप्रकाशित हैं। यहाँ परिशिष्ट में कवि की कुछ महत्त्वपूर्ण अप्रकाशित रचनाओं के मूल पाठांश का एक भाग दिया जा रहा है। पाद-टिप्पणी में उसी भण्डार का उल्लेख किया गया है जहाँ से कवि की रचनाएँ प्राप्त की जाकर उनका अध्ययन किया गया है।

आदिनाथ रास[1]

वस्तु

मंगलाचरण

श्री आदि जिणेसवर आदि जिणेसर पाय प्रणमेसुं ।।
सरसति स्वामिणी वलि तवउं, बुधि सार हुं मागुं निरमल ।
श्री सकलकीरति पाय प्रणमीनि, मुनि भुवनकीरत्ति गुरु वांदु सोहजल ।।
रास करिसु हुं रूवडो, तम्ह परमादिइ सार ।
आदि जिणद गुण वर्णवुं, चरित्र जोडूं भवतार ।।१।।

भास जसोधरनी

ग्रंथ रचना का उद्देश्य

भवीयण भावइं सुणउ आज, रास कहुं मनोहर ।
आदि पुराण जोई करी, कवित्त करउं मनोहर ।।१।।
बाल गोपाल जिम पढइ गुणइ, जाणे बहु भेद ।
जिण सासण गुण निरमला, मिथ्या मत छेद ।।२।।
कठिण नालीयर ने दीजि बालक हाथि, ते स्वाद न जाणे
छोल्या केलां द्राख देजे, ते गुण बहु माने ।।३।।
तीम ए आदि पुराण सार, देस भाषा वखाणु ।
प्रकट गुण जीम वीस्तरे, जिण सासण वखाणुं ।।४।।
रतन माणिक हीरा जगा जोति, पारखे प्रजाणे ।
तीम जिण सासण भेद गुण, भोला कीम वाखाणि ।।५।।
तीह कारणि ए रास चंग, करूं गुणवंत ।
भवीयण मन सन्तोष रंग, रीझे जयवंत ।।६।।
मधुरीय वाणी सोहामणी, बोलु आणंद ।
ब्रह्म जिणदास कहि निरमलुं, जीम वाधि गुणकंद ।।७।।

मगध देस के राजा श्रेणिक एवं उसकी रानी चेलना का वर्णन

जंबूदीप मझार सार भरत क्षेत्र वखाण ।
मगध देस मांहि नयर सार, राजग्रही सु जाणो ।।८।।

---

१. विक्रम संवत् १६१७ की यह प्रति शास्त्र भण्डार श्री पार्श्वनाथ दि० जैन खण्डेलवाल बीस पन्थी मन्दिर, मण्डी की नाल, उदयपुर के गुटका संख्या १ में सुरक्षित है।

अमरावती जिम नयरी जांणु, तिहां धरम अपारो ।
श्रेणिक राजा करेय राय, भरे लाछि भण्डार ।।९।।
चेलणां राणी रूवडी, रूपे गुणवंती ।
सीयलवंती सोभागणी, ते छे जयवंत ।।१०।।
समकीत पाले नीरमलो, श्रेणीक गुणधारा ।
चेलना रांणी रूवडी, भरे धरम भण्डार ।।११।।
दांन पूजा तप सीयल भाव, अनुदीन गुणवंत ।
देव गुरु सार्धाम मांन, देये जयवंत ।।१२।।
सजन सहित राज करे चंग, प्रताप अपार ।
जस कीर्ति मेदनी मझार, बिस्तारे सविचार ।।१३।।

भगवान महावीर के समवसरण का आगमन

तिणे अवसर स्वामी आवीया, महावीर जिनदेव ।
विपुलाचल अति रूवडा, सुरनर करे सेव ।।१४।।
समवसरण अति नीर्मलो, बार सभा गुणवंत ।
तिन सिंहासन छत्र तीन, सोहे जयवत ।।१५।।
भामडल झलकत दीसे, गढ मदीर सोहे ।
चोसठ चमर ढलंति उजला, भवियण मन मोहे ।।१६।।
साढी बार क्रोड वाजित्र, ध्रुम ध्रुम जिम मेघ ।
मांनस्थभ सोहे घोर, मिथ्या गज सिंघ ।।१७।।
बनसपति अवकालि फलि, फल फूल सुरंग ।
कोईल करे टहुंकडा, मोर लवे उत्त ग ।।१८।।
भमरा रण झणेकरे, सुडा करे कलि देव ।
बहके परिमल अति घणो, सेवे बहुदेव ।।१९।।
इद्र इद्राणी देव देवी, आवे गुणवंत ।
श्रावक श्राविका गुण विशाल, पुजे जयवंत ।।२०।।
बाघ सिंह गाय हरण रीझे, दीसे अति संत ।
बेर छांडी एकत्र रहे, मोह करे गुणवंत ।।२१।।
एक आवे एक रचे पूजा, एक नाचे गावे ।
एक स्तवन करे रूवडा, एक भावना भावे ।।२२।।
तिणे अवसर वनमाली चंग, देखी गुणवंत ।
बिस्मय पाम्यो अती घणो, आश्चर्य महंत ।।२३।।
के सरग ईहां आवीयो, के त्रिभुवन राज ।

नवल वदीसहु केलीयो, उपनो तेहु भाव ।।२४।।
समोवशरण मांहि, भवो तांम ।
तिहां स्वामी महावीर अमत गुरु आंबा शिर नांम ।।२५।।
वनमाली तब आनंदो, कीधो जय-जयकार ।
गणधर मुनीवर नमीय पाय, आव्यो सविचार ।।२६।।

वनमाली द्वारा भगवान महावीर के आगमन की सूचना

दुहा

फल फल लेई करि, आव्यो राज द्वार ।
श्रेणीक राणो विनव्यो, स्वांमी तु अवधार ।।१।।
विपुलाचल अति रूवडो, महावीर स्वांमी जगतगुरु ।
आव्या अती हि सोहामणा, दीठा मे गुण सूर ।।२।।
समोसरण अति रूवडो, बार सभा सहीत ।
सुर नर खेचर अलंकर्‍यो, अनेक भवियण जयवंत ।।३।।
तमे स्वामी बधावीया, मगध देश का राय ।
आज्ञा करो स्वामी नीरमली, जिम होय निरमल काय ।।४।।
तब राजा हरषित हुवो, आनंद अंग न माय ।
सात पग आई करी, तीण दिशा लागो पाय ।।५।।

भासवीनतीनी

तिण दिसा लागो पाये, वधांमणी दीधी रूवडी ए ।
वस्त्र भरण अपार, मालिय जिम सोने मढीय ।।१।।
आनंद भेरीय वंग, पछे देवाडी निरमली ए ।
सांभल्यो तेहनो नांद, वांण बोल्या सवे नीरमली ए ।।२।।
कीधो जय-जयकार, भवीयण सयल आनंदीया ए ।
सामग्री लीधी हाथ, निज निज वांहन सजकीया ए ।।३।।

राजा श्रेणिक का समवसरण की ओर प्रस्थान

हसति तेणे तब सणगार, बेठो श्रेणिक रूवडो ए ।
मेघा डंबर सिर छत्र, सिर गिरि सोहे रतने जड्योए ।।४।।
पंच शब्द वाजंत, धवल गीत सोहांवणा ए ।
सजन परीजन सहीत, श्रेणीक राजा रूवडो ए ।।५।।
सजण परिजन सहीत, श्रेणीक राजा रूवडो ए ।
समोवरण माहे जावे, वांदवा जग गुरु भावे जड्यो ए ।।६।।

समोशरण दीठो चंग, हस्ती थको हेठो उतर्यो ए ।
समोवशरण माहि जाये, जय-जयकार म्रानंदीयो ।।७।।
वांदा जिनवर पाये, गणधर मुनीवर नमोस्तू करी ए ।
अष्ट प्रकारेय पुज, चरण कमल पुज्या भाव धरिए ।।८।।
स्तवन कर्या प्रति चंग, कर कमल जोडी नीरमलाए ।
पछे आपणे ठांम, बेठा भवियण सोह जलाए ।।९।।
बार सभा गुणवंत, दीसे अती रलीयामणाए ।
सुणवा जिनवर वांण, गंभीर अति ही सोहावणीए ।।१०।।
रत्न पदारथ चंग, अनेक भेद गुण विविध परिए ।
साभले भवियण चग, एक चित्त चिहुं भाव धरिए ।।११।।
पछे श्रेणिक राव, विनय सहित पुछे भाव सहीए ।
त्रिभुवन तणो विचार, कह्यो स्वामी नमे ज्ञांन धरीए ।।१२।।

× × ×

भास रासनी

नाभि राजा एवं रानी मरुदेवी

पहिलो बखाण मे कीयोए, भोगभूमि तणो चंगतो ।
चतुर्दश कुलकर वरणवाए, श्रुतमति आदि उत्तंग तो ।।१।।
भरत क्षेत्र माहि रूवडो ए, आर्ज्य खड सविचार तो ।
कोसल देश माहि जाणीयि, अयोध्या नयरि गुणधार तो ।।२।।
अमरावती जीम रूवडी ए, गढ मंदिर अपार तो ।
बार जोयण लांबी सुणोए, नव जोयण विस्तार तो ।।३।।
नाभि राजा तिहां राज करइ ए, कंचन वरण सरीर तो ।
एक पूरव लक्ष आयु कहीय, चौदमो कुलकर धीर तो ।।४।।
पांच से पचवीसां कहिय, धनुष उंचा गुणवंत तो ।
इक्षु रस तणो उपाय करीय प्रजा कारणि जयवंत तो ।।५।।
मरुदेवी राणी तेह तणीय, रूप सोभाग अपार तो ।
सीलवंती गुणे आगलीए, पतिवरता सविचार तो ।।६।।
वस्त्राभूषण करि सोहीया ए, गुणा न लाभे पार तो ।
इक्ष्वाक वंश सुजाणिय ए, धरम मूरति सविचार तो ।।७।।
इंद्र इंद्राणी जीम सोहीया ए, धरम करे सविचार तो ।
समकित पाले निरमलो ए, महामंत्र घसें णवकार तो ।।८।।
मरुदेवी राणी रूवडी ए, सोभि सूती गुणवंत तो ।

पाछिलि रयणि सोहावणिय ए, सपन दीठां सुललीत तो ।।६।।
सोल सपन रलीया मणां ए, लाभा अति सविशाल तो ।
आनन्द भेरी उछलीयए, पछे जागि गुण माल तो ।।१०।।
सेज्या थकि उठी सुंदरीए, कीयो सामायक सार तो ।
सीणगार कीयो रूवडोए, हरष घर्‌यो अपार तो ।।११।,
सखीय समाणि सुंदरिए, आवीय तिहां अलि चग तो ।
ते सरसी राणी रूवडीए, निरमल सोहे जसी गंग तो ।।१२।।
सपन तणां फल पूछवाए, राज सभा गुणवंत तो ।
चंद्रवदनि गज गामिणीए, आवी अति जयवंत तो ।।१३।।
नाभिराय दीठि आवतीए, उपनो तव आनद तो ।
अर्द्ध सीघासण रूवडोए, बेसवा दीयो गुणवंत तो ।।१४।।
हरष वदन राणी हुयीए, कर कमल जोडिवि तो ।
स्वामीय सुपन मे देखीयोए, ते कहो गुण काजि तो ।।१५।।

सोलह स्वप्न एवं उनका फल

सोल सपन अति निरमलाए, दीठा स्वामीय चग तो ।
तेहना फल कहो रूवडाए, जुजुवा मनिरंगि तो ।।१६।।
पहिलो गईवर देखीयोए, ऐरावत उत्त ग तो ।
दूजे नदि सोहावणोए, धवला अति हि गुणरग तो ।।१७।।
त्रीजे सिंघ दीठो सवल आवंतो मझ गेहतो ।
चौथे पुष्पमाला सुगधए, परिमल अतिहि सुनेह तो ।।१८।।
पचमि लखमि रूवडीए, सघामगि नाहन तो ।
छठो दिनकर रूवडोए, बालो किरण सहीत तो ।।१६।।
सातमो चंद्र पूनिम तणोए, धवल कीधी दह दीसतो ।
आठमो मछ सोहावणाए, बेलता मि दीठ तो ।।२०।।
नवमो कलस कनक तणाए, कमलें झाप्या दीठ तो ।
दशमो सरोवर निरमलोए, कमलिणी छायो दीठ तो ।।२१।।
इग्यारमु समुद्र सुहावणोए, दीठो गहिर गम्भीर तो ।
सिंघासन दीठो बारमोए, कनक रयण जडीत तो ।।२२।।
आवतो विमान दीठोए, कलस धजा लहकंत तो ।
नाग भुवन दीठो उजलोए, नाग सहीत गुणवंत तो ।।२३।।
पनरमो हीर रतन तणोए, झगमग तो मे दीठ तो ।
धूम रहित अगिनि दीठीय, आणि कनकह इट तो ।।२४।।

हुवा सपन सुहावणाए, दीठा स्वामिय सार तो ।
फल कहो तम्हे रूवडाह, जीम जाणुं विचार तो ॥२५॥
नाभिराजा तव बोलीयाए, मधुरीय सुललित वाणि तो ।
फल सुणो राणी निरमलाए, सपन तणा सुजाणि तो ॥२६॥

दूहा

सपन फलि अति रूवडो, पुत्र होसे तम्ह चंग ।
तीर्थंकर रलीयावणो, त्रिभुवन मांहि उत्तंग ॥१॥
प्रथम जिणेसर निरमलो, आदिनाथ गुणवंत ।
सुर नर खेचर उ लगे, स्वामीय अति जयवंत ॥२॥

भास माल्हंतडांनी

आदिनाथ का जन्म

आदि जिणेसर नाम दीयोए, सु०, देव सजन मिली जाणि ।
आदि जुगादि स्वामि अवतर्याए, सु०, तेह भणि सार्थक नाम ॥५॥
चंद्र कला जीम वाधीयुए, सु०, खेलइ सरस अपार ।
महीमंडल परि रीषताए, सु०, जैसो भेदनिहार ॥६॥
हलु हलु चाले सुंदरोए, सु०, पग मूके जीम फूल ।
काला वयण सुहावणाए, सु०, सुललीत बोलइ चंग ॥७॥
जाणो सरसति मुखि वसीए, सु०, मधुरीय सुंललित वाणि ।
सुर नर सयल आनंदीयाए, सु०, जैसी धरमनि खाणि ॥८॥

आदिनाथ की सुन्दरता का वर्णन

दश अतिशय स्वामि रूवडाए, सु०, जिणवर सहज सभाव ।
स्वेद मल थका वेगलाए, सु०, सोणित खीर समानि ॥९॥
सम चारस अति रूवडोए, सु०, आदि संस्थान वखाणि ।
संहनन पहिलो अति बलोए, सु०, वज्रवृषभ गुण खाणि ॥१०॥
रूप रूडो छे जिणतणोए, सु०, उपमा रहित विचार ।
परिमल बहिकि अति घणोए, सु०, सरीर सोभा गुणधार ॥११॥
सत्त एक आठ आगलोए, सु०, लक्षण जिणवर अंगि ।
वीर्य अनंत वखाणिए ए, सु०, उपमा रहीत अभंग ॥१२॥
वाणि सरस सोहावणीए, सु०, प्ररहीत वयण सुजाण ।
दुख रहित सुख भागेविए, सु०, बोलतां उपजे ग्यांन ॥१३॥

बहुजे सरीसा ऊपजइए, सु०, जिणवर स्वामीय अंगि ।
उपमा नहिए गुण तणीए, सु०, ओलतां होइ बहु रंग ॥१४॥
धनुष पांचसत जाणीबेए, सु०, स्वामीय देह उचीत ।
कनक रयण सुहावणाए, सु०, सोम मूरति दीसे संत ॥१५॥
सोला भरणें मंडीयाए, सु०, स्वामीय अति गुणवंत ।
दिव्य वस्त्र अति रूवडाए, सु०, पहरिया अति सुलनीत ॥१६॥
रूप जोवन अति रूवडोए, सु०, जाणइ बीजो इंद्र ।
एक जिह्वा कीम बोलीयए, सु०,, उपमा रहीत जिणंद ॥१७॥
स्वामीय यौवन देखीयोए, सु०, हरषीयो नाभि नरेन्द्र ।
मुख विकस्यो अति रूवडोए, सु०, जेसु पुनिम चन्द्र ॥१८॥
सजन मिल्या तिहां अति घणांए, सु०, उपनो परमाणंद ।

आदिनाथ का विवाह

कुंवरि मांगी अति रूवडीए, सु०, रूप सोभागनु कद ॥१९॥
कछ महाकछ बेटडीए, सु०, जैसीय रम्भा जाणि ।
सुनदा सुमंगला ए, सु०, सीलवत्ति गुण खाणि ॥२०॥
नमि विनमि करी सोहोचरीए सु०, परणीय आदि जिणंद ।
सुर नर सेवे तीहां हरषीयाए, सु०, सजन हुवो आनंद ॥२१॥

दूहा

परणि कुंवरि अति निरमली, चरम फले गुणवंति ।
मोहछव हुवा तिहां अतिघणां, प्रथम वर जयवंत ॥१॥
रूप सोभागे आगलिए, ते कंन्या अपार ।
पुन्य प्रभावि पांमीयुए, तीर्थंकर भरतार ॥२॥

भास समकित रासनी

परणि कुंवरि अति निरमलि, वरत्याहां मंगल च्यारि ।
गज बैठा स्वामि निरमलाए, सोहजला गुणह भण्डार ॥१॥
पंच सबद बहु बाजइ, गाजइ अंबर सार ।
धवल देइ वर कामिणी भामिनी नाचए पात्र ॥२॥
चमर-ढलि अति ऊजला, सीर गिरि सोहए छत्र ।
बंदिजन तिहां कलिरव करे, अपछरा नाचए पात्र ॥३॥
परिणी कुंवरि घरि आवीया, नीपनउ जय जयकार ।
सयल सजन आमंत्रीया, मादीया हरष अपार ॥४॥

बहुवर दीठा सुहावरणां, भामरणा गुरणह निवास ।
दीठें आनंद उपनो, माय बाप पुगीय ग्रास ।।५।।
घरि घरि तलीया तोरण, मंडपि अति हि उछाह ।
सयल लोक आनंदीया, हरषीया गुणवत साह ।।६।।
सुरनर सवे पाछा वल्या, आवीया निज निज ठामि ।
स्वामिय गुण मन माहि धर्या, सेवइ निज सिर नामि ।।७।।
आदि जिणद सुख भोगवे, पुन्य फले सविचार ।
सुनदा सुमगला, दुहराणी गुणधार ।।८।।

× × ×

भास अमोडानी

राज्याभिषेक

कुंकुम छडउ देवारीयोए, तीहां मोतीय चउक पुरावीयोए ।
सिघासन वलि माडीयोए, श्री आदि जिणंद बेसाडीयोए ।।१।।
सुर नर असुर कुवर मिल्याए, तीहा आणय कलस जलि पूर्याए ।
आदि जिगद सिर ढालीयाए, जय जय करि सबवे वधावीयाए ।।२।।
ढोल निमाण बाज्या घणाए, तीणे अवसरि मादल रणकीयाए ।
भेरी भुरंगा गहगह्याए, सवे मेघ सबद जीम द्रम द्रम्याए ।।३।।
देवीय विद्याधरि सवि मीलीए, जिणवर गुण गावइ मनिरलीए ।
हाव भाय अति रूवडीए, सवे दीसइ परिय सोहावणीए ।।४।।
नाभि राजा गुणें आगलोए, तीन्हु आदि जिन पाटि बेसाडीयोए ।
राजतिलक कीयो रूवडोए, तीहा आदि राजा बहु गुणे जडोए ।।५।।

× × ×

भाव चौपईनी -

षट्कर्म का उपदेश

प्रजा लोक बोलाव्या चग, सभा बैठा स्वामि उत्तंग ।
प्रीक्षा जोइ मनुक्ष तणी सार, लक्षण जोया वलि गुण बार ।।१७।।
षट्कर्म निपजाव्या जाणि, असी मसी वाणिज सुख खाणि ।
विद्या क्रीक्ष सल्पि सविसाल, ए षट् कर्म थाप्या गुणमाल ।।१८।।
जे मनुक्ष दीठा अतिसूर, ते खत्री थाप्या गुणवीर ।
षड्ग आयुध दीधा ते हाथि, प्रजा राखु तम्हे सविसाथि ।।१९।।

संत पाल्यो तम्हे गुण थोर, दुष्ट निग्रह करा अनघोर ।
खितिपाल ते खत्री जाणि, च्यार वंस थाप्या सुजाण ।।२०।।
एक मनुश दीठा बलिवंत, मसि दीधि तेह हाथि तुरन्त ।
लेख कला दीधी बलिसार, लेखो करो तम्हे सविचार ।।२१।।
संत मनुश्च दीठा सुजांण, वाणिज कला दीधी सुख खाणि ।
वाणिक वेस कहे सहु कोइ, साह नाम थाप्या इम जोइ ।।२२।।
प्रज्ञावंत दीठा एक सार, विद्या दीधि तेह गुणधार ।
पढो पढावो तम्हे सविसाल, बहुत्तरि कला तम्हे गुणमाल ।।२३।।
कष्टि लोक दीठा अति घणा, काम करो तम्हे करसण तणा ।
कुसंबी नाम थाप्यो तेह सार, बीज दीया तेहने गुणधार ।।२४।।
मधिम लोक दीखे अति घणा, सल्पि दीधी तेहि मणा ।
सूत्रधार आदि करी सार, मंजूरपणो करे अपार ।।२५।।
षट् कर्म उपदेस्या जाणि, प्रजा लोक कारण सुख खाणि ।
प्रजा लोक आनंदा चंग, दुख हुवा तीहां सवे भंग ।।२६।।

दूहा

जे जे काम करे जंसु ते ते नाम हुवा सार ।
सोनु घडे सोनी हुवा, कांस घडिते कंसार ।।१।।
पटकूल जे केलवि, ते पटुवा हुवा जाणि ।
वस्त्र वणि जे अति घणी, ते वणकर बखाणि ।।२।।

भास रासनी

षट्कर्म थाप्या व्यवहार तणाए, षट्करम धरम विचारतो ।
अशुभ करम सुभकरम जीवए, बांधे छोडि अपार तो ।।१।।
कर्मभूमि तेह भणि कहिए, आर्य खंडी वीसाल तो ।
चहुंगति माहि जीव भ्रमइए, दुखम सुखम एहकान्त तो ।।२।।
रौद्र ध्यानि इ जीव मरेऐ, पामइं नरक ते घोर तो ।
आरति ध्यान जीव जे मरइए, पसूव ओनि अति घोर तो ।।३।।
धर्म ध्यानि जीव जे मरइए, मनक्ष देवगति जाइ तो ।
सुकल ध्यान बले मुनिवरइए, सिद्ध नयरि हे रायतु ।।४।।
धरमा धरमे प्रकासीयाए, स्वामीय आदि जिणंद तो ।
आदि ब्रह्मातम थामीयाए, स्वामीय परमाणंद तो ।।५।।
प्रजालोक प्रतिमालीयाए, सुख दीयो महंत तो ।

प्रजापति तेहूं भणि हुवाए, संकर नाम जयवंत तो ।।६।।
पांच कल्याणक पूजीयाए, सवे इंद्र मिली चंग तो ।
अरहंत नाम स्वामी निरमलाए, पाम्या अतिहि उतगंतो ।।७।।
अनंत लक्ष्मी दीसे निरमलीए, जिणवर मुगति दातार तो ।
तेह भणि आदिस्वर नाम ए, पाम्या, त्रिभुवन तार तो ।।८।।
राजा सौक्ष स्वामि भोगविए, करता पर उपगार तो ।
त्रिसठि पूरव लक्ष निरमलाए, कंटक रहीत वीचार तो ।।९।।
एवं कारे रूवडाए, त्रीयासी लक्ष अति चंग तो ।
पुरव गया सुख भोगवंताए, राजपालता अभंग तो ।।१०।।
एक बार सभा माहि आदि, बाप उछंगी लीधि चग तो ।
ज्ञान पढो रलीयावणो, आदि केवल भाक्षो मनिरंगितो ।।२०।।

दूहा

आदिनाथ द्वारा पढ़ाने का आरम्भ

ज्ञान दिवाकर ऊगीयो, भवियण कमल विलास ।
भावना परिमल महमहे, आनंद निरमल वास ।।१।।
हवे अवसर छे रूवडो, ज्ञान पढेवा काजि ।
कुंवर वा काजि कुंवरि पढो, रलीयावणी, इम कहि त्रिभुवनराउ ।।२।।
तव कुंवरि विनय करि पढिए, ज्ञानवंत गुणवंत ।
"ऊं नमः सिद्धेभ्यः ' पहिलु कहि, अवर अक्षर जयवंत ।।३।।
आकार आदि करी निरमला, बावन अक्षर पंजीत ।
ब्राह्मी भणी गुणे आगली, अनेक सास्त्र मुललीत ।।४।।
जिनवाणी जीम निरमलि, विद्याविवेक सुजाणि ।
रूप सोभागेइ आगलि, धरम तणी गुण खाणि ।।५।।

भास चोपईनी

सुंदरि कुंवरि पढे गुणवंत, आंक लिणि गणति जयवंत ।
दश आंक पढि अतिचंग, लेख कला सीखी गुणरंग ।।१।।
गणति जाणि ते अति घणी, दीप समुद्र नगर तणि ।
पल्योपम सागर वीचार, अनेक भेद जाणें सविचार ।।२।।
भरत आदि कुंवर जयवंत, अनेक शास्त्र पढ्या गुणवंत ।
बहुत्तरि कला तणो वीस्तार, भेदाभेद पढ्या गुणधार ।।३।।
आगम तत्व तणो विचार, चरित्र पुराण पढ्या अवतार ।

अनेक विद्या पढि सविशाल, ज्ञानवंत कुंवर गुणमाल ।।४।।
प्रकट कीधो लोक माहि सार, षट कर्म तणो जाण्या विचार ।
प्रजा सुख पाम्या अति चंग, पर उपगार कीया अतिचंग ।।५।।
एक पूरब लक्ष निरमलाए, उगर्‌यो आयु महंत तो ।
तब इंद्र मनि चींतविए, चिंता करे गुणवंत तो ।।११।।
वैराग्य नवि चींतविए, जिण स्वामि देव तो ।
वैराग्य विण संयम नहीए, संजम विण गुण सेवितो ।।१२।।
गुण विन ध्यान न उपजिए, ध्यान विण नहि ज्ञान तु ।
ज्ञान विण कीम जाणीय ए, मुगति मारग सुखखाणि तु ।।१३।।
नीमित पाखि नवि उपजए, वैराग्य सविशाल तो ।
अवधिज्ञान करि जाणीयुं ए, इंद्र देव गुणमाल तो ।।१४।।
नीलंजसा इंद्राणी तणोए, आयु थोडो गुणवंत तो ।
इंद्रे जाण्यो रूवडोए, ज्ञान बले जयवत तो ।।१५।।

इन्द्र द्वारा नीलांजना का आदिनाथ के दरबार में नृत्य के लिए भेजना

तव इद्राणी अपछराए, देवदेवी सविचारतु ।
अजोध्या नयरि पाठव्याए, नृत्य करवा गुणधारतु ।।१६।।
राज मन्दिर सवि आवीयाए, भगति करवा गुणवंत तो ।
नृत्य माड्यो तेहां रूवडोए, देवदेवी महंत तो ।।१७।।
तीवली नाद तीहा रणकीयाए, मादल रणझणकार तो ।
धवल मंगल गीत तीहा गहगह्याए. भुगल सरस अपार तो ।।१८।।
वीणा महुवरि उपाग नादि, सर मंडल सविशाल तो ।
वास सरस सोहावणाए, विजए ताल कंसाल तो ।।१९।।
षट् राग तेहां आलविए, छत्तीस भेद रसाल तो ।
सति सूख खाणीइए, सुस्वर कंठ विसाल तो ।।२०।।
देवांगना ते रूवडीए, किंकिणी तणे झणकार तो ।
टांडा व नाच सुहावणोए, सरस देखाडइ अपार तो ।।२१।।
आंगो पांग मोडे घणाइए, हाव भाव करे राग तो ।
मन रीझे समातणोए, रूध्या इंद्रिय भाग तो ।।२२।।
तीणे अवसरि इंद्र आवीयोए, नीज परिवार सहित तो ।
वीनवे करि सभा बैठाए, नाच जोवा गुणवंत तो ।।२३।।
नीलंजसा पात्र जाणीए, नाचे सरस अपार तो ।
हाव भाव रचना करए, मोह तणो वीस्तार तो ।।२४।।

क्षीरण मोटि क्षीरण लहुबडीए, क्षीरणक्षीरण गोरिवानि तो ।
क्षीरण सामलि गुरिण आगलीए, क्षीरणक्षीरण बीनि वानि तो ।।२५।।
नार्चति उफरि चढइए, अंतरिख नाचइ नाच तो ।
हलु हलु तीम पाछी वलए, भूमि नाचि गुरण साच तो ।।२६।।
अदिष्ट रूप क्षरण माहि करइए, क्षीरण माहि रूप वीसाल तो ।
रस देखाडे अति घरणाए, सभा रीझै गुरणमाल तो ।।२७।।

दूहा

नीलंजसा का निधन

भमरी दीन्ही तिहां रूवडी, अपछरा तीरणे वार ।
आयु छूटो तीहा जीव गयो, धरणि पडि निरधार ।।१।।
सेवा जीमवी घटी गइ अदिष्ट हुई खीरण माहि ।
सभा सयल आरणंद हुवो, एक एक मुख चाहि ।।२।।

भास अंबिकानी

रमतरणो तीहां हुवो विरणास, तव इंद्रे माया करीए ।
अवर रूप नीपजावीयो चंग, नीलंजसा जाणे तिहा घरीए ।।१।।
आदि जिणेसर सुरणइ भंडार, ज्ञान करी तव जारणीयु ए ।
रूप माया तरणो जारिण, इंद्रें रची बखारणीया ए ।।२।।
नीलंजसा तेरणो खुटो आयु, मरण पामि ते सुंदरी ए ।
क्षीरण माहि जीव गयो बीजी ठामि, कालें गइ जम मन्दिरीए ।।३।।

आदिनाथ के वैराग्य के भाव

तव उपनो स्वामि वैराग्य, संसार सरीर भोग परिहरइए ।
जो जो एह तरणो रूप सोभाग. सरीर सहीत मरी गयोए ।।४।।
धिग धिग ए संसार असार, थीर न दीसे दुखभर्योए ।
चिहुं गति मांहि सुख नवि होइ, सयल दीसे क्षीरण मंगुरए ।।५।।
सरीर चपल जीम मेघपटल, जल बुबुडा जीम जारणीयुए ।
धन योवन उतावलो जारिण, नदीपुर जीम वारिणयए ।।६।।
भोग रोग जीम जारिण चंग, इन्द्रीमपुर घर तस करए ।
मोह पास जीव सही बंध, करमि जीव बंधि धर्याए ।।७।।
ते बन्धि खारणो छोडवा काजि, संजम लेउ निरमलोए ।
आंसरण कांपो सुरतरणो जारिण, लोकांतिक देव सोह जलाए ।।८।।

ततखरिण आव्या स्वामिय पासि, वीनय सहीत स्तवन करेए ।
काल गयो संजम विणसार, तम्ह विण कहो कोण उधरइए ॥९॥
समकित ज्ञान चारित्र विण चंग, मोक्ष मारग कोण वसीकरइए ।
हवें अवसर छे जिणवर देव, तम्ह विण संयम कोण धरइए ॥१०॥
मुगति मारग सही एक होए, एक रथ धरम तणोए ।
ते रथ किम चाल गुणवंत, उपदेस विण सुहावणोए ॥११॥
ते उपदेस जीती विण सार, कवण देइ स्वामि निरमलोए ।
भोगभूमि गयो बहुकाल, धरम विण स्वामि सोहजलोए ॥१२॥
ज्ञानवंत तम्हे जग गुरु, तीर्थंकर गुणे आगलाए ।
मोह मयणं जीपि बलिवंत, तप संजम लेउ निरमलोए ॥१३॥
ध्यान बलें कर्म क्षय करि थोर, केवलज्ञान सुहावणोए ।
लोका१ क प्रकासण हार, त्रिभुवन माहि कोठावणोंए ॥१४॥
ज्ञान बले अज्ञान विणास, मोक्ष मारग उजालीयिए ।
भवियण लोक संबोधएसार, गयो धरम सही वालीयिए ॥१५॥
स्वयं बुद्ध स्वामि तम्हे सार, सुर नर सेवे तम्हे चलए ।
अम्हे वीनति करूं तम्ह दास, भवि भवि मागु तम्ह चलणए ॥१६॥
इम कही लागा ते पाय, पुन्य जोड्यो तीन्हु अति घणेए ।
निज स्थाणकि गया गुणवंत, फल लीधो रूडो जनम तणोए ॥१७॥
स्वामिय तणइउ वैराग्य महत, धीर रह्यो अति निरमलोए ।
तीणे अवसरि सुरतणा जाणि, आसन कंप्या सोहजलोए ॥१८॥

भास चोपईनी

कुमार भरत का राज्याभिषेक

भरत कुंवर थाप्या निजराजि, प्रजा लोक पालवा गुण काजि ।
बाहुबलि पोयणपुर चंग, राज पाम्यो अति उत्तंग ॥१॥
अवर कुवर काजे सविचार, देस नयर दीया गुणधार ।
नाभि राजा मरु देव्या पाय, ते पूज्या मुलतीत गुणकाय ॥२॥
पछइ आवी इंद्राणी देवी, कुंकुम छडो देवाड्यो हेव ।
मोतीय चूक पूरव्यो चंग, सिंघासन माड्यो उत्तंग ॥३॥
कणक कलस पूज्या सार, सुर नर करे तिहां जय जयकार ।
ढाल्या जिणवर मस्तकि चंग, धवल मंगल नादे सुरंग ॥४॥

आदिनाथ द्वारा गृह त्याग

पछे इन्द्राणी उपनो भाव, सींणगार्‌या जिन त्रिभुवन राय ।
सुदर्शन पालकी जयवन्त, इन्द्र हाथि मिल्यावा गुणवंत ।।५।।
तीणी पालकी बैठा आदि जिणंद, सोहइ जैसो पूनिमचन्द ।
जाणइ संयम श्री वरीचंग, परणेवा चाल्या मुगति सुरंग ।।६।।
भूमि गोचर राजा गुणवन्त, पालखि खांधि लीधी जयवन्त ।
सात कदम चाल्या सविचार पछि विद्याधरे लीधी गुणधार ।।७।।
सात कदम ते चाल्या जाणि, पछे देव लीधी सुखखाणी ।
नयर थका निसर्‌या गुणवंत, आदि जिणेसर अति जयवन्त ।।८।।

परिजनों का दुःखी होना

माय बाप सांभल्यो वीचार, सजन सहित आया गुणधार ।
सोक धरे मन माहि अति घणो, मुख जोवे स्वामि जिनतणो ।।९।।
हा हा स्वामि तह्म वीजोग, किम सहूं अम्हे एह वीजोग ।
नाभिराजा घरि मनि दुख, मरुदेवी तणो कुमलाणो मुख ।।१०।।
सुनन्दा राणी गुणवन्त, सुमंगला बोले सुललीत ।
तम्ह विण स्वामि अम्हि किम करू, विह्वलपण हवें किम उधरू ।।११।।
सजन सयल लागा जिन पाय, वीनती सुणों तम्हे त्रिभुवन राय ।
सिद्ध पधारछो तम्हे देव, अम्ह आगलि कहो स्वामि देव ।।१२।।
इण परि दुख धरे सुखु कोइ, चरण कमल स्वामि तणा जोइ ।
तम्हे संजोग इ परमाणंद, वीजोग हुव पूठइ दुख कंद ।।१३।।
इम कहि रोदन करे अपार, अश्रुपात पाडे ते सार ।
तव स्वामी कहे मधुरी वाणि, भणि दुख धरो तम्हे सुजाण ।।१४।

आदिनाथ द्वारा संबोधन

ए संसार असार गुणहीण, करम बांधि जीव जीम रीण ।
जामण जरा मरण दुख घणा, सजन वीजोए संयोग नहि मणा ।।१५।।
काल अनन्त आदि जीव जाणि, नव संसार अनादि बखाणि ।
रत्नत्रय विणु भमीयु जीव, वलि भमिसी जीव वाधिसि दुख ।।१६।।
ते रत्नत्रय अति गुणवंत, त्रिभुवन तारण अति जयवंत ।
ते संजम विण नावि हाथि, तेह भणी लेउ संयम साथि ।।१७।।
मोह मयण इन्द्री घनघोर, तप करि जीतूं ते जीम चोर ।
वलि चितवु मन मांहि शुभ ध्यान, उपजाउं केवल सिद्धि ज्ञान ।।१८।।

अनेक भव्य संबोधू सार, उघाडू सुगति कींवाड ।
तम्हे श्रावक धर्म करो गुणवंत, जीम सहृगति पामो जयवंत ।।१९।।
संबोध्या सजन अतिचंग, मोह् मयण को कीयो तिहा भंग ।
तिहां थका चाल्या जिणवर देव, सुरनर खेचर करे तिहां सेव ।।२०।।
सिद्धार्थ बन मांहि सविशाल, वटवृक्ष हेठलि गुणमाल ।
फटिक सिला सोहइ तिहांसार, उपरि मंडप घाल्या फार ।।२१।।
कुंकुम चन्दन बाटीय भूमि, पंचवरण स्वस्तिक तिहां रम्य ।
तलिया तोरण झलके बार, धजा लहके तिहां सविसाल ।।२२।।
मंगल द्रव्य तिहां अतिचंग, धूप दहन परिमल उत्तंग ।
ते वन मांहि आव्या जिनराज, पालकि थका उतर्या गुणकाज ।।२३।।

आदिनाथ द्वारा मुनि दीक्षा ग्रहण

सीला उपरि बैठा गुणवंत, पूरव दिशा कीयो जयवन्त ।
सोल आवरण उतार्या चंग, राग तणो कीयो तिहां भंग ।।२४।।
वस्त्र मूक्या पछे सविचार, दस परिग्रह तणो परिहार ।
अभ्यतंर चोदह परिग्रह थोर, त्याग कीयो तेह्नी तिहां घोर ।।२५।।
पंच मुष्ठि लोच लीयो सार, कर कोमल करि गुणधार ।
जाणे कमर तणा ए कंद, लोंच लीयो स्वामि जिणद ।।२६।।
"ॐ नमः सिद्धेभ्यः" कह्यो गुणधार, हृदय कमलि गुण धरीया सार
जथा जात रूप धरीयो चंग, समता भाव लीयो उत्तंग ।।२७।।
दिगंबर हुवा प्रथम जिनदेव, त्रिभुवन भवीयण करे जिनसेव ।
अनुपम रूप दीसे जयवन्त, जय जयकार स्तवन करे संत ।।२८।।
तेनीमाल झेल्या इन्द्र, रतन मंजूस माहि सुरेन्द्र ।
क्षीर समुद्र भणी गुणवंत, चलाव्या देवि जयवन्त ।।२९।।
मानुषोत्तर लगे गया ते सार, पछे रह्या तिहां सविचार ।
मंजूस लेइ झटकावि चंग, क्षीर समुद्र माहि गुणरंग ।।३०।।
पछे आव्या स्वामी कन्हे चंग, महोच्छव कीयो तिहां बहुरंग ।
आनंद नाटक कीयो तिहांसार, इन्द्र इन्द्राणी हरष अपार ।।३१।।
दीक्षा कल्याणक सविशाल, स्वामितणो वरणवो गुणमाल ।
ब्रह्म जिणदास कहे गुणवंत, निरमल दीक्षा देउ जयवन्त ।।३२।।
आदि गुरु सोहे जीम चन्द्र, अचल अभंग जाणे गिरिंद्र ।
तारा जीम ते मुनिवर जाणि, ध्यान तेज थोडो बखाणि ।।३३।।

भास सहीनी

तपस्या का प्रभाव

अचल जोग स्वामि तणों, सुकल ध्यान महिमा घणों ।
मेरु जिम धीर गुणें आगलाए, सहीए ।।८।।
तीहां वन फलियो बहु फलें, वैरीय तणा मद्र गले ।
वैर छांडी सवे एक हुवाए, सहीए ।।९।।
हरण सींघ बाघ गायए, मोर भुजगम मोह थाए ।
आवइए प्रीति करि तिहां, अति घणीए, सहीए ।।१०।।
हस्ति आवि पूजा करे, वन फल आगलि धरे ।
वन्दना करे बहु भाव धरिए, सहीए ।।११।।

भास चौपईनी

आदि गुरु सोहे जिन चन्द्र, अचल अभंग जाणे गिरींद्र ।
तारा जीम ते मुनिवर जाणि, ध्यान तेज थोडो बखाणि ।।

भास रासनी

ग्रन्थ प्रशस्ति

रास कीयो मिं निरमलोए, भाव सहीत सविशाल तो ।
आदिपुराण जोई करीय, सुगुम कीयो गुणमाल तो ।।१७।।
पढइ गुणइ जे सांभलाइए, तेहने पुन्य अपार तो ।
मनवांछित फलते लहइए, मुगति रमणि होइ हार तो ।।१८।।
लिखी लिखावि रूवडो, करइ ज्ञान उद्धार तो ।
तेहने नवनिधि संपडइए, मुगति रमणि होई हार तो ।।१९।।
जिणवर गणधर मुनिवरहइए, गुण गुंथ्या मइ सार तो ।
जे भवियण विस्तार करइए, मुगति रमणी होइ हारतो ।।२०।।
तीर्थंकर वृषभाजिन, कीयो उपगार महंत तो ।
जुगला धरम निवारीयोए, लोक कीयो जयवंत तो ।।२१।।
षट्कर्म स्वामी थापीयाए, धरमाधरम विचार तो ।
मुगति मारग प्रकट कीयोए, त्रिभुवन जयकार तो ।।२२।।
तेह गुण मइं जाणीयाए, सद् गुरु तणइ पसाइ तो ।
भवि भवि स्वामी सेविसुएं, लागुं सहू गुरु पाय तो ।।२३।।

वस्तु

आदि जिणेसर आदि जिणेसर तणउ इम रास ।।
कीयों सरस सोहामणो, एक चित्त बहुभाव आणी ।।
पढइ गुणइ जे सांभलइ, जिण सासण गुण अणंत जाणि ।।
श्रीसकलकीरति गुरु प्रणमीनि, मुनि भुवनकीरति अवतार ।
ब्रह्म जिणदास कहे सार निरमलो, रास कीयो मे सार ।।१।।

इति श्री आदिनाथ रास समाप्त:

संवत् १६१७ वर्षे वैशाख सुदि ७ दिने लिख्यतम् । कल्याणमस्तु । श्रीरस्तु ।

२ हरिवंस रास[1]

भास जसोधरनी

समुद्र विजय एवं वसुदेव की वन यात्रा

समुद्र विजय राज करि चंग, आपणे मनिरंग ।
सुरी पुरी पाटण अतिबलो, महीमा उत्त ंग ।।४३४।।
सीवा देवी राणीय तेह तणी, रूपे जईसी रंभा ।
दान पूजा गुणे आगली, जीण सासणी थंभ ।।४३५।।
दस वैभव सु करे इ राज, जादव कुलि चन्द ।
समुद्र विजय राजा रूवडो, जीण सासणी ते कंद ।।४३६।।
भोजक वृष्टि तणो कु ंवर सार, उग्रसेन बखाणि ।
मथुरा नयरी करे राज, जादव कुली मान ।।४३७।।
पदमावती राणी तेहतणी, रूपे गुणवन्त ।
जैन धर्म करि निर्वलो, ते छाई जयवन्त ।।४३८।।
ये कथा हवि इहा रही, अवर सुणो सार ।
वसुदेव तणी नीरमली, कहु सवीचार ।।४३९।।
जुग राज पद भोगवि, सोहे जेसो इन्द्र ।
रूप सोभागि आगलो, जीम पुनमचन्द्र ।।४४०।।
क्रीडा करवा नीसर्या, वन माहि सवीशाल ।
पंच सबद बाजता, माहि मागण माल ।।४४१।।
ते रूप जोवा कारणि, आवि बहु नारि ।
काम मुकी निज घर तणु, रही तेही बारि ।।४४२।।

---

१. यह प्रति राजस्थान राज्य प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर के क्रमांक ४६१४ में सुरक्षित है ।

विहृव्हल चित्त करि आपणु, भूली तव बाल ।
व्यंजन खारा करि सार, लूण घणो घालि थाल ।।४४३।।
एक अलुणा करिए चंग, एक बाले रसोई ।
एक काचां कोरा राखे अन्न, सार करे न कोय ।।४४४।।
उपरा उपरी रोटी धरि, एक बले चुल्हा माहि
उपथ लावा ए नीसरि, नयणे नवी चाहि ।।४४५।।
सिणगार करता समलु, वसुदेव तणु नाम ।
वीभ्रम होय तव अती घणु, उठी तव भामा ।।४४६।।
केस कलापा मोकला, मुकि बाल ।
एक बाला नयण्ने सेंदुर आजीयु, दुजी नही गुण माल ।।४४७।।
पेहेरे भुषण अबला, सबलो चीत नही ठामि ।
चाले सुदरी उनावली, जोई सीर नामि ।।४४८।।
बालक भुली एक नारि, अवरली उछंग ।
अपणु रडतु मुकी करी, नीसरी मनिरगी ।।४४६।।
घणी पेरी सरसी जाई नारी, मोहो घणो आणि ।
सोभा जोई वसुदेव तणी, बोली तीहा वाणी ।।४५०।।
तु का रहि मुज गलि, उची तुजी काय ।
मुख जोवा दे सुदरी, लागु तुज पाय ।।४५१।।
एक उठी एक पाय पडी नार, हैये हैयु अदलाय ।
एक तोडे नीज हार सार एक कुमलाय ।।४५२।।
एक भुषण पाडी करी, नीज घरी आवे ।
रीस करि तेह सजन थोर, तेह मनि नवी भावे ।।४५३।।
वसुदेव दीन दीन प्रति ही चग, नीसरि वन माहि ।
मन माही कुड कपट नाही, कुडी द्रष्टी नवी चाहे ।।४५४।।
पण नारी करि मो हो, अभीलाषना छोडी ।
घर नीरतर सयल कामनी, बालकरि कोडी ।।४५५।।
घर उपरि मन नाही जाणि, कुटंब सी दास ।
वेला अन्न पान नही, सरक नारी बन जायी ।।४५६।।
तब महाजन मिलु एक ठामि, राजा कन्है आवि ।
राव करवा घर तणी, भय मनि भावि ।।४५७।।
समुद्र बीजय राजा अती सुजाणि, सभाई बैठा चंग ।
चमर ढालि अती रूबडा, महीमा उत्त ग ।।४५८।।

माहजन आव्या सयल लोक, बैठा सीर नामि ।
राजाये मान दीधु घणु, बोलो गुण स्वामी ।।४५९।।
कवण काज महाजन, आव्या सुणो आज ।
ते तम्हे कहो मुज आगलि, जीम सरे तम काज ।।४६०।।
तव माहजन मन माहि थोर, लाजि अपार ।
टग मग माहि एक एक मुख, बोलि नीसार ।।४६१।।
कहो माहजन कुणि गंजीया, ते बोलो तम्हे आज ।
भय मो मणो अती घणो, इमि कहि गुण राज ।।४६२।।
कुबेर दत्त तब बोलीयो, वीनय करी चंग ।
तम प्रसादि स्वामी सुणो, राज करू उत्तंग ।।४६३।।
चोर कंटक वाडि नहीं थोर, तम्ह गामि वीशाल ।
कर मारि महि पीडिया, स्वामी गुण माल ।।४६४।।
वसुदेव क्रीडा करवा काज, वन माहि जव जाई ।
तव सबल कामनि घणु विह्वल थाई ।।४६५।।
अम्ह सीदाउछु स्वामी, वेला अन्न न पाणी ।
बाल नि थान नहीं, पात्र अव्ये नहीं मान ।।४३६।।
समुद्र वीजय सुणी बात, माहाजन घरे पाठव्यो ।
सभा माहि था उठीय, सजन मनि भाव्यो ।।४६७।।
सीवा देवी राणी आगलि, कही सबे बात ।
तिणे अवसरि वसुदेव कुवर, आव्या गुण साथ ।।४६८।।
तव देवर लडावीयो, सीवा देवीय चंग ।
तम्हे कुवर समलाहवा, रूप गयु उत्तंगी ।।४६९।।
वन मा जायो छो वली वली, तीहां लागे घाम वात ।
असीत दोहिला तीनी आई, तन नहीं साथ ।।४७०।।
नीज घरि क्रीडा करो, वन मांहि विशाल ।
बंडोपली रूवडी तीह, झीलो गुण माल ।।४७१।।
तीहां खेलो सोहमण, मीत्र सहीत सुजाण ।
भज तणु वन छे दुरगमा, सर वनसपती अपार ।
सात सणो छ तीहं प्रवास, मंडप सवीचार ।।४७२।।
भोजाइ तम अती घणी, अम्हे गुण मांन ।।४७३।।
जब तम्हे जयो छो वन माभारि, अमने खंती लागे ।
तम्हावीण अम्ह तणी वृष्दि कुमार, अवर ठामे भागे ।।४७४।।
तव बंधव सबे बोलिया, मधुरी सुललीत वाणी ।
एक बोल मानो रूवडो, जीम होय सुख खाणि ।।४७५।।

दूहा

वसुदेव बोल मानीयो, हरख वदन आनंद ।
क्रीडा करी सुखे घरी रही, बाध्यो मोहनो कंद ।।१।।
ईणी परीदिन बहुत गया, लोक सुखी हुवा थोर ।
नीज नीज घरी नारी रही, छांडु चपल पणु थोर ।।२।।
नीपुण मती अती रूवडी, दासी छे गुणवंति ।
सीवा देवी तणी सोहामणी, रूप धरी जयवन्ति ।।३।।
श्रीखण्ड घसी करी रूवडो, कचोलो भरी करी चंग ।
जाती होती रलीयामणी, वसुदेवि दीठी उत्त'ग ।।४।।
श्रीखण्ड कचोलु उदालीयु, खीज चडावी थोर ।
दनघी ते घणु बापडी, कोप चडावो थोर ।।५।।
ते तव बोली सु'दरी, खीज चडी तेणी वार ।
न्यायि तम्हे घरी राखीया, चपण पणे अपार ।।६।।
चोखे बधी खाणे पडा, हवि कीम करेसो वीर ।
बाहरि प्रवेश नीवारीयो, तम्ह सजने सुणो धीर ।।७।।
तव वसुदेव भाखा हुवा पुछि ते तीहा नारि ।
सयल वृत्तान्त लोक तणो, कहीयो सुणो वीचार ।।८।।
तव वसुदेव मन लाजीयो, छांडी अबला बाल ।
चीता करि तिहां अती ते घणी, मन मांहि ते गुण माल ।।९।।
धीग पडो ये णे खेलने, धीग धीग ए संसार ।
कलंक लागो मझ, अती घणो, लोक मांहि अपार ।।१०।।
मझ बंधव अती रूवडा, भोजाइयो गुणवन्त ।
सजन म 5 अति छे घणा, सदाचार जयवन्त ।।११।।
ए आगलि किम जाईये, कीम देखाडु मुख ।
लाज आवी मझ अति मनि घणी, व्यापु अती बहु दु:ख ।।१२।।
हु नीकलंक सोहामणो, कपट नहीं लगार ।
पण कींधां करम ना छुटीये, इम कहि वीचार ।।१३।।
कलंक रहीत मणि-चीतवे, चींता अनेक विचार ।
तो कलंकी कीम नीस्तरे, दु:ख तनो भण्डार ।।१४।।
ईम जाणी नीश्चे करी, पाप माकरो तम्हे कोय ।
ब्रह्म जीणदास भणे नीरमलो, जीम नीकलंक सुखी होय ।।१५।।

अन्तिम भाग :

श्री मूल संघ मती नीरमलो, सरसती गछ गुणवन्त ।
श्री सकलकीरती गुरु जाणीय, जीण सासण जयवन्त ॥१॥
तास पाटे मती रूवडो, श्री भुवनकीरती भवतार ।
रत्नत्रय करी मंडीया, गुणह तणो भण्डार ॥२॥
ते मुनीवर पाये प्रणमीनी, कीयो रास नी सार ।
ब्रह्म जिणदास भणे रूवडो, पढता पुण्य अपार ॥३॥
सीष्य मनोहर रूवडा, मल्लीदास गुणदास ।
पढो पढावो वीस्तरो, जिम होए सौख्य अपार ॥४॥
भवीयण जीव संबोधीया, कीयो रास ए सार ।
अनेक कथा गुणे आगलो, दया तणो भण्डार ॥५॥
संवत पनर वीसोतरे, वैसाख मास वीशाल ।
सुकल पक्ष चौदस दीने, रास कीयो गुणमाल ॥६॥

वस्तु

रास कीयो रास कीयो सार मनोहर ॥
अनेक कथा गुणे आगलो, हरीवस तणो सुणो सार निरमल ।
एक चित्त करी सांभलो भाव धरो मन माहि उजल ॥
श्री सकलकीरति गुरु प्रणमीने, ब्रह्मजिणदास भणे सार ।
पढे गुणे जे साभले, तेहनी पुन्य अपार ॥

॥ इति श्री हरिवंस रास समाप्तः ॥

३ जंबूस्वामी रास[1]

भास सहामी

जम्बू कुमार का विवाह

जम्बू कुमार सोहामणोए, सिणगारियो अति भामणो ।
गज चडिय परणेवा ते चालीयोए, सही ए ॥२॥
वाजित्र वाजे अति घणा, ढोल नीसाण तबल तणा ।
गाजि अंबर धन जिम द्रम द्रमिए, सहीए ॥३॥

---

१. यह प्रति श्री अग्रवाल दिगम्बर जैन मन्दिर उदयपुर के ग्रन्थ भण्डार के वेष्ठन संख्या ४० में सुरक्षित है ।

गीत गावै वर कामिनी, राज हंस गज गामिनी ।
नाचे इ गोरी सरस सोहामिणीए सहीए ।।४।।
तोरणे तेवर आवीया, जय जय सबद वधावीयो ।
चुवरीय बैठो कुंवर सोहावणोए, स० ।।५।।
च्यार कन्या सोहावणी, परणी नारि गज गामिणी ।
परणी कुंवर घरि निज आवीयोए, स० ।।६।।
प्रमोद मनोरथ पूरीयो, माप बाप हरखीय ।
सोहलो नीपनु त्याहा रूवडोए, सहीए ।।७।।
सजन सयल भोजन कीयो, मनवाछित दान दीयो ।
आनन्द नीपनो तव अति घणोए, स० ।।८।।
इम करता दिन निरमलो, अस्ताचल गयो सुहजलो ।
हिमकर ऊगीयो तव ऊजलोए, स० ।।९।।
धवल हर रतने जडीयो, जाणी धनदे अपार फणि घडीयो ।
डोल्हारो आलथ्यो तिहाँ रूवडोए, स० ।।१०।।
चार कन्या सोहामणी, तेणे मन्दिरी भावी भामिणी ।
कामिणी सर बोले गज गामीणीए, स० ।।११।।
ते आवी सज्या वियठी, जम्बू कुमार नारी दीठी ।
मोह रहीत मान दीयूं घणू ए, सहीए ।।१२।।
हाव भाव करे घणू रूप देखाडि आपणूं ।
ते नारी जम्बूकुमार मनिरलीए, सहीए ।।१३।।
एक नयण विकार करे, बीजी उरि वरि हार धरे ।
त्रीजीव हसे सुललित रूवडोए, सहीए ।।१४।।
चोथी सिणगार देखाडे, मोह मन सरीसो जडे ।
अभिलाष धरे सुंदरी अति घणोए, सहीए ।।१५।।
अनेक विविध क्रीडा करे, जंबू कुंवर नो हाथ धरइ ।
आलिगंन देवा चाहे सुंदरीए, सहीए ।।१६।।
गीत गावइ एक कामिनी, राग आलवे दूजी भामिनी ।
गावे ए गुण बहु निज वर तणाए, सहीए ।।१७।।
एक वीर रस पोषंती, जंबूकुंवर जय बोलंती ।
विद्याधर जीता ते बलमांवतीए, सहीए ।।१८।।
एक वास लक्षण छे अम्ह धणी, जू जूवां कहे गुणी ।
रूप सोभाग सुंदरी वरणवुंए, सहीए ।।१९।।

एक कथा रस बोलंती, कहाणी पहेली बोलंती ।
प्रीछ करंती सुंदरी निरमलीए, सहीए ॥२०॥
एक काव्य बोलंती, सोमाखि कहु हेम मनिरली ।
कथा छन्द दूहा कहे, सोहजलीए, सहीए ॥२१॥
नाचंती एक गायती, सुरस वीणा एक वायती ।
कंत आगली कलावन्तीए, सहीए ॥२२॥
जम्बूकुंवर कहे भामिणी, बात सुणो तम्हे अम्ह तणी ।
संसार सार न दीसे दूखि भर्योए, सहीए ॥२३॥
रूप यौवन धनि चचल, मुगति ठाम ए अविचल ।
ते ठाम साधूं तप सयम करीए, सहीए ॥२४॥
पदमा कहे सुणो सुंदरि, झणी कष्ट करो तम्हे गमारी ।
कठीण चित्त छि कंत तणो, किम भीजिए, सहीए ॥२५॥
अंधा आगलि नाचीइ, बहिरा आगलि बोलीए ।
ऊसर खेत्र जिम बीज बोवीइए, सहीए ॥२६॥
दान कुपात्र हृ देईइ, ते हनुफल किम लीजीए ।
मिथ्यात कीधे किम सुख नीपजइए, सहीए ॥२७॥
एतली वानी जिम सवे, तिम आपणा कष्ट हवे ।
ए कंत आगलि निःफल नीपजेए, सहीए ॥२८॥
जम्बू कुंवर कहइ सुंदिरी, मझ वाणी सुणो रंगभरीए ।
मझ मन रीझे जिन धर्म रूवडोए, सहीए ॥२९॥
कला सिखी अम्हे पति घणो, कष्ट करी ने सुणो घणी ।
तस फल करो स्वामी तम्हे अम्ह तणीए ॥३०॥
जीव दया गुणे आगला, तम्हे स्वामी छो निरमला ।
कृपा करी घरि रहो कंत कोमलाए, सहीए ॥३१॥
इन्द्रीयकी सुख भोगवो, विषय ऊपरि निज मन ठवो ।
अम्ह नारी सुं स्वामी क्रीडा करोए, सहीए ॥३२॥
श्रावक धरम छे निरमलो, दानपूजा गुणे आगलो ।
घरि रही करू स्वामी तम्हे सहीजलोए, सहीए ॥३३॥
जिनवर भुवन करावीइ, निरमल बिंब भरी वाइ ।
तिलक देवा जीइ, निज गुरु कन्हेए, सहीए ॥३४॥
चतुर्विध संघ गुणे आगला, दान भी दीयो निरमला ।
प्रतिष्ठा करावो स्वामी घरि रहीइए, सहीए ॥३५॥

यात्रा करो तम्हे निरमली, सिद्ध क्षेत्र की उजली ।
संघ पारिही तम्हे अम्ह संघ विलीए, सहीए ।।३६।।
ए स्यासोहला निरमला, घरि रहो करी ऊजला ।
आस पूरो स्वामी सजन तणाए, सहीए ।।३७।।
बेटा-बेटी सोहावणा, ऊपजे सुललित भामणा ।
वंश वृद्धि होइ जस विस्तरिए, सहीए ।।३८।।
गृही धर्म गुणे आगलो, ते कीजं स्वामी निरमलो ।
बा१ वरत नीम घणा पालीए, सहीए ।।३९।।
चौथो आश्रमि तप कीजे, मनुष्य जनम फल लीजि ।
परमलोक साधीइ स्वामी निरमलोए, सहीए ।।४०।।
जम्बूकु वर कहे मृग नयणी, मोह पास तोसा काविणी ।
पास पड्यो नर बहु तल फडेए, सहीए ।।४१।।
ते परलोक किम साधसे, दिन दिन मोह बहु दाधसि ।
चिंता पड्यउ जीव किम निस्तरोए, सहीए ।।४२।।
गृहीय धर्म्म जे तम्हे कहीयो, मोही जीवें ते गृहीयो ।
ते धरम वैरागी मनि कइ भरविए सहीए ।।४३।।
जिणवर गणधर मुनिवर, जतीवर होवा सहगुरु ।
गृही धर्म छोडिया श्री मुगति गयाए, सहीए ।।४४।।
तेहमणी हूं परिहरुं, गृही धरम नवि मनि धरूं ।
महाव्रत लेइसूं सुंदरि निरमलुए, सहीए ।।४५।।

दूहा

तव विस्मय बहुमनि ऊपनो, जम्बू कुंमर अति धरी ।
अचल मन छे एह तणो, एह अनोपम महावीर ।।१।।
ब्रह्म जिणदास इम वीनवि, स्वामीय करो पसाउ ।
तम्ह तणो साहस सोहणो, देउ मभ जम्बूकुमार ।।२।।

भास चौपईनी

विभिन्न प्रदेशों के नाम

सुललित भामो बोल्यो वाणि, कुंवर सुणो तम्हे सुजाण ।
पूरव देस भयो सविशाल, नयर नयर आव्या गुणमाल ।।२३।।
कनोज गोड दीठो कलिंग, अंगबंग जालन्धर बंग ।
मालव देस उजेणी गाम, वराड दीठो वली पूनागाम ।।२४।।

तिहां थको आव्यो दक्षिण देश, जू जुवा बोल जू जुवा वेश ।
मरहठ देश दीठो करणाट, सिंगल दीपवां बहु हाट ॥२५॥
तिलंग देस छे मालिक स्वामि, ते बांद्या स्वामी शिरनामि ।
करणाटे बांद्यो गोमट देव, सुर नर खेचर करे तस सेव ॥२६॥
आहीर देश आव्यो हूंसार, बांधा सिद्ध क्षेत्र भवतार ।
गजपंथ तुंगिया गिरिउत्तंग, पूज्या स्वामि तिहां मनरंगि ॥२७॥
अहिर देश उलंघ्यउ सार, बडवाणी आव्यो भवतार ।
इन्द्रजित कुंभकरण मुनिचंग, सिद्ध क्षेत्र बांद्यो मनरंग ॥२८॥
लाड देश आव्यो सविचार, पावा गिरि चडीयो गुणमाल ।
राम कुवर लव अंकुशवीर, पांच कोडि सूं बांद्या धीर ॥२९॥
रेवा नदी सिद्ध क्षेत्र विशाल, तिह बांद्या मुनिवर गुणमाल ।
भरुवछि नयरि आव्यो हूं सार, वणिज कीयो तिहां अपार ॥३०॥
तिहां थको आव्यो सोरठ देश, शत्रुंजि शह खरचज्यु नरेश ।
आठ कोडि पांडव सू चंग, ते बांद्या स्वामी मनरंग ॥३१॥
तिलकपुर पाटण वली सार, चन्द्रप्रभ बांद्या भवतार ।
तिहां थको गिरिनारि गयो हूं चंग, परवत दीसवो अतिहि उत्तंग ॥३२॥
बहुत्तरि कोडि सात से चग, सिद्धा नेमि कुंवर उत्तंग ।
स्वामिनि पूजू अनिरुद्ध सुजान, तिहां बांद्या स्वामी भवतार ॥३३॥
तिहां थको आव्यो गुजर देस, त्रंबावती कीउ परवेश ।
दीठो थंमण परस्वनाथ, बांद्या स्वामी जोड्या दुइ हाथ ॥३४॥
मेवाड़ देश आव्यो हूं चंग, चीत्रोड़गढ़ दीठो उत्तंग ।
तिहा बांद्या जिणवर चोविस, त्रिभुवन स्वामी ते गुण ईश ॥३५॥
तारंग गढ़ दीठो सार, आठ कोडि मुनिवर भवतार ।
सिद्धा मुनिवर तिहां जयवन्त, ते स्वामी बांद्या जयवन्त ॥३६॥
आबू शिखरि चड्यो हूं सार, तिहां बांधा जिणवर भवतार ।
तिहां थको जिराउलि गयो हू चंग, पार्श्वनाथ पूज्या मनरंग ॥३७॥
पश्छिम देश गयो हूं जाणि, सिंधु देश दीठो वखाणि ।
सुरम देश पोयणपुर गाम, तिहां अपिइ बाहुबलि नाम ॥३८॥
तिहां थकउ आयो मथुरा चंग, मल्लिनाथ बांद्या मनरंग ।
हस्तिनापुरि बांद्या जिनदेव, शान्तिनाथ कुंथ सुरनर करे सेव ॥३९॥
उत्तर दिशा आव्यो वली चंग, अनेक देस दीठो मनरंग ।
नयर गाम पाटण सुविशाल दीप दीपान्तर दीठा बाल ॥४०॥

तीर्थंकरों के नगरों के नाम

अयोध्या दीठी वली सारू, जिणवर पंच लीयो अवतार ।
ऋषभ अजित अभिनन्दनदेव, सुमति अनन्त सुरनर करे सेव ।।४१।।
साविती सम्भव जिन देव, जनमि जनमि करू' हू' तस सेव ।
कोशांबी पद्मप्रभ सुचंग, कमल चरण पूंजू मन रंग ।।४२।।
वाणारसी दीठी सुख खाणि, नदी बहे गंगा तिहां जाणि ।
तीर्थंकर दुइ उपना सार, पास सुपास स्वामी अवतार ।।४३।।
चन्द्रपुरि चन्द्रप्रभ देव, त्रिभुवन भवियण करे तस सेव ।
काकन्दी नयरी अतिचंग, पुष्पदंत पूजूं मनरंगि ।।४४।।
भद्दलपुरि शीतल जिम होइ शीतल वाणि सुणे सहु कोइ ।
सिंहपुरी श्रेयांस गुणवन्त, ते पूज्या स्वामीय जयवन्त ।।४५।।
वासुपूज्य चम्पापुर सार, तिहां पूज्या स्वामी भरतार ।
कापिल्या विमलप्रभसेन, सुर नर खेचर करत तम्ह सब ।।४६।।
रतनपुर नयर सविसाल, धरम नाथ पूज्या गुणमाल ।
शान्ति कुंथु अर जिणवर चंग, गजपुरी पूज्या मे मनरंगि ।।४७।।
मथुरा पुरी मल्लि जिणदेस, शत इन्द्री करे तस सेय ।
राजगृह मुनिसुव्रत कहा, जिणवर वांद्या मेए सहा ।।४८।।
नमि जिण मथुरा पूज्या सार, सुर पुरि वांद्या नेम कुंवार ।
कुण्डलपुरि जिणवर महावीर, ते पूज्या स्वामी तिहांधीर ।।४९।।
सम्मेद गिरि दीठो वलि चंग, जिणवर वीस पूज्या मनरंग ।
सिद्ध क्षेत्र वांद्या मे घणा, किम वखाण करू' तेह तणा ।।५०।।
लक्ष्य चुरासी जीवडोए, सु० भमीयो अनन्त संसार ।
जरा मरण वियोग तणां, सु० पाम्या दुख संसार ।।४३।।
ते दुःख फेडवा हवेए, सु०, लेइसुं संयम भार ।
मोहमयण सहू क्षय करीए, सु०, जिन पाम्यु भवतार ।।४४।।

वस्तु

जम्बूकुंमर कहे जम्बूकुमर कहे सुणी तम्हे सार ।।
मेरु गिरिवर जो चले, अगनि कि सीतल होइ उज्जल ।
दिणवर पश्चिम उगमे, तहुव न चलइ मक मन निरमल ।
एह वयण निश्चउ कीरी, म्हांनी करो तम्हे अन्तराय ।
हूं निश्चे तप लेइ सुं, लागि सुं सहू गुरुपाय ।।१।।

भास राखनी

जम्बूकुमार की मुनि दीक्षा

श्रेणिक राजा सांभल्योए, जम्बूकुमर वृत्तान्त तो ।
ततखिणी स्नेह धरि आवीयोए, दीठो ते जयवन्त तो ॥१३॥
राणी आवी वली रूवडीए, श्रेणिक तणीव सुजाणि तो ।
जम्बूकुमर सिणगारीयाए, जैसो बालो मान तो ॥१४॥
पछे पालखी बैठो रूवडोए, सोहे जैसो इन्द्र तु ।
लेईवा दीक्षा कारणिए, बन जाइ जिम जिनेन्द्रतु ॥१५॥
भेरी सुरंग गह गहयाए, वाजि ढोल नीसांण तु ।
मयर सिणगार्‌यो तव अति घणोए, जाणे देव विमानतु ॥१६॥
हा हा कार हुवो अति घणोए, आचंभ करे नर नारितु ।
ए कुंवर रलिया मणोए, किम लेस्ये संयम भारतु ॥१७॥
पूठे माइ तव संचरीए, विह्वल हुईय अपार तु ।
च्यारि नारी आवी रूवडीए, सयल सजन परिवार तु ॥१८॥
पालखी आगलि उभी रहीए, बोलि मधुरीय वाणितु ।
तम्ह विण पुत्र हूं किम रहूंए, माइ कहि सुजाणितु ॥१९॥
शशि विण रयणि नवि सोहेए, तिम तम्ह विणु एक नारितु ।
बाला भोला लहू वडाए, किम रहिसे संसारितु ॥२०॥
क्षमा विण नवि सोहेए, धरम दया विण जाणितु ।
तिम तम्ह विणु घर किम सोहेए, जम्बूकुंमर सुजाणतु ॥२१॥
विवेक विणु पुरुष नवि सोहेए, नारीय सीयल विण जाणितु ।
तिम तम्ह विण किम कुल सोहेए, जम्बूकुंमर सो जाणतु ॥२२॥
समकित विण व्रत नवि सोहेए, जम्बूकुंमर सुजाणतु ॥२३॥
वड रहीय उबउ रहाउए, माइ बाप पुत्र आधार तु ।
तम्ह वीणा पुत्र अम्हे केह तणांए, जम्बूकुंवर तिहां विचारतु ॥२४॥
बाला कुंवर लहू बडाए, पुत्र तम्हे अति सकुमालतु ।
बार भेद तप दोहेलोए, जैसी अगनि जाणितु ॥२५॥
हवे पुण पाछा वलोए, भोगवो सुख महंतितो ।
आस पूरवो सजन तणीए, तम्हे कुंवर गुणवन्त तो ॥२६॥
चौथे आश्रमि तप लेज्योए, छेदय मोहनो जालतु ।
ज्ञान ध्यान बले कर्म्म हणीए, साध जो मुनि विशालतु ॥२७॥
तव कुंवर इम बोलीयोए, माइ सुणु मझ वाणितु ।

संसार कूडो जाणीए, दुख सहूनी खाणितु ॥२८॥
विषय सुख विषधर समाए, मोह मदिरा सम जाणितु ।
नारीय सयल जग मोहीयाए, मि मुक्या तम्ह वाणितु ॥२९॥
माइ बाप सम्बोधीयाए, सयल सजन बहु संगतु ।
संयम लेवा सांचरोए, जम्बूकुमर मन रंगितु ॥३०॥
वन माहि पहुता गुरु कन्हेए, जम्बूकुमर सुजाण तु ।
पालकी थकी तव उतरियाए, जाणू दूजो भानतु ॥३१॥
त्रिण प्रदक्षिणा देइ करीए, प्रणम्यो सहगुरु पाय तु ।
तत्व पदारथ सांभलीए, निरमल कीधी कायतु ॥३२॥
पछे दुइ कर जोडीयाए, वीनव्या सहगुरु सार तु ।
संयम देउ स्वामी निरमलोए, बोले जम्बूकुमार तु ॥३३॥
सद्गुरु स्वामी बोलीए, जम्बूकुंवर सुणो बात तु ।
सयम लेउ तम्हे रूवडोए, मेल्हीय मोहनो साथ तु ॥३४॥
जम्बूकुमार तव हरषीयोए, बिठो तिहां गुणमाल तु ।
कोमल हाथ तव लोच लीयोए, छेदीय मोहनु जाल तु ॥३५॥
सयल सिणगार तव परहर्याए, दिगम्बर हुवा विशालतु ।
अठावीस मूल गुण उचार्याए, सह गुरु स्वामी भवतारतु ॥३६॥
अर्हदास जिनमती निरमलोए, मन मांहि धरीयो वैराग्यतु ।
संयम लीधो गुरु कन्हैए, सरग मुगति नु ठामतु ॥३७॥
चारि राणी वली रूवडीए, तेह मनि उपनो भावतु ।
संयम लीधो निरमलोए, सह गुरु कीयो पसाउतु ॥३७॥
विद्युत्प्रभ केरू रूवडोए, तेणें लीयो संयम भारतु ।
मोह मछर सहु परहरीए, मुनिवर हुवो भवतारतु ॥३९॥
साहस दीठो कुंवर तणोए, अनेक भविकजन चंगतु ।
चारीत्र लीयो तिहां निरमलोए, मोह तणो कीयो भंगतु ॥४०॥

अन्तिम भाग

रास कीयो मि रास कीयो मि अति हि सुविशाल ॥
जम्बूकुमर नो निरमलु, अन्तिम केवली सार, मुनिवर ।
अनेक कथा मे वरणवी, भवीयण तणी गुणवन्त, यतिवर ॥
पढइ गुणइ जे सांभले, तेह घरि रिद्धि अनन्त ।
ब्रह्म जिणदास इणी परिभणे, मुगति रमणि वरकंत ॥१॥
॥ इति श्री जम्बूकुंवर महामुनि रास समाप्त: ॥

४ सुकुमाल स्वामी रास[1]

मंगलाचरण

वस्तु छन्द

श्री वीर जिरावर वीर जिरावर पाय प्रणमेवि ।।
सरसति स्वामिरणी वली तवु, बुद्धि सार हुं वेगि मांगु ।
गरणधर स्वामी नमसकरू, श्रीं सकलकीरति गुरु पाय प्रणमुं ।।
मुनी भुवनकीरति पाय प्रणमीनि, ब्रह्म जिरणदास भरिण सार ।
सुकुमाल स्वामी निरमलु, रास करूं सविचार ।।१।।

भास जशोधरनी

सुकुमाल स्वामी रास वर्णन की सूचना

भवीयरण भावि सुणु आज, कथा कहुं मनोहर ।
सुकुमाल स्वामी गुरण विशाल, रास कहुं निरभर ।।१।।
जम्बु दीप मझारि सार, भरतक्षेत्र सुजाणुं ।
मगध देश अति रूवडु, राजग्रह बखाणु ।।२।।
श्रेणिक राजा करइ राज, भरि लाछि भण्डार ।
चिल्लरणा राणी तसु तरणी, बहुरूप अपार ।।३।।
जैन धरम करि निरमलु, समकित गुरणवन्त ।
जिनवर पूजा गुरु वयरण, पालि जयवन्त ।।४।।
तीरिण अवसरि महावीर देव, आव्या जिन स्वामी ।
विपुलाचल अति रूवडो, जिनमुगति गामी ।।५।।

विपुलाचल पर भगवान महावीर के समवसरण का आगमन

समोसरण स्वामी निरमलुं, सर नर करि देव ।

---

१. यह प्रति श्री दिगम्बर जैन मन्दिर पाटोदी, जयपुर के ग्रन्थ भण्डार के वेष्ठन संख्या ३६६ में सुरक्षित है ।

वन माली तिहां आवीयु, दीठा जिनदेव ।।६।।
तव हरख बहु उपनु, आव्यु राजदूआरि ।
दोइ करि जोडी वीनव्या, फल फूल लेइ सारी ।।७।।
श्रेणिक भूप प्रति रूवडु आणंधु गुणवन्त ।
जय जयकार कीयु निरमलु, दिसा नमि सुरंग ।।८।।
वस्त्राभरण दीया घणां, वनमालीय सार ।
आनन्द भेरी पछि ऊपनी, हुवउ जय जयकार ।।९।।

श्रेणिक राजा का समवसरण वन्दना के लिए प्रस्थान

गज तुरंगम पालखी, रथ अति सविशाल ।
वांदण चाल्यु निरमलु, श्रेणिक गुणमाल ।।१०।।
श्रावक श्राविका रूवडी, सरीसा गुणवन्त ।
यात्रा करवा जिनतणी, चाल्या जयवन्त ।।११।।
समोसरण अति निरमलु, दीठु उछाह ।
भवीयण सयल आनन्दीया, कीयु जय जयकार ।।१२।।
तीन प्रदक्षिणा देई करी, वांद्या त्रिभुवन ईश ।
चरण कमल पूज्या मनिरली, भाव धरी गुणईश ।।१३।।
सभा बिठा मनिरली, भवीयण गुणवन्त ।
मधुरीय वाणी सोहामणी, सुणी जयवन्त ।।१४।।
तत्व पदारथ निरमलु, सुन्यु धर्म विचार ।
पछि श्रेणिक भूपति, वीनव्या गुणधार ।।१५।।

सुकुमाल स्वामी के चरित्र सुनने की इच्छा व्यक्त करना

सुकुमाल स्वामी चरित्रसार, कहु मुझ स्वामी ।
बार सभा जिम सांभलि, जिम दुइ सुख खांणी ।।१६।।
जिणवर स्वामी मधुरी वाणी, कहि गुणवन्त ।
एकचित्त तम्हे सांभलु, भवीयण जयवन्त ।।१७।।

रास का प्रारम्भ

मगधदेश माहि रूवडु, चम्पा नयरी विशाल ।
चन्द्र वाहन तीणि नयरि राउ, राज करि गुणमाल ।।१८।।
लक्ष्मीमति राणी निरमली, बहु रूप अपार ।
जिन धर्म करि रूवडु, भरि लाछि भण्डार ।।१९।।

पुरोहित राजा तणु जाणि, नागसर्मा नाम ।
रौद्रध्यानी मिथ्यात करि, न जाणि ज्ञान ।।२०।।
त्रिदेवी तस नारि जाणि, रूपि सुविशाल ।
ते बहू कुखि ऊपनी, नागश्री गुणमाल ।।२१।।

दूहा

एक बार ते सुन्दरी, सहीय सहित अतिचंग ।
नाग पूजा कारणि, वन मांहि गई मन रंग ।।२।।
पछि वन मांहि क्रीडा करि, सहीय सहित सुजाण ।
मुनिवर स्वामी देखीया, जइसा दिनकर भाण ।।२३।।

भासबीनतीनी

सूर्य्य मित्र मुनिराउ, आगति भूति पुण्य आगलुए ।
तप जप ध्यान महंत, धर्म्म मूरति रलीयामणुए ।।१।।

नागश्री द्वारा मुनि दर्शन

नागश्री तीणिवारि, दीठा मुनिवर निरमलाए ।
मोह उपनु तव सार, नमोस्तु कीयु तव ऊजलुए ।।२।।
मुनिवर कहि सुणु बाल, नीमलेउ तम्हे ऊजलुए ।
जीव दया जगिसार, सत्य वयण भावि जडुए ।।३।।
अचौरिज व्रत चंग, ब्रह्मचर्य रलीयामणुए ।
परिग्रह संख्या जाणि, श्रावक धरम सुहामणुए ।।४।।
कंद मूल बीज फूल, अथाणा सवे टालिवाए ।
रात्रि भोजननु नीम, अवर पाप सवे टालिवाए ।।५।।

नागश्री द्वारा व्रत धारण करना

सुणी मुनीवर तणी वाणी, नागश्री मन भेदीउए ।
अणुव्रत नीम विशाल, बीघा नमोस्तु बली कीधुए ।।६।।
तव मुणिवर कहि वछि, तम्ह तणु पिता रीस करिए ।
तब नीम मुकतणा सार, मुभनि देयो गुणधारए ।।७।।
मान्यु मुनीवर ल, निज घरि गई ते सुंदरीए ।
जवर कुंवरी मिथ्यात, पिता आगली कहयुं रीस भरीए ।।८।।
तम्ह बेटीय जाणि, वयणा वांचा मनिरलीए ।
नीम लिया वली सार, नागश्री तेह मुणे हिलीए ।।९।।

नागश्री के पिता द्वारा विरोध करना

तव कोप्यु तेह तात, नागश्री बुक कीयुए ।
समरणा बांधा आज, निम लेई मान दीयुए ।।१०।।
ब्राह्मण जाति पवित्र, वरण सहू मांहि आगलुए ।
वेद धरम विशाल, गंगा नदी रलीयामणीए ।।११।।
ब्रह्मा ईश्वर विष्णु, ए देव छि आपणांए ।
ए धर्म छोडी बीह, किम वांदु गुरु परतणांए ।।१२।।
हवि छोडु ए नीम, नहीं तु आस मुंकु घर तणीए ।
नीम मुंकावि जो तम्हतात, तु माहरा महि्‌न आपज्योए ।।१३।।
आवु तम्हे अम्ह साथि, नीम पाछा देउं गुरतणांए ।
नागश्री तेणीवार, सजन-मेलव्या तिणि आपणाए ।।१४।।
नीम पाछा देवा जाइ, वाटि चालि मदमर्‌याए ।
एक कुंअर रूपवन्त, कोट वालि बांधी धर्‌युए ।।१५।।
वधवा काजि जाणि, सुभट लेइ जाइ अति बलाए ।
नागश्री दीठु चंग, पूछि सजन सोहलाए ।।१६।।
कवण अन्याय कीउ आज, ईणि बापडि कहु पिताए ।
नागसर्म तीणिवार, कहु सुभट बलीवन्ताए ।।१७।।
तव एक बोल्यु जांणि, ईणि नयरि वणिक वसिए ।
देवदत्त तेह नाम, घणा कण तेह घरि दीसिए ।।१८।।
समुद्रदत्ता देह नारि, वसुदत्त पुत्र सुहामणुए ।
अठारकोडि ए द्रव्य, कुमर दीसि अति भामणुए ।।१९।।
जू खेल्यु एक बार, लक्ष टंका एणि हारियाए ।
मांगि जुआरी अपार, धूरत मिल्या बहु अति घणांए ।।२०।।
तव कोप्यु ए जांणि, जूआरी छुरी हणीआए ।
खून कीयु ईणि थोर, तेह भणी एहनि सुणुए ।।२१।।

दूहा

जु खेल्यु ए पापीयु, मनुष्य निपात्यु घोर ।
तेहभणी ए बांधीयुए, मारण काजि धनघोर ।।१।।

अहिंसा का महत्व

तव नागश्री बोलीयुं, पिता सुणु मुझ वाणि ।
जीव दया विण आपडुं मरण पामीसि दुख खाणि ।।२।।

जीव दया व्रत रूयडु, सद्गुरु दीयो मकसार ।
ते नीम किम मोडीइ, पिता करू विचार ॥३॥
जीव दया व्रत रूवडु, सचराचर जयवन्त ।
धर्म सहु मांहि आगलु, पाप निकंद बलवन्त ॥४॥
नागशर्म तव बोलीयु, ए नीम रहु सुविशाल ।
अवर नीम सवि मेल्हीइ, कुंअरि सुण गुणमाल ॥५॥

भास अम्बिकानी

हो दिगम्बर सुणी मुझ वाणि, बेटी बोलवी मझ तणीए ।
पाय लगाडी तम्हारि आज, वाणी सुणावी तम्ह तणीए ॥८॥
नीम देया तम्हे इम जाणि, आपणी सत्ता कीधी घणीए ।
ब्राह्मण उत्तम कुल अवतार, वात न जाणु तेह तणीए ॥९॥
मुनिवर बोल्या मधुरी वाणी, ए बेटी छि मझ तणीए ।
मि नीम दीया अतिचंग, तम्हनि रीस काइं चडीए ॥१०॥
तव ब्राह्मण दुख उपनु थोर, आकलु हुइ ते अति घणुए ।
घरबार छोड्यु तम्हेसार, धन छोड्यु वली आपणुए ॥११॥
नारि नही तम्हारी गुणवन्त, तु बेटी किम नीपनीए ।
सत्यवादी तम्हे यतिराज, तु कहुं तम्ह तणी किमए ॥१२॥
मझ तणी नारी देखाडुं आज, साखि पूरवुं वली अतिघणीए ।
बाल गोपाल जाणि सहु कोई, नागश्री बेटी मुझ तणीए ॥१३॥
देखतां देखतां बेटीय सार, पारकी हुई ए अम्ह तणीए ।
राज भुवनि गयु तिणिवार, राव करि ते अति घणीए ॥१४॥
वीनती सुणु स्वामी मुझ आज, वन मांहि क्षपनक आवीयुए ।
श्रावक भगति करि अपार, तेन्हि मनि ते गुर भावीयुए ॥१५॥
मुझ तणी कुंवरी लीधी उदाली, बल कीयु तीणि अति घणुंए ।
ते कहिए अम्ह तणीइ बीटू, नागश्री मोह तणुए ॥१६॥
राय विस्मय पाम्युं वली थोर, बांदणि चाल्यु रूयडुए ।
बांधा मुनिवर त्रिभुवन तार, भाव घणुं मनमां जड्युए ॥१७॥
तम्हे स्वामी छु गुणह भण्डार, सत्यवासी करी अलंकर्‍याए ।
नागश्री केह तणी धीह, तम्हे कहु कांनि अड्याए ॥१८॥
मुनिवर बोल्या वाणि, सि मकावी छि अति घणुए ।
व्याकरण मांहि शास्त्र, तु कहुए किम तम्ह तणीए ॥१९॥

दूहा

ऋषभध्वज एवं यशोभद्रा द्वारा मुनिवन्दना

वणारसी नयरी माही, ऋषभध्वज राज करे ।
सुरेन्द्र साह तिहां बसे, यशोभद्रा तस नारी ॥५॥
पणि पुत्र नहीं निरमलु, कुल मण्डण जयवन्त ।
कही होसि मुझ नन्दनुए, सुललित अति गुणवंत ॥६॥
चिंता करि बहु अति घणीए, मन मांहि बहु दुख ।
जनम गयु मुझ अति घणुए, पुत्र विण नहीं सुख ॥७॥
एक बार तीणी नयरी मांहि, आव्या मुनिवर सुजाण ।
यशोभद्रा वंदना गईए, पूछि पुत्र तणि वात ॥८॥

मुनि द्वारा भविष्यवाणी

मुनिवर बोल्या सुंदरी, तम्ह पुत्र होसी चंग ॥९॥
पुत्र मुख दीठा पछि, तप लेशि तम्ह नाह ।
सद्गुरु वचन सुण्यां पुठि तम्ह पुत्र तप चाहि ॥१०॥
पाख दोइ गया पुठि, गर्भ उपनु गुणवंत ।
पीहर मिल कीयु रूवडु, यशोभद्रा जयवंत ॥११॥
जतन करि ते अति घणुं, मुई गृह मांहि चंग ।
वस्त्र धोवा कारणि, बटीक गयी एक बार ॥१२॥
नदीय मांहि ते गई, बालक तणा वस्त्र जाणि ।
धोवण लागी निरमली, गावि मधुरी वाणि ॥१३॥
ब्राह्मण एक तिहां आवीयु, ते धूरत अपार ।
पूछण लागु ते किहुं, बालक तणुं विचार ॥१४॥

भास चोपईनी

तव कह्यु तिणि सयल विचार, पुत्र जनम तणु गुणधार ।
तव ब्राह्मणी बधाव्यु साह, तम्ह घरि पुत्र आव्यु गुण चाहि ॥१॥
विस्मय पाम्युं सहि अपार, पुत्र जोवा गयु गुणधार ।
पुत्र जन्म जाण्या जयवन्त, वैराग्य ऊपनु तव महंत ॥२॥
पुन दीठु मणत्र गुणवंत, श्रेष्ठी संयम लीधु जयवंत ।
यशोभद्रा दुख धरि अपार, सुखु न पामि एक लगार ॥३॥
पुत्र तणी चिंता बहु करी, मुनिवर ऊपरि रुचि न धरि ।
सहु गुरू नाखि तेह धरि चंग, पाम उत्तम स्वामी उत्तंग ॥४॥
घर पाछलि गढ कीधु जाणि, ते घर कनक रूप बखाणि ।
सर्वतोभद्र नाम विसाल, बारू रयण मय गुणमाल ॥५॥

पुत्र का नाम सुकुमाल रखना

कुंअर नाम दीयु सुकुमाल, बीज चन्द्र जिम वाधि बाल।
सनि सनि ओवन ऊपनु, रूप यौवन दीसे नवु ॥६॥
वणिक तणी पुत्री अति चंग, घरि बिठा मांगि उत्तंग।
बत्तीस कन्या अति गुणवन्त, रूप सोभाग सरस सीलवन्ति ॥७॥

सुकुमाल का बचपन

बत्तीस गृह रूपाणि जाणि, ते कामिनी रहि सुख खाणि।
क्रीडा विनोद करि सुकुमाल, इंद्रयम सुख भोग वि सविचाल ॥८॥
मुनिवर तणी भेटि नही चंग, तेह भणी धरम तणु नहीं रंग।
समकीत वरत न जाणे सार, दान पूजा नहीं अवतार ॥९॥
ईणी परि काल जांइ बहू सार, न जाणि कुंवर वे धार।
चितामणि सुख भोगवि थोर, दुख दरिद्र नहीं घनघोर ॥१०॥
यशोभद्र माता सविशाल, धरम उपरि भाव नहीं गुणमाल।
पुत्र बहू ऊपरि मोहरंग, धरम नीम तणु कीयु भग ॥११॥
सुख भोगवि सुकुमाल गुणवन्त, क्रीडा विनोद करि महंत।
उणीपरि काल जाई धर्म विण, धरम पाखि चडि करमरिण ॥१२॥

दूहा

सुकमाल कुंवर सोहामणु, यश पांम्यु सुविशाल।
सुख भोगवि ते अति घणु, धरम विण गुणमाल ॥१॥

भास जीवडानी

यशोभद्र मुनि का सुकुमाल को संबोधने के लिए आगमन

एक बार यशोभद्र मुनि हो, अवधि न्याय करी जाणि।
आयु थोडु सकुमाल तणु हो, धरम सहित सुजाण हो ॥
भवीयण धरम तणा परभावि ॥१॥
ते पाम्यु सकुमाल तणु हो, कृपावंत गुणधार।
संबोधवा ते आवीयु हो, तीणी नयरी सविचार हो। भवि० ॥२॥
जोग देवा दिन रूवडु हो, आव्यु वनह मझारि।
जिणवर भुवन सोहामणु हो, जोग लीयु सविचार। भवि० ॥३॥
सकुमाल घर छि ढूकडु हो, मुनिवर धर्‌यु तिहां ध्यान।
यशोभद्रा तिहां सांभल्या हो, आव्या सद्‌गुरु न्याय हो। भवि० ॥४॥

१. ।

तब मन मांहि सुख ऊपनु हो, आवी ततखणि सार ।
मुनिवर दीठा निर्मला हो, उलसीया भवतार हो । भवि० ।।५।।
तम्हे बंधव स्वामी मझतणा हो, कृपावंत भवतार ।
वीनतीं सुणु हवि मुझतणी हो, दयावंत गुणधार हो । भवि० ।।६।।
एक पुत्र छि मुझ तणु हो, सकुमाल नाम गुणवंत ।
ज्ञानवंत मुनिवरि कह्यु हो सुणु जयवंत हो । भवि० ।।७।।
मुनिवर वचन सुण्या पुठि हो, तप लेशि तम्ह पुत्र ।
हवि तम्हे आव्या ढूकडा हो, वाणि सुणशि तम्ह पुत्र हो । भवि० ।।८।।
संयम लेशि नंदनु हो, छांडी अरथ भण्डार ।
मुझ मरण सही आवशि हो, इम जाणु गुणधार हो । भवि० ।।९।।
मझ मन मोहि जइयु हो, अवर नहीं मझभाव ।
तेह भणी तम्हे इहा थका हो, अवर ठामि सही जाउ हो । भवि० ।।१०।।
मुनिवर बोल्या निरमला हो, मधुरीय वाणि सुजाण ।
आज योग जाणी अम्हतणु हो, अम्हे किम जाउं उत ग हो । भवि० ।।११।।
प्रतिमा योग धरी रहुं हो, मौन ध्यांन गुणवंत ।
आठ पा‴ लगि रूवडु हो, तम्हे जाणु पुण्यवंत हो । भवि० ।।१२।।
तब पाछी वली सुंदरी हो, आवी निज घरि सार ।
पुत्र जतन करि अति घणुं हो, सजन सहित परिवार हो । भवि० ।।१३।।

सुकुमाल द्वारा अध्ययन

आठ पाख पूरा हुवा हो, योग समाव्यु जाणि ।
सकुमाल जाग्यु जाणीयु हो, पढिते मधुरी वाणि हो । भवि० ।।१४।।
सिद्धांत सार पढि निरमला हो, त्रिलोक तणु विचार ।
पद्मगुल्म विमान कही हो, तेह तणु विस्तार हो । भवि० ।।१५।।
पद्मनाभि देव तणी हो, ऋद्धि वर्णवि गुणमाल ।
ते सांभल्या पुठि निरमलु हो, जाति स्मरण जयवंत हो । भवि० ।।१६।।
पहिला भवि सवि सांभर्या हो, सकुमाल हवु वैराग्य ।
जनम माहारू आलिगयु हो, धरम बिना अभाग्य हो । भवि० ।।१७।।
समकित वरत न पालीया हो, नवि पूज्या जिनदेव ।
दान सुपात्रह नवि दीधुं हो, नवि कीधी जिनसेव हो । भवि० ।।१८
नमोकार मन्त्र मि न गण्या हो, नवि सुणी जिनवाणि ।
तप जप संयम नवि पाल्या हो, ध्यान न धर्यु सुख खाणिहो । भवि ।।१९।।

भव सागर किम ऊलरू हो पडीयु मोहनि पासि ।
विषय सुख हवि परहरू हो, साधु शिवपुरी वास हो । भवि० ॥२०॥
तब ऊठी करी ज्यहुं गमि हो, नीसरवा नहीं परवेश ।
तब पेई काढी वस्त्र तणी हो, वस्त्र काढ्यां नरेश हो । भवि ॥२१॥
वस्त्र ओडी करी माल करी हो, बांधी स्तम्भ विशाल ।
तिणीं मालि कुंवर उतर्यु हो, छोडी अबला बाल हो । भवि० ॥२२॥

सुकुमाल द्वारा वैराग्य धारण करने के लिए प्रार्थना

जिन भवन नी पुंठि आवीयु हो, बांधा सहि गुरुपाय ।
संयम देउ निरमलु मझ हो, कृपा करू मुनिराय हो । भवि० ॥२३॥
मुनिवर स्वामी बोलीया हो, धन धन तम्ह अवतार ।
तीन दिवस तम्ह आयु थाकि हो, हवि लेउ संयम भार हो । भवि० ॥२४॥

दूहा

वैराग्य धारण करना

सकुमाल स्वामी तप लीयुं, सहि गुरु कहि्न अवतार ।
अठावीस मूलगुण निरमला, समकित ज्ञान विचार ॥१॥
अणसण लीधुं सोह जलु, नमोस्तु कीयु गुरु पाय ।
तिहां थिकु नीसर्यु निरमलु, निश्चल मन वचकाय ॥२॥

भास हेलिनी

घोर तपस्या का वर्णन

बन मांहि गयु सकुमाल, निरमल स्थानकि रूवडु हेलि ।
मृतक शय्या आणि, कायोत्सर्ग लीधु भाव जड्यु हेलि ॥१॥
प्रायोपगम विचारि, मरण साधिवीर दुरधरो हेलि ।
धर्म शुक्ल बर ध्यान, ध्याइ मन मांहि भावि जड्या हेलि ॥२॥
तीणि अवसरि ते जांणि, सोमदत्ता जीव दुरधरो हेलि ।
निदान फल बखाणि, कोहली हुइ ते पापिणी हेलि ॥३॥

श्रृगालिनी द्वारा भक्षण

...आला तेह जाणि, हींडि बन मांहि दुखि पीड्या हेलि ।
...पाइ कोमल, कठिन भूमि रुधिर पड्यु हेलि ॥४॥
...जाणि, सकुमाल कहि्न आवी पापिणी हेलि ।
...घोर, बाला दूखि पगि व्यापीया हेलि ॥५॥

---

१. यह प्रति श्री ... भण्डार के वेष्टन संख्या ...

थोडी थोडी खाइ, परिसह सहि मुनि अति बलु हेलि ।
अनुप्रेक्षा मनि ध्याइ, ध्यान धरि मनि सोहजलु हेलि ।।६।।
पहिलि दिनि भख्या पाय, दूजि दिन जांघ कुवलीं हेलि ।
त्रीजि दिनि पेट बिडारि, अंत्र माला काढी अति बली हेलि ।।७।।

सुकुमाल का सर्वार्थ सिद्धि गमन

धीर वीर मुनि चंग, समाधि मरण कीधु निरमलु हेलि ।
सर्वार्थसिद्धि विमान, अहमिंद्र ऊपनु सोहजलु ए हेलि ।।८।।
तीणी अवसरि ते जाणि, अंतेउरी जागी निरमली हेलि ।
न देखि निजकंत, रोदन करि सोह अलीए हेलि ।।९।।

माता एवं पत्नी द्वारा रोदन

सकुमाल माता जाणि, चिहुं दिसा जोवि पुत्र आपणु हेलि ।
वस्त्र तणी दीठी माल, तव दुख ऊपनु अति घणु हेलि ।।१०।।
ईणी वाटि गयु मुझ पुत्र, मूरछा आवी धरणि पडी हेलि ।
आव्या सजन सुजांण, चेत वाल्युं दुखि जडी हेलि ।।११।।
तिहां थकी नीसरी जांणि, जोइ कुंअर सोहामणु हेलि ।
आवी मुनिवर पासी, मुनि दीठा स्वामी एकला हेलि ।।१२।।
ध्यान मौन गुणवंत, कायोत्सर्गी रह्या निरमलाए हेलि ।
तिहां नवि देखि पुत्र, पूछंता बोलि नहीं सोहजला हेलि ।।१३।।
तिहां थकि नीसरी जाणि, दह दिसि जोवि दुखि भरिए हेलि ।
गिरि कंदरीं मझारि, जोवि नंदन मोहि जडी ए हेलि ।।१४।।
राजा जोवा काजि, सयल परिवारस्युं नीसर्यु हेलि ।
तब नीपनु हाहाकार, किहां गयु कुंवर गुणे जड्यु हेलि ।।१५।।
तीणि अवसरि अति चंग, आसन कांप्य सुरतणा हेलि ।
अवधि ज्ञानें जांणि देव, आव्या तिहां अति घणा हेलि ।।१६।।
धिन धिन मुनिराय, सुधन सुधन धीर अति बलु हेलिए ।
जीता उपसर्ग घोर, इम कही देव उतर्या हेलि ।।१७।। ।।१७।।
जनम सफल कीयु सार, सफल सफल देह निरमलु हेलि
पूजा महोत्सव चंग, जय जयकार करि सोहजलु हेलि। भवि० ।।१८
दीठा देव विमान, आवंता सोहामणा हेलि । जाणि ।
राय आव्यु तिहां चंग, सयल श्रावक रलिआयत हेलि । भवि ।।१९।।

माया मांवी तिणिवार, कलेवर दीठुं बालक तणुं हेलि ।
मूर्छा आवी घोर, मोह व्यापु तिहि अति घणु हेलि ॥२०॥
सीलु वाय तुखार, वाली चेत वालीउं हेलि ।
पछि रोवि अपार, दुखु घणु तव आवीयुए हेलि ॥२१॥
हा हा तुं मुझ पुत्र, सकुमाल अंग सोहामणु हेलि ।
एहवु उपसर्ग घोर, किम सह्‌यु बीहामणु ए हेलि ॥२२॥
तुझ विण हुं किहां जाउं, निरधार हुई माता तम्ह तणी हेलि ॥
सहि गुरु सरीसु वैर, मिथ्यात जोड्युंमि पापिणी हेलि ॥२३॥
यतन कीयु अपार, तम्ह राखता पुत्र अति घणाए हेलि ।
दान पूजा बखाण, तप जप धर्म छोड्या जिनतणा हेलि ॥२४॥
सहि गुरु न्यानी वाणी, तेह न मानी मि पापिणी हेलि ।
जे हो म्हारी वात, तेहोइ मझ देखतां हेलि ॥२५॥
रोवि अति हिं अपार, अंतेउरी सकुमाल तणी हेल ।
सजन घरि बहु दुखु, चिंता ऊपनी मोह तणीए हेलि ॥२६॥
अर्ध-शरीर देखे, विस्मय करि सुरनर घणुं हेलि ।
वेदना सही बहु घोर, तीन दिवस लगि मुनि घणी हेलि ॥२७॥
उपसर्ग जीत्यु मुनिराय, तेह भणी पूजा निरमली हेलि ।
महोत्सव जय जयकार, भावना भवि तिहां अति घणी हेलि ॥२८॥
अगर चन्दन कपूर, शरीर संस्कार कीयु रूवडु ए हेलि ।
सुर नर भवियण सार, तिहां थका आव्या आविजड्या ए हेलि ॥२९॥

दूहा

यशोधर मुनिवर वांदीया, बिठा भवीयण चंग,
बखाण सुण्यु अति रूवडु, धरम कथा उत्त ंग ॥१॥

भास चोपईनी

यशोधर मुनि द्वारा पूर्व भवों का वर्णन

चंपावतीं नयरी गुणवंत, पहिलि भवि सुणु जयवन्त ।
ब्राह्मण नागसर्मा अतिवंत, देव लोकि हवु उत्त ंग ॥१॥
...कु धरी करी ऊपनु जाणि, सुरेन्द्र साहु अति सुजाण ।
...नु जीव बखाणि, यशोभद्रा हुइ गुण खाणि ॥२॥
...व विशाल, सरगथी चवी हवु सकुमाल ।
...गवंत, ते तम्हे हवा जयवन्त ॥३॥

१. यह प्रति श्री ... भण्डार के वेष्टन संख्या ...

यशोभद्र मुझ तणु नाम, यशोभद्रा मझ बहिणी समानि ।
सकुमाल भाणेज मुझ तणु होइ, तेह भणी कृपा मोह जोर ।।४।।
ए संसार असरस माहाजांणि, जीव भमि भवांतर खाणि ।
जिहां गति लक्ष चुरासी मांहि समकित विणजीव भमि जाहि ।।७।।
इम जाणी धर्म कीजि सार, केवल भाषित भव उतार।
धरमि सरग मुगति फल होई, धरम तोलि बीजु नही कोई ।।८।।
समकित ज्ञान चारित्र तप सार, तप जप ध्यान साधि भवतार ।
ध्याहार करम करि गुणवंत, भवीयण सम्बोधे पुण्यवन्त ।।२४।।
अचल ठाम अचल गुणवन्त, अचल सौख्य पाम्या अभंग ।
तेठाम देउ मुझ गुणवास, जनमि जनमि हवु हम्हा पास ।।२५।।

वस्तु

सुकुमाल स्वामी सुकुमाल स्वामी अति जयवन्त ।।
उपसर्ग जीता अति घणा, परिसह सहि अति घोर दुरधर ।
परलोक साध्यु निरमलु गुण नवि लाभिपार ।।
ते गुण पालि निरमला, मुझ मनि मोटी आस ।
जनमि जनमि हुं सेविस्यु, कृपा करू कर्म नास ।।१।।

दूहा

ग्रन्थ प्रशस्ति

श्री सकल करिति गुरु प्रणमीनि, मुनि भुवनकीरति भवतार ।
ब्रह्म जिनदास इणि परिभणि, रास कीयु भवतार ।।१।।
पढि गुणि जे सांभलि, मनि धरि निरमल भाव ।
मन वांछित फल ते लहि, पामि शिवपुरी ठाउ ।।२।।

इति श्री सकुमाल स्वामी रास समाप्त:

सम्वत् १६३५ वर्ष वैशाख बुदि ७ सोमे सागवेसे एरंडवेलि शुभस्थाने श्री जिनचैत्यालयै भट्टारक श्री सुमतिकीर्ति तत् सिष्य ब्र० शंकर आत्म पठनार्थ लिखापितं । मा० शिवदास लखित । कर्म क्षयार्थं लिखापितं ।।

,७।।

अंकि० ।।१८

७ ।

णहो । भवि ।।१६।।

६ सगर चक्रवर्ती कथा रास[1]

(अजित जिनेसर रास)

दूहा

चक्रवर्ति षट् खण्ड धणी, सुगति गामी जयवन्त ।
साठि सहस्त्र कुंवर तणि, कथा कहु गुणवन्त ।।४।।

भास चोपईनी

सगर चक्रवर्ती का जन्म

अच्युत इन्द्र पहिलो गुणवन्त, मणि कुंडलि बीजो जयवन्त ।
सुख भोगवे तीहां अपार, बावीस सागर सही गुण धार ।।१।।
प्रीति उपनी बेहुं सविसाल, बोल्या सुललीत गुणमाल ।
पहिलुं उपजे जे संसारी, बीजु संबोधे गुणधार ।।२।।
एह्वी भाषा लीधी गुणवंत, माहु माहि तिन्हइ जयवन्त ।
जिणवर यात्रा करे आनंद, पूज रचे धरम गुणकन्द ।।३।।
समकित निरमल पाले सार, धरम कहे तेहां गुणधार ।
जिणवर आराधे गुणवन्त, बावीस सागर लगे जयवन्त ।।४।।
जित शत्रु राजा तणो गुणवन्त, बहुवो बंधव छे पुन्यवन्त ।
विद्या बुद्धि नाम अतिचंग, सुमंगला राणी गुणचंग ।।५।।
उंचीत इंद्र चवि करि सार, सुमंगला कुक्षि अवतार ।
सगर नाम कुंवर गुणवंत, बीजा चक्रवति गुणवन्त ।।६।।
षट् खण्ड पृथ्वी सविशाल, भोगवि चक्रवति गुणमाल ।
चौदहरत्न नीधी नव कही, छणउ सहस्त्र अंतेउर सही ।।७।।
साठि सहस्त्र कुंवर गुणवन्त, रूप सोभाग दीसे पुन्यवंत ।
बहुतरि लक्ष पुरब आयु जाणि, धनुष च्यारि सइं साढावाणि ।।८।।
कनक वरण सोहे सरीर, जिन धरम करे गुणधीर ।
समकित श्रावक वरत वीसाल, अठ कर्म पाले गुणमाल ।।९।।
इम करतां बहु दिन जाइ, पर उपकार करतां गुणकाय ।
निकंद राजा करे अति चंग..।।१०।।

---

१. यह प्रति श्री अग्रवाल दिगम्बर जैन मन्दिर, धानमण्डी, उदयपुर के ग्रन्थ भण्डार के वेष्टन संख्या २२४ में सुरक्षित है ।

नयर बाहिर बन छे गंभीर, सिंद्र नाम तेहनु गुणधीर ।
चतुंमुख मुनिवर करे तीहां ध्यान, उपनो निरमल केवलज्ञान ॥११॥

चतुर्मुख मुनि द्वारा ध्यान

इन्द्र इन्द्राणि आव्यां तिहां चंग, देव देवी, आपणे मनि रंग ।
विद्याधर भूमि गोचरीय राय, भाव सहित लागा ते पाय ॥१२॥
सगर नरेन्द्र आव्यो तिणि बारि, सजन सहित बहुत परिवार ।
केवलि पूजा करि सविसाल, नमोस्तु करि बैठो गुणमाल ॥१३॥
केवल वयण सुण्या अवतार, तत्व पदारथ अनेक विचार ।
मोहोछव कीयो अति सविशाल, पुण्य जोड्यो तीहां गुणमाल ॥१४॥
तिहां थको उठ्यो सगर सुजाण, वन माहि आव्यो गुणमान ।
तीणें अवसरि आव्यो ते देव, मणीकुंडलि नाम गुण देव ॥१५॥

मणिकुंडलि देव का आगमन

बोल्या सुललित मधुरिय वाणी, सगर सुणो तम्हे सुजाण ।
आपणु सरगि होता गुणवंत, भाषा दीधी होति जयवन्त ॥१६॥
जे पहिलु अवतरे संसारि, बीजो संबोधे गुणधार ।
पुण्यफले हुवा तम्हे राय, सुरनर खेचर सेवे पाय ॥१७॥
सुख भोगव्या तम्हे सविसाल, हवें चेतो मित्र गुणमाल ।
ए संसार अथिर असार, सार मुगति साधो गुणधार ॥१८॥
तीणे अवसरि राणी रूपवन्त, आवि कंवर सहित गुणवंति ।
हाव भाव करे विलास, मोह तणी घालिन्हं पास ॥१९॥
तव वैराग्य गलि गयो चंग, श्रावक धरम करूं गुण रंग ।
जिणवर भुवनि बिंब उधार, दान पूजा करूं अवतार ॥२०॥
इम कही देव आगलि कहे, हवइ मझ मन वैराग्य नवि हवे ।
हवे जाउ तम्हे निज ठामि, चौथि आश्रमि संजम सुख कामि ॥२१॥
तव देव लिखा बहू करे, चिग चिग मोह करम जीव गहें ।
इम कही देव गयो निज ठामि, सुख भोगवे जिणवर सिरनामि ॥२२॥

वस्तु

गयो निज ठामि गयो निज ठामि, ते देव सार ॥
जिण भवन करावीया, बिंब सहित उत्तंग मनोहर ।
प्रतिष्ठों महोछव रूअड़ा, संघ सहित गुणधार निरभर ॥

स्नान पूजा अति निरमला, जिरावर थाभा चंग ।
सगर नरेसुर रूवको, करम करे उत्तंग ॥११॥

भास रासनी

मणि कुंडल देव द्वारा मुनि का रूप धारण करना

मणि कुंडलि चिता करए, किम संबोधा राजतो ।
इम जाणि रूप धर्‌योए, मुनिवर तणो गुण भावतो ॥१॥
लहुवो मुनि रलीयामणोए, मुख जीम पुन्यमचन्द तो ।
गोर वरण सोहावणाए, दीठें परमानन्द तो ॥२॥
जिन भवनि ते आवीयाए, नीपनो जय जयकार तो ।
श्रावका सयल आनन्दयाए, वांदण आव्या सारतो ॥३॥
सगर नरेश्वर आवीयाए, वांद्या ते मुनि चंग तो ।
राणीय सयल सुहावणीय, आवी तिहां मनि रंगितो ॥४॥
वखाण करे मुनि निरमलाए मधुरीय सुललीत वाणि तो ।
भवीयण सयल ते सांभल्याए, एक मना गुण मान तो ॥५॥
रूप दीठो मुनिवर तणोए, तव मोह उपनो अपार तो ।
नर नारि विस्मय हुवाए, जाणें कामदेव अवतार तो ॥६॥
सगर नरेसर बोलीयाए, सहु गुरु प्रति सार तो ।
बालि वेसे तप लीयोए, ते कवण विचार तो ॥७॥
रूप जोवन छे रूवडोए, भोग जोग्य सविसाल तो ।
तप करि तम्हे काइ ढ होए, ते कहो गुणमाल तो ॥८॥
तरुण तणे सुख भोगविय, इन्द्रीनां फल लेइ तो ।
पछे संजम लेइ करिए, सरग मुगति साधेइ तो ॥९॥

मुनि द्वारा उपदेश

मुनिवर स्वामी बोलीयाए, राय सुणो तम्हे वात तो ।
चोथो आश्रम कोणें दीठोए, खीण माहि यम करे घात तो ॥१०॥
गरम बाल कुंवरसीय, जोवन तरुणिय वेस तो ।
बुढो हीयण दीयण बखाणणाए, जम छोडे नहि सीम तो ॥११॥
असपति गजपति नरपतिए, चक्रवर्ति जे राय तो ।
ओपी रोमीय यम हीरए, कालें खाधीय काय तो ॥१२॥
ते काल जीमना सहीए, अम्हेनी लीयो संजम भार तो ।
तम्हे मोह मांहि बुडी रह्याए किम पामि सो भवपार तो ॥१३॥

जिम संचाणो सब चितोए, झडपि लेइ जीव पंखी तो ।
तेह भणी तम्हे मोह तणोए, संजम लेइ हो रिक्ष तो ।।१४।।
संबोध्या तीरो रूवडोए, सगर नरेन्द्र गुणवंत तो ।
तब वैराग्य मनि उपनोए, मन माहि जयवंत तो ।।१५।।
अंतेउर तब आणीयुं ए, कंत तणा मनी भाव तो ।
हाव भाव करे अति घणाए, मोह चढाव्यो राउ तो ।।१६।।
कंवर आव्या रलीयावणाए, बोल्या सुललीत वाणि तो ।
तम्ह विण पिता अम्हे किम रहुए, संसार माहि दुख खाणि तो ।।१७।।
परिवार बहु बीनवए, आव्या सजन सुंजाणतो ।
दीण वयण सवी बोलीयाए, तम्हे सुणो गुणभान तो ।।१८।।
तम्ह विण स्वामि किम रहुंए, अम्हे निरधार बीचारि तो ।
दिनकर विणाही न किम सोहए, गुणविण जिम नर नारि तो ।।१९।।

दूहा

हवे स्वामि कृपा करो, राज पालो सुख खाणि ।
श्रावक धरम सुहावणो' सुणो निरमल जिणवाणि ।।१।।
दीन वयण सजन तणा, सुण्या मेदनीपति राय ।
वैराग्य तव गली गयो, मोह उपनो वली काय ।।२।।

भास माल्हंतडानी

सगर चक्रवर्ती का वापिस राजधानी लौटना

तव राजा गुरु वांदीगए, सु०, निज घरि गयो मोह जाल ।
सुख भोगवे इन्द्री तणांए, सु०, पूजइ जिण गुण माल ।।१।।
तव देव मनि चीतंवए, सु०, धिग धिग ए संसार ।
माया मोह जीव वींटीयोए, सु०, किम पामिसि भवपार ।।२।।
मझ उदीम निरथक हुवोए सु०, इम कहि गयो निज ठामि ।
उपाय चितवें मति अति घणोए, सु०, संबोधवा गुण ग्राम ।।३।।

राजकुमार का आगमन

एक बार सभा बैठोए, सु०, सगर नरेन्द्र सुजाण ।
कंवर आव्या सुहावणाए, सु०, बोले मधुरिय वाणि ।।४।।
अम्हे मोटा हुआ सुणो पिताए. सु०, तम्ह पसाइ चंग तो ।
पण नाम नहीं अम्ह तणोए, सु०, जस नहि उत्तंग ।।५।।

तेह भणी अम्ह कारण इ, सु०, भणीयु देउ गुणवंत ।
जिम जस विस्तरे अम्ह तणोए, सु०, प्रभा वाधे जयवन्त ॥६॥
धन जोड्यो में अति घणोए, सु०, गज तुरंगम आदि ।
ते धन तम्हे भोगवोए, सु०, अवरम मांडउ वाद ॥७॥
चक्रधर तव बोलीयोए, सु०, पुत्र सुणो मझ वाणि ।
षट् खंड में साधीयोए, सु०, परम फले गुणखान ॥८॥
तव कुंवर निज घरि गयाए, सु०, सुख न पामइं काय ।
माहो माहि बात करइंए, सु०, वतु न दे अम्ह राउ ॥९॥
बीजे दिविसि सभा गयाए, सु०, पिता वीनव्या गुणवंत ।
आज स्वामी जीमण नहिय, सु०, अम्ह कारणि पुन्यवंत ॥१०॥
आदेश देउ स्वामी रूवडोए, सु०, जिम सरे अम्ह काज ।
तव भूपति विचारीयोए, सु०, कवण करे सुउ काज ॥११॥

चक्रवर्ती द्वारा तीर्थ वन्दना

अष्टा पद नग ए रूवडोए, सु०, जिणवर भुवन उत्तंग ।
सोवर्ण मय अति रूवडोए, सु०, रत्न मय बिंब चंग ॥१२॥
श्री आदि जिणेसर नंदनुए, सु०, भरत नरेस्वर सार ।
तीन्ह थाप्या निरमलाए, सु०, बिंब सहित भवतार ॥१३॥
हलु हलु कालु दुरंधरोए, सु०, आवीसे पंचम काल ।
पंच मिथ्यात प्रगट हेसेइ, सु०, नु नमत जीम सविसाल ॥१४॥
अज्ञान मिथ्यात मलेछ तणोए, सु०, दुष्ट होसे अपार ।
तेह भणि तीहां जाइ करिए, सु०, जतन करो गुणधार ॥१५॥
इम कहि सवे आवीयाए, सु०, अष्टापद सविशाल ।
वज्र दण्ड करि घर्‌यीए, सु०, बहुंगमा तास्यो गुणमाल ॥१६॥
ऊंचो आठ जोयण सुणोए, सु०, अष्टापद हुवो नाम ।
खाइ खणि अति रूवडीए, सु०, ऊंडीय अति गुण ग्राम ॥१७॥
गंगा तणो नीर आणीउंए, सु०, खंदक भर्‌यो सार ।
कमलिणी आछो रूवडोए, सु०, भमरा रण भणकार ॥१८॥
गिरि गिरि जीम सोहीयोए, सु०, कैलास परवत चंग ।
कुइ नाम तव पामीयुएं, सु०, सिद्ध क्षेत्र उत्तंग ॥१९॥
भणि कुंडलि देव बोलीयोए, सु०, सगर नरेन्द्र जयवन्त ।
मोह करवे करि वींबो घणुए, सु०, चेत नहिं गुणवंत ॥२०॥

हवें उपाय करूं रूवडोए, सु०, जिम सीझें एह काज ।
तव चिंता घणी करइएं, सु०, किम संबोधु राय ॥२१॥

दूहा

इष्ट वियोग जब नीपजे, पामे जीव बहुं दुख ।
तल तल जीव घणुं करो, कि हिय न आवे सुख ॥१॥
तव संसार अथीर जाणे, आणे मनि वैराग्य ।
मोह जाल तजि करि, संजम लेसिवसार ॥२॥

भास हेलनी

इम चितवि मन माहि, अष्टापद आवि रूवडो हेलि ।
महा भुजंगम रूप लेइ करि, विष मुक्यो भय जड्यो हेलि ॥१॥
विषे धर्या ते जाणि, साठि सहस्त्र कुंवर अति क्ला हेलि ।
मुरछा आवी थोर, धरणि पड्या सवे सोह जलो हेलि ॥२॥
तिहां थकी आव्यो देव मणि कुंडल अति निरमलो हेलि ।
ब्राह्मण रूप लेइ चंग, अजोध्या आव्यो अति सोहजलो हेलि ॥३॥

मणिकुंडल का ब्राह्मण का वेष धारण करना

तीणें अवसरि अति चंग, सगर नरेन्द्र सभा बैठो हेलि ।
पुत्र न देखे सार, तीने अवसरि ब्राह्मण दीठो हेलि ॥४॥
करइ पोकार अपार, रोवे करे ते अति घणी हेलि ।
सुणो राजन मझ वात, आण मोडिज मे तम्ह तणी हेलि ॥५॥
एक हो तो मज पुत्र, जिम लेइ गयो पापीयो हेलि ।
हुं हुवो निरधार, तेह विण दुख मझ व्यापिया हेलि ॥६॥
तम्हे समरथ छो राय, पुत्र देवाड्यो स्वामि अम्हतणो हेलि ।
नहि तो दुष्ट विसाल, दुख देसे ते अति घणो हेलि ॥७॥
सांभलि ब्राह्मण वाणि, राजा हंसी करि इम कहेलि ।
तम्हे गहिला हुवा विप्र, जम तणा घाय कोण सहे हेलि ॥८॥
गजपति अश्वपति राय, नरपति हुवा केवली घणा हेलि ।
जमि भखि ते काय, अंत न जाणुं तेह तणा हेलि ॥९॥
बाला वृद्ध जोवन पापीय, पुन्यवंत नहि मणा हेलि ।
श्रीवंत श्री हीण, काले कवलि कीया अति घणा हेलि ॥१०॥
एक मुगतिविजाणी, ठाम अचल नहि तम्हे सुणो हेलि ।

ते ठाम लेवा काजि, संजम लिएं तम्हे विण तणो हेलि ॥११॥
नहि तो जम छे दुष्ट, तिम्ह मे खाइ से प्रति बलो हेलि ।
ते हणो करो तम्ह दंड, तप संजम सोहे भलो हेलि ॥१२॥
सुणी रायतणी वाणी, तव ब्राह्मण इम बोलीयो हेलि ।
तम्ह तणा सयल कुंवार, जमे पाड्या तम्हे सुणो हेलि ॥१३॥
तेह भणि लेउ तम्हे दीक्ष, समकित ज्ञान चारित्र तव हेलि ।
ते चातुरंग सेन, कटकतणो करोब्या पहेली ॥१४॥
सुणि विप्र तणि वाणि, मुरछा पामि धरणि पड्यो हेलि ।
तव हुवो हाहाकार, सयल दुखें जड्यो हेलि ॥१५॥
चाल्यो सीतल वाय, चेत वल्यो तव निरम्लो हेलि ।
तव चिंतवे मन माहि, सगर नरेन्द्र प्रति सोहलो हेलि ॥१६॥
धिग धिग ए संसार, सार न दीसे दुख भर्यो हेलि ।
मझ तणा कुंवर सुजाण, क्षीण माहि गयो वैराग भयो हेलि ॥१७॥
षण माहि गया मझ पुत्र, तीम हुं जाइ सु प्रति बलो हेलि ।
इहां रहे न कोइ थीर, धरम अचल एक सोहे जलो हेलि ॥१८॥
ते धरम साधवा काजि, संजम तेउं हवइं रूवडो हेलि ।
इम कहि वन माहि जाइ, वैराग्य ज्ञान माहि जड्यो हेलि ॥१९॥

अन्तिम भाग

सगर चक्रवर्ति का वैराग्य धारण करना

तप जप ध्यान प्रति रूवडोए, ज्ञान अभ्यास गुणवन्त तो ।
गंगा कांठे निरमलाए, कायोसर्ग रह्या जयवन्त तो ॥२३॥
तप जप संजम दीठो रूवडोए, देव आनंद्या आणि तो ।
आव्या सरस सुहावणाए, भाव सहित बखाणि तो ॥२४॥
प्रासुक नीर सुगंध घणोए, कलस भर्या सुजाण तो ।
अभिक्षेक कीयो प्रति रूवडोए, चरण कमल मुनिराय तो ॥२५॥

वस्तु

ते गंधोदक ते गंधोदक वांद्या सुर राय तो ।
सयल देव सार्वे वलि, निरमल कीधी काय तो मनोहर ।
महोछव कीधो निरमलोए, हरष आनंद गुण सार निरभर ॥
चरण कमल प्रति रूवडो, अष्ट प्रकारि सार ।
पुज्या प्रति हि सुहावणा, देव सयल गुणधार ॥२॥

दूहा

गंधोदक अति रूवडो, ते वांचो देव राय ।
भाव सहित रलीयावणा, वांद्या मुनिवर पाय ॥१॥
ते महिमा देखिकरि, उदक तणि सबिसाल ।
भागीरथ गंगा कहि, नाम थाप्यो गुणमाल ॥२॥
भागीरथि केवलि हुवा, मुगति गया भवतार ।
सुरनर कल्याणक कीयो, महोछव जयकार ॥३॥
॥ इति श्री सगर चक्रवर्ती कथा रास समाप्तः ॥

□

६ राम रास[1]

मंगलाचरण

वस्तु

वीर जिणवर वीर जिणवर, पाय प्रणमेसुं ।।
सरसति स्वामिणी वली तवुं, हुवे बुद्धि सार हुं वेगि मांगउं ।
गणधर स्वामि नमस्करूं, श्री सकलकीरति गुरु पाय वांदउं ।।
मुनि भुवन कीरति पाय प्रणमिने, करि सुं हुं रास हुवे चंग ।
ब्रह्म जिणदास भणे निरमलो, रामायण मणि रंग ।।१।।

मध्यभाग

भास चौपाईनी — दशरथ का विवाह

कौसल देस नयर अजोध्या जाणि, राज करे तिहां सुजाणि ।
दशरथ राजा गुणह गंभीर, सूर्यवंस अनोपम वीर ।।१।।
कमलावती नयर सविशाल, कोसल राजा राज करे गुणमाल ।
राजकरे तिहां गुणवंत, जैन धरम पाले जयवंत ।।२।।
श्रीमती राणी तेह तणी जाणी, रूप सोभाग तणी ते खाण ।
तेह कुंखे उपणी गुणवंत, कौसल्या कुंवरी सुललीत ।।३।।
अपराजिता दूजो तसनाम, रूप सोभाग सीयल गुण ठाम ।
दशरथ राजा परणी ते जाणि, मोहछव हुवो तिहा सुख खाणि ।।४।।
विदर्भ देसछे अति चंग, मंगलावती नयर उत्तंग ।
सुमीत्र राजा करे तिहाराज, प्रजापाल करे धरम काज ।।५।।
सीलक सुन्दरी राणी तस जाण, रूप सोभाग्य तणी गुण खाणि ।
ते बेहु कुखे उपणी चंग, सुमीत्रा बेटी उत्तंग ।।६।।
दशरथ परणी ते गुणवंति, महोछव हुवो तिहा जयवंत ।
परणी कुंवरी घरि आव्यो चंग, सुख भोगवे आपणे मनिरंगि ।।७।।

---

१. प्राप्ति स्थान :—श्री दिगम्बर जैन भट्टारकीय शास्त्र भंडार डूंगरपुर । पत्र संख्या ४०५ । वेष्ठन संख्या ६६ । लिपिकाल संवत् १७३८ । रचना काल संवत् १५०८ ।

धरम करे पाले निजराज, प्रजाराखे करे शुभ काज ।
सूर्यवंस सोहे जिम भाण, धरमवंत गुण तणो निधाण ॥८॥
सभा बैठो राजा एक बार, सामंते क्षत्रीय बहु परिवार ।
चमर ढले बहु अतिचंग, जैसो इंद्र सोहे उत्तंग ॥९॥

नारद का आगमन

तीणे अवसरि नारद सुजाण, विमान बैसी आयो जिम भाण ।
ते देखी उठयो तव राउ, विनय सहित तेह लागो पाय ॥१०॥
आसनी बेठो तिहां अतिचंग, आसीर्वाद दीयो मनरंगि
कुसल वात पुछी तीन्हु सार, हरष उपणे तिहा अपार ॥११॥
दशरथ विनवे दुईकर जोडि, कहो रिषि मझ मने बहु कोडि ।
कवण ठाम थका आव्या देव, ते कह्रो स्वामी मुज देव ॥१२॥
नारद बोल्यो मधुरिए वाणि, सुणो राजा तह्ने सुजाणि ।
महा विदेह गयो हु चंग, तिहां जिनवर पूजा मनरंगि ॥१३॥
पुंडरीक नयरी अतिसार, सीमंधर स्वामी भवतार ।
वांद्या तीर्थंकर तिहां स्वामि, वाणी सुणी मे तिहा सीर नामि ॥१४॥
मेरू गिरी कुल गिरी गजदंत, अकृतीम पूज्या जिनवर संत ।
विज्यारधि गजवली सार, तिहा पूज्या स्वामी भवतार ॥१५॥
अष्टापद सत्रुंजय गिरनारि, समेदगीरी वांद्या भवतार ।
तारंगो पावापूरी चंग, तिहा पूज्या जिनवर मन रंगि ॥१६॥
जिनवर गणधर मुनिवर सार, पूज्या स्वामी त्रिभुवनतार ।
अनेक मोहछव दीठा घणा, जिण शासणे बहु भवियण तणा ॥१७॥
देस नयर पाटण सविसाल, गिरी परबत मेदनी गुणमाल ।
वलीवन माहि अतिचंग, जिनवर भुवन दीठा उत्तंग ॥१८॥
पंचकल्याणक जिणवर तणा, मोहछवदीठा मे अतिघणा ।
इंद्रइंद्राणी देवादेवि, सुरनर खेचर करे जिनसेव ॥१९॥
जिम जिम नारद कहे गुणवंत, तिम तिम राजा सुणे जयवंत ।
जे जे तीर्थ कह्या सविशाल, ते ते भूमी वांद्या गुणमाल ॥२०॥
अनेक तीर्थवांद्या मे चंग, वली लंका गयो मन रंगि ।
पद्मप्रभ पूज्या तिहा सार, शांतिनाथ स्वामी भवतार ॥२१॥
तिहा थको आव्या सभा मझारि, रावण दीठो तिहा सविचार ।
हुवे एकांत बैसो मझ साथि, जिम कहुं एक अपूरव बात ॥२२॥

नारद के आगमन का उद्देश्य

तब सजन उठया इम जाणि, गोठि करे बूहि सुख लाणि ।
नारद दशरथ आगली चंग, हींत बात कही मनरंगि ॥२३॥
रावण नीमीती पुछ्यो आणि, मझ मरण कहो सुजाण ।
केहूने हाथि मरण होई, ते विचार कहो मझ जोइ ॥२४॥
तब नीमीती बोल्यो गुणवत, दशरथ राजा छे जयवंत ।
तेहना पुत्र होसि बलीवंत, तेह थको भयतह्मारु बनवत ॥२५॥
जनक राजा तणी बेटी सार, रूप सोभाग तणो भण्डार ।
तेह थिको तह्म राजविनास, ए सत्य सुणो मझ तणी भास ॥२६॥
तब सजन मनि उपणो दुख, रावण तणो गयो बहु सुख ।
भीभीक्षणे मझ पूछो जाणि, कहो नारद तें ह्म मझ वाणि ॥२७॥
दशरथ जनक कवण छे भूप, तह्मे नारद कहा सरूप ।
तवहु बोल्यो सुणो गुणवत, सुधी करी आउं जयवत ॥२८॥
इम कही आव्यो हु जा ण, उतावलो खेडयो विमान ।
तह्मे 'जइण' छो सुणो गुणमाल, तह्म उपरि मझ मोह विशाल ॥२९॥
तह्मे जतन करो गुणवत, जनक राजा बोलावो संत ।
जीव राखो आपणो सुणो वात, नहि तो निश्चेकरेते घात ॥३०॥

दशरथ का चिन्तातुर होना

इम कही नारद सविचार, निज थानकि गयो ते सार ।
दशरथ मनि उपणो भयदुख, जनक बोलाव्यो उपणो सुख ॥३१॥
तु मझ मीत्र सुणो गुणवंत, राक्षस कोप्यो ते बलीवत ।
हवें कहो किम करिए गुणमाल, संकट आव्यो सविशाल ॥३२॥
सुमीत्र प्रधान बोलाव्यो सार, करयो तेहने वृतात सविचार ।
लेपमए रूप कराया ते चंग, ते थाप्या सिंहा सणि रंग ॥३३॥
वस्त्रा भरण पहिराव्या सार, मस्तकी घाल्या फूल अपार ।
आगलि मृदंग वाजइ चंग, पात्रनाचे आपणे मनि रंगि ॥३४॥
दशरथ राजा जयवंत, कापडी तणो रूप कीयो अचीत ।
उत्तरदेश चाल्या गुणमाल, मरणकारणि बिहणा सविशाल ॥३५॥
ए कथा हवें इहां रही, अवर कथा सुणो तह्मे सही ।
जो नीमींती लंका माहि सार, राक्षस आगलि कह्यो विचार ॥३६॥
तब राक्षस मनि भय अपार, आपणे आपणे बुद्धी करे विचार ।

नारद जोवा गयो ते चंग, उजियण आवे ते उत्तंग ॥३७।
भीभीक्षण कहे सुणो तह्म बात, हवें निश्चे करूं तेहनो घात ।
दुर्गति वेलि छेदों जो आज, तो फल किम लागे तेह काजि ॥३८॥
इम कही विद्याधर धोर, मोकल्यो दूत करवा अति घोर ।
ते आव्या अजोध्या माहि, हेरो करे मारवा काजे ताहि ॥३९॥
विद्युतप्रभ विद्याधर धोर, राज मंदिर गयो ते घोर ।
लेप तणा रूप दीठा ते सार, तीणे जाण्या राजा सविचार ॥४०॥
खडगधाए दीयो तीन्हु थोर, रौद्र करम करयो तीन्हु घोर ।
मस्तक लीधा हुइ अतिरूप, लेई आव्यो देखाडया भूप ॥४१॥
भीभीक्षणे दीठा अतिचंग, समुद्र माहि नाल्या मनिरंगि ।
निरभय हुवाते अतिहि अपार, न कर्यो तीन्हु समकित विचार ॥४२॥
ए कथा हवे इहां रही, अवर कथा सुणो तह्मे सही ।
अजोध्या नयर माहि हाहाकार, उपणो तिहा अतिहि अपार ॥४३॥
पछाता सजन सयल दुख मनमाधरे, अंतेउरी तिहां बहुरडे पडे ।
सूर्यवंसी हरीवंसी राउ, विघन उपणो जाणे दुखा भाउ ॥४४॥
सुमति प्रधान आव्यो तीने ठाम, दुईकर जो विनवे सीर नाम ।
लेप तणा देखाड्या रूप, भणीरड्यो नही मुवांते भूप ॥४५॥
जे बात नारंद रीषी कही, तेह बात सुणो तह्मे सही ।
तेह भणी प्रपंच एह हमे कीध, भूप उगाखा बुद्धी एह्नीकीध ॥४६॥
एह बात सहू कही जवसार, तव सुख हुवो अतिहि अपार ।
एकथाइवें इहां रही, अवर कथा सुणो तह्मे सही ॥४७॥

वस्तु

धरम फले तिहा, धरम फले तिहां, विघण विनास ॥
सजन सयल आनंदिया, जय जयकार हुवो जी निरमल ।
जिनवर भवनि वधावणे, धजपूज मोहछव उजल ॥
धवल गाने वर कामीणी, आनंद्या सहू कोई ।
वांजित्र वाजे अतिघणा, घरि घरि मंगल होइ ॥१॥

भास रासनी

राजा दशरथ का उत्तर देश की ओर प्रस्थान

दशरथ राजा चालीयोए, जनक भूप सहित तो ।
उत्तरदेसिते आवीयाए, पाप कलंक रहित तो ॥१॥

उत्तर देश माहि रूवडोए, कौतिक मंगल प्रतिचंग तो ।
शुभमती राज करेए, तीणे नयरी उत्तंग तो ।।२।।
श्री पृथवीदासी निरमलीए, रूप सोभागनी खाणि तो ।
जाणे रंभा अवतरीए, मधुरिय तेह तणी वाणि तो ।।३।।
ते बेहु कुंख्वे नीपणाए, दुइ कुंवर सुजाण तो ।
कैकभद्रोण मेघ सुनोए, जैसा शसीकर भाण तो ।।४।।
तेह पुठे वली सुंदरीए, बेटी अति गुणवंति तो ।
लाडकोड वधावियोए, केगई तस दीयो नाम तो ।।५।।
कला जाणे ते अति घणीए, ज्ञान विज्ञान अपार तो ।
रूप सोभागें आगलीए, गुणह न लाभे पार तो ।।६।।
जोवन भरी पछे हुई निरमलीए, कुरंग नयण विशाल तो ।
ते देखी चिंता उपणीए, शुभमती पीता गुण मालतो ।।७।।
ए कुंवरी सुहावणीए, गुणह न लाभे पार तो ।
कवण वर एहु निरमलोए, होसि अति सविचार तो ।।८।।

स्वयंवर में कैकेयी द्वारा दशरथ का वरण

ए कन्या बुद्धि आगलीए, मन गमे ते वर चंग तो ।
सैंबरा मंडप मांड्या रूवडोए, ए कन्या वर परणे मन रंगि तो ।।९।।
इम चिंती मनि हरषीयए, सैवरा मंडप अति चंग तो ।
नयर माहिरी मंडावीयोए, मडप धाल्यो उतगतो ।।१०।।
राय बोलाव्या अति घणाए, नयर नयरना सार तो ।
आव्या भूप तिहां घणाए, मनीधरी अहंकारतो ।।११।।
सिघासणि बैठा रूवडाए, राजकुंवर अती चंग तो ।
सोभागे रूपे आगलाए, नवयोवन मन रंगि तो ।।१२।।
दशरथ राजा रूवडोए, जनक सहित गुणमालतो ।
तीणें अवसरि तिहां आवीयाए, मंडप माहि विशालतो ।।१३।।
एक पासे उभारह्याए, कवतीक जोवाए चंग तो ।
राजा राजेश्वर तिहा मिल्याए, हाव भाव करे रंगितो ।।१४।।
केगामती आवी रूवडीए, हाथि धरी वर माल तो ।
निपुणमती धावी निरखतिए, तरसी छे गुणमालतो ।।१५।।
राजकुंवरनि निहालतीए, केगामती गुणवंतितो ।
निपुणमती उलखावतीए, अनेक राजा गुणवंततो ।।१६।।
सामुद्रिक लक्षण छे रूवडाए, ते जाणा गुणमाल तो ।

वर माला गले निरमलीए, घालवा चित न बैसे कोई तो ॥१७॥
जोवंति जोवंती राजकुंवर ए, चिति न बैसे एक नर तो ।
जोवंति जोवंति वलीए, पाछे वली ते वली बाल तो ॥१८॥
दीष्ट पडी वली रूवडीए, कापडी उपरि चंग तो।
नयरा निहाली जोवंतिए, आपरा मन तने रंगितो ॥१९॥
सामुद्रिक लक्षरा देखीयाए, जाण्यो राजकुंवार तो ।
वरमाला गले निरमलीए, घालीए अति सविचार तो ॥२०॥
जय जयकार तव नीपणोए, वाज्या ढोल नीसाण तो ।
भेरी भुंगल गह गहयाए, हरख्या सजन सुजाण तो ॥२१॥
मन गमतोवर इणे वर्योए, कन्या अतिहि सुजाण तो ।
ए वर सही उत्तिम कुलए, दीसे जिम शसी भाण तो ॥२२॥
एक कहे कपडी वर्योए, इणें कन्या गवारि तो ।
राजकुंवर छाडी करीए, न जाणें एह विचार तो ॥२३॥
राजकुंवर सवे कोपियाए, ए भीखारी आज तो ।
अह्म देखतांए किम वरइए, अह्म सुकुलीनाराय तो ॥२४॥
इम कही सवेह विचह्याए, करे अहकार अपार तो ।
ए हवें कन्या उदालीए, नीकालिय कापडी असार तो ॥२५॥
इम कही सर्वे गज बज्याए, कोप चढ्यो ते घोर तो ।
या कन्या लेवा कारणेए, रौद्र ध्यान करे घोर तो ॥२६॥
तव शुभमती भय उपणोए, बोल्या वचन विचारि तो ।
सुणो कापडी तह्मे रूवडाए, तह्मे पुण्यवंत अपार तो ॥२७॥
कन्या वरी तह्मे निरमलीए, हवें न्हा सो तह्मे आज तो ।
इणे रथि बैसी करिए, तह्मे घरि कोप्या बहु राज तो ॥२८॥
तव कापडी इम बोलियोए, मामा सुणो तह्मे वात तो ।
सबल रथ देवो अति बालोए जिम न्हासी जाउं एह साथितो ॥२९॥
आपणो रथ दीओ निरमलोए, शुभमती अतिहि विसाल तो ।
कन्या सहित कापडी बैठोए, चाल्यो ते गुणमाल तो ॥३०॥
रथ खेड्यो ते उतवलोए, आव्यो कटक मझारि तो ।
तव दुख धरी इम बोलिउए, सुणो तह्मे अबला बाल तो ॥३१॥
हुं दसरथ राजा रूवडोए, सूर्यवंसि सिरण गार तो ।
वैरी एने पुठी किम दिउए, ते तह्मे कहे विचार तो ॥३२॥

कैकेयी द्वारा युद्ध में दशरथ की सहायता करना

केकायती तब बोलियाए, सुणो म्हारो स्वामी आज तो ।
जूंझ करो तह्मे अति बलाए, जींपो सयल ए राज तो ॥३३॥
तब दशरथ वली बोलियोए, सारथि नहीं मज आज तो ।
तो किम जूंझ करूं सुंदरीए, किम जींपू एह राज तो ॥३४॥
तब बोली ते कामीनीए, मधुरिय सुललीत वाणि तो ।
हुं रथ खेडी सुं अतिबलोए, तह्मे करो रीपु दल भंग तो ॥३५॥
तब दशरथ कहे सुंदरीए, तु अबला सकुमालतो ।
घोर वीर संग्राम माहिए, किम रथ खेड सो विशाल तो ॥३६॥
तब बोली ते भामीनीए, चौसटी कला विशाल तो ।
हुं जाव उं छे सुणो धनीए, तह्मे जूंझो गुणमालतो ॥३७॥
इम कही तीणे सोलधरीए, पुराणो लीयो तीणे हाथि तो ।
खेडए तुरंग ते अति बलाए, वेग देखाडेए साथ तो ॥३८॥
राजकुंवर तब बहु मील्याए, फांज करी अपार तो ।
हय गय पार न पामीयाए, रथ मीलीया तिहां सार तो ॥३९॥
तब दमा माघ नद भदमेए, वाज ए ढोल निसाण तो ।
बंदीजण जस बोले घणाए, सुभट सारे नीज नाम तो ॥४०॥
एक पासे कटक सहूए, एक पासे दशरथ राउ तो ।
जूंझ होई तब अति घणोए, कन्या उपरि बहु भाउतो ॥४१॥
तब केगामतीयए, कहो स्वामी मज भंग तो ।
रथ खेडुं केह उपरिए, केहनो करिसो भंग तो ॥४२॥
धवल छात्र जे नृप तणोए, आगलि तुरंगम थाट तो ।
तेह परि खेडो सुंदरीए, अवर रथ मोडो डाटतो ॥४३॥
तब परिकर तीणे बांधीयोए, उभी रही ते सुजाण तो ।
रथ खेड्यो उतावलोए, जय जय करता वाणि तो ॥४४॥
फउज सरीसो रथ चालीयोए, मयंक राजा साह्मो आय तो ।
धवल छत्र ते मोडीयोए, कांपि वैरी पुद्‌गल काय तो ॥४५॥
दक्षण थिको रथ चालीयोए, फौज मोडी करी भंग तो ।
उत्तर दीसा रथ आवीयोए, सजन सुखे रहियो उछंग तो ॥४६॥
उत्तर थको रथ चालियोए, वली आयो दक्षण चंग तो ।
कटक मोडी रीपु दल तणोए, सरा मुख रहियो रीपु दले उछंग तो ॥४७॥
इणे परि जूंझ कीयो घणोए, जीतउं दशरथ राय तो ।

म्हाटो कटक वैरी तणोए, मयंक राजा आणो पाय तो ।।४८।।
तव नाम सारयो आपणोए, हुं दशरथ सुणो राज तो ।
तव सयल आनंदीयाए, हवें सर्यो म्हा काज तो ।।४९।।
सयल राजा अहंकार मूकीयाए, लागा दशरथ पाय तो ।
तह्म पुण्यवंत जयवंत हुवाए, सूर्यवंस केरा राय तो ।।५०।।
सयल राजा एक हुवाए, प्रीती नीपणी अपार तो ।
सुममती राजा हरषीयोए, हुवों तिहां जय जयकार तो ।।५१।।
नयर सिणगार्यो रूवडोए, कीधो नयर प्रवेसतो ।
विवाह मोहछव नीपणोए, जस विस्तर्यो बहुदेश तो ।।५२।।
परणी कुंवरी अति रूवडीए, दशरथ राजा चंग तो ।
पुण्य फले अति निरमलोए, हुवातिहां अति बहुरंगि तो ।।५३।।
सयल राजा पाय पड्याए, चाल्या निज निज देश तो ।
आचभो मनमाहि धरीए, कीयो निज नयरी प्रवेस तो ।।५४।।
एक वखाण इ रूवडोए, दशरथ राय बलीवंत तो ।
एक कहे केगामतीए, ए अपार जयवंत तो ।।५५।।
दशरथ राजा घणो रह्योए, ससुरा घरि निवास तो
मोह उपणो तिहा अती घणोए जनक सहित सुजाण तो ।।५६।।
तिहा थक पछे मोकलावीयाए, सजन सयल सुजाण तो ।
निज नयरी भणी चाली याए, वाजे ढोल निसाण तो ।।५७।।
द्रोण मेघसरी सो रूवडोए, आवीउ सहित परिवार तो ।
बहिनी भरी सो निरमलोए, स्नेहधरी अपार तो ।।५८।।
अजोध्या वधावो मोकल्योए, हरख्या सजन परिवार तो ।
नयर सिणगार्यो रूवडोए, तलीया तोरण धजा सारतो ।।५९।।
सजन परिवार सामा आवीयाए, आयो सुमती प्रधान तो ।
पाय लागा सर्वे रूवडाए, राय दीयो बहु मान तो ।।६०।।
पुण्यफले विघन गयोए, जीता अति बहु राय तो ।
परणी कुंवरी अति निरमलिए, धन धन दशरथ कायतो ।।६१।।

दशरथ द्वारा कैकेयी की प्रशंसा

एक बार सभा बैठाए, दशरथ राजा गुणवंत तो ।
मन्त्री सामंत लंकर्योए, सोहे जैसो बूजो इंद्र तो ।।६२।।
तीणें अवसरि राणी रूवडीए, आवी सभा ममारि तो ।
कौसल्या सुमीत्रा सुणोए, केगामती सविचार तो ।।६३।।

सिंहासरणी बैठी निरमलीए, अमर ढुले अति चंग तो ।
दशरथ राजा तब बोलियोए, आपण मन तरणे रंग तो ॥६४॥
बखाणे करे अति रूवडीए, केगामती नो चंग तो ।
इणे रथ खेड्यो मझ रूवडीए, तीसें रीपुदल हुवो भंगतो ॥६५॥
जिम सूर्य सारथी बलेए, जीत्या अंधकार बहु घोरतो ।
तिम सारथि कूल बलेए, जीता रीपु दल में घोरतो ॥६६॥
जो रथ खेडे नहीं भामीणीए, तो सही मझणे हारि तो ।
मान भग होतो मझ तणोए, किम परणीतो ए नारि तो ॥६७॥

दशरथ का कैकेयी को वचन दान

उपगार कीयो इणे मज घणोए, आपणि बुद्धि प्रकाशतो ।
कापडी रूपें हुवो लख्योए, घाली वरमाल मुखवासतो ॥६८॥
हवें हु तह्म तुठो सुंदरीए, विनय करी बहु सार तो ।
जही काज हो से तही मागसुंए, हवें राख्यो भंडार तो ॥६९॥
बोल दीयो तब रूवडोए, दशरथ राजा चग तो ।
सयल सजन आनंदीयाए, हुवा अभिनवा रग तो । ७०॥

दूहा

मानदीयो तव अति घणो, केगामती ने सार ।
हरख्या आनन्द बहु नीपणो, केगामती सविचार ॥१॥
सभा लोक सहू मोकल्यो, उठ्यो दशरथ राउ ।
राज्य सौख्य अति भोगवे, धरम उपरि बहु भाइ ॥२॥
तीन राणी अति निरमली, जैसी रभा जाणि ।
धरमवंती गुणे आगली, सीयलवती गुण बखाणि ॥३॥

सुप्रभा से दशरथ का विवाह

ए कथा हवें इहा रही, अवर सुणो गुणवंत ।
चउथी राणी परणिसे, दशरथ राउ बलवंत ॥४॥
'वराड' देश छे रूवडो, तापूरवर गाम ।
राज करे तिहां निरमलो, 'प्रजापाल' गुण धाम ॥५॥
तसु राणी अति रूवडी, रोहिणी जिम रूपवंति ।
'प्रजावती' गुणे आगली, धरम करे गुणवंति ॥६॥
तसु बेहु कुखे रूवडी, 'सुप्रभा' अति चंग ।

बेठी उपरणी निरमली, सरल नयरण उत्त ंग ।।७।।
ते परणी वली रूवडी, दशरथ राजा जाणि ।
रूप सीयल गुणे आगली, धरम करम नीखाणि ।।८।।
च्यार राणी अति निरमली, जैसी समुद्र मरज्यादे कंद ।
पतिवरता गुणे आगली, सुख जिम पुनिम चंद ।।९।।
चिहु राणी सिउ निरमलो, धरम करे गुणवंत ।
'ब्रह्म जिनदास' भणे निरमलो, दशरथ राउ जयवंत ।।१०।।

कौसल्या का स्वप्न दर्शन

भास सहीरणी

अपराजिता अति निरमली, जिनवर पूजी मनरली ।
सेज्याह सूती सु दरी सोहजलीए, सहीए ।।१।।
पाछली राति सुहामणी, सपरण देखे ते भामीरणी ।
गज सिंघ चद्र सूरीज अति, निरमलाए, सहीए ।।२।।
कल्पद्रुम अति रूवडो, समुद्र दीठो जले भर्यो ।
भग भगति अगनी दीठी अति उजलीए, सहीए ।।३।।
सात सपरण ए दीठा उजला, रूपवत गुणे आगला ।
सोहजला, वाजित्र वाज्या राजमदिरे ए । स० ।।४।।
वाजित्र नादे कामीरणी, जागीते तिहा भामीरणी ।
उठीए सुललीत गज गामीरणीए । स० ।।५।।
चलरण कमल जिरण वांदिया, सामायिक तवन कीया ।
उठीए सु ंदरी आनद भरीए । स० ।।६।।
पछे सिरणगार कीयो गुणवति, कौसल्या अति सीलवंती ।
सपरण पुछे वा जाय जयवंतीए । स० ।।७।।
सखीए सहित हस गामीरणी, सभा माहि आवी ते कामीरणी ।
आवंती दीठी राजनिज वामिरणीए । स० ।।८।।
तेह रूप देखी करी, राजा हरख्यो बहु मोहकरी ।
अर्ध सिंघासरण दीयो रंग भरीए । स० ।।९।।
तिहा बैठी अपराजिता, इंद्र इंद्राणी जिम सोहता ।
दुइ जण सजन जनमन मोहंताए । स० ।।१०।।
ते मुरकले हसो करी, कुयकर जोडि सु ंदरी ।
सपरण फल पुछे मने भाव भरीए । स० ।।११।।

तब राजा मधुरिय वाणी, सपण फल कहे सुख खाणि ।
पुत्र होसे सुंदरी येवती धनीए । स० ॥१२॥
गज सिंघ दीठा उत्तंग, तह्या पुत्र होसे ग्रति चंग ।
संत पालस दुष्ट रीपु दल खय कंक ए । स० ॥१३॥
चंद्र सूरीज दीठा निरमला, तुम्ह पुत्र गुणे ग्रागला ।
ग्रल्हादे प्रतापे ग्रति सोहजलाए । स० ॥१४॥
कल्पवृक्ष समुद्र दीठो, उदार गंभीर तूठो ।
होसे ए पुत्र सुंदरी गुणतीलोए । स० ॥१५॥
ग्रगनी दीठी ग्रति उजली, तेह फले सुखो निरमली ।
ध्यान बले कर्मक्षय करी ग्रति घणोए । स० ॥१६॥
ऐसो पुत्र तह्य निरमलो, होसे सुंदरी उजलो ।
बलीभद्र सुगति गामि ग्रति सोहजलोए । स० ॥१७॥
सपण तणा फल तव सुण्या, राणी ए मन माहि गुण्या ।
हरषीया मजन सयल ग्रानंदीयाए । स० ॥१८॥

सुमित्रा का स्वप्न दर्शन

सुमीत्रा ग्रति निरमली, जिनवर पूज्या मनरली ।
सेज्या जै सूती सुंदरी सोहजलीए । सहीए ॥१९॥
पाछली रयणी सुहावणी, सपण देखे ते भामीणी ।
सिंघ सूरीज दीठा दुइ ग्रति बलाए । स० ॥२०॥
मही लक्षमी दीठी निरमली, मेदनीवली देखी फूली फली ।
सुदर्शन चक्र दीठो ग्रति भग मग तो ए । स० ॥२१॥
पांच सपण दीठा निरमला, रूपवंती गुणे ग्रागला ।
सोहजला वाजित्र वाज्या राज मंदिरे ए । स० ॥२२॥
वाजित्र नादे कामीणी, जागी तिहां ते भामीणी ।
उठीए सुललीत गज गामीणीए । स० ॥२३॥
चरण कमल जिण वांदिया, सामायिक तवन कीया ।
उठीए सुंदरी ग्रानंद भरीए । स० ॥२४॥
पछे सिणगार कीयो गुणवंति, सुमीत्रा ग्रति सीलवंति ।
सपण पुछे वा जाय ज्यवंतीए । स० ॥२५॥
सखीय सहित हंस गामीणी, सभा माहि ग्रावी कामीणी ।
ग्रावंती दीठी राय निज भामीणीए । स० ॥२६॥
ते रूप देखी करी, राजा रीझ्यो बहु मोह धरी ।

सिंघासण दीधो रंग करीए । स० ॥२७॥
तिहां बैठी ते गुणवंती, रोहिणी जिम सोहंती ।
भूपती चंद्र जिम सोहियोए । स० ॥२८॥
परमोद मन माहि धरी, दुइकर जोडी विनय करी ।
सपण फल पुछे राणी मलरलीए । स० ॥२९॥
सपरण फले तह्मनंदण, होसे सुणो कुल मंडण ।
आठमो वासुदेव रीपु खंडणो ए । स० ॥३०॥
धीर वीर गुणे आगलो, श्रीखड धनी अति बलो ।
विणयवंत होसे अति सोहजलो ए । स० ॥३१॥
सपण फल अती निरमला, राणी सुणीया उजला ।
हरप वदन हुइ कामीणी, नीज घरि गई ए । स० ॥३२॥
दुहिरागगी सोभागीनी, हरषवदन हुई कामीनी ।
प्रीती उपणी अति सोहावणीए । स० ॥३३॥

कौसल्या को दोहद होना

गरम उपगो अति निरमलो, अपराजित गुणे आगलो ।
डोहलो उपणो गुण मोहजलोए । स० ॥३४॥
जिनवर स्वामी पूजवा, सुपात्र दाण बहु देवा ।
जात्रा प्रतिष्ठा करवा निरमलीए । स० ॥३५॥
जीव दया धर्म पालेवा, पाप मिथ्यात हटालेवा ।
सुपात्र भाव मन माहि अति उपणोए । स० ॥३६॥
जिम जिम इछ मनि वसे, तिम तिम राणी दुबली दीसे ।
सजन पुछे सुंदरी कांई दुबलाए । स० ॥३७॥
लाजे सुंदरी निरमल , नवि बोले सोहजली ।
सहीयर हंसु करे गुणे आगलीए । स० ॥३८॥
दशरथ राजा गुणवंत, एकाति पुछे जयवंत ।
कौसल्या राणी तह्मे काई दूबल्याए । स० ॥३९॥
तव राणी कहे सुणो धणी, मझमनि इछा छे घणी ।
धरम करवा तणी अति निरमली ए । स० ॥४०॥
जिण भुवणी जाई करी, जिणवाणी मनमाहि धरी ।
धरम करणी करो भवतारणीए । स० ॥४१॥
धरम करता बहु दीन जाई, नव मास इम पूरां थाई ।
राणीए सोहलो नीस जयो क्मकोए । स० ॥४२॥

राम जन्म

फागुण मास अति निरमलो, शुक्लपक्ष गुणे आगलो ।
पांचमी दीन जनम हुवो सोहजलोए । सहीए ॥४३॥
बेटो जनम्यो रूवडो, जाणे परम मूरति ए अवतर्यो ।
धवल वरण गुणे श्री आगलोए । स० ॥४४॥
जय जयकार तब निपणो, हर्ष आनन्द बहु उपणो ।
जात मोहछव कीयो सजन मीलीए । स० ॥४५॥
जिनवर भुवनिधजा रोपी, सजन कीरति मेदनि व्यापी ।
वाजिंत्र वाजे सरस सुहावणाए । स० ॥४६॥
धवल गावइ वर कामीणी, पात्र नाचे गज गामीणी ।
मन वांछित दाण देई पृथवी घणीए । स० ॥४७॥
धवल वरण अति सोहिया, सजन जनमन मोहिया ।
आनंदे त्रिभुवन पूरियाए । स० ॥४८॥
पदमवरण अति सोहिया, पदमा लक्ष्मी मोहिया ।
तेह भणी 'पदमनाम' दीयो निरमलो ए । स० ॥४९॥
'राम' नाम ए दूजो दीयो, सजन मनि आनंद भयो ।
बालोचंद्र जिम गुणे सोहियोए । स० ॥५०॥

सुमित्रा को दोहद होना

गरभ उपणो अति निरमलो, सुमीत्रा गुणे आगलो ।
डोहलो उपणो तसु अति बलोए । स० ॥५१॥
शांति भाव छोड़ी करी, रौद्र भाव मनमाहि धरी ।
अहंकार बली करि बहु अति घणोए । स० ॥५२॥
सोम मूरति रलीयावणी, दीसंति ते कामीणी ।
ते कठिण दीसे सुणो भामीणीए । स० ॥५३॥
बाघ सिंघ रूप जोवंती, हंस रूप नवी मोहती ।
खेलंती रौद्र खेल अति सोहंतीए । स० ॥५४॥
वीर रस गीत गावंती, खडगें निज मुख जोवती ।
वीणा छोड़ी धनुष नाद सुणंती ए । स० ॥५५॥
इम कहतां दिन बहु जाई, नव मास इम पूरा थाई ।
राणीय सोहलो पुण्ये आगलोए । स० ॥५६॥

लक्ष्मण का जन्म

माघ मास अति निरमलो, पडवा के दीन उजलो ।
जनम हुवो कुंवर नो सोहूजलोए । स० ॥५७॥
मोहछव हुवा अति घणा, धवल मंगल गीत नादतणा ।
भनया सयल सजन सुहावणाए । स० ॥५८॥
सामल भरण सुहावणो, दीसंतो रूलीया वणो ।
भामणो सरस कुंवर सुहावणोए । स० ॥५९॥
लक्ष्मीलंकृत देहए, सोहेलक्ष्मी गेहए ।
तेह भणी लक्षमण नाम रूवडोए । स० ॥६०॥
रामलखमण बेहु सोहिया, सजन मन मोहिया ।
चंद्र सूरिज जिम गुणे आगलाए । स० ॥६१॥
जिम जिम मुरकले सुतहसे, तिम तिम सुख मनिवसे ।
सजन आनंद हरखें रूवडाए । स० ॥६२॥
बाल क्रीडा कुंवर करे, सजन तणा तव दुख हरे ।
सुख धरे धरम गुण बल विस्तरेए स० ॥६३॥
सतर सहस्त्र वर्ष आयु कहीं, रामचंद्र देव सही ।
सोल धनुष अति निरमलोए । सहीए ॥६४॥

कैकेयी का स्वप्न दर्शन

केगामती अति निरमली, जिनवर पूज्या मनरली ।
सेज्यांय पहोडी सुंदरी सोहलोए । स० ॥६५॥
बार सहस्त्र वरष आयुं कही, लक्ष्मी धरने सुण्यो सही ।
सोल धनुष उंचा अति निरमलोए । स० ॥६६॥
सपण दीठा अति निरमला, चंद्र सूरिज दुइ उजला ।
पछे उठी सुंदरी रंग भरीए स० ॥६७॥
सपण तणा फल पुछिया, दशरथ राजा मनिरमय कहिया ।
पुत्र होसे सुणो तह्म उजलो ए । स० ॥६८॥
सुगति गामी सुणो गुणवंतो, रूप सौभागे जयवंतो ।
धरम करसे जिनवर तणो बलीवंतोए । स० ॥६९॥
केगामती आनंद हुवो, जिनधरम उपरि भाव हुवो ।
घर गई हरष वदन धरम करेए । स० ॥७०॥
गरभ उपणो अति निरमलो, डोहलो उपणो सोहूजलो ।
धरम तणो सुणो फल अति उजलोए । सहीए ॥७१॥

भरत का जन्म

पुत्र जन्यो पछे गुणवंतो, 'भरत' नाम अति जयवंतो ।
जनम मोहछव कीयो सुललीतए । स० ।।७२।।
इणे परि 'सुप्रभा' कही, पुत्र जनम हूवो सही ।
'शत्रुघन' कुंवर सुहावणोए, सहीए । स० ।।७३।।
च्यारि पुत्र रलीयावणा, धरम फले अती भामणा ।
गुणवंता पुत्र बखाणा, जयवंता बहुपरि सुहावणाए सहीए ।।७४।।

वस्तु

च्यारि कुवर तिहां, च्यारिकुंवर तिहा, वाधे गुणवंत ।।
बीजचंद्र जिम निरमला, कल्पवृक्ष जिम सार मनोहर ।
वाछित दाण देई अति घणो, लीलावत गुणवंत नीरभर ।।
ऐसा कुंवर ते निरमला, पुण्यवत जसवत ।
'ब्रह्म जिणदास' भणे निरमलो, सुणो तह्मे भवियण सत ।।१।।

भास साहेलडीनी

चारों राजकुमारों की शिक्षा

दीन दीन वाला वृद्धि करे हो, सुहावणा सुजाण ।
च्यारि समुद्र जिम सोहिया हो, जाणे शसीकर भाण ।।सा०।।
रामचंद्र देव रास मनोहर, सुणतां दुरित विणास । सा० ।।१।।
कुंवर पद पछे सोहिया हो, जाणे नाग कुमार ।
दशरथ राजा हरषीया हो, साहेलडी, नीपणो जय जयकार ।।२।।
तव पिता मनि चितवे हो, ए कुंवर अतिचंग ।
विद्या पढाउ रूवडी हो, आपणे मन तणे रंग । साहे ।।३।।
चिंता मनि धरी रह्यो हो, तीणें अवसरि एक सार ।
पंडीत आव्यो रूवडो हो, एर नाम अविचार । सा० ।।४।।
तेह कन्हे कुंवर सुहावणी हो, पढण मुक्या सुजाण ।
बहोतरी कला पढे रूवडी हो, विद्या सरस सुजान । सा० ।।५।।
पढिए कुंवर घरि आवीया हो, माय बाप हुवो आनंद ।
पंडीतणें बहु दाण दीयो हो, बाध्यो धरमह कंद । सा० ।।६।।
दशरथ राजा राज करे हो, ते चीहुं पुत्र सहित ।
धरम करे श्री जिणतणो हो, पाप कलंक रहित । सा० ।।७।।

ए कथा हवें इहा रही हो, अवर सुणो विचार ।
जनक राजा तणी निरमली हो, हरीवंस सिणगार । सा० ॥८॥
मथुरा नयरी राज करे हो, जनक राजा गुणवंत ।
विदेहा राणी तस तणी हो, भूप सोभागइ सीलवंत । सा० ॥९॥
तस बेहु कुंखे उपणो हो, बेटो बेटी अति चंग ।
हरख आनन्द बहु नीपणो हो, धवल मंगल गीत चंग । सा० ॥१०॥
वधाीय मोहछव रूवडाए, धवल मंगल गीत नाद ।
वाजित्रि वाजे अति घणा हो, बंदिजण जयजय स.द । सा० ॥११॥
तीणे अवसरि विमाण एक आयो हो, देव तणो विशाल ।
नयर उपरी ते आवीयो हो, थाभ्यो तिहा गुणमाल । सा० ॥१२॥

जनकपुत्र का देव द्वारा अपहरण

तब देव मनि चिंतवे हो, कवण खल्यो विमाण ।
अवधीज्ञान करी जोइयो हो, तव जाण्यो तीणे ज्ञान । सा० ॥१३॥
ए बालक वैरी मझ तणो हो, वैर साधु हवे आज ।
ए दुष्ट हवें हरीलेउ हों, वियोग करू एह काजि । सा० ॥१४॥
इणे मझ तणि भवांतरि हो, नारी हरी हो चंग ।
संजोग हो तो मझ तणो हो, कीयो मझ तणो सुख भग । सा० ॥१५॥
तिम हवें एह वियोग करूं हो, माय बाप तणो थोर ।
छेदन भेदन अति घणा हो, मरण दुख देउ घोर । सा० ॥१६॥
इम कहीने निद्रामुकी हो, सयल सजन परिवार ।
बालक हर्यो पालणा थिकी हो, कोप धरी हो अपार । सा० ॥१७॥
विमाने घाली उनावलो हो, चाल्या उत्तर दीशा चंग ।
हवे वैर साधु आपणे हो, करूं बालक एह भंग । स० ॥१८॥
इम कही बालक लीयो हो, हाथि धर्यो सकुमाल ।
चंद्र वदन अति कोमलो हो, दीठो तिहां ते बाल । सा० ॥१९॥
तव पाछलि भव को हो, सांभरी तेहने अपार ।
हुं मुनिवर हो तो निरमलो हो, जीव दया प्रतिपाल कसार । सा० ॥२०॥
हवें हुं एहने किम वधु हो, जैन धरम गुणवंत ।
इम कही लेई नीसर्यो हो, ते देव जयवंत । सा० ॥२१॥
विज्यारध परबत रूवडो हो, दक्षणे श्रेणी विशाल ।
रथनपुर नयर भलो हो, वसे तिहां गुणमाल । सा० ॥२२॥

चंद्रगति राजा तिहां राज करै हो, विद्याधर गुणवंत ।
कुसुमावली राणी तसु तणी हो, रूप सोभागे सीलवंति । सा० ॥२३॥
पण पुत्र नहीं कवडो हो, कुल मंडण अति चंग ।
तेह भणी मन माहि दुख धरे हो, सुख तणो होए भंग । सा० ॥२४॥
धरम करे ते निरमलो हो, जिनवर नो अवतार ।
यात्रा प्रतिष्ठा जिन भुवन करावे हो, दाण पूजा अपार । सा० ॥२५॥

राजा चन्द्रगति को पुत्र-प्राप्ति

एक बार चंद्रगति राजा हो, वनमाहि गयो गुणवंत ।
तीणे अवसरि सामायिक बेला हुइ हो, करवा बैठो जयवंत । सा० ॥२६॥
क्रीडा विनोद परहरी हो, लीधो सामायिक सार ।
पल्यकासणे बेसी करी हो, ध्यान करे भवतार । सा० ॥२७॥
तीणे अवसरि तिहा सुरतणो हो, विमाण थंभिउ उत्तंग ।
तव दया मनि ऊपणी हों, देव तणे मनि सार ।
काण कुंडल पहिरावीया हो, बालक तणे सविचार । सा० ॥२९॥
ते बालक लेई करी हो, मुक्यो राजा तणे खोलि ।
देव गयो निज स्थानकि हो, मे तुझ दीयो बोल । सा० ॥३०॥
तव राजा मनि विस्मित कीयो हो, उद्योत दीठो अपार ।
की बीजली झलकार कीयो हो, कि नक्षत्र सविचार । सा० ॥३१॥
नयण निहाली जोइयो हो, तव दीठो तिहां बाल ।
ए बालक घर मे दीयो हो, इम बोले गुणमाल । सा० ॥३२॥
ते बालक लेई करी हो, घरि आव्यो गुणवंत ।
सेज्या सूती निरमली हो, राणी दीठी जयवंत । सा० ॥३३॥
तव सउडी माहि घालीयो हो, ते बोल्यो सकुमाल ।
कहि राणी गुणे आगलो हो रूपवत सविसाल । सा० ॥३४॥
उठो उठो तह्मे सुंदरी हो, पुत्र जण्यो तह्मे चंग ।
तव उठीते सुंदरी हो, आपणं मन तणें रंग । सा० ॥३५॥
ते बालक देखी करी हो, राणी बोले तब वाणि ।
कवण सोभागीनी जनमीयो हो, तह्मे कहो सुजाण । सा० ॥३६॥
तव राजा इम बोलीयो हो, तह्मे जनमीउं गुणमाल ।
बालक सोहामणो हो, तह्म तणो पुण्य विशाल । सा० ॥३७॥
काइं हंसु करो मलि मणो हो, कंत तह्मे मझ आज ।
हुं वांझिणी दुखे भरी हो, काइ मजए आवे लाज । सा० ॥३८॥

पुत्र प्राप्ति पर रानी द्वारा शंका करना

फूल विण किम फल लागे हो, कंत तह्मे अवधारी को ।
तिम गर्भ विण बाल किम आईया हो, पुण्य विहुणी नारी । सा० ॥३९॥
मेघ विण पूर किम आवे हो, स्वामीय सुणो विचार ।
तिम पुण्य विण नंदनो हो, किहा थका आव्यो सार । सा० ॥४०॥
तव राजा कहे सुंदरीए हो, तुह न जाणइ अजाण ।
गूढ़ गरभ तह्म निरमलो हो, होतो सुणो सुख खाण । सा० ॥४१॥
तव राणी कहे सुणो धनी हो, काइं चलावो कंत ।
सुइण विण किम जाणीयो हो, ए बालो जयवंत । सा० ॥४२॥
तव राजा कहे सुंदरी हो, ए बालो पुण्यवत ।
गरभ विकार नथी इणे कीया हो, जनीतां सुख महंत । साहेलडी ॥४३॥
तव ते हंसी सुंदरी हो, मे जाणीउं ए पुत्र ।
काणि कुंडल कुणे घालीया हो पोट माहि जयवंत । सा० ॥४४॥
तव राजा कहे कामिनिए, तह्म तणो पुण्य प्रमाण ।
वनमाहि बालक ए लाधो हो, आन्यो मे सुख खाण । सा० ॥४५॥
ए बालक हवे उछरो हो, आपुण ए जयवत ।
अपुत्र्या पुत्र करो रूवडो हो, ए सुणो तह्मे गुणवंत । सा० ॥४६॥
एह पुत्र कूल मंडणो हो, सेदे ए बहु सुख ।
राज तणो धणी रूवडो हो, होसे फेडे बहु दुख । सा० ॥४७॥

रानी द्वारा पुत्र को अपनाना

तव राणी मनि हरिष हुवो हो, उठे मन तणे रंगि ।
प्रसवा गार जाई करी हो, सेज्या सूती तिहा चंग । सा० ॥४८॥
सुवणी बोलावी रूवडी हो, ते बोली सविशाल ।
कहो मु देखतां जनमीयो हो, ए बालो सकुमाल । सा० ॥४९॥
उवद आव्या अति घणा हो, फूकवाणी सुणो सार ।
मस्तक बांध्यो राणी तणा हो, जतन करे अपार । सा० ॥५०॥
वाजित्र वाजे अति घणा हो, बंदिजन जय जय कार ।
धवल गावे वर कामिनी हो, मोहछव होइ अपार । सा० ॥५१॥
इणे परिज घणो विस्तर्‍यो हो, पुत्र तणो आनंद ।
माय बाप सुख उपणो हो, वाध्यो परमह कंद । सा० ॥५२॥

दिन दिन बाधो वृद्धि करे हो, जिम बीजह केरो चंद ।
सजन सयल मनि हरखीया हो, कोइ न जाण भेद ।।५३।।साहेलडी।।५३।।

दूहा

ए कथा हवें इहा रही, अवर सुणो विचार ।
'सीता' तणी अति निरमली, ब्रह्म जिनदास कहे सार ।।१।।

भास हेलिणी

छठी महोछव सार, जनक मंदिरे सुहावणे हेलि ।
निद्रा तणो भर थोर, फेंडी उग्यो जिम दिनकर हेलि ।।१।।
तव सजन बहु आणिए, उठ्या सयल सुहावणा हेलि ।
कुंवरी दीठी तिहां चंग, नवी देखे पुत्र भामणे हेलि ।।२।।
तव हूवो हाहाकार, काहा गयो पुत्र निरमल हेलि ।
रडए माय अति अपार, कवणे हर्यो बालो ब्रह्म तणो हेलि ।।३।।
हा हा तुंमझ बाल, कवण लेई गयो पापीयो हेलि ।
माय सजन वियोग, कवण तणो पाप व्यापीयो हेलि ।।४।।
तह्म विण केथि जाउ आज, कैसो करूं हुं दुख भरी हेलि ।
बेटी बेटीय जन्म, कांइ विजोग कीयो सूत हरी हेलि ।।५।।
कहि देखिसुं ते बाल, कहि मनोरथ पूरे मझ तणा हेलि ।
कहि आवीस बाला कही, कही सुख होसे मझ घणा हेलि ।।६।।
भणी रडो तह्मे नारि, भणी दुख धरो तह्मे अति घणो हेलि ।
थोडा दिवस माहि, आवसे पुत्र तह्म तणोए हेलि ।।७।।
मधुरिए वाणी अति चंग, रोवती राखी कामिणी हेलि ।
कुंवरी चाली तव खोलि, एहुने चीमूटेउं भामीणी हेलि ।।८।।

सीता की बाल क्रीडा

'सीता' धरीयो नाम, दिन दिन बाधे सुंदरी हेलि ।
रूप सोभाग अपार, जसी ए चंद्र कला गुणे करी हेलि ।।९।।
खीरए हंसेले बालि, खीरा खीरए आगलि मांडे अति घणी हेलि ।
बाल क्रीडा विनोद, देखी रीझे माता तेह तणी हेलि ।।१०।।
सजन खेलावे चंग, रंग करे बाली निरमली हेलि ।
वमण सुहामे चंग, बोले कुंवरी सोहजली हेलि ।।११।।
दिन दिन बाली चंग, वृद्धि करे अति रूवडी हेलि ।
सोहड अमिहि अपार, बाणे कनक तणी हेलि ।।१२।।

कुंवरी सोहे गुणवंत, पढए गुरु कन्हे मनरली हेलि ।
विद्या गुणह भंडार, आगम तत्व पुराण वली हेलि ।।१३।।
सात से कन्या माहि, खेलए खेल सुहावणी हेलि ।
लाडकोड अपार, जैसी ए अपछरा नागीनीए हेलि ।।१४।।
जनक राजा सुजाण, मन मांहि चितवे निरमलों हेलि ।
कहुने देउं निज धीह, कवण वर होसे गुण तिलो हेलि ।।१५।।
इम करतां दिन जाइ, धरम करतां अति रूवडाए ।
तीणे अवसरि वली जाणि, अबर वृत्तांत सु भावधर्यो हेलि ।।१६। १७।।[1]
उत्तर देश माहि सार, कैलास परबत जाणि हेलि ।
कैलास विज्याधर बीच, बबर देश वरवाणि हेलि ।।१८।।
तिहां म्लेछ वसे बहु लोग, एक कार प्रजा जाणि ए हेलि ।
तेह तणो आतक राउ, मयौर माला नयरी तेह तणी हेलि ।।१९।।
आरिज खंड विशाल, तिहां थिको नर एक ति ां गयो हेलि ।
आतक राउ जाणि, तीणे राजा दूते हेलि ।।२०।।
तव ते बोलाव्यो सार, पुछे बात आरिज खंड तणी हेलि ।
तीणे कह्लीए विचारि, आरिज खंड रीती अति घणी हेलि ।।२१।।
ब्राह्मण क्षत्रीय वैस, सौद्र लोक वसे अति घणा हेलि ।
छीत विराल अपार, माने ते एक एक तणाए हेलि ।।२२।।

आर्यखंड में अशान्ति

ते सुणी तीणे वाणि, तव मन माहि करए विचार हेलि ।
आर्य खंड का लोक, दुखीए ते बहु कष्ट धरे हेलि ।।२३।।
जिम ताते हने कष्ट, विवाह करतां दु:ख अति घणा हेलि ।
हवें कटकाइ करूं थोर, दु:ख फेडुं बहु तेह तणा हेलि ।।२४।।
एक वरण करूं लोक, जिम सुखी होइ ते बापुडा ए हेलि ।
धरमा धरम विनास, एक हुई रहे रूवडा ए हेलि ।।२५।।
इम कही तीणे घोर, कटक मेल्यो बहु आपणे ।
आर्ज्य खंड उपरिए, चाल्यो तेह वरि अति घणो हेलि ।।२६।।
पहिले मथुरा देसि, आव्यो कटक ते दुरंधरी हेलि ।
भय उपणो अपार, लोकन्हासे बहु निरमरी हेलि ।।२७।।

---

1. 'प्रति' में सं० १६ नहीं है । सम्भवतः लिपिकार संख्या लगाना भूल गया।

प्रजा लोक अपार, सरण आव्या जनक तणे हेलि ।
कुल का लोल अपार, तेह तणा दुःख कुण गहे हेलि ॥२८॥
याकुल व्याकुल चीत, हुवो जनक तणो अति घणो हेलि ।
मलेछ कटक बहुत, पार न लाभे ए तेह तणो हेलि ॥२९॥
हुवे किम करिये देव, संकट आव्यो अति घणो हेलि ।
देव धरम विनास, किम राखु देस आपणो हेलि ॥३०॥
कनक बंधव अतिचंग, बोलाव्यो तीणे आपणे हेलि ।
मंत्री बोलाव्या सार, आलोचन कीयो तीन्हु अति घणु हेलि ॥३१॥
कटक आव्यो अति थोर, मलेछ राजा नो अति घणो हेलि ।
हुवें बुद्धि विचारू सार, जिमदेश वाचे आपणो हेलि ॥३२॥
दशरथ राजा चंग, मीत्रय छे आपने हेलि ।
तेह बोलाव्यो आज, जिम जीपुं आपण घणो हेलि ॥३३॥
लेख लीख्यो अति सार, अजोध्या पढावो उतावलो ए ।
दूत तणि हाथि चंग, दसरथ राजा अति बलो हेलि ॥३४॥

राजा दशरथ द्वारा जनक की सहायता

वस्तु

गय दशरथ, राय दशरथ, तह्म ए सुजाण ॥
जनक राजा इम विनवे, तह्म परति सार, मनोहर ।
कटक आव्यो मलेछ तणो, देश माहि अति घोर दुरंधर ॥
प्रजालोक बहु टलवले, धरम तणो होइ नाश ।
तेह भणी तह्मे आवीज्यो, जिम होई अह्मणे सांस ॥१॥

भास चौपइनी

लेख वांच्यो दशरथ गुण राय, तब रोमांच हुई तेह काय ।
कटक मेलाव्यो तिहां अति थोर, कोपे चढ्यो राजा अति घोर ॥१॥
रामचन्द्र बोलाव्यो चंग, तह्मे राज लेवो उलंग ।
मलेछे विखंड्यो अति बहु देश, आर्य खंड माहि कीयो प्रवेश ॥२॥
हुं जाउं तेह उपरि अब आज, तह्मे पालजो निरमल राज ।
मलेछ जीपुं पापी अतिघोर, कटक लेडुं निज मीत्र थोर ॥३॥
पीता तणी सुणी तब वाणि, रामचन्द्र बोल्यो सुजाण ।
अह्म ने मोकलो तेह उपरि देव, मलेछ जीपुं स्वामी सही हेव ॥४॥
अह्म तह्म तणा पुत्र जयवंत, भगति करूं स्वामी गुणवंत ।
अह्म छता जूझे तह्मे जाउ आज, तो अह्म तणे किम सरे काज ॥५॥

तब दसरथ बोल्यो सुजाण, पुत्र सुणो तह्मे मझवाणि ।
तह्मे बालापुत्र अति सकुमाल, मलेछ कटक छे अति सविशाल ॥६॥
तह्मे जूंझ नहीं दीठो भार, तिहा भय उपजे अपार ।
ते बबर छे अति बलीवंत, ते कहो तेह किम जिप सो गुणवंत ॥७॥
तब राम बोल्यो अतिचंग, वैरी तणो करूं सही भंग ।
सिंघ आगलि गज किम रहे, अह्म तणो बाण कवण रीपु सहे ॥८॥
बाल दिवाकर उगिउं सार, तीणे अंधकार फेड्या अपार ।
तिम अह्मे जिपुं बबर तास, निश्चे करूं तेहनो नाश ॥९॥
इम कही चाल्यो ते बाल, कटक लेई तिहां सविशाल ।
हय गय पायक अपार, छत्र चमर धजा लहके सार ॥१०॥

राम-लक्ष्मण द्वारा शत्रुओं का दमन

तीणे अवसरि मथुरा अति थोर, मलेछ कटक आव्यो तिहां घोर ।
जनक कनक दुइ बंधव सार, सामा चाल्या सिउं परिवार ॥११॥
चापडी जूंझ होइ तिहां घोर, पैंज बोले खत्री घणु थोर ।
तीउ जिम बबर सविशाल, विद्या जनक कनक गुणमाल ॥१२॥
भय उपणो कांपे बहु काय, हवे कहो काहा जाइए मझ माय ।
प्रजा लोक खलभल्या हो अपार, कवण करे तेहनी हवे सार ॥१३॥
तीणे अवसरि पोहतां जयवंत, रामदेव लक्षमण गुणवंत ।
सूर्यवंस राजा सिणगार, बंदि जन करे तिहा जय जयकार ॥१४॥
वाजे ढोल तबल निशाण, पैंज बोले सामंत सुजाण ।
तव कटक मील्यो अति थोर, संग्राम होइ तिहां अति घोर ॥१५॥
मलेछ उठावो दीयो अतिचंग, सूर्यवंसी कटक कीयो भंग ।
निज कटक मोड्यो दीठोवीर, तब लक्ष्मण उठ्यो घन धीर ॥१६॥
तीखण खरग धर्यो निज हाथि, तुरंग मीच छीयो नीलो गुण साथि ।
मुड्यो कटक रीपु दल तणु थोर, रौद्र करम करे अति घोर ॥१७॥
जिम जिम मारे तिम रीपु दल मुडे, न्हाथा वैरी संग्रामनि चडे ।
जनक कनक मुकाव्या सार, हरष उपणो तिहां अतिहि अपार ॥१८॥
वीर रीस पड्यो जयवंत, बहुत भूमी चाल्यो गुणवंत ।
तव वैरी पाछा वल्या थोर, लक्षमण वीर्यो तिहां अति घोर ॥१९॥
लक्षमण नवी दीसे गुणवंत, सूर्यवंस माहि ते जयवंत ।
रामचंद्र मनि हुवो बहु दुख, कहीं न पामे क्षण एक सुख ॥२०॥

रथ जूंप्यो तिहां सविशाल, रामचंद्र बैठो सुगुणमाल ।
रथ चाल्यो जिम गंगा पूर, रीपुदल मोडी कीयो सनेवूर ॥२१॥
बंधव तणो मेलापक सार, आलिंगन दीयो बहु हरख अपार ।
बबर मुडी गया निजठामि, एकठा मील्या आवी सीर नामि ॥२२॥
डंडलेइ तीन्हु कन्हे अतिघोर, कीयो ते बापड़ा सवि पोर ।
दुई बंधव आव्या सुजाण, निज कटक माहि जिम ससी भाण ॥२३॥

जनक द्वारा राम-लक्ष्मण का सम्मान

जनक कनक हरख्या बंधवसार, आनंदया सहू तिहा परिवार ।
राम लखमण ए दुहि जण सूर, जींत्यो मलेछ कटकनो पूर ॥२४॥
मथुरा नयरी आव्या सुजाण, दीपे जैसा ससीकर भाण ।
तलीया तोरण धजा लहके सार, नगर सिणगार्‌यो अति हिं अपार ॥२५॥
नयर माहि कीयो परवेश जोवा मीलीयो अति बहु देश ।
धन धन रामचंद्र अवतार, सुधन सुधन लक्ष्मण सुविचार ॥२६॥
अभय दाण दीयो अतिचंग, प्रजा लोक राख्या अभग ।
इणे परिजस बोले बहुलोक, म्लेछराय धरि आवीउं सोक ॥२७॥
एक आरती उवाले नारि, अच्छेणो करे दूजी सार ।
एक जोवे आपणे मनिरंगि, एक कामांनी वधावे चंग ॥२८॥
सीता कुंवरी जोवे गुणमाल, सातसे कन्या सु सकुमाल ।
राम-लक्षमण दीठे सविसार, जाणे काम तणो अवतार ॥२९॥
सयल सजन आंनंदा जाण, पुरुषोत्तम आव्यो सुजाण ।
प्रोहुना चारकीयो अपार, विनय मान दीयो सविसाल ॥३०॥
जनक राजा चितवइ गुणवंत, इहुं उपगार कीयो महंत ।
ते उपगारे रीण मभकाय, भाख्यो हुं इम कहे ते राय ॥३१॥
ते रीण थि किम छूटुं आज, इम चितवे मन माहि ते राज ।
हय गय रथ पायकी अपार, ते इन्हु धरि छे सहजे अपार ॥३२॥
रतन माणिक मुगता फल चंग, ते इन्हु धरि सहस्त्र अभंग ।
अपूरव वस्तु देउ एह आज तो सरे म्हारो बहु काज ॥३३॥
इम चीतें अनुचिन ते बैठ, तीणे अवसरि सीता तिहा दीठ ।
एकन्या देउं गुणमाल, तो रीझे राम सकुमाल ॥३४॥
इम कही रलियाउ उच्छाह, तव चिंता तेह हूरे जाइ ।
सयल सजन जाण्यो तस भाव, सीता वर होसे राम राव ॥३५॥

रामचन्द्र कुंवर जयवंत, जनक राजा प्रति कहे गुणवंत ।
बहुत दिवस हुवा इम काज, हवें जाउ आपले घरि राज ।।३६।।
इम कही नीकल्या गुणवंत अजोध्या आव्या जयवंत ।
माय बापनि हरिष अपार, मोहछव हुवो तिहा जय जयकार ।।३७।।

दूहा

तीणे अवसरि नारंद रीषी, आव्यो ते सुजाण ।
अजोध्या नीज मनरली, राम दीठो गुणभाण ।।१।।
मलेछ जित्या इणे अतिघणा, अभय दाण दीयो अपार ।
सयल लोक इन्हु राखीया, जनक सहित परिवार ।।२।।
तव नारंद मनि हरषीयो, राम उपरि बहु मोह ।
सीता दीधीं रूवडी, जनक राजा मनि सोह ।।३।।
तव नारद मनि चितवे. सीता रूप विसाल ।
जोवा जाउं हवे मनरली, कैसी छे ते बाल ।।४।।
इम कही ते नीसर्‌यो, आव्यो मथुरा गामि ।
राज मंदिरे ते आवीयो, वाद्यो ते सीर नामि ।।५।।

सीता द्वारा नारद का अपमान

भास रासणी

अंतेउरि माहि आवीयोए, सीता जोवा चंग तो ।
सात से कन्या माहि रूवडीए, जैसीय निरमल गग तो ।।१।।
सीता नारंद देखीयोए, मनमांहि करेए विचार तो ।
ए ब्रह्मचारी छे रूवडीए, पण अहंकार अपार तो ।।२।।
कलहो करावे अति घणोए, तिहां होई हीसा अपार तो ।
तेह भणी ए असजमीए, खेमा रहित विचार तो ।।३।।
क्रोध मान माया लोभ थामलोए, संयम रहित सुख कायतो ।
समकित सहित जे तप करेए, तेह गुरु लागु पाय तो ।।४।।
इम कही निश्चो करीए, मनमाहि आणी बुद्धि तो ।
हाउ आवीउं एक अति बलोए, हवे म्हासो गुमन होत तो ।।५।।
सयल कुंवरी सोहावणीए, न्हाटी ते भयभीत तो ।
धोधर आव्यो ए सहीए, इम कहे गुणवंत तो ।।६।।
तव नारंद पुठें धावीयोए, कौतिक करए अपार तो ।
कसाय वस्त्र तींणे पहीरीयाए, जटाजूट अविचार तो ।।७।।

तेह रूप भव कर विसिए, कन्या बिहि मनमाहि तो ।
कोलाहल अति नीपरणोए, वटिक आवी तिहां चाहि तो ॥८॥
नारद परतित इम कहेए, कटूवि करकस वाणि तो ।
तुं तपस्वी अति बाउलोए, थारो रूप दीसे दुख खाणि तो ॥९॥
तव नारंद रीषी कोपियोए, तह्यो रंडा दुख खाणि तो ।
सीता दीखालो मझ कन्हेए, नहि तो तह्य डील हाणि तो ॥१०॥
तव दासी कोपें चढीए, तुंबा देई सीर माहि तो ।
लटा तोडी एक तेह तणीए, चीभटिया ले एक ताहि तो ॥११॥
कलही हुवो तव अति घणोए, नारंद दासिए जाणि तो ।
कल कलहोए तिहां अति घणीए, आव्या शुभ सुजाणतो ॥१२॥
हाथि खडग कुंतझ लहलेए, रौद्र ध्यान अपार तो ।
यो रूप सही आवीयोए, कन्या जोवा सार तो ॥१३॥
मारि मारि करतां उठीया ए, शुभट सयल बलीवंत तो ।
तव नारंद मनमाहि डर्याए, न्हाटो ते भयवंत तो ॥१४॥
विद्याबलें अगासिगयोए, न्हाटो ते गुणवंत तो
अष्टापदे वरी आवीउं ए, हुवो तिहा जयवंत तो ॥१५॥
प्रस्वेद आव्यो तिहां अति घणोए, कांपय सयल शरीर तो ।
जटा तुटी जोवे ए वली वलीए, हलू हलू आवए धीर तो ॥१६॥
रामतणो मोह मझ घणोए, तीणे हुं आव्यो रंग तो ।
सीता तणो रूप जोइवाए, इणे कीयो मझ भंग तो ॥१७॥
सीता मनि गरव घणोए, नहीं विनय वाछिल तो ।
उपसर्ग कीयो मझ अति घणोए, जाणि बूझीया बिहिवल तो ॥१८॥

भामंडल का सीता की ओर आकर्षित होना

गुण करतां अवगुण हुवोए, ए संसारि मझारि तो ।
हुं कोडे जोवा गयोए, हुंवि गोझ्यो इणे नारि तो ॥१९॥
ए कन्या रामें वरीए, तेह भणीएह अहंकारतो ।
ए विवाह हुं भोलिसुंए, पाडि सुं दुख मझारितो ॥२०॥
इम कही ते नीसर्योए, गयो रथनपूर ग्रामितो ।
रूप लीख्यो सीता तणोए, मनमाहि धरी अभीमान तो ॥२१॥
ते तटलेई करी आंखियोए, वनमाहि अति चंग तो ।
भामंडल कुंवर रूयडोए, रमवा आव्यो मनरंगि तो ॥२२॥

क्रीड़ा करतां देखियोए, ते रूप अति हि विशाल तो ।
छोडी करी हाथि लीयो ए, निहाले गुणमाल तो ।२३।।
कन्या रूप दीठो रूवडोए, मोह उपणो मन माहि तो ।
ए रूप कीणे लीक्योए, केह तणो बली बली चाहे तो ।।२४।।
ते पटलेई की घरि गयोए, चिंता उपणी अति घोर तो ।
मोह उपणो तस अति घणोए, दुख धरेइ अति घोर तो ।।२५।।
माय बाप तव जाणीयए, तेह तणो विचार तो ।
कवणे पटएलीखियाए, कवने आण्यो इहां सार तो ।।२६।।
तीणे अवसरि नारंद देखीउए, आव्यो छे तिहां अति चंग तो ।
ए पट मे आण्या सहीए, आपणे मनतणे रंगि तो ।।२७।।
मथुरा नयर छे रूवडोए, जनक करे तिहा राज तो ।
विदेहा राणी तसु तणीए, करइ बहु पुण्य तणो काज तो ।।२८।।
तेहु बेहु कुंखे उपणीए, बेटी अति सविशाल तो ।
सीता नामे सुहावणीए, सीयल रूप गुणमाल तो ।।२६।।
मे दीठी ते सुंदरीए, जैसी रंभा चंग तो ।
तव मन माहि मे चितव्योए, आपणे मन तणें रंगि तो ।।३०।।
तह्म तणो पुत्र सुहावणोए, भामंडल गुणवंत तो ।
तेह जोग्य कन्या सहीए, इम जाणे जयवंत तो ।।३१।।
तेह तणो रूप निरमलोए, पटलीख्यी मे सार तो ।
इहां आण्यो उतावलोए, तह्मे सुणो विचार तो ।।३२।।
भामंडल इंद्र समोए, सीता इन्द्राणी जाणि तो ।
ए दुइ होए मेलावडोए, तो नीपजे सुख खाणि तो ।।३३।।
ए वात कुंवरे सुणीए, उपणो मोहे अधीकतो ।
सुख न पामे तेह विणए, करइ अनूदीन सोकतो ।।३४।।
इन्द्रगती राजा बोलावीयोए, मंत्रीय अतिहि सुजाण तो ।
जे कन्या नारंदे कहीए, ते चाहो गुणभाण तो ।।३५।।
आपुण विद्याधर सहीए, ते भूमिगोचरी राउ तो ।
तेह तणी कन्या किम मांगीजीए, ते तह्म कहो मझ भाउ तो ।।३६।।
तिहां जाई मांगीजोए, नवि दे कन्या सुख खाणि तो ।
प्रार्थना भंग होइ अति घणोए, उपजे बहु अभीमान तो ।।३७।।

वस्तु

तव मंत्री कहे, तव मंत्री कहे, सुणो तह्मे राज ।
दूत मोकली ताहां आपणा, जनक राजा आवीए विद्यावले ।
इहां आणी ने मांगी ए, ते कन्या गुणवंत । विनय करीए बुद्धि करे ।।
अह्म मनि रूचै ए वात, तह्मे विद्याधर रांय ।
भामंडल सुख उपजे, सजन तणा दुःख जाइ ।।१।।

भास माल्हंतडाणी

विद्याधर द्वारा घोड़े का रूप लेना

चपलगति विद्याधरोए सुण सुंदरी, माल्हंतडारे मोकल्या तिहा गुणवंत ।
तुरंगम रूप तीणे कर्योए, सु० मथुरा गयो जयवंत ।।१।।
धवल रंग अति रूवडोए सु०, दीसे ए गुण रूपवंत ।
वनमाहि आव्यो निरमलोए सु० ते तुरंगम बलीवंत ।।२।।
ते घोडो देखी करीए, सु०, हरख्यो जनक सुजाण ।
ते तूरंगम तिहां वसी कर्योए, सु०, बैठो जिम दिन भाग ।।३।।
ते घोटक अति सोहजलोए सु०, नाचेए अपछरा जिम ।
जनक खेलावए रूवडोए सु०, तुरंगम कला होए तिम ।।४।।
वेग दीयो पछे अति बलांए, सु० पवनवेग जिम जाइ ।
आचंभव नीपणोए सु०, हरख वदन हुवो राय ।।५।।
ए घोडो अह्म सांपड्योए, सु०, पुण्य तणे परभावि ।
केह तणोए तुरंगमए सु०, धरि बैठाए आज ।।६।।
गज दीठो वली रूली रूवडोए सु०, जनक राजा पुठे जाय ।
ते गज अदिष्ट हुवोए सु०, तव आचंभ्योराउ ।।७।।
पाछे तुरंगम वालीयोए सु०, आपणे मन तणे रंगि ।
तव तुरगम उछल्योए सु०, अगासि रहियो उत्तंग ।।८।।
आगसि थको वली चालीयोए सु०, जिम हंस गुणवंत ।
विज्यारधि ते आवीयोए सु०, सिद्ध कूट जयवंत ।।९।।
तिहां वन छे रूवडोए सु०, वन बहूलो ते जाणि ।
भमरा रण झण करैए सु०, कोइल मधुरी वाणि ।।१०।।
ते वन माहि लेई धर्योए सु०, जनक राजा जयवंत ।
घोडो तव अदिष्ठ हुवोए सु०, थानकी थयो बलीवंत ।।११।।

इंद्रगती बजावीयोए सु०, मधुरिय सुललीत वाणि ।
जनक राजा मई माणियाए सु०, वनमाहि वरियो सुजाण ।।१२।।
तव ते सयल आनंदीयाए सु०, आवइ सु परिवार ।
जिनवर सुवन सुहावणोए सु०, पूजवा जिम भवतार ।।१३।।
जनक राजा आचंभीयोए सु०, मनमाहि करय विचार ।
हुंहरी आण्यो सहीए सु०, इणे तुरंगिम सार ।।१४।।
तिहां थको आघो चालीयोए, सु०, दीठो जिन प्रासाद ।
तव मन माहिते हरष अपारए सु०, कीधो ते जय जय साद ।।१५।।
धजा दीठी तिहा लहकतीए सु०, कलस दीसे झलकंत ।
ते देखी मन गह गह्योए, सु०, जनक हुवो जयवंत ।।१६।।
जिन भुवन माहि पैठोए, सु०, कीयउ जय जयकार ।
देव दीठा अति निरमलाए सु०, वाद्या त्रिभुवन तार ।।१७।।

विद्याधर इन्द्रगति का जनक को प्रभावित करना

देव वादी मनि हरषीयोए, सु०, आव्यो रंग मंडपि ।
भय रहित तिहा बैठोए सु०, जिन शासणि चित रोपि ।।१८।।
तीणे अवसरि अति रूवडोए सु०, आव्यो विद्याधर राय ।
सयल सजन सिउ निरमलोए, सु०, मनि धरी बहु अति भाव ।।१९।।
गज घोडा रथ पायकीए सु०, विमाण आव्या बहु चंग ।
वाजित्र वाजे अति घणाए सु०, गीत गावे मनरंग ।।२०।।
इन्द्र गति राजा आवीयोए सु०, करता जय जय वाणि ।
पूज्या जिनवर मनि धरीए सु०, तव न कीयो सुख खाणि ।।२१।।
रग मंडपि पछे आवीयोए सु०, तिहा दीठो गुणवत ।
जनक राजा अति रूवडोए सु०, हरष उपणो जयवंत ।।२२।।
इछाकार कीयो रूवडोए सु०, कुसल पुछ्या समाधाण ।
कवण गामि थिका आवीयाए सु०, ते तह्म कहो सुजाण ।।२३।।
जनक राजा तव बोलीयोए सु०, मधुरिय सुललीत वाण ।
मथुरा नयर को राजियोए सु०, अस्व लाव्यो एक जाण ।।२४।।
तीणे तुरग मि हित कियोए सु०, आव्या हुइ मझ सार ।
तह्मे दीठा रूवडाए सु०, साधरमी गुणह भंडार ।।२५।।
तव चन्द्र गती बोलीयाए सु०, धन धन तह्म अवतार ।
सफल जनम हुवो अह्म तणोए सु०, तह्म आव्या सविचार ।।२६।।

तह्म दीठे मफ सुख घणोए सु०, वाध्यो परमह कंद ।
तह्मँ साधर्मि भेटीयाए सु०, तो हुवो परमानंद ।।२७।।
इम कही आलिंगयोए सु०, सुजन बोल्या तब वाणि ।
चालो घरि हवें जाईयाए सु०, तह्मे आवो सुजाण ।।२८।।
इम कही विमाने चढ्याए सु०, तो हुवो जय जयकार ।
मोहछव हुइ तिहां अति घणाए सु०, घरि आव्या सविचार ।।२६।।
प्रोहनाचार हुवो घणोए सु०, नाहण विलेपण चंग ।
जिणवर पूज्या मनरलीए सु०, स्तवन कर्‍यो मनरंगि ।।३०।।

विद्याधर द्वारा सीता की पुत्र के लिए मांग

पछे भोजन निरमलाए सु०, कीधा अति सविचार ।
गोठी करे पछे रूवडीए सु०, प्रीती हुइ तिहां सार ।।३१।।
चद्रगती पछे बोलीयोए सु०, मधुरिय सुललित वाणि ।
तह्म तणी बेटी रूवडीए सु०, रूप सोभागनी खाणि ।।३२।।
अह्म तणो पुत्र सुहावणोए सु०, भामंडल तेह नाम ।
तेहने कुंवरी देवो आपणीए सु०, रूप सीयल गुण ठाम ।।३३।।
जनक राजा तव बोलियोए सु०, ते बेटी मे आपी सार ।
रामचन्द्र गुणे आगलोए सु०, तेहने दीधी सविचार ।।३४।।
तीन्हो उपगार कीयो घणोए सु०, मलेछ जींत्या अतिथोर ।
अभय दाण दीयो रूवडोए सु०, संग्राम करीयो घोर ।।३५।।
राम-लक्षमण अति बलाए सु०, सूर्यवसी सिणगार ।
दशरथ राजा नंदनए सु०, गुण लक्षण अपार ।।३६।।
तो हवें किम करूं ए सु०, तह्म हि विचारो राउ ।
बोल कह्यो किम नीगमोए सु०, सफल किम करूं काय ।।३७।।
तव इन्द्रगति बोलियोए, सु०, तह्मे इन जाणो राउ ।
अह्मे ए विद्याधर रूवडाए, सु०, विद्या साधी करो काज ।।३८।।
अनेक विमाण अह्म कन्हेए सु०, अनेक विद्या गुणवंत ।
देव सभाएँ तोलियाए सु०, विद्याधर जयवंत ।।३९।।
ते छोडी अति बलाए सु०, भूमी गोचर ते दीण ।
तेह ने देसो निज बेटडीए सु०, किम सुख होसे लीण ।।४०।।
किहां चंदन कीहां कैरए सु०, चंपक समो तोलिए कैर ।
कीहां केवडो मालति ए सु०, किहां कदली संग कंटक बैर ।।४१।।

तीम हूमे विद्याधर रूवडाए सु०, हीण भूगोचरी राय ।
जो ब्रह्म को पूत अतिबलाए सु०, तो कह्यो काह्या जाम्य ।।४२।।
जनक राजा तब खोबीयोए सु०, आंख मीची तीणे वीर ।
काण बुधी रह्यो निरमलोए सु०, हो हो पाप अपार ।।४३।।
काहां आव्यो हुं तह्म घरिए सु०, किहां सुण्या एका बोल ।
विद्या केरो अति घणाए सु०, पाप मिथ्यातह तोलि ।।४४।।
भूमि गोचरा अति रूवडाए सु०, त्रिभुवन माहि ते सार ।
जिणवर गणधर मुनिवरए सु०, भूमि गोचरी अवतार ।।४५।।
चक्रवर्ति हुवा अति बलाए सु०, बलीभद्र जयवंत ।
वासुदेव अति रूवडोए सु०, पुरीष उत्तिम ए जयवंत ।।४६।।
तह्मे विद्या कीधी अतिघणीए सु०, तीणे आव्यो तह्म पाप ।
उत्तिम कूल जो निंदिय ए सु०, तो उपजे इ संताप ।।४७।।
तह्मे विद्याबले गरवीयाए सु०, ते तस गरव असार ।
इंद्र जाल बहु गारूडीए सु०, ते धरि विद्या अपार ।।४८।।
अगासिंही हो तह्मे अति घणाए सु०, तेह करो अहंकार ।
तीणो हासुं आवे मज अति घणोए सु०, पंखीहींडे निरधार ।।४९।।
निसंक वयण तीणे सांभल्याए सु०, जनक तणा सुविशाल ।
तव मन माहि ते लाजीयोए सु०, उगारह्या जिम बाल ।।५०।।

धनुष तोड़ने का प्रस्ताव

दूहा

इंद्र गती तव बोलियो, जनक राजा सुणो वात ।
आयुद्ध साला जाइए तह्मे आवो अह्म साथ ।।१।।
इम कही तव उठीया, आयुद्ध साला जाय ।
धनुष देखाड्या रूवडा, चंद्र गती तीणे राय ।।२।।
ए धनुष हुई निरमला, वज्रावत एक चंग ।
सगरावत दूजो जाणीए, देव निमी अभंग ।।३।।
य धनुष छे अति बला, जे चड़ावे ए राव ।
ते बेटी वरे तह्म तणी, अवर नहीं दूजो भाव ।।४।।
बल संख्या हूवें जाणवी, पुण्य तणो परमाण ।
एह धनुष वे वसी करे, ते सही सुजाण ।।५।।
नही तो बेटी तम्ह तणी, अह्म तणो पुत्र बिसाल ।
परणे सही गुण आगली, भामंडल गुणमाल ।।६।।

जनक राजा बोल मनियु, परवस पडीय महंत ।
तेह मनुष लेई आवीयो, विद्याधर सहित संत ॥७॥

ढाल नरेसू वाणी

विमाणे बैसी करीए, नरेसूवा, आव्या मथुरा चंग ।
सजन सयल आनंदीयाए न०, होई तिहां अभिनवारंग ॥१॥
विद्याधर वनि उतर्याए न०, जनक गयो निज घरि सार ।
चिंता मनि माहि उपणीए न०, राय तणे मनि फार ॥२॥
ते चिंता देखी करीए न०, विदेहा राणी बोलीवाणि ।
तह्य काइ आमणा दुमणाए न०, ते कहो कंत सुजाण ॥३॥
तव राजा तेह आगली एन०, कहीयो सयल विचार ।
राणी मनी दुख उपणोए न०, धीग धीग ए ससंार ॥४॥
ए बेटी मज रूवडीए न०, तेजासीहवें पर देसि ।
आगे कुंवर हरी लीयोए न०, हवें किम करूं जगदि देस ॥५॥

विवाह मंडप का आयोजन

तव राजा कहे सुंदरीए न०, भणी विहो तह्यभइ सुजाण ।
सैंवरा मंडप मडावीयोए न०, राय मेलो हो से बहु माण ॥६॥
इम कही तीणे रूवडोए न०, सैंवरा मंडप घाल्यो चंग ।
नयर बाहिरी ते अति भलोए न०, उत्तर देसि उत्तंग ॥७॥
कुंकोत्री तव पाठवीयए न०, देस विदेसि अपार ।
राज कुंवर ते आवीयाए न०, आव्या ते सविचार ॥८॥
कटक सहित अति घणाए नरे०, आव्या ते अतिहि जाण ।
राम लक्षमण बेहु आवीयाए नरे०, भर्त शत्रुघन भाण ॥९॥
मंडप माहि अति रूवडाए नरे०, सिंघासणि बैठा चंग ।
राज कुंवर रलीया वणाए नरे०, दोहु पासें मन रंगि ॥१०॥
मध्यवेदी मांडी रूवडीए नरे०, अतिहि सुरूप विसाल ।
पट्टोछाही निरमलीए न, झलमले अति गुणमाल ॥११॥

दूर दूर के राजाओं का आगमन

तस उपरि धनुष सुहावणाए न०, मेलह्या तिहां गुणवंत ।
धन ढांके ते ढांकीयाए न०, दीसेय अति बलीवंत ॥१२॥

सीता आवी तिहा रूवडीए न०, सुंदरी सहित सुजाण ।
सरसी कन्या निरमलीए न०, सातसे गुण खाणि ॥१३॥
उलखावे भूप रूवडाए न०, चाहे आपणे मनिरंगि ।
सीता निहाले निरमलीए न०, जो वय ते रूप उत्तंग ॥१४॥
गूजर देश सुहावणोए न०, ते देस को भलो राइ ।
वीरद मन अति रूवडोए न०, सीता सुणो तह्नो भाउ ॥१५॥
अवंति देस को राजियोए न०, श्रीपाल एहनो नाम ।
रूप सोभाग्य आगलोए न०, बलीवंत गुण ग्राम ॥१६॥
सीध देस नो राजियोए न०, प्रजापाल एह नाम ।
पृथवीपाल जमलो बैठोए न०. सौरठ देश का अभिराम ॥१७॥
मरहठ तिलंग का रूवडाए न०, आव्या अति बहु राय ।
अवर देस का अति बलाए न०, अनेक भूप राम राय ॥१८॥
दुही बोली कुंवर बैठायए न०, हावभाव करे चंग ।
मुछ समारे आपणीए न०, बखे पणे मनिरंग ॥१९॥
मुख कमल एक रूवडाए न०, आरीसो जोव ए सार ।
एक कुंडल झलकावताए न०, एक मुकुट सविचार ॥२०॥
एक हार देखाडतोए न०, एक ते भूषण चंग ।
एक ते पीडी ले रूवडीए न०, आपणे मनतणे रंग ॥२१॥
मधुरे स्वरें एक आलवेए न०, काव्य कहे एक सार ।
इणे परिमोह विकार घणाए न०, करे ते अतिहि अपार ॥२२॥
तव बंदीजन बोलीयाए न०, वीदावली सविशाल ।
धनुष चढावे अतिबलोए न०, तेह वरे गुणमाल ॥२३॥
तव सर्वे आनंदीयाए न०, मनमाहि धरे अहंकार ।
एक कहे हुं चढावी सुंए न०, ए धनुष्यो विचार ॥२४॥

अन्य राजाओं की धनुष तोड़ने में असफलता

धनुष सामो चालीयोए न०, मालव देश को राउ ।
वेदी आगलि उभो रह्योए न०, धनुष उपरि धर्यो भाव ॥२४॥
ए बेटी वरू मनरलीए न०, तोहुं राज कुंवर ।
इम कही ते उठीयोए न०, धरियो मनी अहंकार ॥२५॥
धनुष लेवा उतावलोए न०, हाथ घाल्यो निज चंग ।
हाथ चंपाणो तेह तसोए नरेसुवा, धनुष हेथील हुवो भंग तो ॥२६॥
तव वेदना उपणी घणीए नरे, करई ते अति बुकार ।
माय बाप तीणे समरीयाए न०, न्हासी आव्यों तीणे वार ॥२७॥

मरहठ देस को राजियोए नं०, ते उठ्यो अभिमाण ।
धनुष भणी ते चालीयोए न०, आपणा बुध बखाण ॥२८॥
धनुष आवलि उभो रह्योए न०, तिहां दीठो तीणे साप ।
तब मनमांहि भय उपणोए न०, एता बहु संताप ॥२९॥
मेद पाटण केरो राजिओए न०, उठ्यो ते परचंड ।
तीणे सिंध दीठो अति बलोए न०, तब मन तणो हुवो भंग भंड ॥३०॥
कामेज देस को राजियोए न०, पैज करे ते थोर ।
तीणे बाघ दीठो अति बलोए न०, भय उपणो तस घोर ॥३१॥
ते धनुष अति रूवडाए न०, विकार करए अपार ।
ते देखी भग पामीयाए न०, न्हाटा ते अविचार ॥३२॥
मात मात करिकें पडेए न०, केले बबब नाम ।
संकट पडिया अति घणाए न०, किम जाउ हुवे गामि ॥३३॥
एकुड माड्यो सहीए न०, दुष्ट राजा सही थोर ।
सघात मरण आव्यो सहीए न०, आपण थोर ॥३४॥
काल नीमो आपणोए न०, कुंवारा रहिए चंग ।
नही परणो एह सुंदरीए नरे सूवा, इणे आर्य्ये हुवे भग ॥३५॥
एक कहे जो जीवि सुंहुंए न०, तोले सुं संयम भार ।
ब्रह्मचर्य जलेड निरमलोए न०, सौख्य तणो भंडार ॥३६॥

राम को धनुष तोड़ने में सफलता

अवर कन्या अह्मे परणी सुए न०, रूप विहुणी बाल ।
इणे रूपे हवें कंस्युं करूए न०, दुःख संकट तणो माल ॥३७॥
तब भाट वली बोलियाए न०, श्रीदावली गुणवंत ।
सूर्यवंस तणी निरमलीए न०, गुण वर्णवे जयवंत ॥३८॥
राम लक्ष्मण बहु वाणीयाए न०, भरत शत्रुघ्न सार ।
वाट जोय के तह्य तणीए न०, ए धनुष सविचार ॥३९॥
लक्ष्मी घर तब जोइयोए न०, राम तणो मुख चंग ।
तब रामदेव उठीयाए न०, आवणे मनी रंग ॥४०॥
धनुष भणी चालियाए न०, भद्र जाती जिम गाज ।
देखी आवलि ऊभो रह्योए न०, रामदेव गुण राज ॥४१॥
पंरिकार आव्यो आपणोए न०, जिसको हाथ कीयो सज्ज ।
पराक्रमी अतिबलोए न०, पुरष मुख्य तणो अज्ज ॥४२॥

सहज रूप धनुष धर्यो ए न०, छोड्यो सयल विकार ।
अछाड़ धरतीकीयोए न०, भ्रामण करए अपार ॥४३॥

वस्तु

ते धनुष तिहा ते धनुष तिहां, तव लीयो निज हाथि ।
चढायो तिहां रंग भरी, पुण्य प्रभावे सार मनोहर ।
टणाकार कीयो अतिबलो, नाद उपणो तिहां अतिहि दुरंधर ॥
मेदनी नगर मे हुवो आचंभ अपार ।
सजन लोक आनंदीयो, नीपणो जय जयकार ॥१॥

भास मिथ्यात मोड़की

धनुष चढावी करी लीयो, सोहे जैसो इंद्र ।
जगा जोती ते विस्तर्यो, जाणे दिनकर चंद्र ॥१॥
हरष उपणो तिहां अति घणो, नीपणा जय जयकार ।
सयल राजा आचंभिया, रंथभिया रह्या जिमसार ॥२॥

सीता द्वारा राम का वरण

सीता मन आनंदीयो, कंठि घाली वरमाल ।
चंद्र रोहिणी जिम सोहिया, मोहिया ते गुणमाल ॥३॥
सिंघासणि बैठा निरमला, सोहजला जिम गुण रत्न ।
चमर ढले अति उजला, सोहजला जिम सील जल ॥४॥
लक्ष्मीधरे ते निजबले, बलीय चढावयो चग ।
सागरावृत धनुष रूवडो, सूवडो अतिहि सुरंग ॥५॥
चद्रवर्द्धन राजा कुंवरी, सुंदरी अति सकुमाल ।
अढार कन्या आवी कामिणी, भीमणी घाली वरमाल ॥६॥
लक्षमी धर अति सोहियो, मोहियो अति हि सुजाण ।
सिंघासणि बैठो निरमलो, सामलो जिम मेघवाण ॥७॥
कनक राजा तणी कुंवरी, लोक सुंदरी तेह नाम ।
भरत वर्यो तीणे मनरली, सोहजली जिम कुसमभास ॥८॥
प्रजापाल केरी कुंवरी, मनोहरा तेह नाम ।
शत्रुघन वर्यो तीणे मनरली, सुहजली जिम कुसमाला ॥९॥
च्यार कुंवर सुहामणा, भामणी वरिया सुजाण ।
पुण्य प्रभावे निरमला, सोहजला जिम ससीभाण ॥१०॥

घरि घरि तलीका तोरण, तोरण मंडप सार।
च्यारि कुंवर सिणगारिया, चारिया गज सविचार ।।११।।
छत्र सोहे अति निरमला, उजला चमर ढलंति।
गीत गावे वर कामिणी, भामिणी नाच करंति ।।१२।।
ढोल तबल बहु वाजे, गाजे अंबर सार।
भेरी मुंगल गहगहे, घणा, लहके धजा सविचार ।।१३।।
वर राजा तोरणि आवीया, आवीया सजन सुजाण।
सासू कीयो पुह कणो, अति घणो दीयो बहुमाण ।।१४।।
चंवरी सोहे कनक तणी, अति सोभा विसाल।
परणी कुंवरी तिहा निरमली, सोहजली रूप गुणमाल ।।१५।।
परणी कुंवरी घरि आवियाए, आविया सजन सुजाण।
माय बाप सुख उपणो, सजन हुवो बहु भाण ।।१६।।
मनोरथ पूरा अति घणा, तेह तणा सुणो गुणवंत।
जिण हरी दीयो बधावनो, भावणो अति जयवंत ।।१७।।
सयल राजा मोकलाविया, आवीया निज निज गामि।
दशरथ राजा जयवत, बलीवंत आव्या निज ठामि ।।१८।।
विद्याधर पाछा गया, रहिया ते मान विहूण।
भामडल तिहा दुख उपणो, नीपणो अति अभिमाण ।।१९।।

दूहा

एकथा हवे इहां रहे, अवर सुणो विचार।
दशरथ राजा राजकरे, अयोध्या नयर मझारि ।।१।।

× × ×

सीता का राम के प्रति संदेश

भास जीवडाती

संदेशो एक मझ तणो हो, कहिजे तू अति चंग।
राम आगलि सुहावणो हो, परम तणो प्रसंग ।।७।। जीवडा।
सीयल राखो मे आपणो हो, मन वच निरमल काय।
रामवंश कीरति मे थुं राखी हो, आप मरे संकटे थाय।
हे जीवडा करम केरो सभाव ।।८।।
मे राख्यो सील वरमे हो, लोक वचन थकी भाझ धाज।
जिम अचल मेर निरमलो, जिणवर तणे पसाय। हो जीवडा ।।९।।
वासर मुझ ते लोकतणो हो, ते कही किम वसि थाय।
लोक तणो ओलकाणो वर्यो हो, न समर्यो समकित जाय।जीवडा।।१०।।

लोक तणो भयहूं सही हो, तिम जिणधर्म्म मत छोडि ।
सत्य पदारथ छोडि हो, तो श्रावै बहु खाडि । जीवड़ा ।।११।।
म्हाकं कर्म्म छे मझ कन्हे हो, निरंजन वनहू मझारि ।
तहां सुखें राज करो हो, रामदेव सुख विचारि । जीवड़ा ।।१२।।

वन में राजा बज्रजंघ को सीता द्वारा अपना परिचय देना

भास रासनी

जनक राजा करी बेटडीए, विदेह मझ तणी माय तो ।
भामंडल बंधव सुणोए, विद्याधर को राय तो ।।१४।।
दशरथ ससुरो मझ तणोए, कौसल्या सासु रूडी जाणि तो ।
रामकंत छे मझ तणोए, देवर लक्षमण जाणीतो ।।१५।।
वर मांग्यो केगामति ए, भ्रह्म छे हुवो वनवास तो ।
रावण तिहा थकी हरी गयोए, वनहू माहि राखी निरवासलो ।।१६।।
तिहां सयल राख्या मे निरमलोए, जैसीए खंडा धार तो ।
वली रामे जूंझ कीयोए, रावण पाड्यो प्रविचार तो ।।१७।।
मझणे लेइ करि आवीयोए, पाछो आव्यो गाम तो ।
सुख भोगवउ तिहा घणुंए जिणवर पाव सीरनामि तो ।।१८।।
प्रजा लोक अति पालीयाए, रामे अतिहि विसाल तो ।
धन कनकरी पूरीयाए, लाडं चढ्या जिम बाल तो ।।१९।।
अन्याय करे पापीयाए, सीयल लोपे गमार तो ।
नर नारी अज्ञानी जीवडाए, अनाचार करे अपार तो ।।२०।।
द्रिष्टांत देइ पापी मझ तणोए, आल चढाव्यो फोक तो ।
रामचंद्र आगलि कह्योए, मे दन आणे लोक तो ।।२१।।
लोक पयण काणे धर्याए, भय उपणो मन माहि तो ।
निरधार एकली इहां रहुंए, तु बंधव हूवे चाहि तो ।।२२।।

अन्तिम भाग

भाग चौपइनी

आठमा बलीभद्र सविसाल, रामदेव हुआ स्वामी गुणमाल ।
चरित्र जोड्यो मे निरमल भाउ, पढतां लाभे सिवपुरी ठांउ ।।१२।।
पढे पढावे पाणी जे गुणवंत, सुललीत बखाणे जयवंत ।
एक चित्त करी सुने जे नरनारी, तेहू जयवंता होइ संसार ।।१३।।
मन वांछित फल तेहने होइ, तिमतिम सुख सम्पदा करे जोइ ।
वलो सरण सुगति सुख होइ, तेहू तोले अवर न कीजो कोइ ।।१४।।

मन इच्छित फल तेहूने सार, लाभेए पुण्य तणो भंडार ।
विघन सयल होइ विनास, सुख तणो ओघ निरंतर वास ।।१५।।
एहि लोकि परलोकि ते जयवंत, सुमति तणा होइ ते कंत ।
अचल ठांम ते लेहू ते सार, अचल सौख्य तणो पावे भंडार ।।१६।।

दूहा

श्री मूल संघ अति निरमलो, सरसती गछ गुणवंत ।
श्री सकलकीरति गुरु जाणीए, जिम शासणि जयवंत ।।१।।
तास पाटि अतिरूवडा, श्री भुवनकीरति अवतार ।
गुणवंत मुनी गणे आगला, तप तेज तणा सोहे भंडार ।।२।।
तीह्न मुनिवर पाय प्रणमीने, कीयो मे रास सार ।
ब्रह्म जिणदास भणे रूवडा, पढता पुण्य अपार ।।३।।
सीख्य मनोहर रूवडा, ब्रह्म मल्लिदास गुणदास ।
पढो पढावो बहु भावसु, जिम होइ सौख्य निकास ।।४।।
भवियण जीव संबोधिया, कीयोए रास मे सार ।
अनेक गुणे करी आगलो, दया तणो बहु भंडार ।।५।।
सवत पन्नर अठोतरा, मंगसिर मास बिसाल ।
शुकल पक्ष चउदिसी दिनी, रास कीयो गुणमाल ।।६।।

वस्तु

रास कीयो रास कीयो, अति मनोहर ।।
अनेक कथा गुणि आगलो, राम तणो सुणो सार निरमल।
एक चित्त करी सांभलोए, भावधरवि मनमांहि उज्ज्वल ।।
श्री सकलकीरति पाय प्रणमीने, ब्रह्म जिणदास भणे सार ।
पढे गुणेजे सांभले, तेहूने पुण्य अपार ।।

।। इति श्री राम रास समाप्त: ।।

७ हनुमंत रास[1]

मंगलाचरण

वस्तु

पद्मप्रभ जिन, पद्मप्रभ जिन नमु ते सार ।।
तीर्थंकर ये निरमला, वांछित फल बहुदान दातार ।
सारदा स्वामिनी वलीस्तवं, बुद्धिसार हुं वेग मागु ।।
श्री सकलकीरत्ति गुरु प्रणमीनि, ब्रह्म जिणदास भणि चंग ।
रास कहुं अति रूवडो, श्री हणवत तणउ मनरंग ।।

भास वीनतीनी

प्रारम्भ

भवीयण भावि सुणउ आज, कथा कहुं निरमलीए ।
हणवंत वीर सुजाण, गुण वर्णवूं भाव धरीए ।।१।।
जंबू द्वीप मझार, भरत क्षेत्र जगि जाणीइए ।
भरत क्षेत्र मझारो, मगधदेश वरवाणीइए ।।२।।
मगधदेश मझारि, राजग्रह नयर वखाणिइए ।
श्रेणिक राजा जाणि, सम्यग्दृष्टी मानीए ।।३।।
पूज्या जिणवर पाय, नमोस्तु कीउ स्वामी वलीए ।
श्रेणिक राणउ जाणि, वदण चाल्यु मनरलीए ।।४।।
सुण्यु धर्म विचार, तत्व पदारथ मन धरीए ।
हवु परमानंद, हरख्यु राजा गुणधरीए ।।५।।
पछि उठयउ सुणव्रत, दोय करी जोडी विनय करीए ।
हणवत हनुं बलवंत, वानरवंशी इम कहीइए ।।६।।
कि वानर पशु होइ, कि तेहज जाणीइए ।
मिथ्यात मत मझार, अनेक परि सुण्यु मि धणीए ।।७।।
जु पशु एह होइ, वयण अक्षर किम उचरिए ।
हडंबा अतिघोर, सूकी सीता तणी किम होए ।।८।।

---

१. प्राप्ति स्थान : श्री दिगम्बर जैन अग्रवाल मन्दिर, उदयपुर । पत्र सं. १–३।
वेष्टन सं० प्र. नं. ४०, लिपिकाल सं० १६३ ।

बाल ब्रह्मचारी घोर, मकरध्वज केंदु कहीं कहिए ।
ए विरोध कथा घोर, ते मन मांहि किम बलिए ।।९।।
अंजना सुंदरी गुणमाल, शीलवंती अति निरमलीए ।
तेहनि वानरी कहि घोर, मिथ्याधि पति बहु बलिए ।।१०।।
चपल पवन ते वाय, ते एकेन्द्री जाणीइए ।
तेहनि कहि बाप हणावंत तणो वर वरवाणीइए ।।११।।
ते संसै निवार, जिणवर स्वामी मझ तणाए ।

× × ×

भास माल्हंतडानी

हनुमान का जन्म

चैतमास उजालडोए, सु०, आठमी के दिन जाणि ।
पाछली रयणी सुहावणोए, सु०, नक्षत्र सुभ वाणि ।।१५।।
अजना सुंदरी तव बोलियुंए, सु० वसंतमाला सुणो सुचंग ।
पेट दुखे छे मझ तणोए, सु०, शरीर होइ छे भग ।।१६।।
वसंतमाला कहे कामीनीए, सु०, तु अनजाण बाल ।
प्रसूत होमे निरमलीए, सु०, आज सही गुणमाल ।।१७।।
इम कही उठी भामीनीए, सु०, वसंतमाला सविचार ।
अंजना कन्हे गइ कामिनिए, सु०, सुश्रुशा करइ अपार ।।१८।।
तीणे अवसरे पुत्र जनमीयुंए, सु०, अजना सुंदरी गुणवंत ।
उजालो पड्यो अति घणोए, सु०, गूफा माहि जयवंत ।।१९।।
आनन्द घणो उपणोए, सु०, नीपणो जय जयकार ।
उछंगे बालक लियोए, सु०, अंजना बोली तीणे बार ।।२०।।
आज पुत्र मे जनमीयोए, सु०, गिरीकंदर माहि बाल ।
जात मोहछव कोणकरए, सु०, सजन रहित सकुमाल ।।२१।।
कहा थको मादल आणीए, सु०, कहा थको अणाउं नूर ।
धवल मंगल कोण गावसीए, सु०, माहियर छे मझ दूर ।।२२।।
तेल विण किम चोपडुए, सु०, रूइ विण किम करूं वाती ।
पालणा विण किम हिंडोलडोए, सु०, दैव लइ मझ घाट ।।२३।।
इम कही कही रडे सुंदरीए, सु०, दैव उलंभाइ देए ।
वली वली बालक नीरखए, सु०, हृदय कमलिस्युं लेइ ।।२४।।

वसंतमाला कहे भामिनीए, सु०, दुख मझणी धरो गुणमाल ।
तह्म तणा दुख बहु फेडसिए, सु०, ए बालो सकुमाल ॥२५॥
कपूर ठामे कपूर पडेए, सु०, वरमीय परम विशाल ।
तिम तह्म कंत भाविसिए, सु०, सुख होसे गुणमाल ॥२६॥
दिन दिन बालक वृद्धि करए, सु०, सोहावणो जिम चंद्र ।
नागकुमार जिम सोहियोए, सु०, दीठे परम भानन्द ॥२७॥
क्षीण हसे क्षीण रडेए, सु०, क्षीण क्षीण मांडेए भाल ।
क्षीण रोवे क्षीण मुइं पडेए, सु०, क्षीण उपजावे मोहजाल ॥२८॥
जिम जिम मूरकले सूत हंसेए, सु०, तिम तिम माय सतोस ।
बतीस लक्षण करील कर्योए, सु०, देह दीसे नीर दोष ॥२९॥
रीझे कुवर सुहावणोए, सु० झलफल करए अपार ।
चपल दीसे रलिया वणोए, सु०, जाणो मेदनी हार ॥३०॥
अंजना सर्वे दुख विसर्याए, सु०, बाल दीठा पूठें चंग ।
खेलावे सोभागीणीए, सु०, आपने मनतणे रंग । ३१॥

अमितिगति मुनि को कैवल्य प्राप्ति

अभीतीगती मुनी तप करए, सु०, अवर गुफा जिम भाण ।
ध्यान बले कर्म क्षय करीए, सु०, उपणी केवल न्यान ॥३२॥
आसण काप्या तव सुरतणाए सु०, आनद उपणो हृदय न माय ।
देव सवे तिहा आवीयाए, सु० पूजवा मुनी पाय ॥३३॥
विद्याधरि भूमि गोचरीए, सु०, आवीय भवियण सार ।
केवली पूजा निरमलीए, सु० सुणवा धरम विचार ॥३४॥
तीणे अवसरि तिहां आवीयोए, सु०, अजना माडलो चंग ।
यात्रा करी मुनिवर तणीए, सु०, पाछो वल्यो मन रंगि ॥३५॥

विमान का रुकना

परवत उपरि आवीयोए, सु०, विमान थंभ्यो जिम थंभ ।
बालक रोवे सुहावणोए, सु०, राख अंजना रभ ॥३६॥
सूरिज अवे सांभल्योए, सु०, तेहतणो साद विशाल ।
तव विमान थकि हेटो आवीयोए, सु०, गूफाद्वारे गुणमाल ॥३७॥
तव दीठी दुइ सुंदरीए, सु०, रूप सोभागणो ठाम ।
सुंदरी दीठी रूवडीए, सु०, उछंगि बालो माण ॥३८॥
तव विस्मयनि पामीयोए, सु०, अंजना माझो सार ।

कुटुंब सहित तिहां आवीअए, सु०, परवत गुफा मझारि ॥३९॥
तब अंब मनि बहु उपनोए, सु०, सुंदरी मनि बहु चोर ।
कि सजन मझ कवडोए, सु०, कें वैरी मझ चोर ॥४०॥
डावो डोलो मझ फरकतोए, सु०, निरमल अति गुणवंत ।
सजन सही मुझ आवीयोए, सु०, वसंतमाला जयवंत ॥४१॥
वसंतमाला उतावलीए, सु०, उठीय मन तणे रंगि ।
बैसणो मुक्यो पाणतणोए, सु०, सजन बैसो इहां चंग ॥४२॥
बैठो विद्याधर निरमलोए, सु०, बोल्यो मधुरिय वाणि ।
कहो कामीणी तह्मे केह तणीए, सु०, मझ आगलि सुजाणि ॥४३॥
कवण कारणे तुह्मे आवीयाए, सु०, वनमाहि कहो गुणमाल ।
वसंतमाला तब बोलियुंए, सु०, सयल वृतांत सविसाल ॥४४॥
तव विद्याधर बोलीयोए, सु०, ए मझ भाणेज होए ।
तह्मे उठो सीलवंतिए, सु०, मझ मुख साहमउं जोइ ॥४५॥
तह्मे दुख बहु पामीयाए, सु०, तीणे गयो बहु रूप ।
मेनउलखी सहोदरिए, सु०, इम कहे तव भूप ॥४६॥
अंजना सुंदरी तब जोईउए, सु०, मामा तणो मुख चंद ।
उलखीया रलिया वणोए, सु०, नीपणो परमानंद ॥४७॥
तब उठी सोभागीणीए, सु०, आलिंगण दीयो गुणवंति ।
तब रडेले दुख भरीए, सु०, मामो वरजे जयवंत ॥४८॥
पछे आलिंगन दीधा निरमलाए, सु०, मामाय स्नेह अपार ।
अवर सजने कोटि धरींए, सु०, अंजना बाल सकुमार ॥४९॥

वस्तु

सजन सर्वे तिहां, सजन सर्वे तिहां, बैठा सुजाणि ॥
मुख पखाल्यो निरमलो, अंजना केरो सार मनोहर ।
सुख दुख गोठी बहु करीयली, मायो बोल्यो सविचार मनोहर ॥
हवे चालो घरि आईय, पुत्र सहित सुणो बाल ।
जात महोछव तिहां घरिकरूं, वली सुणो गुणमाल ॥१॥

भास सहीयणी

तब अंजना बोल भाखियोए, वसंतमाला वखाणीयोए ।
विमान आण्यो तिहां अति रूयडोए, सहीए ॥१॥
विमाने बैठी तब सीलवंति, सती सीरोमणी गुणवंति ।
उछंगि बालकलीयो मुखलितोए सहीए ॥२॥

बालक का विमान से खेलते हुए नीचे गिरना

रतन जडीत विमान दीठो, बालक तस्रो चीत तिहा बैठो ।
मोतिय झूंबकालिउ कीडा करेए, सहीए ॥३॥
मोतिय लेवा सोहबलो, उछल्यो ते अती बलो ।
मोतिय सरीसो पडीयो गुणतिलोए, सहीए ॥४॥
हाथ माहि नवि सांपडिउं, तव कुंवर हेठो पडिउं ।
प्रबल चूर्णं कीयो तिने अती घणोए, सहीए ॥५॥
पाखाण फूटा तव अतिघणा, वृक्ष तूटा तेह तणा ।
सीला महाचूर्ण हुइ तव अति घणीए, सहीए ॥६॥
लुवंत लुवंत गइउ, तलि सीला उपरि रहीउं ।
उतारणो रहीउं कुंवर अति बलोए, सहीए ॥७॥
अंगूठो धावे जीमणो, पायताडे डांवो घणो ।
मेदनी भ्रम भ्रमे अति थरहरेए, सहीए ॥८॥
हाहाकार तव नीपणो, दुख घणो वली उपणो ।
अंजना रोदन करे तव अति घणोए, सहीए ॥९॥
हाहा बाला काई पडियो, तुझ मोहे मझ मन जडियो ।
निरधार मुकी वछनु किहां गयोए, स० ॥१०॥
सांसारि पिहरे हुं अवहरी, तुह्य तणो मोहे पुत्र भरी ।
काई विजोग कीयो हुं परहरीए, स० ॥११॥
मामा मे तह्य देखीया, सजन सहित मज भेटिया ।
मुझ संतोस हुवो बहु अती घणोए स० ॥१२॥
हवेए दुख नव्ो हुवो, पुत्र तनो विजोग जुवो ।
ते दुख मामा हवें कहो किम सहुंए, स० ॥१३॥
हवे मामा चालो जाईए, सद्गुरु स्वामी ध्याइए ।
वांदिने संयम लीजे रूवडोए, सहीए ॥१४॥

निमित्त ज्ञानी की भविष्यवाणी

निमिती हो तो एक ग्यान धणी, ते बोल्यो सुलली.त वाणि ।
पुत्र जीवे छे तह्य तणो रूवडोए सहीए ॥१५॥
जन्मोत्तरी अतीसार, मे भेरवी महा विचार ।
तेह माहि पुण्यवंत होसे अति बलोए, सहीए ॥१६॥
मुगुट बद्ध राजा होसी, सजन जन मन मोहसी ।
उपगार करसी परने अति घणोए, स० ॥१७॥

चरम देही गुणे आगलो, मुगति गामी मर्लो निरमलो ।
बज्र काय छे सोह धरी एह तणोए, सहीए ॥१८॥
इम वाणी निश्चोकरी, दुख म धरो तह्मे सुंदरी ।
ए बालो जयवंतो छे तह्म तणोए, सहीए ॥१९॥
तब मामो तिहां हरखीयो, दाण बहुं तेहने दीयो ।
जोवाने तिहां गयो वली रूवडोए, स० ॥२०॥
तब कुंवर तिहां देखीयो, आनन्द मनमाहि हुयो ।
विस्मय पामीयो तिहां अति घणोए स० ॥२१॥
तीन प्रदक्षणा तब दीधी, भावना मन माहि कीधी ।
चरण कमल वांद्या बालक तणाए स० ॥२२॥
तब बालक उछंगि लीयो, हरष वदन मामे कीयो ।
अंजना ने हाथें दीयो तब रूवडोए स० ॥२३॥
बालक दीठो आपणो, तब सुख हुवो अती घणो ।
आनंद हुवो, बहु दुख गयोए, स० ॥२४॥
कमल कदली जिम कोमला, अम्ह तणा बालक सकुमाला ।
कठीन दगड तह्मे किम चूरकीयाए, स० ॥२५॥
इम कही सामोजोयो, सीलकुमार तस नाम दीयो ।
मलइ होइ जोतु पुन्न अह्म तणाए, स० ॥२६॥
गूफंख माथि निरमली, जिनवर समर्‌या मनरली ।
तिहा थिका चाल्या निजगामहू भणीए, स० ॥२७॥
हनुरुह पाटण आवीया, सजन जण मनि भाविया ।
मोहछव कीयो निरमल अति घणोए, स० ॥२८॥
तिहा रहे रलीयावणा, दीसंता बहु सुहावणा ।
मामणा कुंवर सहित कोडामणाए, स० ॥२९॥
एक कथा हवें इहां रही, अवर कथा सुणो सही
पवनंजय तणी रूवडीए, सहीए ॥३०॥

दूहा

पवनंजय पशु रह्यो, अंजना भवरी चंद ।
दशानन युद्धी करी, पांचेनिवरूपी अमरंचि ॥१॥
अंजना सुंदरी मनमाहि धरी, उतावलो आव्यो गुणवंत ।
अवर मनावो आवीयो, पवन आवे जयवंत ॥२॥

पवनंजय का अंजना के बिना दुखी होना

भास पुत्र रासनी

नयरीए सीरणगारीय चंग, तलीया तोरण झल मगई ।
बाजेए ढोल नीसाण, हय गय पारण पामीए ।।१।।
आवीया कुंवर सुजाण, माय बाप सुख उपणोए ।
सजन तणी तव पूरीए आस, जय जयकार तब नीपणोए ।।२।।
मनमाहिए मोह अपार, अंजना उपरी अति घणोए ।
तिहां थिको उठ्यो राउ, घर तब दीठो अंजणा तणो ।।३।।
नारी एन देखे य चंग, तब भंग मन पामीयुं ।
जण जण कन्हे पुछे ए बात, वृत्तांत मणे भासीयुंए ।।४।।
पुछीय उं एक बालक ने चंग, तीणे सत्य वयण बोलीउए ।
तह्य तणीए नारि सुजाणि, आल चढाव्यो केत भतिए ।।५।।
नीकाली ते अबला बाल, माहेरि गई ते आपणोए ।
तिहाथि को उपणो दुख, पवन चाल्यो कोय घणोए ।।६।।
प्रहसीतए मीत्र सुणोबात, ससुरो नही दीठो आपणोए ।
परणीए य लगे सुजाणि, सुख न हुवो तेह तणोए ।।७।।

अंजना की खोज में पवनंजय का भ्रमण

हवें चालोए कटक सहित, महिमा दे खाडो आपणोए ।
तिहां रहुंए बहुत दीवस, याहा हवें तेह तणीए ।।८।।
इसुं कहीए चालीउंवीर, मनोरथ मन माहि बहु धरिए ।
तीहा देखी सुंए नारि सुजाणि, नयण निहाली सुं गुणकरीए ।।९।।
वारेए चालंतां वीर, जिन भुवन देखी निरमलोए ।
इह्य आविय हो सेनारि, जिनवर पूजवाउ जलोए ।।१०।।
इम कही चालेए वीर, पाछो वले सोहामणोए ।
इणे परिए देखे यवन्न, भ्रांति, उपजे बहु भामीणीए ।।११।।
बधावणी मोकली सार, नयर माहि अति निरमलोए ।
सजनय करए विचार, अंजना नहीं दुखे कलतोए ।।१२।।
कैसो परि उत्तर सार, देखसुं आपणे सोहामणोए ।
काहा थकीय आणीय बाल, अंजना सुंदरी शीलवंतीए ।।१३।।
सजन सहित करइ विचार, बोल साचो पवन केरोए ।
तेह विणा र दुखणी जाण, मापणी मती नही गुणवंतीए ।।१४।।

पश्चाताप करे सहु कोइ, सजन मन माहि चोंता चोंकल्याए ।
न देखेय तीहां सुरामाल, तब सवें माछा वल्याए ॥१५॥
आपणी आपण निंदा सहू कोई, कहै सजन बहो पामीयाए ।
अप्रीछीय कीधो बहो काल, तीणे हुवे बहु मन पश्चातपणियाए ॥१६॥
नीरदोष ए दीजेए होष, ते मुख हो कालाआपणाए ।
सुललीय जमाईए आज, तूटो भाग्य नहीं आपनोए ॥१७॥
हुवें मौन ए करी रहो सहूकोई, अंजनातणी वात करणी करोए ।
आदर ए देउं बहु मान, अंबाई आव्यो गौरव घरोए ॥१८॥
तीणे अवसरिए आव्यो राउ, पवनंजय सुखे आगलोए ।
तलिया तोरण सहू बार, बांध्या तीहुं तिहां उजलाए ॥१९॥
महिंद्र राउए हरखो तीणेंवारि, आलींगन दीयो रूवडोए ।
भेटीया सजन सुजाण, अंजना ने मोहे बड्योए ॥२०॥

पवनंजय का विलाप

न देखे ए अबला बाल, विलखूं मनमाहि हुवो घणोए ।
विहूलए हुवो अपार, हृदय कमल फाटे तेह विणए ॥२१॥
अजना ए बंधव सार, तेह तणी बेटी छे रूवडीए ।
रूपवंतीए तेहनु नाम, जाण कनक रयणे जडीए ॥२२॥
तेह कन्हेए पुछीयवात, किहां गई फूइ तह्म तणीए ।
बोलिय ते सकुमाल, फूइ निकाली मझ तणीए ॥२३॥
मझ तणे पीता माहाजाण, महिंद्र राजा छे अतिबलोए ।
सीयल तणो ए तवी कीधो विचार, नीकाली कोपे आगलीए ॥२४॥
घर थकिए नीसरी बाल, हुई कामीनी गुण आगलीए ।
वनमाहि ए गई सुजाण, दयालवी कीधी निरमलीए ॥२५॥
सांभलीए वालीए वाणि, वजए वाजियोए ।
धीग धीग ए संसार, इम कही मन लाजीयोए ॥२६॥

पवनंजय की वेदना

तिहां थकोए नीसर्‌यो सुजाण, वनमाहि ते आवीयोए ।
फीरी फीरीए जोयए नारि, कही न देखे दुखए पामीयाए ॥२७॥
किहां गईए सुंदरी नारि, वनमाहि झूरि कामिणीए ।
वाघ सिंघय खाधीए जाणि, कि मरण पामी भामीनीए ॥२८॥

किनर आइ जती मयो जाणि, पछि दीक्षा लीधी निरमलीए ।
अर्जिकाई हुइ गुणमाल, तप करवा अति उजलाए ।।२६।।
परिहरिए बार वरिस, ते पाप लायो मझ सहिए ।
नारिए मे दीधो दुख, ते दुख पाम्यो मे सहिए ।।३०।।
जैसोए सुख दुख जाणि, पर ने दीजे प्रती बलोए ।
तैसोए पामी वे वाणि, मुसरीखो जीवट नवलए ।।३१।।
कहीयन दीधो सुख, मै निरख्य तेह कामीनीए ।
मझ विणए टलवलए नारि, सारन कीधी भामिनीए ।।३२।।
हवे जो देखु ए ते गुणवति, पुण्य प्रभावे ह निरमलीए ।
तो देखी सए तेहने सुख, दुख रहित अति सोहजलोए ।।३३।।
जात्राए करू सिद्ध क्षेत्र, हुं संघपति होउं निरमलोए ।
संघ विणए करू ते नारि, जनम सफल करू निरमलोए ।।३४।।
पूजि सुंए जिनवर पाय, काय सफल करू आपणीए ।
वांदिसुए सहु गुरु राज, आजमीले जो भामिनिए ।।३५।।
रूपलेए भीनवाणि, डोल सने रलीयावणीए ।
कोवलीए पानली नारि, कही देख सु सोहावणीए ।।३६।।
बोलतांए मधुरिय वाणि, धरम चंति गुणे आगलीए ।
सीलवंतीं ए छे सत्यवंति किम विसरे मझ निरमलीए ।।३७।।
कहियण ए देखे नारि, तो दुख बहु पामीयोए ।
प्रहसीत बोलाव्यो मीत्र, तु सजन मन भावियोए ।।३८।।
कटक लेईए जावो निज थामि, बाप माय प्रतिइम कहोए ।
अंजना विणए नावे पुत्र, तह्मे निजघरि सुखे रहोए ।।३९।।

अंजना के बिना पवनंजय का वनवास

इम कहीए मोकल्यो मंत्री, कटक लेई प्रती कवडोए ।
पवनंजय गयो वनह मझारि अंजनाने मोहे नड्यो ।।४० ।।
नदिए दीठी तव सार, हस्ती उपरी थको उतर्योए ।
वृक्ष तलिए बैठो सविचार, वैराग्य दृढ मनमाहि धर्योए ।।४१।।
हस्तिए प्रति वंच, बोलए कुंवर सुहावणोए ।
छोडियो तु गजराज, वनमाहि तु जाव तह्मे भावणाए ।।४२।।
दोहिलीए वेला जाणि, हस्तिनजाए मुझ तीलोए ।
रहियो ए ते वनह माहि, आंकी न आई अति बलोए ।।४३।।

पवनंजय ए रह्यो गुणवंत, नवीन काउे कूल तकिए ।
अंजना ए देखत नारि, ते बोलु निरमल वलीए ॥४४॥
इम कहीए बैठो वीर, धीर मणे मुनी समोए ।
ध्यान धरी रह्योए जिम सिव, अंजना कारणे गुणो रचोए ॥४५॥
एह्नोए निश्चल मन, जो होय मुनिवर तणीए ।
तो मुगति ए रमणी वरे सुख खाणि, अविचल तह्म इम सुणोए ॥४६॥
इणे परिए रह्यो गुणवंत, निश्चल मन कीयो सहीए ।
ए कथा ए रही इहां जाणि, अवर कथा सुणो कहीए ॥४७॥

पवनंजय के माता-पिता का पश्चाताप

प्रहसील ए गयो निज गामि, प्रल्हाद राजा विलख्योए ।
पवनंजय ए रहिउ वन माहि, ते पाछो नवी आवीयोइ ॥४८॥
तब हुवो हाहाकार, माय रोवे तब अतिघणोए ।
कही आवसेए अह्म तणो पुत्र दर्शन दुर्लभ तह्म तणोए ॥४९॥
कुल बहुए अह्म तणी वंग, किहां गई सुहावणीए ।
नही देखयो तह्म तणो रूप, सीलवंती सुहावणीए ॥५०॥
मे पापीणी ए कीयो बहु पाप, घर मोड्यो मे आपणोए ।
कलकलतीए निकाली बाल, न्याय न जोयो तेह तणोए ॥५१॥
वृथा मे चढ़ायो आल, दोषलीयो मे सीलवंती तणोए ।
अपराध कीधो बहूतपरि, दयान आणी मे रती भरए ॥५२॥

वस्तु

प्रल्हाद राजा प्रल्हाद राजा, करे बहु रीस ।
हवें किस्युं रोडोह्रो मिथ्यातणी, अविचारे कीधी वात दुरंधर बहु ।
निकाली निरमली सती, तेह दुखे पुत्र गयो मनोहर ।
हवें काहां जाउं सुंदरी, कूल बहु गुणमाल ।
'ब्रह्म जिणदास' भणे निरमलो, गुणवंत सविशाल ॥१॥

भास रासनी

नयरी नयरी पठावे लेख, झूंझूवांन फर झूंझूवां वेचतो ।
सजन बोलाव्या आपणाए, वांच्यो लेख आव्यो विचार तो ॥१॥
कटक हाहाकार करइ अपार, सजन आव्या तिहां बहु तेह तणा ।
वीमाने बैठा आपणे मन तणे, सजन चाल्या जोवा उत्तंग तो ॥२॥

वन माहि सवल ते आवीयाए, हनुरुह पाटण मीकल्या केशतो ।
ते आवी करे बहुं परोपरि सोख, सूरीप्रम मनि भाविसो ॥३॥
प्रति सूरिज चाल्यो वन माहि, सयल सजन मीली तिहां चाहे तो ।
हस्तीं दीठो तिहां अति बलीवंत पाले नवी आवा दे कोइसी सार तो ॥४॥
इहा होसे पवनंजय वीर, एह हस्ती तेह तणो धीर तो ।
इहा जोवे रेते निरमलोए, जलकरी जोवे गुणमालतो ॥५॥
प्रदेखणा देतो रहे बिसाल, हस्ती राखो चाहे जिम काल तो ।
जूंझ करेए प्रतीबलो, टूंकडो आवा न दे बलीवंत तो ॥६॥
सुंडा दंडउ चले अतिघणो, जतन करे फीरी फीरी सार तो ।
स्वामी राखे निज सोहजलोए, प्रति सूरीज बुद्धि करी गुणमाल तो ॥७॥
हस्तिणी आणी तिहां सविशाल, मोह उपजावा तिहां गैवरमालतो ।
हस्तिणी पुठे गयो ते जाणि, सूर तणा तणी कीधी हाणि तो ॥८॥
विषय रातो ते मय गलो, विषय रस अतिहि छे कस मलो ।
इम काम लंपट मद गज गूतो, तव वाट हुइ रे आवा जाण तो ॥९॥

पवनंजय का मौन व्रत

तव सजन आव्या गुणवंत, पवनंजय दीठा जयवंत तो ।
मौन लेई बैठो तिहाए, माय आवी आलिंगन देए ॥
बापवलो वली उछंगिलेए, तुं कारए बैठो पुत्र तह्मे इहाए ॥१०॥
कुंवर न बोलें सुलखीत वाणि, अंजना न देखे सुख खाणि ।
तेह भणी मौने रह्योए, चौठी लीखी दधी तिणेवार ।
अंजना सुंदरी आणो मझ नारि, तुह्म वयण इम कहिउंए ॥११॥
तव सवण मने धरे दुख धोर हा हा दुख आव्यो हवें थोर ।
अंजना सुंदरी काहा जोइयए, केतुमती ने दीय बहु गालि ॥
इणे पापीणी तेह दीधो आलतो, घर थकि निकाली सुंदरीए ॥१२॥
पिहरि न राखि अबला बाल, महिंद्र राजा छे दुष्ट विसालतो ।
उपग्रहण नवी तीणे कीयोए, तिहाथकि नीसरी ते गुणवंति ॥
सति सीरोमणी छे जयवंति तो, सजनत जीवन वास लीयोए ॥१३॥
हवे कहो किम कीजे आश, तह्मे सुणो हवे हुआ भाण तो ।
बुद्धि कहो तह्मे निरमलीए, जिम कीजे उपाय तेह तणोए ॥१४॥
तव प्रतिभाण कहे सुणो बात, तह्मे पिता छोडो साथ तो ।
हुं बुद्धि करउ उजलीया, बाळ कीजाउं तह्म तणो पुत ॥
घर आण्ए तह्म तणी सूत तो ॥१५॥

अंजना के बोमा प्रतिसूर्य की सहायता से उसका मिलन

अंजना सुंदरी मेलावडोए, तब हरख्या पीता ने माय तो ।
लाभा भाग्य तणे तब मायतो, तुं सजन ग्रहु तणो रूवडोए ।।१६।।
तब वधा उमणी तेह गुणवंति, पवनंजय कन्हे भयो अमचंत ।
बात कही तीणें निरमलीए, सग्ल वृत्तांत कह्यो सुजाण ।।१७।।
तब मन माहि माने आचंभा ए, सुणीबात पछे करह्यो विचार ।
सत्य की असत्य किम जाणीयए, फरी फरी करइ न्यान विचारए ।।१८।।
पवनंजय मनाव्यो बहु प्रकार, सत्य करी माणरायं बोलइ सार तो ।
तुह्य तणी नारी सीयल गुणखाणि, अह्म घरि छे गुणे आगलीए ।।१९।।
तब हरषीउं पवनंजय राउ, मनमाहि उपण भाव तो ।
नारी जोवा तणो रूवडोए, तब आनंद्या सजन मायण बाप
हनुरह पाटने सहु तव आइ तो ।।२०।।
प्रतीभाण तव उठ्यो रूवडोए, तब नयरी सिणगारी उचंग ।
तलीया तोरण दींसे उत्तंग तो, हय गय पार न पामीय ए ।
वाजे ढोल तबल निसाण तो ।।२१।।
मीलीया बहु तिहां सजन सुजाण, प्रति सूरीज घरि आवीयाए ।

अंजना का क्षमा भाव

अंजना सुंदरी आवी गुणमाल, क्षमावंति सती सकुमाल ।
पाय लागी सासू तणोए, सासू आलिगन दीधो सार ।।२२।।
वयण बोलब मधुरिय वाक्य, तुं कूलवंती बहु सीयल भंडार तो ।
मे दूहाव्या तह्मे अति घणुए, नवी जाणयुं शु अन्याव तो ।।२३।।
तह्म मनि राग द्वेष नही कोइ, अह्म उपरि करो तह्मे मोह ।
कूलवंती गुणे आगली ।।२४।।
तह्म गुण पार न पार, तह्म गुणपार किम पामीवए ।
मे पापीणी कीयो बहु पाप, वृथा आल दीधो संताप तो ।।२५।।
तह्मे खमी जोहूवे सुंदरी आप, हुं अजाणी छुं पापीणी नारि तो ।
अंजना बोली तव मधुरिय वाणी, मत मुझने तह्मे काकरो पश्चाताप तो ।।२६।
फरी अंजना बोली वली सुजाण, अह्म मनि खेमा छे सुख खाणि तो ।
समस्त जीव उपरि निरमलीए, उपदेस छे जिनवर देव तो ।।२७।।
पूरबि करमी कीयो अह्म दोस, तो अवरि उपरि कैसो करूं रोस तो ।
कीधो करम न छूटीए, इस जाणी पराए किम रूठीए ।।२८।।

ससूरे बोल्योए मधुरिय वाणी, प्रशंसा करे बहु गुण खाणि ।
तह्यां दुइ पक्ष उजलो कीयोए, सजन सहोदर अचंभो भयोए ।।२६।।
सती सीरोमणी तह्य जीव जाणीए, एक जीभ तुह्य गुण कैसा वखाणीए ।
तह्य सती पणु सोहि जिम रंभ तो, थंभ जिम कूल उधर्‌योए ।।३०।।
दीष्टी मेलावो हुवो कंत, तब संतोष वाध्यो महंत ।
नयण सफल हुवा ब्रह्म तणा, सजन जन जोव प्रेम आपणा ।।३१।।

वस्तु

प्रल्हाद राजा प्रल्हाद राजा, रह्यो तिहां सार ।
दुइ पक्ष लगे निरमलो, सयल सजन सुसार मनोहर ।
प्राहुनागार कीयो भलो, सूर्य राजा मनिरंगि निरंतर ।।
पछे निज निज ठामि गया, सयल सजन परिवार ।
पवनंजय तिहा राखियो, अंजना सहित सुजाण ।।१।।

भास चौपईणी

हनुमान का नामकरण एवं शिक्षा

दिन दिन बालो वाधे चंग हनुरुह पाटणी अति उत्तग ।
हनवत नाम हुवो तिहासार, दूजो नाम बली सविचार ।।१।।
महिमावंत सोहे जिम इंद्र, रूपवंत जोसो पुनिमचंद्र ।
दीठे उपजे परमानंद, धरम तणो कहिय वली कंद ।।२।।
विनयवत छे मती हि सुजाण, सजन साह्मीणे देइ बहु माण
पूजे जिनवर सह गुरु पाय, सुख उपजावे बापने माय ।।३।।
वनमाहि जाईणे विद्यासार, साधी तिहा बहु विविध प्रकार ।
वानेरी विद्या साधी वली चंग, पछे निज घरि आव्यो मनरंगि ।।४।।
इणे परि सुख भोगवे सविशाल, सजन सहित धर्म करे गुणमाल ।
ए कथा हवे इहा रही, अवर कथा तह्यें सुणो सही ।।५।।
वरुण गीत मचाडे आण, रावण रोवण कहे वखाणि ।
ते साभल्यो दशानने राय, कोप चडूयो धूजे तस काय ।।६।।

हनुमान द्वारा मामा की सहायतार्थ युद्ध में प्रस्थान

तव कटक मेलव्यो सविचार, हय गय रथ विमान अपार ।
नयर नयर पठव्यो दूत, बोलाव्या राजा संभूत ।।७।।
हनूरह पाटणि आव्यो दूत, लेख मूक्यो आगलि महंत ।

सूर्य राजायं बांधो तीरणे बार, पवन राजा सांभल्यो सविचार ॥८॥
तब कटक मेलव्यो विस्तार, हुवा गज रथ विमान अपार ।
लंका भणी जय जब राय, तव हनवंत लाग्यो तेह पाय ॥९॥
कीपा करो स्वामी मझ पर हेव, हूं तुह्म आलो करूं सेव ।
मझ मोकल्यो स्वामी तिहा सार, रावण कन्हे जाउं सविचार ॥१०॥
मान राजा कहे गुणवंत, तुह्मे सांभल्यो कुंवर जयवंत ।
जूंझ होसी तिहा अतिघोर, दशानन वरूण अतिघोर ॥११॥
तह्य बाला अती सकुमाल, तिहा तह्मे किम जसीउ गुणमाल ।
तह्य जूंझ नही दीठो चंग, तेह भणी घरि रहो मनिरंगि ॥१२॥
तव हनवंत बोल्यो सुजाण, मामा सुणो तह्मे गुण भाण ।
बालो सूर्य फेडे जिम तम्य, तिमहुं फेडूं रीपु दल भम्म ॥१३॥
इम कही तव लागो पाय, घरि आवी पुछे निज माय ।
करिय सनान निरमल अतिचंग, जिणवर भुवनी आव्यो उत्संग ॥१४॥
दीठा जिणवर त्रिभुवन तार, कुंवर करे तब जय जयकार ।
पूज्या चालण कमल गुणवंत, सह गुरु वांद्या वली जयवंत ॥१५॥
तिहा थकी कुंवर चाल्यो सुजाण, कटक सहित बैठो विमाण ।
लंका भणी जाइ जिम घूर, ततक्षण आव्यो तिहां गुण सूर ॥१६॥
सोल आभरणा पहिर्‍या सविचार, सोहे जैसो नाग कुंवार ।
दशानन सिंघासणि बैठ, आवंतु कुंवर तीणे दीठ ॥१७॥
तव चितवे रावण मनमाहि, निरमल नयण कुंवर साम्हुचाहि ।
ए कुंवर रूपे करी इंद्र, मुख दीसे जैसो पुनिमचन्द्र ॥१८॥
ए दीठे मझ ए परम आनंद, सुख तणो आवे हो से कंद ।
हवे ए जिप सिउ रीपु दल सार, ए कुंवर छतां नावे हारि ॥१९॥
इम कही उठ्यो गुणवंत, आलिंगन दियो जयवंत ।
भलो आव्या कुंवर सुजाण, रीपु दल तम फेडण जिम भाण ॥२०॥
इम कही मान बहु दीयो, कुंवर तणो जस तव बोलियो ।
प्रोहुणाचार कीधो अपार, मोह उपणो तव सविचार ॥२१॥
तिहा थको चाल्यो दशानन राउ, रीपु दल जिप वाहुवो बहु भाउ ।
कटक आव्यो वरुण तणे गामि, पैंच करे सारे नीज नामि ॥२२॥
मेघ पूरव तल कियो थान, वाजे ढोल नगल निसाण ।
वरुण राजा कोप चढीयो घोर, साह्यो चाल्यो ते तिहा घोर ॥२३॥
दुहुदल मीलीया होई संग्राम, माहो माहे आपण सारे नाम ।

हय गय रथ विमाण महंत, सुभट जूंझ इसिहा बलीवंत ॥२४॥
राक्षस सुभटे जीत्यौं तीणें वार, हार्‍यो वरुणें सुभटे अपार ।
कटक हार्‍यो दीठो तीन्ह वीर, मूह्यो कटक राक्षस तणो वीर ॥२५॥
कटक मूह्यो दिठो इम जाण, दशानन उठ्यो बखाणि ।
तव भवरि जीउई अति घोर, बलीवंते कायर पीट्या वीर ॥२६॥
वरुण कटक मूड्यो तीणे वार, वरुण उठ्यो तव परिवार ।
सतपुत्र वरुण मीली वंध, रावण कटक कीयो तव भंग ॥२७॥
रावण उठीउं तिहा अपार छत्र धार पाड्यो तीणे वार ।
अवर कटक मूडी तव गयो, दशानन एकलो रणि रह्यो ॥२८॥

हनुमान का शौर्यप्रदर्शन

तव हनवंत उठ्यो बलीवंत, रथि बेसि करी जयवंत ।
जूंझ करे जिम मेघकुमार, वरुण कटक उसर्‍यो तीणे वार ॥२९॥
वरुण जूंझे दशानन वीर, सो पुत्र सु एक हनवंत धीर ।
जूंझ होय तिहा अती घणो, हणवंते माण मोड्यो तेह तणो ॥३०॥
वानर रूप कीयो इम आणि, वानरी विद्या तणे परमाणि ।
लांगूल फेरि तिहां तव वालि, सत पुत्र बांध्या सविसालि ॥३१॥
नीपणोंवत बहु जय जयकार, हनवंत कटक माहि अपार ।
तव वरुण दुखितो हुवो जाण, ते दशानन ने बाध्यो आणि ॥३२॥
अभय दाण दीयो तीन्ह जाणि, अवर सुभट ने दीयो बहु माण ।
तिहा थको चाल्यो दशानन राय, लंका आवी कीयो उछाव ॥३३॥
वरुण मेल्हो सो बेटा साथि, खेमा करी साह्यो निज हाथि ।
हवे वरुण जाउ निम मामि, राजपालो मज ने सीर नामि ॥३४॥
वरुण कहे सुणो सविचार, तह्म तणे पोतें पुण्य अपार ।
हु जीतो सुणो बलीवंत, तह्यां स्वामी हुवा जयवंत ॥३५॥
तह्म तणे पुण्य प्रभावे धंम, हनवंत आवी मील्यो प्रसंग ।
हवे हुं सेवक तह्म तणो राय, इम कही लाग्यो पाय ॥३६॥
सत्यवंति पुत्री गुणवंति, रावण ने दीधी जयवंति ।
प्रीती हुइ तिहा अपार, जिनवर धरम वाध्यो मझार ॥३७॥

दूहा

हनुमान की वीरता की प्रशंसा

वरुण राजा अति कवडो, तिहा थको नितर्‍यो आणि ।

निज नयरि ते आणीयो, राज भोगवे सुख कारणि ॥१॥
दशानन तब रीझियो, बोल्यो मधुरिय वाणि ।
तह्म परसादि जीतीयो, हनवंत सुणो सुजाण ॥२॥
तह्म उपगार कीयो अति घणो, अह्मसे बहुत अपार ।
ते तुह्म गुण किम वीसरूं, ते तह्मे सुणो सज्जन सार ॥३॥
इम कही अति रूयडो, वर दूषण नी धीहू ।
आणंद दीधी तीणे आपणी, अनंग कुसुमा गुणलीहू ॥४॥
विवाह हुवो तिहां रूयडो, वाजे ढोल निसाण ।
धवल मंगल गीत अती घणा, आणो देव विमाण ॥५॥

राग रागणी

हनुमान को अनेक राज कन्याओं की प्राप्ति

नील महानील की रूयडीए, बेटीय दीधीए चंग तो ।
रूप सोभागे आगलीए, मदनावली मने रंगि तो ॥१॥
हरि मालीणीवली दीधीए, दूजए बंध विसार तो ।
आपणे धामि आणी करीए, प्रीती हुई अपार तो ॥२॥
कीन्नर गीत नयर भलीए, किन्नर राजा जाणि तो ।
कन्या दीधी तीणे आपणीए, चंद्रानना सुख खाणि तो ॥३॥
कीखंधा नयर छे अति भलोए, सुग्रीव राजा जाणि तो ।
तारा राणी तसु तणीए, रूप सोभाग वखाणि तो ॥४॥
तसु बेहु कुखे नीपणीए, बेटीय नयण विसाल तो ।
पदम रागा तस नाम सुणोए, रूप सीयल गुणमाल तो ॥५॥
सील कुमार तिहा तेडीयोए, आव्यो ते सुजाण तो ।
पदमरागा दीन्ही निरमलीए, रूप सोभाग्य नीखाणि तो ॥६॥
बहुत दिवस तिहां रह्याए, प्रीती उपणी अपार तो ।
सुग्रीवंतारा हरखीयाए, दीठा जमाई सकुमार तो ॥७॥
एवंकारे निरमलीए, सहस्र कन्या अति सार तो ।
राजकुंवरी ते रूयडीए, हनोमंति परणी अपार तो ॥८॥
सयल कन्या परणी करीए, लंका आव्यो जाणि तो ।
ते देखी आणंदियोए, दशानन मनिहि सुजाण तो ॥९॥
करण कुंडल नयर भलोए, हनोमंतनो अति चंग तो ।
नयर पाटण दीसा अति घणाए, देव देव तब वली चंग तो ॥१०॥

हय गय रथ बहु पायकलीए, विमान सहित बहु लाखी तो ।
हनुवंत पाम्यो प्रति घणीए, पुण्य फले सुखी बांधी तो ॥११॥
करण कुंडल गयो मती बलीए, राजकरे मति चंग तो ।
जिनवर भुवन करावियाए, गंभीर अतिहि उत्तंग तो ॥१२॥
बिंब कराव्या अतिघणाए, प्रतिष्ठा करी ते मनरंगितो ।
ध्वजा रंछम उंचारो पियाए, दाण देई करी कीर्तितो ॥१३॥

हनुमान के पराक्रम से परिजनों की प्रसन्नता

माय बापणो तब भेटवाए, चाल्यो कुंवर सुजाण तो ।
हनु रह पाटणी रूवडोए, मायो जैसो दीनकर भाण तो ॥१४॥
पवनंजय मनिहरषीयोए, आलिंगन दीयो सार तो ।
हो ओ जयवंत कुंवर सुहावनोए, तह्म गुण अनंत पार तो ॥१५॥
सहस्त्र बहु दीठी निरमलीए, रूप सोभाग्यनी खाणि तो ।
ते आवी पाय पडीए, बोले सुललीत वाणि तो ॥१६॥
अंजना सुंदरी आलिंगीयोए, हरिष उपणो अति चंग तो ।
नयण निहालीं जोवंतीए, निज पुत्र मनि रंगि तो ॥१७॥
तब अंजना विस्मय हुवोए, जोवो जोवो धरम सहाउतो ।
पूत्र जयवंतो मझ तणोए, हुवो मेदनी पती राउतो ॥१८॥
सयल सजन आनंदीयाए, मामा सहित सुजाण तो ।
बसंतमाला हरष भयोए, कुंवर देई बहु मान तो ॥१९॥
माय बाप सहित सुंदरीए, तिहा थको चाल्यो राउ तो ।
करण कुंडल पुरि आवीयोए, धरम उपरि बहु भाउ तो ॥२०॥

धर्म का महत्व

धरम ईंधन कण सांपडए, धरमेलाछि भंडार तो ।
धरमे नव नीधी नीपजेए, धरम ई रूप सीणगार तो ॥२१॥
धरमे रूपवंत कामीणीए, सीलवंति सुजाणि तो ।
हाव भाव प्रति रूवडीए, सुख तणो रे निधान तो ॥२२॥
धरमे पुत्र सुहामणाए, कामदेव जिम चंग तो ।
रूप सोभाग्य आगलोए, विनयवंत करी उत्तंग तो ॥२३॥
धरमइ गज घोड़ा घणाए, धरमे रथ विमान तो ।
धरमें सजन बहु नीपजेए, धरमै विवेक सुजाण तो ॥२४॥

घरमे कंठ सुस्वर सुणोए, धरमे ज्ञान गंभीर तो ।
धरमे सरब राज पामीयए, धरमें मुगति ए अवतार तो ॥२५॥
ईम जाणी नीत करोए, जैन धरम अवतार तो ।
जिम ए ह्वो सुख नीपजेए, सुख संपतीणा भंडार तो ॥२६॥
उपगार कीधु घणउए, हणमंत वीर सुजाण तो ।
मुनिवर उपसर्ग टालीउए, सीता राखि दीउ मानि तु ॥२७॥
मूंसाल आईनि झूझ कीउए, वसकरू अंजना बाप तु ।
अंजना पीहर मेलावउए, हुवउ तिहां गुण काय तु ॥२८॥
लंका जाइ झूझ कीउए, जीती हडंधा जयवंत तु ।
लंका .मुन्दरी वसी करीए, पछि वन आवउ गुणवंत तु ॥२९॥
मुद्रीका दीधी श्री राम तणीए, सीता हाथि अति चंग तु ।
पारणउ करावउं निज बुद्धि बलिए, सूधि कही मन रंग तु ॥३०॥
राक्षस जीत्या अति घणाए, वन मोडउ अति थोर तु ।
मान भंग कीउ रावण तणुए, झूझ कीउ अति थोर तु ॥३१॥
पाइ लागु सीता तणीए, पाछइ आव्यु गुणवंत तु ।
सूधि कही रामदेवनिइए, हवउ जय जयकार तु ॥३२॥
करण कुंडल राज कीउए, भोगवउ सुख महंत तु ।
यात्रा प्रतीक्षा करी निरमलीए, धरम करणउ गुणवंत तु ॥३३॥
मकरध्वज पुत्र हवुए, अंगानंग कुमार तु ।
संयम लीउ नीरमलउए, मुगति तणो गुणमार्ग तु ॥३४॥
ध्यान बलि कर्म क्षय करीए, उपनुं केवल ज्ञान तु ।
अनेक भव्यजन, बुझव्याए, जन कमलि अव्या भान तु ॥३५॥
पछि मुगति रमणी वरीए, सिद्ध हुआ अवतार तु ।
ब्रह्म जिणदास भणि ध्याइसुं, जिम पामु भव पारतु ॥३६॥
श्रेणिक राजा पूछीउंए, हणमंत चरित्र विशाल तु ।
महावीर स्वामी इम भासीउंए, गौतम स्वामी गुणमाल तु ॥३७॥
ते कथा मझ मनि बसिए, सद्गुरु तणइ पसाईं तु ।
संसकृत श्लोक बंधाए, कीधु हणमंत रास तु ॥३८॥
विस्तार ते कथा जाणवीए, पदम पुराण मझारि तु ।
भवियण जन तह्मे सांभल्याए, जिम पामु भवपार तु ॥३९॥
भवीयण जाइ संबोधवाए, रास कीउ मि चंग तु ।
अंजना गुण बहु वर्णवी, हनुमंत सहित उत्तंग तु ॥४०॥

ए कथा जे सांभलिए, तेहनि पुण्य अपार तु ।
पाप जाइ बहु भव तणांए, मन वांछित फलसार तु ॥४१॥

वस्तु

रास कीउ रास कीउ सार मनोहर ॥
हणमंत वीर को निरमलु, अंजना सहित गुणमाल ।
श्री सकलकीरति गुरु प्रणमीनि, श्री भुवनकीरति भवतार ॥
ब्रह्म जिणदास इणि परिभणि, पढ़ंता पुण्य अपार ॥

॥ इति श्री हणमंत रास समाप्तः ॥

शुभं भवतु नमोस्तु । लेखक पाठकयो : कल्याणमस्तु ॥

८ धर्म तरू गीत[1]

भव तरू सींचै हो मालिया, तिहि तरि च्यारि डाल ।
चहु डाली फल जुवा जुवा, ते फल राखइ काल ।
रे प्राणी तू काइ न चेतहि ॥१॥
कालु कहइ सुन मालिया सींचि सु माया गमार ।
देखत ही करै हो दुख डही, भतरि नही कछू सार ॥ रे प्राणी० ॥२॥
मिथ्या बीजह ऊगियो, मोह महा जड बंधि ।
फल महि स्वाद जूवा जुवा, चहुं गति केरो र बंधु ॥ रे प्राणी० ॥३॥
माली बरज्यउ ना रहै, फल चाखन की भूख ।
बाधि सु गाढी हो गड गदी, कूदि चढिउ भव रूख ॥ रे प्राणी० ॥४॥
सुर डाली चढि मालिया, हसि हसि ते फल खाई ।
अंति सुरोवइ कंदरै, जब माला कुमलाई ॥ रे प्राणी० ॥५॥
मुनिवर डाली हो सो चढै, दुख सुख फल ले भोग ।
अंति सु मे से मे करइ, परिग्रह तणउ वियोग्य ॥ रे प्राणी० ॥६॥
तिर्यंच डाली हो फल घणा, सिरि धुनि माला लेइ ।
सुख भव दुख साइर, भरिउ, अंति कुमरण पराइ ॥ रे प्राणी० ॥७॥
नर डालीय भयामणी, फल केवल दुख देइ ।
उपरा उपरीय खंडिखइ, खिण विश्राम न लेइ ॥ रे प्राणी० ॥८॥
इम चहु गति फल भोगवई, खातन भागइ भूख ।
सुख सुपिनै दुख परतखि, बहुदिन चढइ भव रूखि ॥ रे प्राणी० ॥९॥
जिम सु जुवारी हो जुवाविण, एक घडीय रहाइ ।
जिम जिम हारइ पापियो, तिम तिम तहि फढि जाइ ॥ रे प्राणी० ॥१०॥
चहुं गति कन्या हो करू, गहिउ लांबी लगनि भिणाई ।
माली दुख को हो डारवी, जाणि कि भावरि लेइ ॥ रे प्राणी० ॥११॥
माली मधुकर लोभियो, चहुं गति कुसुमहं लीणु ।
विषय तणी बसि दण ज्यौं, फिरि फिरि दुःख हु लीणु ॥ रे प्राणी० ॥१२॥
कर्म मृदंगी हो मादली, तिहि छंदि देइ सुवाउ ।
नाचण हारी हो बापडो, तिहि छंद देइ सुपांउ ॥ रे प्राणी० ॥१३॥

---

1. यह प्रति आमेर शास्त्र भण्डार, महावीर भवन जयपुर में वेष्ठन संख्या २४६ गुटका नम्बर ११ में सुरक्षित है ।

जो जिहि कै वसि बांधिओ, सो तिस कह्यौ करेइ ।
कर्म्मह कै वसि जीवडो, किह हिन वूच खुरेइ ।। रे प्राणी० ।।१४।।
अइ दुखियौ हुइ मालिया, सुख की साध करेइ ।
तउ सुणि एका कहाणडी, जिउ पुणु पुणु नमाइ ।। रे प्राणी० ।।१५।।
काया क्यारउ हो किम करै, बीज सुदंसण बाइ ।
सीचण कारण हो मिलता, हां धर्म अंकरउ होहि ।। रे प्राणी० ।।१६।।
गहि वइराग कुदालडा, खोदि सु चारित्र कूप ।
भावरहट व्रत बैल कै, देइ करै करि चूप ।। रे प्राणी० ।।१७।।
समता बल दृढ ठोकिये, अभय सु भगणो देइ ।
अनुभव थाइ सु दूमणी, सुरति करी करि लेइ ।। रे प्राणी० ।।१८।।
सहज सुपीढइ बैठिजे, डोरि समाधि गहेइ ।
भावरहट जिम मालिया, सुढउ मारग लेयी ।। रे प्राणी० ।।१९।।
उपसम लेज लगाइजे, बंधि क्षमा घडिमाल ।
काढि दया जल निरमली, सींचि सु काया पाल ।। रे प्राणी० ।।२०।।
बीज रतन का हो जतन, करि करि दृढ संजम वाडि ।
सील सदा रख वालडो, चरण नयण मृग ताडि ।। रे प्राणी० ।।२१।।
क्रोध दवागनि वर जीत्यो, वरजहि मान तुषाइ ।
माय वेलि हो मत चढै, जिन दे लोभय पार ।। रे प्राणी० ।।२२।।
जिम सु अकूरउ विरधतो, अंतरू करइ न कोइ ।
समय समय जिम मालिया, धर्म महातरू होई ।। रे प्राणी० ।।२३।।
सत्य शौचह तीह जडी, मद्दइ आणिउ पाल ।
अज्जउ सीस सुहावणी, तप तरवर परमाणु ।। रे प्राणी० ।।२४।।
त्याग सूधउ दिसि मोरियो, आकिंचणु मा तणु मान ।
बंब सुसीतल छाहडी, ज्ञान कुसुम महकंत ।। रे प्राणी० ।।२५।।
धर्म महातरु जतन थी, बहु विस्तारह लोइ ।
अविनासी सुख कारणैं, मोक्षु महाफल देइ ।। रे प्राणी० ।।२६।।
भणइ जिणदास सु रतिक क्यो, दरसणु बीज सांभलि ।
वांछित फल जिहु लागसी, किस ही चवि अवि कालि ।। रे प्राणी० ।।२७।।

।। इति श्री धर्म तरू गीत समाप्त ।।

९ श्रेणिक रास[1]

ढाल रासनी

राजा श्रेणिक द्वारा मुनि के गले में सर्प डालना

राजा मन माहि रोस धरेइ, कोई न जाणिए वातलो ।
राणि गुरु जो मुक मिलोए, तो नीके कऊ घात तो ।।१।।
एक बार स्वान ले लिए, पारधि चढीयो वीरतो ।
वन माहि जाइ उतावलोए, मुनिवर दीठा एक ध्यानतो ।।२।।
खिमा गुणे मुनि आगलाए, धर्म तणु निधान तो ।
रत्नत्रय करी माडीयोए, तप जिम भाण समानतो ।।३।।
एक मूढ तव बोलिउए, राणि तणु गुरु धीरतो ।
दिगम्बरए तक परिए, ध्यान धर्यो तिणी वीरतो ।।४।।
तम्ह तणा गुरु संतापीआए, रांणिइ बहोल अपारतो ।
ते वैर वाला आपणोए, जिम निसरे भीख वारतो ।।५।।
तव राजा कोप चड्योए, स्वांन मेहल्या अति चंगतो ।
स्वान ध्याम्या ते अतिबलाए, मद चड्या रे अपारतो ।।६।।
मुनिवर तप बलि कोध गम्योए, उपनो उपसम भावतो ।
प्रदक्षणा देइ करिए, वांद्या मुनिवर पायतो ।।७।।
तव राजा कोप चड्योए, बोलि घर भंडा वांखतो ।
म्हारा स्वांन इणि कीलिआए, मंत्र बलि एम जाणतो ।।८।।
खडग काढ्यो तिणि आपणोए, मुनिवर उपरि आइ तो ।
सरप काटि आवो उतर्योए, अवगुन करियो रायतो ।।९।।
रिस भंगी तप अति घणीए, माड्यो सरप तिणे ध्यानतो ।
रांणि गुरु कंठे घालीउए, हवि मुनिवर किहां जाय तो ।।१०।।
एम करी पाछो वल्योए, आवो तेनी रायतो ।
बोध गुरु आवल कह्योए, वैर वाल्यो अपारतो ।।११।।
तव बोध आणंदीउए, मुक तेह अमारतो ।

---

१. यह प्रति श्री दि० जैन अग्रवाल मन्दिर, उदयपुर के ग्रन्थ भण्डार में वेष्टन संख्या ५७ में सुरक्षित है ।

उलतो घरि घरवात करिकरणीए, वैर वाल्यो अपरालो ॥१२॥
ते उपसर्ग मुनीवर सहीए, ध्यान बलि अति धोरतो ।
तीन दिवस उभा रह्याए, काऊत्सर्ग अति धोरतो ॥१३॥
आतम ध्यान आनंदिउए, सोहमूरत गुणवंत तो ।
कीडीए फोल्यो सिर मुनि तणोए, मुनिवर ध्यान अभंगतो ॥१४॥

श्रेणिक द्वारा रानी चेलना से उपसर्ग के सम्बन्ध में कहना

तीजि दिन रांणि घरिए, पहुतो श्रेणिक रायतो ।
सरप घाल्यो मुनी उपरिए, रांणि आगलि कह्यो भावतो ॥१५॥
तव रांणी रीसि चडीए, दुख धरिए अपारतो ।
धिग पडो जन्म हमारडैए, धिग् धिग् एह संसार तो ॥१६॥
दिगंबर गुरु अम्ह तणाए, ते छे ज्ञान गम्भीरतो ।
तम्ह उपसर्ग कियो अति घणुए, ते मुनीवर छे धीरतो ॥१७॥
तव राजा मन बोलीयोए, रांणि सुणो मुझ वांततो ।
साप नांखी करि तम्ह गुरुए, गया होसि दुख मन आणतो ॥१८॥
तव रांणी इम बोलियुए, राय सुणो अम्ह वाततो ।
निश्चल चित्त अम्ह गुरु तणांए, अडोल तेह तणा गावतो ॥१९॥
कायर गुरु ते अम्ह तणाए, ज्ञान विहुणा गमारतो ।
निश्चल चित्त नहि तेहतणांए, ते किम पांमि भवपारतो ॥२०॥
तम्हे दुरगति हवि जाऊसोए, पाप कर्‌यो तम्हे घोरतो ।
साचा गुरु विरोहिआए, तम्हे दुःख सहलो घोरतो ॥२१॥
तव राजा भयभीत हवोए, मन सुकरि वीचारतो ।
चालो रांणी जोवा आइए, मन लाचो हुविचारतो ॥२२॥

श्रेणिक का मुनि के पास पुनः गमन

आनन्द भेरी तव ऊछलिए, चाल्यो श्रेणिक रायतो ।
चेलणा रांणी साथिइ सहिए, मुनिवर ऊपर आवंतो ॥२३॥
मुनीवर दीठा निर्मलाए, ध्यान सहित भवतारतो ।
तव श्रेणिक आचंभीउए, जय जय करे अपारतो ॥२४॥
तेणि अवसर राणी उतरीए, पालखी थकि सुजांणतो ।
सर्प गलि थी केडिउए, हाहा करि अपारतो ॥२५॥
खंड अणावी अति घणीए, चिहू पासि बंधि पालतो ।

मुनीवर धीर थकी उतरीए, किधी बहुल अपारतो ।।२६।।
प्रासुक पांणी अणावीउए, हृदयकमल धोवि सारतो ।
रांणी भाव भगति करिए, सहि गुरु स्वामी भवतारतो ।।२७।।
धन धन स्वामि धीर वीरए, सुधन सुधन तम्ह कायतो ।
घोरवीर उपसर्ग सराए, एम बोलि रांणि रायतो ।।२८।।
इम करतां रयणी गइए, उगयो दिनकर भांनतो ।
मुनिवर जोग खमावीऊए, बैठा मेदनि गुण ज्ञांन तो ।।२९।।
तव राजा रांणी सहित सुए, नमोस्तु कीउ धरी भावतो ।
धर्म्मवृद्धि बेहूनि कहेए, मुनिवर त्रिभुवन तारतो ।।३०।।
तव राजा आचंभीऊए, मुनी खिमा गुण भण्डारतो ।
सत्रु मित्र सम भावसि तविए, उपसम गुणह भण्डारतो ।।३१।।
हुं पापी अज्ञानी जीवए, विरथा कीयो संतापतो ।
सर्प घाल्यो मुनी उपरिए, किम छुटस्युं एह पापतो ।।३२।।

दूहा

मस्तक कापी सु आपणो, पूजस्युं मुनिवर पाय ।
जीम एहवां पाप नीस्तरु, एम चितवि मनराय ।।१।।
तव मुनिवर स्वामी जांणीउ, राय मन तणु वीचार ।
आत्म हत्या जीव मां करें, इम कीधां पाप अपार ।।२।।
तव राजा आचंभिऊ, धन धन ज्ञान अभंग ।
मन की बात कॅम कही, रांणी सुणों तम्हे चंग ।।३।।

पूर्वभव

भास सहीनी

तव राणी कही सुणो धणी, हू हवि वात किम भणी ।
अह्म गुरु ज्ञानवंत छे निर्मलाए, सहीए।।१।।
भवांतर पूछो आपणा, मुनिवर कन्हे अतिघणा ।
जिम संदेह फीटे स्वामि तम्ह तणोए, सहीए ।।२।।
तव राजा नमोस्तु कीउ, भाव घणो मन माहि धरि ।
भवांतर कहो स्वामी मुझ तणाए, सहीए ।।३।।
मधुरीय वाणी सोहामणी, मुनीवर बोलि निर्मल वाणी ।
भवांतर कहुं तम्हे सुनो राजधणीए, सहीए ।।४।।

× × ×

भवांतर सुण्यो आपणो, सब भाव बहु नीपनो ।
विस्मय पाम्यो श्रेणिक अतिघणोए, सहीए ॥३३॥
जिम सासन अतिसार, धर्म्म कर्क भवतार ।
जिम पामु पार भवतणोए, सहीए ॥३४॥
उप समकीत ऊपनो, आनंद मन माहि नीपनो ।
राया जिनवर धर्म बखांणीउए, सहीए ॥३५॥

× × ×

भास रासनी

श्रेणिक राजा आनंदिऊए, जिम कमलनी ऊगें गुण भांणतो ।
जिणवर गुण मनिधरीए, निज घरे आवो सुजाणतो ॥२॥
कुणिक उपरें मोह अति घणोए, राजा दिऊ नीज सारतो ।
श्रेणिक राजा सुखे रह्योए, धर्म करि सुविचारतो ॥३॥
दुष्ट पणें तो राज करेंए, करे मिथ्यात अपारतो ।
बापज परि द्वेष करिए, वैर धरि अपारतो ॥४॥
कोणिक ने घरि पुत्र हुवोए, लोकपाल ते हूनों नाम तो ।
मोह करि ते ऊपरिए, खेलावि अपारतो ॥५॥
बाप उपर ते कोपीयोए, पूरव भवांतर वैरतो ।
धरी करी ते घालिऊए, पांजरा मांहि सारतो ॥६॥
दुख देए ते अतिघणोए, निरदय पणि अपारतो ।
बंदिखाणें दुख भोगवि घणोए, असुभकरम खपारतो ॥७॥
कुणिक सुख भोगवि घणोए, खेलावि निज बालतो ।
मोह करिते अति घणोए, बाप तणो ते कालतो ॥८॥
ते मोह देखी करीए, बोलीय चेलणा मायतो ।
एहवो मोह तम्ह ऊपरिए, करतो श्रेणिक रायतो ॥९॥
जब मोटो होसि राजधणींए, तुम्हि बांधसे सुंणो पुत्रतो ।
सांकल तुम्ह पाय घालसेए, लेसे राज तणो भारतो ॥१०॥
माय तणो बोल सांभल्योए, दया ऊपनि अपारतो ।
पांजर ऊघाडवा चालिऊए, बापि छोडवा सविचारतो ॥११॥
ते आवंतो देखीऊए, श्रेणिक करि विचारतो ।
ए देखी भय ऊपनोए, दुख देसी मुझ कालतो ॥१२॥
पुत्र कुखि अवतर्‌योए, मुझ वैरिए घोरतो ।

इम कही मस्तक कापीऊए, अलि बाराम्यु घोरतो ॥१३॥
पहिलो नग्र बहुतो कीऊए, मिथ्यामादि सु रंग तो ।
तेहने फले त्रिमावे पडिए, नरक सहिय अनंततो ॥१४॥
पछे जिनवर धर्म कीयोए, महावीर कन्हे अवतारतो ।
क्षायक समकीत ऊपनोए, नीपनो जय जयकार तो ॥१५॥
प्रथम नरक थिको नीसरीए, समकित बलि अविचंचतो ।
तीर्थंकर अति ऊजलोए, प्रथम होसि उत्तमतो ॥१६॥
चौवीस बलि आवसेए, अनागत जयवन्ततो ।
पद्मनाम गुणे आगलोए, होसि श्रीजिन संततो ॥१७॥
कोणिक राजा अति घणोए, करि मिथ्यात अपारतो ।
माता जिन धर्म करेए, पुत्र न मानें गमारतो ॥१८॥
तव चेलणा वैराग हुवोए, चन्दनाबाला कन्हे आयतो ।
तप लीधो अति नीर्मलोए, लागि सहु गुणपायतो ॥१९॥
बार भेद तप ऊजलोए, कीधो अति सुविशालतो ।
अस्त्रीय लिंग छेदी करिए, सगे लीधो अवतारतो ॥२०॥
अभयकुमार आदिबलीए, मुनिवर हुवा जयवन्ततो ।
ध्यान बलि कर्म क्षयकरीए, सिद्ध पद पाम्या जयवंततो ॥२१॥

वस्तु

श्रेणिक राजा श्रेणिक राजा तणोए रास ॥
पढे गुणे जे सांभलिए एक मनि धरि भाव ऊजल ।
तेह घरे नवह निद्धि संपजे, सरग मुगति फल सार निरमल ।
श्री सकलकीर्ति गुरु प्रणमीनि, मुनि भुवनकीर्ति भवतार ।
ब्रह्म जिणदास भणेभिरमलो, सुणतां पुण्य अपार ।

॥ इति श्री श्रेणिक रास ॥

×

१० चौरासी न्याति जयमाला[1]

सकल जिनेश्वर प्रणमियवर, सरसति सामि हृदय धरू ।
चौरासी ज्ञाति वैसहं जाति, मालतणि जयमाल करू ।।१।।
जंबूय दीप दक्षण दिसि सोहे, ते भरत क्षेत्र भवियण मण मोहे ।
सोरठ देश तिहां सविचार, ते गीरनार परवत भव उतार ।।२।।
तिहां बहुत्तरि कोडि सातसइं मुनिवर, नेमिकुवर आदि सिद्धामतिवर ।
ते सिद्धक्षेत्र जाण्यो सुचित्त, तिहां भवियण जात्रा आवे जयवंत ।।३।।
ते ब्राह्मण क्षत्रीय वैसह जाति, तिहां धरमवंत आवे बहु भांति ।
ते हय गय करह पालखी रथ सार, तिहां मिलियो संघ न लाभइ पार ।।४।।
ते अंग पखालीय पहिरिय धोति, तिहां जिनवर भुवनी आवे सु महंत ।
तिहां शांतिक न्हवण करइ सुविसाल, ते अष्ट प्रकारि पूजा रचेतिणिकाल ।।५।।
ते वाजे ढोल तबल नीसाण, तिहां भेरी भूंगल काहाला बहुमाण ।
ते मछलति वलिय-रण झणकार, तिहां बाजइ ताल-कंसाल अपार ।।६।।
ते धवल मंगल गीत सरस विशाल, तिहां छंद वस्तु गुण पढे जयमाल ।
ते नाचे इं कामिणी गोरिय चंग, दंडरास खेला देइ बहुरंग ।।७।।
ते रंग मंडपि संघ बैठो थे चंग, तिहां आनीय माल सुगंध नवरंग ।
ते मानिक मोतिय रतन पवाल, ते हेम जडित सोहइ इंद्रमाल ।।८।।
ते जाइ जूई मंच कुंद अणावि, तिहां करणिय केतकी माल गुंथावि ।
ते चंपक सेवंतिय कचनार, ते गुंथाऊं मोल मलाबस वार ।।९।।
ते कमल मंदार बंधूक परिजात ते विविध कुसुम परिमल बहु भांति ।
ते कर कमली इद्र लीधीय माल, ते भवियण मांगइ तिहां सविसाल ।।१०।।
ते इक्ष्वाक वंस छे कुल सिगार तिहां सहस्त्र एकें भागे जिनमाल सार ।
बे गोलाराडा ज्ञाति पवित्र. तिहां मागइं माल भावे एक चित्त ।।११।।
ते गोला पूरब जैन ज्ञाति अभंग, तिहां मागई माल भावें मनरंग ।
तिहां ज्ञाति उदार छे बघेरवाला ते सहस्त्र पाचें मागेंइ जिनमाल ।।१२।।
ते हरषबदन आवै जैसवाल तिहां सहस्त्र आठें मागे जिनमाल ।
ते सिंध पुरि वसई श्रीमाल, ते सहस्त्र दशे मागइ जिनमाल ।।१३।।

---

१. यह प्रति आमेर शास्त्र भंडार, महावीर भवन, जयपुर में वेष्ठन संख्या २०५० (गुटका) में पत्र संख्या १४४–१४७ पर सुरक्षित है ।

ते विनयवंत छे हुंबड जाति, ते मागइ माल सहस्त्र गुण साथ ।
तिहां कायर बोल मधुरीय भाखि, ते मेडतवाल मद्दुरे देश ।
तिहां सहस्त्र चोविसें मागइ माल ।।१४।।
ते खंडेरवाल छे जाति विशाल, ते त्रीस सहस्त्रें मागइ माल ।
ते भरडक पर्णे आवे अग्रवाल, तिहां सहस्त्र बावनें मांगइ माल ।।१५।।
ते गम्भीर जाति छइ ऊंसवाल, तिहां सहस्त्र चौरासिये मागइ गुणमाल ।
ते सहस्त्र ज्ञाति करे उछाह, तेह लक्ष एक देशइ मागइ साह ।।१६।।
ते पोरवाड आव्या सविसाल, तिहा लक्ष पांचे माला मांगे उदार ।
चित्तोडा ज्ञाति आवे गुणवंत, तिहां लक्ष इग्यारें मांगे जयवंत ।।१७।।
ते जय जयकार करे पल्लिवाल, ते सोल लक्ष देइ मागइ माल ।
ते डेडू ज्ञाति आवइ सुचंग, तिहां लक्ष ढारे मागइ उत्तंग ।।१८।।
ते नरसिंह बोहरा बसे महीपाल, तिहां लक्ष चोविसे मागइ माल ।
ते लंबेचूंच ज्ञाति छे जयवंत, ते माल विषे धन वेचइ संत ।।१९।।
ते हरसौरि बसे हरसौरा सार, ते माल विषें नवे चइफार ।
ते देशवाल आवे सुविशाल, ते लक्ष बत्रीसइं मागइ माल ।।२०।।
ते गूजर ज्ञाति छे गुजर देशि, ते माल मागइं जिणेसर रेसि ।
ते मालव देशि छेहडवाल, ते लेइ बावन्नें मागइ माल ।।२१।।
ते आवे उत्तम रायकवाल, ते लक्ष बावन्नें मांगइ माल ।
ते गंगेडा जाति आवे साथ, ते मांगइ माल न बांधेइ हाथ ।।२२।।
ते बापडा ज्ञाति बसे गुजराति, ते वेचे धन सुपरि बहु भांति ।
ते बेंभेरा आवई दुद्धकर जोडि, ते माल ले करावइ कोड ।।२३।।
ते नागद्रहा जाति आवे सुजान. ते मागइ माल संघ देइमान ।
ते बंधनोरा ज्ञाति आवे सुविचार, ते माल लेइ धन वेचइ फार ।।२४।।
ते नागर चाकड रोहिणीवाल, तिहां लक्ष अठाविसें मांगेइ माल ।
ते नीवाकड रोहिणीवाल, तिहां लक्ष छाविसे मागइ माल ।।२५।।
तेनी वाकरद्दा मरपत्तिस मोड, तिहां माल लेइ करावइं कोड ।
ते मेवाडा बसे भटेरा बिसाल, ते लक्षे बत्तीसेइ मांगेइ माल ।
ते सोरठ देशी छे सोरठवाल, ते लक्ष चोरासिये मागइ माल ।।२६।।
ते लाडजे हरख जाति कपोल, ते मालवडे देइ बहुमोल ।
ते खंडायी तांगां खूब मोहिलवाल, ते मांगेइ भावे जिन गुणमाल ।।२७।।
ते सूराखा मांडूक लोहिकवाल, ते कोड पांच देइ मागइ माल ।
ते कमेसर सोहक विघरवाल, ते कोडि वर्षे मागइ माल निवास ।।२८।।

ते आइ लोहृ राखाइल गोहिलवाल, ते कोडि अठारेइ मागइ माल ।
ते जैसल गोरड सोरा अमंग, ते मागइ माल करइ बहु रंग ।।२९।।
ते दीलीय गांवु वसे महूलवाल, ते कोडि चोविसें मागइ माल ।
ते पाटणि बसे चौबिसी संघ, ते कोडि छत्रिसें मागइ अमंग ।।३०।।
ते श्रीखंडा जसमेरा गुणवाल, ते कोडि बावन्ने मागइ माल ।
ते राजुरा माथुर गोहिलवाल, ते कोडि चोरासीय मागेंइ माल ।।३१।।
ते परवडा आवे बहु भांत, ते कणय रयण देइ मागेइ संत ।
ते खेमावाल आवे सविसाल, ते मानिक मोतिय मागइ माल ।।३२।।
ते विग्धूव मोहृवड राजतवाल, ते विनय रहित मागइ जिनमाल ।
ते स्वरूवा कठनेरा भीठ कंकोल, ते अठवरगि करे संत बोल ।।३३।।
ते खीरणा करडा बघनुरा ज्ञाति, ते उजण्या विध्या नतवाल ।
ते जांगडा नारायने कवि थावाल, ते कथतीक करइ मागइ जिनमाल ।।३४।।
ते दक्षण देशी जइन जयवंत, धवलवाल, ते बिंब प्रतिष्ठा करइ मागे माल
ते सोहितवाल ज्ञाति सुचंग, ते संघ पूजइ मागे माल उत्त ंग ।।३५।।
ते करनाटक देसि न्यांति बोघार, ते माल मागइ धन वेचि अपार ।
ते पंचमचतुर्थ जैन सुजान, ते माल मागइ करे पूजा विधान ।।३६।।
ते वैस्य कोपटी जैन सविसाल, ते ज्ञाति चौरासी मागइ माल ।
ते क्षत्रिय अवर श्रावक जयवंत, ते माल मांगे जिणवर गुणवंत ।।३७।।
जिने जिम मागिय माल जिण शंतलो, तिणे तिम लाधीय सुणो गुणई शतो।
जिन शासन दीसइं गुणवंत, तिहां मद मच्छर नहिंते जयवंत ।।३८।।
ते इम जाणि भवियण सविचार, ते सात क्षेत्र धन वेचइ फार ।
ते जिणवर बिंब करावइ चंग, ते जिनवर चैत्यालां अतिहि उत्त ंग ।।३९।।
ते यात्रा प्रतिष्ठा करे सुखखाणि, तेलि लावइ जिणवर निरमल वाणि ।
ते चतुर्विध संघ देइ बहुमान, ते भाव सहित मनवांछित दान ।।४०।।
ते इणि परि धनवंत वेचेइं सुठाम. ते धन धन श्रावक राखइं मान ।
ते कीर्ति विस्तरि बहु देश विशाल, ते पहिरि निरमल जिनवर माल ।।४१।।
ते इह लोकि परलोकि छे जयवंत, ते मुगति रमणि वर होसे कंत ।
ते सौख्य अनंत अपार विशाल, ते पामइ सिद्ध पद गुणमाल ।।४२।।

घत्ता

ते समकित वंतह बहु गुण जुत्तह, माल सुणो तम्हे एकमनि ।
ब्रह्म जिनदास भासै, विबुध प्रकासे, पढइ सुणे ते धर्म्म धनि ।।४३।।
।। इति श्री चौरासी ज्ञाति जयमाला समाप्त: ।। □

११ परमहंस रास[1]

वस्तु

सकल निरंजन सकल निरंजन देव अनंत ।।
परमानन्द सुहावणा, प्रणमि सुरसति सार निरमल ।
सकलकीरति गुरु मनिरलि, वलि भुवन कीरति सार सोहृजल ।।
तम्ह परसादे रूवडो, परमहृंस जयवंत ।
ब्रह्म जिणदास भणे भाइसु, सुणो भवियण गुणवंत ।।१।।

भास चौपईनी

परम हंस तणो चरित विशाल, सुणो भवियण तम्ह गुणमाल ।
सुणतां हरष आनंद गुणकंद, उपजे समकित निरमल चंद ।।१।।
त्रिभुवन नयर तणो राउ, गुण अनंत दीसे उछाउ ।
नाम लीधे जाइ बहु पाप, दिन दिन वाधे अधिक प्रताप ।।२।।
अकलंक निर्मल निकलंक गुणवंत, त्रिभुवन माहि दीसे जयवंत ।
ते जयवंत सुख तणो निधान, सहस्त्र नाम सार्थक गुणग्राम ।।३।।
जनम जरा मरण मति होइ, अजरामर पद कहे सहुकोइ ।
अतीत अनागत वर्तमान, तिनि काल विलसैं सुजाण ।।४।।
निश्चय नय त्रिभुवने माहि न भाइ, विवहारि कुं थउ शरीर समाइ ।
जिण ओगउं तिहां तेह विस्तार, ज्ञान विना नवि लाभे पार ।।५।।

विविध मान्यताएं

एक कहे एहजि भगवंत, ए ब्रह्मा ईश्वर ए संत ।
एक कहे गोविंद ए विष्णु, अलख निरंजन एहजि कृष्ण ।।६।।
एक कहे बौध ए होइ, गौरखनाथ कहे सहु कोइ ।
जिणे जिम जाण्यौं तिणें तिम कह्यो, ज्ञान गुरु विण ते नवि ग्रह्यो ।।७।।
तेह कारणि एक साधे धाम, एक लागे है साचलि माणि ।
एक सनान करें जल मांहि, तेह कारणि शीत वात सहा ।।८।।

---

१. यह प्रति खण्डेलवाल बीसपंथी दिगम्बर जैन मन्दिर, उदयपुर के ग्रन्थ भण्डार के वेष्ठन संख्या १६५ में सुरक्षित है। इसकी अन्य प्रति ऋषभदेव के भट्टारक यशकीर्ति सरस्वती भवन में वेष्ठनसंख्या ११७ में सुरक्षित है। इन दोनों प्रतियों के अक्षर बीच-बीच में से मिट गये हैं।

एक कहै जटाशिर भार, एक लेइ कंदमूल अहार ।
एक भस्म लगावै घोर, मुंड मुडावै एक बाल घोर ॥९॥
तेह कारणि कष्ट सहै अज्ञान, बहुयन पामे ते सुख ज्ञान ।
तेह बिण संसारी भमै सहुकोई, तेह पाखै मुक्ति नवि होई ॥१०॥
पाषाण माहि जिम सोनो होइ, गोरिस मांहि घ्रत मुं कोइ ।
तिल मांहि तेल जिम वसे चंग, तिम शरीर आतमा अभंग ॥११॥
काष्ट अग्नि मांहि धरणी गेह, कुसुमह परिमल रस मांहि नेह ।
नादैं शब्द शीत जिम नीर, तिम आतमा वसैं जग शरीर ॥१२॥
काल अनादि अनतें सोइ, जीव नाम कहै सब कोई ।
जीव्यो जीवैं जीव से चंग, तेह भणी जीव नाम अभंग ॥१३॥

परमहंस का कुटुम्ब

परमहंस अध्यातम नाम, ज्ञानी जांणे तेह गुण ग्राम ।
आनंद कदलिकंद तेह रूप, त्रिभुवन राज करे ते भूप ॥१४॥
चेतना राणी तेह तणी जांणि, गुण अनंता बहुत बखाणी ।
रांणी राय ध्यान सुख मेल, नित नित करे कुतुहल केलि ॥१५॥
ते बहु उपना कुलै चंग, च्यारि कुंवर सुललित उत्तंग ।
सत्य कुंवर बडो गुणवंत, दूजो सुख उत्तम जयवंत ॥१६॥
ज्ञान पुत्र त्रिजो गुणवंत, चोथो चैतन्य गुणे महंत ।
चिहुं पुत्र सरिसो सुकुमाल, परमहंस सोहे गुणमाल ॥१७॥

माया रानी का आगमन

तिण अवसरि आवी एक चंग, माया रमणी आणैं गुणरंगि ।
अनेक कला जांणे ते सार, बहु रूप क्षिण क्षिण धरैं अपार ॥१८॥
नव जोवन नव रंगी नारि, सामलडी सहूजं विकार ।
हाव भाव करैं बहु रंगि, सुरस वयण बोलैं अति चंग ॥१९॥
परमहंस दीठो रूपवंत, नयणे निहालि ते जयवंत ।
कटाक्ष बाण मुक्यो तिण घोर मन बींध्यो राजा तणो घोर ॥२०॥
चेतना राणी अति गुणवंति, पतिवरता छै ते जयवन्त ।
मन चलीयो दीठो रायतणो, तब राणी दुख उपनो घणो ॥२१॥

दूहा

चेतना राणी के उद्गार

तब विनय करि चेतना, सीखामण दै सार ।

मु झ वयण अति स्वला, कंत सुणो सुविचार ॥१॥
तुमे गिरूया गुण आगला, त्रिभुवन तणा तुमें राज ।
तमें सामीं जो भूलि सौ, किम सरे अम्ह काज ॥२॥

चाल रासनी

मेरु अविचल स्वामी किम चलैए, समुद्र मर्यादा लोपतो ।
तिम तुम मन स्वामी किम चलैए, विचारो तुमे भूप तो ॥१॥
अमृत कुंड मांहि विषए, किम निसरै काल कूट तो ।
समुद्र मांहि किम वध बलए, संत होइ किम दुष्ट तो ॥२॥
दिनकर किम अंधारो करेए, अगनि झरे किम चंद्र तो ।
समुद्र मांहि किम रज उडेए, जिन पूजा किम चुके चंद्र तो ॥३॥
मुझ वयण सोहामणाए, जिनवाणी जिम सारतो ।
हृदय कमल आणों आपणैए, एह परे मोह निवार तो ॥४॥

परमहंस का उत्तर

चेतना वयण सुणवि करिए, परम हंस बोले वाणितो ।
ए मुझ परि मोह घणो करेए, एह विण मझ दुख जाणितो ॥५॥
तव चेतना कहे सुणो धणीए. ए मोह नहि परमाण तो ।
पतंग रंग किम जाणियए, तिम ए स्नेह वखाण तो ॥६॥
कहुं स्वभाव स्वामी तुमे सुणोए, सील विहुणी नारितो ।
पर पुरुष देखी करीए, मांड जो लाव अपार तो ॥७॥
वसे प्रेम करे अति घणोए, मोह चलावी थोर तो ।
मनहर कायर तणोए, परम विचार नीम चोरि तो ॥८॥
पण ए मोह अचल नहिए, खिण मांहि चलै सुणो कंत तो ।
वरसावै दुर बाहरि जे गए, खिण मांहि आवै अंत तो ॥९॥
ईम जाणी कुसील तणोए, न कीजै स्वामी संग तो ।
नीच संग जे नर करेए, ते स्वामी गुण भंग तो ॥१०॥
देव गुण स्वामी तुम तणोए, राक्षस गण एह नारितो ।

× × ×

बीयर बालो जोणीयए, तुझ सरिलो गुणधार तो ॥१४॥
सब कि भणु हुं नवि कहुंए, पण हुं तुम करूं हित तो ।
.........स्वामीए, सुणो रहो गुण मित तो ॥१५॥

परमहंस द्वारा चेतना की उपेक्षा

चेतना सीक दीधी घणीए, परमहंस तणो चंग तो ।
माया तणे रूपे मोहियोए, चेतना वयण कीयो भंग तो ।।१६।।
भरिया घड़ा परि नीर जिम ए, उलटियो क्षण मांहि तो ।
तिम हित वचन उलटि गयोए, मोहिया जीव इम थाहि तो ।।१७।।
अरुचि कीधी तव अति घणीए, बडी राणी परि थोर तो ।
माया सरिसो संग कीयोए, निज नारि घरि चोरि तो ।।१८।।
राणी थापी तेणे आपणीए, अवठि पड्यो राव तो ।
सुमन साटली गइ ए, उपनो अति हि कुभाव तो ।।१६।।

परमहंस का माया को अपनाना

दूहा

माया सु मेल कीयो, परमहंस अपार ।
एक मेक बेहु हुवा, न करे केहनी सार ।।१।।
परमहंस परमात्मा, ते नाम गयो तव चंग ।
बहिरात्मा जीव तणो, नाम पाम्यो सुरंग ।।२।।

भास गुणराज बहुमनी

ते बेहुं ए कुखे सार, पुत्र हुवा अति बलाए ।
प्राणदश ए छे तेहु तणो नाम, ते माहि मन बड़ो सोहजलोए ।।१०।।
चपलाए अति हि अपार, व्यापक हुवा ते अति घणाए ।
बंधव ए तणें वलि जांणि, आश्रव जोड्यो करम तणोए ।।११।।
परणीयु ए मन कुंवार, इ नारि अति रूवडीए ।
प्रवृत्ति ए पहिली नारि. दूजी निवृत्ति रूवडोए ।।१२।।
तेह सरिसो ए रमें मन कुंवार, क्रीडा करे त्रिभुवन माहिए ।
कोइ न ए पुरे तेह साथि, मोटो हुवो बंध पाहिए ।।१३।।
प्रवृत्ति ए जायो पुत्र, मोह कुंवर अति रूवडोए ।
निवृत्ति ए जायो पुत्र, विवेक नाम गुणें जड्योए ।।१४।।

भास चोपईनी × × ×

(मुक्ति का स्वरूप)

त्रिभुवन मस्तक मुक्ति निवास, सिद्ध नयर सिद्ध वसे गुणभार ।
सौख्य अनंतो अनंत अपार, जग सावला वांछे तेहसार ।।३।।
पण ज्ञान न जाणे ए मार्ग, जो उपजे निरमल वैराग्य ।
रत्नत्रय मारग छे चंग, करम घाट दीसे उत्तंग ।।४।।
नय नारी जोवइ वसे पूर, घाट आडी वहे गंभीर ।
तिणें नदी पणी जल करणं, बूडवि मु आकुंण जाणे मर्णा ।।५।।

इन्द्रिय तस्कर असंयम पूर, मैत्र मिल्या कुड कपट उदंड ।
तप सुभट पाखे जे जाव, राय फौटी ने रांकज थाइ ॥६॥
गुणस्थानक चोदमो गुणवंत, चउदतेहु रंग ते माउ बलवंत ।
दुरंग दुरंग पर ते छे देस, जूवा जूवा लोक जूवा वेस ॥७॥
मिथ्या दर्शन पहलो देश, राज करे मिथ्यात नरेस ।
पाच मिथ्यात गाजे घन घोर, अनंत लोक बसे तिहां थोर ॥८॥
ते देश उलंघी न सकै कोई, तिहां झूझार छे सहू कोई ।
समकित बले जीते जे वीर, जयवंत होइ साहस धीर ॥९॥
इणि परे चढे सुभट सुजान, ध्यान बले रिपु तणां दलमान ।
चौदह गुण लेई करे चंग, पछै मुगति साधे उत्तंग ॥१०॥

वस्तु

परमहंस गुण परमहंस गुण कह्या अति चंग ॥
रास कीयो मे रूवडो, भाव सहित अति सार निम्मल ।
पढइ गुणे जे सांभले भावि धरे वि मन मांहि उज्जल ॥
तेह घरि नवनिधि सांपडे, मन वांछित फल पामइ ।
ब्रह्म जिणदास कहै नीरमलो, तेह तोले अवर न कोइ ॥२॥

दूहा

परमहंस परमात्मा, तेह गुण अनंत अपार ।
ब्रह्म जिणदास कहै रूवडो देउ स्वामी तह्य गुण सार ॥१॥
पुण्य रंग पाटणि रूवडो, विवेक राज करै चंग ।
सयल सजनस्युं रूवडो, महिमा वंत उत्तंग ॥२॥
जिण सासण धर्म्म विस्तर्यो, नीपनों जय जयकार ।
मुगति मारग प्रगट कियो, विवेक कुमर सविचार ॥३॥
विवेक विण सुमति नहीं, सुमति विण समकित ।
समकित विण जन्म निष्फल, कि न होइ जयवंत ॥४॥
तो विवेक मुझ निरमलो, भवि भवि देउ गुणवंत ।
परमहंस परमात्मा, जिम होइ जयवंत ॥५॥
श्री सकलकीरति पाय प्रणमीनें गुरु भुवनकीर्ति भवतार ।
रास कीयो मे निरमलों परमहंस तणो सार ॥६॥
ब्रह्म जिणदास सिष्य निरमलो, नेमिदास सविचार ।
पढउ पढावो विस्तरो, परमहंस भवतार ॥७॥
जिण सासण अति निरमलो, त्रिभुवन माहि उत्तंग ।
जनमि जनमि हुं सेवस्युं, ब्रह्म जिणदास कहै चंग ॥८॥
पढे गुणे जे सांभलै, मन धरि अविचल भाव ।
तेह नर रिद्धि घरि आंगणे, ब्रह्म जिणदास कहै भाउ ॥९॥

॥ इति श्री परमहंस को रास समाप्तः ॥

१२ आदिनाथ वीनती[1]

स्वामी श्री आदि जिणंद, करूं वीनती आपणीय ।
तुं जग सांचो देव, त्रिभुवन स्वामी तूं धणीए ॥१॥
लख चोरासी योनि, थावर जंगम हूं भम्योए ।
तुह न लाधो छेह, संसार सागर तेह तणोए ॥२॥
चहुं गति संसार मांहि, पाम्या दुःख मि अति घणाए ।
जामण मरण वियोग, रोग दारिद्र जरा तेह तणांए ॥३॥
क्रोध मान माया लोभ इन्द्रि चोरेहुं भोलव्योए ।
राग द्वेष मद मोह, मयण पापी घणुं रोलव्योए ॥४॥
कुदेव कुगुरु कुशास्त्र, मिथ्या मारग रंजियुए ।
सांचो देव कुशास्त्र, सह गुरु वयण न मे दीयुए ॥५॥
सजन कुटुंब ने काज, कीधा पाप मि अति घणाए ।
ते पातिक नीवार, जिनवर स्वामी अम्ह तणांए ॥६॥
तुं माता तुं बाप, तुं ठाकुर तु देव गुरुए ।
तुं बांधव जिनराज, वांछित फल हवे दान करूंए ॥७॥
हवें जो तुम्हे जुग देव, करम निवारो अम्ह तणाए ।
भवि भवि तुम्ह पाय सेव, गुण आपो स्वामी अम्ह तणांए ॥८॥
सकलकीरति गुरु वंदि, जिनवर विनति जे भणेए ।
ब्रह्म जिणदास भणेसार, मुगति वरांगना ते वरेए ॥९॥
॥ इति श्री आदिनाथ वीनती ॥

१३ शरीर सफल गीत[2]

जिणवर स्वामी देव, सुर नर करे तस सेव ।
मनुक्ष जनम फल लीजे, धरम निरन्तर कीजे ॥१॥
ते बुद्धि सविचार, जे लेई संजम भार ।
ते लखमी पवित्र, जे वेचीय सुक्षेत्र ॥२॥
ते मस्तक श्रीचंग, तम्ह पाय नमइ अभंग ।
ते नयणां जगि सार, तम्ह रूप जोय भवतार ॥३॥
ते कान हूं जाणुं, जे तम्ह सुणइ बखाणुं ।
ते जीभडी मुखि सार, तम्ह नाम जपइ अपार ॥४॥
ते हाथ सविसाल, तम्ह पूज रचे तिणी काल ।
चरण कमल ते धन्य, तम्ह जात्रा करे रम्य ॥५॥
हृदय कमल ते जानुं, तम्ह पाय करे जे ध्यानुं ।
सरीर सफल ते देव, तम्ह पाय करे जे सेव ॥६॥
जीव दयालु स्वामी, एवर मुगति हिं गामी ।
ब्रह्म जिणदास भणे वाणि, गावो तम्हे वो सुजाणि ॥७॥
जिम देइ मुगति हि राणी, पामो सुखमी खाणि ॥
॥ इति श्री शरीर सफल गीत ॥

---

१. यह वीनती श्री दिगम्बर जैन मन्दिर ठोलियान्, जयपुर के ग्रन्थ भण्डार के गुटका सं० १२ में सुरक्षित है ।
२. यह गीत आमेर शास्त्र भण्डार, महावीर भवन, जयपुर के वेष्टन संख्या २८८ गुटका नम्बर ५० में पत्र संख्या १०३ पर लिपिबद्ध है ।

१४ गौतम स्वामी रास[1]

॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

वस्तु

श्री वीर जिणवर, वीर जिणवर, पाय प्रणमेसु ॥
सरसति स्वामिणि विनवुं बुद्धि सार हुं वेगिमांगु ॥
श्री सकलकीरति पाय प्रणमीनें मुनि भुवनकीरति गुरु सार वांदुउ ॥
रास करीसुं अति निरमलो, गोतम स्वामी देव ।
ब्रह्म जिनदास कहे रूवडो, जनमि जनमि करूं सेव ॥१॥

भास जसोधरनी

महावीर स्वामी पूछीया, श्रेणिक गुणवंत ।
गौतम स्वामी तणउ चरित, कहा जयवंत ॥१॥

कथा का प्रारम्भ

जम्बूद्वीप मझारि सार, भरत क्षेत्र जणि जाणो ।
कासी देस मझारि सार, वाणारसीय वखाणो ॥२॥
विस्व सेन तीर्णे नयरि राय, राज्य करे सविशाल ।
विसालाक्षीय राणी नाम, सौभाग्य रूप माल ॥३॥
राजा मोह धरे अपार, सुख भोगवे चंग ।
क्रीड़ा विनोद करे अपार, आपणे मन रंग ॥४॥
एक वार बहु रूप सार, होइ सरस अपार ।
सभा सहित राजा सांभलि, रीझ्यो सविचार ॥५॥
गौखि बैठी राणी सुन्दरी, जाणि वलि सार ।
रूप दीठा तिहा अति घणां, मोह ऊपनो अपार ॥६॥

राणी का विचलित होना

चंचल मन कीयो आपणो, बोलावीय दासी ।
एक चमरा बूझि रंगिजाणि, राणी बोलइ दासी ॥७॥
विषय सौख हवे भोगवूं स्नेहा सुणो काज ।
रूप जोवन सफल करूं, छांडू घूहू राज ॥८॥

---

1. यह प्रति आमेर शास्त्र भंडार, जयपुर (महावीर भवन) के वेष्ठन संख्या २८८, गुटका नं० ५० में पत्र सं० १–१४ पर सुरक्षित है ।

राज भुवनि जब्ब कार, ब्रानि चोखो बंदी श्राणो ।
इहां थका आपुंण नीसरूं, उपाय करी आणो ।।६।।
सूक्ष्म वस्त्र तव श्राणीयू, राणी रूप कीयो ।
चंदन कुंकम पूर जाणि, विलेपन दीयो ।।१०।।
कस्तुरीय तीलक कीयो, फूलें सिणगारी ।
वस्त्राभरण पहिरावीया, सुती ढोल्हारे ।।११।।
झीणो वस्त्र उठीडी करी, दीप तणो झंझाल ।
ते तीन्ही जणी नीसरी, नहुवी पोलियणार ।।१२।।

जोगी जोगिन के रूप में

जोगीणी तणो रूपं धरीय, मिली जोगिणी मझारी ।
भक्ष अभक्ष न मिणइ जाणि, क्रिया निज हारी ।।१३।।
सीयल लोपे ते पापिणी, उंच नीच नवि गणे ।
जे नर मिलेइ मिथ्यात्तिणी, ए सवे गुणहीण ।।१४।।
हरिण परि देशि देसिहींडें, गावे सरस अपार ।
रूप कंठ देखीय करी, भूले नवार ।।१५।।
राज सभा थको उठीयो, राजा मोहवंत ।
रांणी ने घरि आवीयो, सूती दीठी महंत ।।१६।।
सोभा दीठी तव अति घणी, रीझ्यो तव राऊ ।
कि रंभा कि उरवसी, जाण्यो एह भाऊ ।।१७।।
कि इन्द्राणी के रोहीणी, रूप दीसे अपार ।
एहवी रांणी मझघरी, धन धन अवतार ।।१८।।
इम कही आधो गयो, सेज्या उपरि बैठो ।
रांणी न बोलें अचेतना, रूप तेह दीठो ।।१९।।
तव राजा विस्मय हुवो, रांणी नवि वेखे ।
कहां गइ ते सुन्दरी, दासी नवि पेखि ।।२०।।

रानी के वियोग में राजा की दशा

तव राजा मोह धरे अपार, पाम्यो बहु दुख ।
देखे नहीं कहीं कामिणी, गयो तव सुख ।।२१।।

दूहा

तव राजा मण्णं रडे झूरी झूरी करइ विलाप ।
विकल हुवो मुंझिमइ व्यापो बहु संताप ।।१।।

रोली रांणी इम उचरे, कहीय न पामे सुख ।
विषय वेदना करी पीडीयो, मोह माडे दुख ॥२॥

भास बीजरीनी

तब राजा ते जोगिणि, राज मुद्रा त्यजी आपणीये ।
कुंवर बैसाड्यो राजि, मन्त्री सवे मिली मती घणीयें ॥१॥
ते जोगिणी गई एक बार, उजेणी नयरी भणीये ।
आवीय नयर मझारि, गीत गावे ते पापीणीए ॥२॥

भास जसोधरनी

यशोभद्र मुनि को देखकर रानी के भाव

तिणे अवसरि मुनिवरह राउ, आव्या गुणवंत ।
जसोभद्र नाम निरमला, भवांतरि जयवंत ॥१॥
तीन्हुं जोगीणी स्वामी देखीया, निंदा करे घोर ।
राज मंदिरि अम्हे आइति, अकुशन कीयो घोर ॥२॥
तुं नांगो अमंगलो, लाजवी की लाची ।
कुल नारी माहिं भमे अपार, इन्द्रीय नहीं साची ॥३॥
तिन्हुं पापिणि द्वेष धरियो मन माहि जस घोर ।
पाप जोड्यो अति घणो, कोप घन घोर ॥४॥
मुनिवर स्वामी निरमला, क्षमा गुणवंत ।
ध्यान कीयो मोक्ष मांहि आइ, सद्गुरु जयवंत ॥५॥

ध्यानस्थ मुनि के पास रानी का आगमन

ते आवी तिन्हे पापिणी, चंडिका मठि आवे ।
राति पंखी अंधारी घोर, मुनि कन्हे बनावे ॥६॥
उजालो तिहां कीयो, मुनिवर तिहां दीठो ।
तब मोह अति उपनो, तेह चित्तवि पंठो ॥७॥
अम्हे राज छोडीयंड सार, तम्हे कारणे वेष ।
दीक्षा छोडो तम्हे आवणी जिम करूं अम्हे सेव ॥८॥
मुनिवर स्वामी ध्यान मौन, छोडे नहि चंग ।
तब ते नाचे पापणी, नाचे मोह रंग ॥९॥

भास अंबिकानी

हाव भाव करे घनघोर, नैणीन रूप करे आपणीए ।

आलिंगन देइ अपार, कोइ देखई प्रतिघणीए ।।१।।
मुनिवर मन अचल जिम मेरा, चले नहीं स्वामी निरमलाए ।
वली उपसर्ग मांड्यो घनघोर, ध्यांन मूके सोहवलोए ।।२।।
चारि पहर लगें कीयो उपसर्ग, निरर्थक हुइ ते पापिणीए ।
तव नाठी चोर जिम आपणी, पाप जोड्यो अभागिणीए ।।३।।
तिणें अवसरि उग्यो दिनराऊ, कांणे कुंकुम पीअरयोए ।
पुन्यवंत आव्या तिहां गुणवंत, महोछव कीयो भाव धरिवोए ।।४।।
जय जयकार हुवो अपार, चरण कमल दुई वांदीयाए ।
हरष बदन हुवा सहु कोइ, भाव सहित गुरु पूजीयाए ।।५।।

रानी का कोढ़ी होकर पांचवें नरक में जाना

ते पापिणी गई परदेश, कोढिणी हुईय अभागिणीए ।
दुख पाम्या तिन्हु घनघोर, पांचमें नरकि पडि पापेणीए ।।६।।
छेदन भेदन दुख अपार, एक जिह्वा किम बोलीयेए ।
इम जांणि तम्हे मकी करो पाप, पापे दुरगति तोलियेए ।।७।।

नरक से निकल कर विविध गतियों में जन्म लेना

सतर सागर भोगव्यो तिहां आयु, पाप कलि अति घणोए ।
तिहां थकां नीसरिया ते जीव जाणि, मांजर हुवा श्रेणिक सुणोए ।।८।।
माजर मरी सुकर जांणि, सूकर मरां स्वान हुवाए ।
श्वान मरी कूकडा वली घोर, समदाह करमें मूवाए ।।९।।
अवंती देश माहि सविशाल, घोष ग्राम छे रूवडोए ।
ते तीन्हीं जीव गुणदीण, कुणबीय घरिते अवतरीए ।।१०।।
ऊंमान्य कुणबी तणो नाम, एक बेटी तेह घरि हुइए ।
एक पुत्र तणी हुई बीह, एक अवांई बेटी सहीए ।।११।।
उपना पुठें धन विणास, कुटंब विणास हुवो घणोए ।
निरधार हुई ते अबला बाल, दुख भयो बहु तेह तणोए ।।१२।।
सखि सखि मोटि हुइ जांणि, दुख पाम्या बहु अति घणाए ।
एक कांणी एक कालीयवानि, एक कूबी फल पाप तणाए ।।१३।।
भूखे पीडी ते घनघोर, तिहां थकी देशान्तरि गईए ।
जिहां जिहां जाइ तिहां दुख, सुख नहीं पुन्य विणसहीए ।।१४।।
भमती भमति आवी ते जांणि, पुन्य नगरि सुणो महीपतीए ।
मांझ वन छे तिहां सविशाल, तिहां मुनिवर आव्या ज्ञान घणीए ।।१५।।

मुनि विश्वलोचन का वन में आगमन

फटिक सिला तलि बैठा संत, संघ सहित सोहामणाए ।
विश्व लोचन स्वामी तणो नाम, अविचिन्तामणी रलीया वणाए ॥१६॥
महिचंद्र राजा गुणवंत, वांदण आव्यो मनिरलीए ।
सयल सजन परिवार सहित, नमोस्तु कीयो भावलीए ॥१७॥
पूजा करी बैठा सविचार, धर्म सांभल्यो अति रूयडोए ।
समकित वरत लीयां बलिसार, बार भेद तप गुणे वड्योए ॥१८॥
तिणे अवसरि आवी ते बाल, समादीठी बहु निरमलीए ।
भीख मागुवा कीधी बहु आस, उभी रही दयामणीए ॥१९॥

राजा द्वारा प्रश्न करना

वस्त्र जीर्ण पहिरीया अतिहीरण, कुरूप दीसे बीहांवणीए ।
राजा दीठी ते रूप विण, प्रीति उपनी सोहावणीए ॥२०॥
तब सद्गुरु पूछवा मनरंगि, विनय सहित सोहावणीए ।
एक रूप भीखारीय होव, ए दीठें मझ मोह घणोए ॥२१॥

भास आनंदानी

मुनि द्वारा पूर्वभव वृतान्त कहना

तव मुनिवर इम बोलीया, आनंदारे, राज सुणो तम्हे सारतो ।
वणारसी नयरी तम्हे राजा, आ० होता अति सविचार तो ॥१॥
ए राणी होती तम्ह तणी आ०, अवर दासी हुई कांणितो ।
विषय सौख्य ने कारणे, आ०, जोगिणी हुई दुख खाणि तो ॥२॥
पाप करीयो तिन्हु अति घणो, आ०, मुनिवर कावे उपसर्ग तो ।
नरक पशू गती भोगवी, आ०, दुख पाम्या उत्तंगतो ॥३॥
मनुष जन्म इन्हू पामीयूं, सजन जन विलासतो ॥४॥
विश्वभूति राजा होता, आ०, तम्हे वाणारसी अति धंग तौ ।
रांणी वियोग राज छोडूयो, आ०, जनम अकारथो उतंगतो ॥५॥
पुण्य विणा संसार भम्या, आ०, नव हुवा एक वार तो ।
वन मांहि सद्गुरु देखीया, आ०, उपशम हुवो अपार तो ॥६॥
सद्गुरु स्वामिन संबोधीया, आ०, मधुरीय सुललीत वाणि तो ।
श्रावक व्रत लीयां रूयडा, आ०, पाल्या अति सुख खाणितो ॥७॥

पहिले स्वर्गि देव हुवो, भा०, सुख भोग का सविशाल तो ।
तिहां थका चवीकरी तम्हे हुवा, भा०, महीचन्द्रराजा गुणवंततो ।।८।।
तेहमणी तम्ह मोह हुवो, भा०, इन्हुं दीठा पुठे चंग तो ।
मोह वैर जीव उपनो, भा०, भवांतर तणो उत्तंग तो ।।९।।
कीधा करम न छुटीए, भा०, राय सुणो तम्हें सार तो ।
जे सुख दुख जीव नीपजे, भा०, ते सवि करम विचार तो ।।१०।।
तव राजा विनय करी, भा०, बोल्यो दुई कर जोडि तो ।
वरत कहो स्वामी निरमलो, भा०, जिम पाप जाइ भव कोडितो ।।११।।

लब्धि विधान व्रत करने को कहना

तव सद्गुरु स्वामी बोलीया, भा०, लब्धि विधाणक सार तो ।
भाद्रवामास उजालडो, भा०, पडिवा बीज त्रीज कारतो ।।१२।।
तीन उपवास कीजे निरमला, भा०, नहीं तो एकांतर चंगतो ।
त्रिणि दिवस सीयल पालो, भा०, भूमि शयन गुणरंगितो ।।१३।।
संयम पालो निरमलो, भा०, सचित तणो परित्याग तो ।
धर्म ध्यान करो रूवडो, भा०, सरग मुगति तणो माग तो ।।१४।।
कुंकुम छडवु देवाडिये, भा०, मोतिय चोक पूरावतो ।
सोवन सिंहासन मांडिये, भा०, भावना अति बहु भावतो ।।१५।।
महावीर तणां बींब थापीये, भा०, स्वामीय त्रिभुवन तारतो ।
पंचामृत नम्हृण करो, भा०, पूजा नष्ट पमारितो ।।१६।।
त्रिणिकाल पूजा करों, भा०, धवल मंगल गीत नाद तो ।
महोछ्व कीजे रूवडा, भा०, जयजय करता साद तो ।।१७।।
अष्टोत्तर सो रूवडा, भा०, जाप दीजे अति चंगतो ।
जाइ सेवंता उजला, भा०, अपराजित मंत्र चंत तो ।।१८।।
स्तवन कीजे अति रूवडा, भा०, छंदवस्त जयमालतो ।
पांच नाम महावीर तणा, भा०, कहउ सुणो गुणमालतो ।।१९।।
वीरनाथ पहीलो सुणो, भा०, महावीर दुजो जाणितो ।
वर्द्धमान त्रीजो कही, भा०, अतिवीर चौथो जाणितो ।।२०।।
सन्मति नाम पांचमो सही, भा०, ए पांच नाम भवतारतो ।
प्रभु पीन जपीये ध्याइये, भा०, सुनता मुगति उधारतो ।।२१।।
इणि परि महोछव रूवडो, भा०, करो तम्हे जीवदया सारतो ।
इणि परि पांच वरस करो, भा०, भवियण तहुं भवतारतो ।।२२।।

दूहा

पछे उजवणो निरमलो, करो श्रावक अति चंग ।
जिणवर भुवण सोहावणो, शांतिक महाछव उछरंग ॥१॥
अष्टोत्तर सो उजला, तांदुलतणा पुंज सार ।
तेहु उपरि दीवा रूवड़ा, उजालो गुणधार ॥२॥

भास चौपईनी

व्रत आठ फल रूवडाव, भालंतडे, विस्तारो गुणधार ।
पांच पांचवानां निरमलाए, सुणो सुंदरे, पकवान सविचार ॥१॥
पांच लाडां मोदिक भलाए, भा०, पांच मेवर आदि चंग ।
नालिकेर आदि रूवडाए, सु०, फलविस्तार सुरंग ॥२॥
नेवज अक्षत विविध परीए, भा०, उपकरण गुणवंत ।
पांच घंट जे गट सुणोए, सु०, पांच कलस भृंगार ॥३॥
धूप दहन अति रूवडाए, सु०, पींगाणी सविसाल ।
चंद्रोपक सुहावणाए, सु०, चमर तोरण वनमाल ॥४॥
पुस्तक पांच लिखावीयोए, भा० दीजो मुनिवर दान ।
संघपूजा वली रूवडीए, सु०, साहमी वछल संघमान ॥५॥
शक्ति प्रमाने निरमलोए, भा०, वनसारी गुणवंत ।
शक्ति विण भावधरीए, सु०, दुणो करो जयवंत ॥६॥
सद्गुरु वांणी रूवडीए, भा०, भवियण सुणो भवतार ।
लब्ध विधान व्रत निरमलोए, सु०, श्रावक कीधो सविचार ॥७॥
तिन्हुं नि नामिका वलिधोए, सु०, भाव सहित गुणमाल ।
शुश्रूषा श्रावक करेए, सु०, सार्धमि अणीसार ॥८॥
वरत कीधो सोहावणोए, भा०, तिन्हु निर्नामिका चंग ।
समाधिमरण साधिकरी, सु०, सुरग लाध्यो उछरंग ॥९॥

व्रत के साथ मरण से पांचवें स्वर्ग में जन्म लेना

पांचमो सरग सोहावणोए, भा०, ब्रह्म नाम गुणवंत ।
देव हुवा ते रूवडाए, सु०, सौख्य भोगवे बलवंत ॥१०॥
जिणवर गणधर मुनिवरए, सु०, यात्रा करे आणंद ॥११॥
तिहां थकी चवी करी रूवडाए, भा०, मगधदेश मझारि ।
ब्राह्मण ग्राम सोहाए, सु०, ब्राह्मण वसे तिहां सार ॥१२॥
काश्यप गोत्र से रूवडोए, भा०, सांडिल्य ब्राह्मण चंग ।

सांबल्या ब्राह्मणी तेह तणीए सु०, रूप सोभाग उत्तंग ॥१३॥
तेह बेहु कुखें, उपनाए, मा०, ते देव गुणवंत ।
पहिलो गौतम जांणियेए, सु०, बीजो भार्गव जयवंत ॥१४॥

गौतम के रूप में जन्म होना

त्रीजो भार्गव रूवडोए, मा०, दीसे ए अति बहु रूप ।
अनुक्रमें तीन्हें उपनाए, सु०, रीझ्या सजन सुभूप ॥१५॥
जात महोछव तिहां कीयोए, धवल मंगल गीत नाद ।
दान दीयो तिहां अति घणोए, सु०, नीपन्नो जय जयकार ॥१६॥
निमित्त शास्त्र मांहि इम कह्यु ए, मा०, विद्वांस होसे अतिचंग ।
विद्या वाटे जे जीकोसेए, सु०, तेहतणा सीस उत्तंग ॥१७॥
सन्नि सन्नि मोटा हुवाए, मा०, पढइ ते सास्त्र सुजाण ।
व्याकरण अति घणोइ, सु०, वली पढइ वेद पुराण ॥१८॥
तर्क शास्त्र पढ्यो रूवडोए, मा०, गौतम चढ्यो परमाणि ।
ख्याति उपनी अति घणीए, सु०, लोकमाहि इम जाणि ॥१९॥
नेसाल मांही तिहां रूवडीए, मा०, पढइते बाला सार ।
पांचसे रलीया मणांए, सु०, विनयवंत सविचार ॥२०॥
तिणे अवसर स्वामि आवीयाए, मा०, महावीर देव अवतार ।
समोसरण अति रूवडोए, सु०, बार सभासविचार ॥२१॥
केवलज्ञान स्वामी जाणियंए, मा०, लोकालोक प्रकाश ।
पण दिव्य ध्वनि नवि उपजेए, सु०, गणधर विणगुणभास ॥२२॥
सौधर्म इन्द्र तिहां आवीयोए, मा० देव देवीय सहीत ।
स्तवन करी स्वामी पूजीयाए, सु०, बैठो राग रहित ॥२३॥
भवियण सयल आनंदीयाए, मा०, महोछव कीयउ वखाणि ।
बैठा सरस सोहांवणाए, सु०, सुणवा जिणवरवाणि ॥२४॥
तव इन्द्रे बीचारियूं ए, मा०, इग्यारह सहस्त्र मुनिचंग ।
समोसरण माहि रूवडाए, सु०, तप जप ध्यान उत्तंग ॥२५॥
पण गणधर पदवी नहींए, मा०, तेह विण न उपजे वांणि ।
अवधि ज्ञान करी जोइ यूंए, सु०, गौतम गणधर जांणि ॥२६॥

दूहा

ते मिथ्यामति संकरीयो, न जाणे धरम विचार ।
विद्या मद छे अति घणो, काल लबधि विण सार ॥१॥

काल लबधि सनमुख हुई, हवे संबोधू चंग ।
इम कही रूप फेरव्यू, वृद्ध रूप धरीयू उत्तंग ॥२॥

भास चोपईनी

सभि सभि निसरीयो गुणवंत, गौतम कन्है आव्यो जयवंत ।
ऊभो रह्यो तेह आगलि जाणि बोल्यो मधुरीय सुललित वाणि ॥१॥
एक काव्य आव्यो मे सार, तेहनो अर्थ करो सविचार ।
हुं संतोषु अति सविसाल, तह्य जस विस्तरे सुणो गुणमाल ॥२॥
तब गौतम बोल्यो इम जाणि, अर्थ कहु तम्ह तणी वखाणि ।
तो तम्हे किम करो गुणवंत, तम्ह तणो सिक्ष होउ जयवंत ॥३॥
नही तो अह्मे गुरु तणा तम्हे सिक्ष, इम जाणो गौतम तम्हें रिक्ष ।
वृद्ध तणो मांन्यो तिहां बोल, कवण विद्वांस पूरे मभ्क तोल ॥४॥
एह्वा पंज कीधी तिन्हु सार, तब सांडिल्य करे विचार ।
निमित्ती वयण कीम फीरे आज, ए संयोग मिल्यो गुणकाज ॥५॥
वृद्ध बोल्यो तब सुललित वाणि, आगम तणो भेद वखांणि ।
तिन्हि काल कवण कहो विप्र, षट् द्रव्य तणा भेद पवित्र ॥६॥
सप्त तत्त्व कवण कहो गुण, नव पदारथ तणो विचार ।
रत्नत्रय गुण कहो चंग, षट् लेस्या कवण उत्तंग ॥७॥
जीव समास कहो गुणवंत, ज्ञान तणा भेद जयवंत ।
एतलां वातां कहो तह्मे आज, तो विद्वांस पंडित गुणराज ॥८॥
तब गौतम करे विचार, आगम तणो भेद नावे सार ।
तब अहंकार करे अतिघोर, कोप चढ्यो ब्राह्मण घनघोर ॥९॥
तुं आवलि कैसूं कहुं रे गंवार, हुं गौतम विद्या भण्डार ।
थारा गुरु स्युं करुं हवे वाद, विद्वांस तणा उतारू नाद ॥१०॥
इम कही चढ्यो तीव्रोधार, बंधव सहित चाल्यो सविचार ।
पांच सत सिक्ष गुणवंत, समोसरणि आव्यो पुन्यवंत ॥११॥
मान स्तम्भ दीठो उत्तंग, मान गल्यो मिथ्यात हुवो भंग ।
समकित उपनो परमानंद, बांध्यो धरम तणो तिहां कंद ॥१२॥
महावीर देव दीठा अवतार, सोम मूरति स्वामी अवतार ।
तीर्थंकर स्वामीय अम गुरुदेव, सुरनर खेचर करे नित सेव ॥१३॥
गौतम हरख वदन हुवो वांणि, स्तवन बोले तिहां मधुरीय वांणि ।
तह्य दर्शन हुवो मभ्क सार आज, काल लब्धि आवी मभ्ककाजि ॥१४॥
हवे छूटो हुं भव संसार, हवे मभ्क देउ स्वामीय संयम भार।

इम कही तजीयो मोहजाल, दिगम्बर हुवा गुणमाल ।।१५।।
तप जप संयम ध्यान अभंग, चौथो ज्ञान उपनो उत्तंग ।
मनःपर्यय तेह नाम जि सार, मन तणी बात जाणे गुणंधार ।।१६।।
सार रिद्धि उपनी वली सार, गणधर स्वामी हुवा भवतार ।
जिणवर वाणी अर्थ विशाल, अंग पूरव रचे गुणमाल ।।१७।।
प्रथम गणधर हुवा अतिचंग, इन्द्रभूति नाम दीयो उत्तंग ।
दूही बंधवे लीयो संयम भार, गणधर हुवा स्वामीय भवतार ।।१८।।
अगिनिभूति वी जानू नाम, वायुभूति त्रीजो गुणनाम ।
गणधर पद हुवा गुणवंत, ज्ञान रिद्धि पाम्या जयवंत ।।१९।।
लब्धि विधान कीयो इन्हुं चंग, गणधर पद पाम्या उत्तंग ।
मुगति गामि हुवा गुणवंत, मीद्ध पद पाम्या उत्तंग ।।२०।।
ते पद देउ स्वामी मझसार, जिणवर गणधर मुगति दातार ।
मुनिवर स्वामी कृपा करो देव, ब्रह्म जिणदास कहें करू सेव ।।२१।।

वस्तु

श्री वीर जीणवर वीर जीणवर, पांय प्रणमेसु ।।
गणधर मुनिवर नमसकरू, सरसति स्वामिणि हृदय आणी ।
तह्म परसादें निरमलो, रास कीयो मे मधुरी वाणी ।।
श्री सकलकीरति पाय प्रणमीने मुनि भुवनकीरति भवतार ।
ब्रह्म जिणदास कहे निर्मलो, तम्ह गुण देउं भवतार ।।१।।

दूहा

पढें गुणे जे सांभले, करे वरत गुणवंत ।
रिद्धि लब्धि लही करी, मुगति रमणी हुइ कंत ।।१।।
लब्धि विधान गुण वरणव्या, फल कह्या सविशाल ।
इम जाणी धर्म आचरो, भवीयण तह्मं गुणमाल ।।२।।

।। इति श्री गौतम स्वामी रास समाप्तः ।।

×

आधारभूत ग्रंथों की सूची

१. अजित जिनेश्वर रास
२. अठावीस मूल गुण रास
३. अनन्त व्रत रास
४. अक्षय दशमी रास
५. अम्बिकादेवी रास
६. आकाश पंचमी कथा रास
७. आदिनाथ वीनती
८. आदि पुराण रास
९. कर्म विपाक रास
१०. गिरनारी धवल
११. गुरु जयमाल
१२. गौतम स्वामी रास
१३. गौरी भास
१४. चन्दन षष्ठी कथा रास
१५ चारुदत्त रास
१६. चौदह गुणस्थानक रास
१७. चौरासी न्याति माला
१८. चूनड़ी गीत
१९. जम्बू स्वामी रास
२०. ज्येष्ठ जिनवर पूजा कथा
२१. ज्येष्ठ जिनवर लहान
२२. जिनवर पूजा हेली
२३. जिनवाणी गुणमाल
२४. जीवड़ा गीत
२५. जीवन्धर स्वामी रास
२६. तीन चौवीसीनी वीनती
२७. दशलक्षण व्रत कथा रास
२८. द्वादशानुप्रेक्षा
२९. धनपाल कथा रास
३०. धन्यकुमार रास
३१. धर्मतरु गीत
३२. धर्म परीक्षा रास
३३. नागकुमार रास
३४. निजमनि सम्बोधन
३५. निर्दोष सप्तमी कथा रास
३६. परमहंस रास
३७. पुरन्दर विधान कथा रास
३८. पुष्पांजलि रास
३९. पंचपरमेष्ठी गुण वर्णनो रास
४०. प्रतिमा ग्यारह की भास
४१. बारह व्रत गीत
४२. बंकचूल रास
४३. भद्रबाहु रास
४४. भविष्यदत्त रास
४५. महायक्ष विद्याधर कथा
४६. मालिणी पूजा कथा
४७. मिथ्या दुक्कड़ वीनती
४८. मेंडूकनी पूजा कथा
४९. मोड़समाप्ती रास
५०. यशोधर रास
५१. रविव्रत कथा
५२. राम रास
५३. रोहिणी रास
५४. रात्रि-भोजन रास
५५. लुब्धदत्त विनयवती कथा
५६. शरीर सफल गीत
५७. श्रीपाल रास
५८. श्रेणिक रास
५९. सगरचक्रवर्ती कथा रास
६०. समकित अष्टांग कथा रास
६१. समकित मिथ्यात्व रास
६२. सरस्वती जयमाल
६३. सासर वासा को रास
६४. सुकौशल साह कथा
६५. सुकुमाल स्वामी रास
६६. सुदर्शन रास
६७. सोलह कारण रास
६८. हनुमन्त रास
६९. हरिवंश पुराण रास
७०. होली रास

सहायक ग्रंथ सूची

१. अर्हत् प्रवचन : पं० चैनसुखदास न्यायतीर्थ

२. अलंकार पारिजात : नरोत्तमदास स्वामी

३. अष्ट छाप काव्य का सांस्कृतिक अध्ययन : डॉ० मायारानी टण्डन

४. आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार ग्रन्थ सूची—भाग १ : सम्पादक नरेन्द्र भानावत

५. आदिपुराण में प्रतिपादित भारत : डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री,

६. कथा कोष : हरिषेण

७. कबीर ग्रन्थावली : सम्पादक श्यामसुन्दर दास

८. कविवर बनारसीदास : जीवनी और व्यक्तित्व : डॉ० रवीन्द्रकुमार जैन

९. कार्तिकेयानुप्रेक्षा : स्वामी कार्तिकेय

१०. कालू उपदेशवाटिका : आचार्य तुलसी

११. काव्य प्रकाश : मम्मट

१२. काव्य प्रदीप : डॉ० राम बहोरी शुकल

१३. गुजरात का जैन धर्म : मुनि श्री जिनविजय

१४. चैनसुखदास स्मृति ग्रन्थ : सं० डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल

१५. चौबीसी तीर्थंकर पुराण : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य

१६. छन्द प्रभाकर : जगन्नाथ प्रसाद 'भानु'

१७. जैन कथाओं का सांस्कृतिक अध्ययन : श्री श्रीचन्द्र जैन

१८. जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह-भाग १ : पं० जुगलकिशोर मुख्तार

१९. जैन ग्रन्थ भण्डार्स इन राजस्थान : डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल

२० जैन गुर्जर कवि—भाग १,२ : सं० मोहनलाल दुलीचन्द देसाई

२१. जैन दर्शन : डॉ० महेन्द्र कुमार न्यायाचार्य

२२. जैन दर्शनसार : पं० चैनसुखदास न्यायतीर्थ

२३. जैन धर्म : पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री

२४. जैन धर्म दर्शन : डॉ० मोहनलाल मेहता

२५ जैन धर्म का मौलिक इतिहास—भाग 1,२ : सम्पादक आचार्य श्री हस्तीमलजी एवं डॉ० नरेन्द्र भानावत

२६. जैन निबन्ध रत्नावली : पं० मिलापचन्द रतनलाल कटारिया

२७. जैन भक्तिकाव्य की पृष्ठ भूमि : डॉ० प्रेमसागर जैन

२८. जैन लाक्षणिक शब्दावली : पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री

२९. जैन शोध और समीक्षा : डॉ० प्रेमसागर जैन

३०. जैन साहित्य और इतिहास : पं० नाथूराम प्रेमी

३१. जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास : डा० कामता प्रसाद जैन
३२. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास : डा० मोहनलाल मेहता (भाग १ से ६)
३३. जैन सिद्धान्त बोल संग्रह : भाग १ से ८, सम्पादक भैरोदान सेठिया
३४. जैनेन्द्र सिद्धान्त शब्द कोष : क्षुल्लक जिनेन्द्र वर्णी
३५. जैनाचार्य रविषेण कृत पद्मपुराण और तुलसी कृत रामचरित मानस : डा० रमाकान्त शुक्ल
३६. तत्वार्थ सूत्र : उमास्वाति
३७. तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा—भाग १ से ४ : डा० नेमिचन्द्र शास्त्री
३८. तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर : पं० पद्मचन्द्र शास्त्री
३९. तुलसी पूर्व रामसाहित्य : डा० अमरपाल सिंह
४०. त्रिषष्ठिशलकापुरुष चरित : हेमचन्द्र
४१. द्रव्य संग्रह : नेमिचन्द्राचार्य
४२. दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि : कामता प्रसाद जैन
४३, पद्मपुराण : रविषेणाचार्य
४४. पद्मावत : सम्पादक डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल
४५. पंचास्तिकाय : आचार्य कुन्दकुन्द
४६. पुण्याश्रव कथाकोष : रामचन्द्र मुमुक्षु
४७. पुराण सार संग्रह—भाग १, २ : आचार्य दामनन्दी
४८. प्रशस्ति संग्रह : सम्पादक डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल
४९. प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ :
५०. पृथ्वीराज रासो में कथानक रूढ़ियां : डा० बृजलाल श्रीवास्तव
५१. भट्टारक यश : कीर्ति सरस्वती भण्डार, ऋषभदेव के हस्तलिखित शास्त्रों का परिचय : पं० रामचन्द्र जैन
५२. भट्टारक सकलकीर्ति : व्यक्तित्व और कृतित्व : डा० बिहारीलाल जैन (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध)
५३. भट्टारक सम्प्रदाय : विद्याधर जोहरापुरकर
५४. भारत का प्राचीन इतिहास : एन० एम० घोष
५५. भारतीय दर्शन : डा० राधाकृष्णन्
५६. भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान : डा० हीरालाल जैन
५७. मध्यकालीन धर्मसाधना : डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
५८. मध्यकालीन सन्त साहित्य : डा० रामखेलावन पाण्डेय

५९. मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति : श्री मदनगोपाल गुप्ता
६०. महापुराण : जिनसेनाचार्य
६१. महाराणा कुम्भा : रामवल्लभ सोमाणी
६२. मोक्षमार्ग प्रकाशक : पं० टोडरमल
६३. र ग्रू : डा० राजाराम जैन
६४. रस सिद्धान्त : डा० नगेन्द्र
६५. राजस्थान एवं गुजरात के मध्यकालीन सन्त एवं भक्त कवि : डा० मदनकुमार जानी
६६. राजस्थान का इतिहास : जेम्स टाड
६७. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची—भाग १ से ५ : सम्पादक डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल एवं पं० अनूपचन्द न्यायतीर्थ
६८. राजस्थान के जैन सन्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व : डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल
६९. राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज : श्री अगरचन्द नाहटा
७०. राजस्थानी भाषा : श्री सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या
७१. राजस्थानी भाषा और साहित्य : पं० मोतीलाल मेनारिया
७२. राजस्थानी भाषा और साहित्य : डा० हीरालाल माहेश्वरी
७३. राजस्थानी वेलि साहित्य : डा० नरेन्द्र भानावत
७४. रास और रासान्वयी काव्य : डा० दशरथ ओझा एवं डा० दशरथ शर्मा
७५. लोक साहित्य : डा० सत्येन्द्र
७६, विद्यापति : श्री शिवप्रसाद सिंह
७७. विश्व धर्म की रूप रेखा : मुनि श्री विद्यानन्द जी
७८. वीर वर्द्धमान चरित : सम्पादक पं० हीरालाल शास्त्री
८०, बृहद् हिन्दी कोष : डा० धीरेन्द्र
८१. श्रावक कर्तव्य दर्पण एवं व्रत कथा संग्रह : ब्र० फूलचन्द
८२. सन्त कवि आचार्य श्री जयमल्ल : उषा बाफना
८३. संस्कृत कवि दर्शन : भोला शंकर व्यास
८४ संस्कृत साहित्य की रूप रेखा : चन्द्रशेखर पाण्डेय
८५. संस्कृति के चार अध्याय : डा० रामधारी सिंह दिनकर
८६. साहित्य और समीक्षा : गुलाब राय
८७. साहित्य के त्रिकोण : डा० नरेन्द्र भानावत
८८. साहित्यक निबन्ध : डा० शान्तिस्वरूप गुप्त
८९. साहित्य दर्पण : कविराज विश्वनाथ

९०. हरिवंश पुराण : खुशालचन्द काला (अप्रकाशित ग्रन्थ)
९१. हरिवंश पुराण : जिनसेनाचार्य
९२. हिन्दी काव्य धारा : पं० राहुल सांकृत्यायन
९३. हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि : डा० प्रेमसागर जैन
९४. हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन—भाग १, २ : डा० नेमिचन्द्र शास्त्री
९५. हिन्दी भाषा का इतिहास : डा० धीरेन्द्र वर्मा
९६. हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास : डा० उदयनारायण तिवाड़ी
९७. हिन्दी साहित्य : श्यामसुन्दर दास
९८. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप और विकास : डा० शम्भूनाथ सिंह
९९. हिन्दी साहित्य का आदिकाल : डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
१००. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : डा० रामकुमार वर्मा
१०१. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
१०२. हिन्दी साहित्य की भूमिका : डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
१०३. हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियां : डा० शिवकुमार शर्मा
१०४. ज्ञानपीठ पूंजाञ्जलि : डा० ए० एन० उपाध्ये एवं पं० फूलचन्द शास्त्री
१०५. ज्ञाताधर्म कथ सूत्र : सम्पादक अमोलक ऋषि
१०६. हिन्दी रासो काव्य परम्परा : डा० सुमन राज

पत्र-पत्रिकायें

१. अनेकान्त, दिल्ली :
२ आर्कियोलोजिकल सर्वे आफ इण्डिया १९०९
३. जिनवाणी, जयपुर :
४, जैन सन्देश शोधांक, मथुरा :
५. जैन सिद्धान्त भास्कर, आरा :
६. जैन हितैषी, बम्बई :
७. परिषद् पत्रिका, पटना :
८. वीरवाणी, जयपुर :

□□□

नामानुक्रमणिका

(तीर्थंकर, संत । विद्वान् ग्रन्थकार, श्रावक, शासक आदि)

□

ग्रन्थानुक्रमणिका

□

नगरानुक्रमणिका

(देश, प्रान्त, नगर, ग्राम, नदी, पर्वत, स्थान, आदि)

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	३	पाद टिपरण	पंक्ति सं. १६
३२	न. २६	महायज्ञ	महायज्ञ
३६	१०	हमें	हेम
३६	६	भारत	भरत
४३	१७	कर	घर
५१	७	जनगत	अन्यरत
५२	६	दिलाना	दिखाना
५३	१८	कुछ	कुल
५६	२३	सुखादि	सुस्वादि
५७	२	भीलों	भीलों
५७	१०	जीव	जीवंधर
६०	२२	गर्म	धर्म
६४	१६	जीवन	जीव
६४	१६	भव की	भव की कथा
७६	११	मतिदिन	प्रतिदिन
८०	२०	मंभाव	प्रभाव
८२	२०	यश	वश
८३	१६	मविधा	प्रतिज्ञा
८३	१६	दुर्मति	दुर्मति
८६	१६	बादर	बादर
८७	१०	धर्म अस्तु बुद्धि	धर्म बुद्धिरस्तु
९१	अन्तिम	२६	३६
९५	४	स्त्रोतम्बिनी'	स्त्रोतस्विनी
९६	पादटिप्पणी	त्रिवेदी	द्विवेदी
९६	,, २(अ)	सुमति	सुमति
९६	,, अ	डर	सार
९९	,, ३ पंक्ति	मवीयस	कनीयस
११३	अन्तिम	प्रतिमा	प्रतिज्ञा
११६	७	जम्स्वामी	जम्बूस्वामी

११६	१८	रास कवियों में	रास काव्यों में
११९	२३	चला	चरखा
१२१	११	बांधा	बांधा
१३५	२५	अभिव्यांजन	अभिव्यंजन
१३६	२	सम्यग्दृष्टि	सम्यग्दृष्टि
१३७	१६	करटे	करते
१३७	२३	कुम्यकार	कुम्भकार
१३९	७	भग	भंग
१३९	१३	इन्द्राणिबा	इन्द्राणियां
१४१	२१	पममहंस	परमहंस
१४१	२४	सारवृत्तियों	सद्वृत्तियों
१४२	१	असह	असद्
१४२	२	सहप्र वृत्तियां	सद्प्रवृत्तियां
१४२	७	बनव	दानव
१४२	९	थोर	और
१४२	अन्तिम	धीरो त्त	धीरोद्धत
१४३	७	मोहनीय	महनीय
१४६	१९	ज्ञासन	शासन
१४६	२१	सम्बोध	सम्बोध
१४७	अन्तिम	बसन्तमाल	बसन्तमास
१५०	९	वोनों	दोनों
१८३	२०	प्रास्श्रय	प्राश्रय
२१०	१०	प्रवीस	बत्तीस
२१८	५	राधे	राधे
२२२	९	१२+१६+२८	१२+१६=२८
२२२	१०	११+१६+२७	११+१६=२७
२७३	२	ऐश्वर्य	सिद्धियों
२७५	२	दासिया	दासियां
२७८	१९	देंगे	देव